"श्री दाता"

"ॐ दाता तूं ही"

श्री गिरधर लीलामृत

भाग ३

लेखक

चन्द्रशेखर श्रोत्रिय
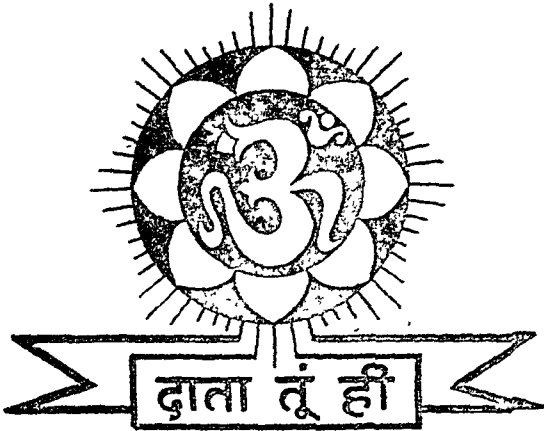
प्रकाशक

शिव मुद्रण एवं प्रकाशन सहकारी समिति लि.

शिवसदन, काशीपुरी, भीलवाड़ा (राजस्थान)

प्रकाशक
शिवमुद्रण एव प्रकाशन सहकारी समिति लिमिटेड
शिवसदन, काशीपुरी, भीलवाडा (राजस्थान)

प्रथम सस्करण

गुरुपौर्णिमा सवत् २०४४
© सन् १९८७

मूल्य · ८०—०० रुपये

मुद्रक
शिवशक्ति प्रेस प्रा. लिमिटेड
वैद्यनाथ भवन
ग्रेट नाग रोड, नागपुर–९

श्री गिरधर लीलामृत भाग–३
लेखक – चन्द्रशेखर श्रोत्रिय

समर्पण

"हे लीलाधारी !

तेरी कृपा–प्रसूत

यह लीलामृत सौरभ

तेरे ही पादपद्मों में

श्रद्धा पूर्वक समर्पित

जिसकी मधुर सुगन्ध से

दिक्–दिगन्त सुवासित

सुरभित हो उठे।"

–शेखर

अनुक्रमणिका

चित्र अनुक्रमणिका

क्र. सं.	विवरण	पृ. संख्या

प्रार्थना

॥ श्री गुरवे नम ॥

ॐ नमो विश्वरूपाय त्रिश्वस्थित्य हेतवे ।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नम

नमो विज्ञानरूपाय परमानन्द रूपिणे ।
कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नम ॥

गौरहरे पदाम्बुज गदाधर समन्वित ।
प्रणम्यप्राण सर्वस्व लिखामि लघु पुस्तकम् ॥

गुरुचरण सरोरूह द्वयोत्थान,
महितरज कनकान प्रणम्य मूर्द्धना ।
गणधिपोमथो वन्दामि बृद्धाञ्जलि,
दासस्य दासाना सर्वेपु प्रणम्यहम् ॥

यन्नामश्रुति मात्रेणपुमान् भवति निर्मल ।
तस्यतीर्थपद किंवा दासानामवशिष्यते ।
अह तमोगुणमयश्चादितस्तव मायया ।
न जाने तव तत्व हि कीदृश च जगत् प्रभो ॥

कायेन वाचा मनसेन्द्रियर्यैर्वा,
बुद्धयात्मनावानुसृत-स्वभावात् ।
करोति यदवत सकल परस्मै,
नारायणेति समर्पयेन्तत् ॥

(वदन)

॥ जय जय श्री सद्गुरु समर्थ ॥

निवेदन

श्री गिरधर लीलामृत भाग १ और भाग २ को सहृदय, रसिक और सुधी पाठकों ने अत्यधिक सराहा, मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की, हार्दिक हर्ष अभिव्यक्त किया, एतदर्थ यह अकिंचन लेखक सभी का आभारी है।

इसमें लेखक का अपना क्या है?

यह तो दीनबन्धु 'दाता' की ही असीम कृपा का फल है जिससे साधारण लेखनी द्वारा अविरल रसधारा प्रवाहित हो सकी।

सब कुछ उस महान् नट नागर का विलक्षण नाटक ही तो है। लेखक तो निरा अनाड़ी, महामूढ़, मतिमन्द, ठूंठ, जैसा भी है, सो है ही।

उस महान् लीलाधारी की विलक्षण लीलाओं की एक और कृति 'श्री गिरधर लीलामृत, भाग ३' के रूप में आपके कर-कमलों में प्रस्तुत है। अवगाहन, मज्जन, स्नान करिये इस भक्ति-गंगा में।

जैसा कि पूर्व में निवेदन किया जा चुका है, इसका एक स्वल्प सूक्ष्म जल कण भी कायाकल्प करने, रसविभोर बनाने, आत्ममग्न करने और अन्त में उस आनन्दमय आत्मस्वरूप का लक्ष्य-वेध कराने में पूर्ण सहाय्यक है।

दाता की लीलाऐं अनन्त हैं। भाग्यशाली प्राणी उनका दिग्दर्शन करते हैं। उन सब लीलाओं का जान पाना और वर्णन कर पाना सहज-सरल नहीं है। उनसे स्वयं से कोई रहस्य उगलवा लेना अत्यन्त कठिन कार्य है। प्रसन्न मुद्रा में कभी कभी कुछ

लीलाओ का संकेत अवश्य कर दिया करते हैं। यही सम्बल लेकर एव प्रत्यक्षदर्शियों की स्मृति की साक्षी लेकर ही लेखक ने कुछ प्रयास किया है। अत खेद है कि इसमें विभिन्न घटनाओं और तिथियो का क्रमवार निर्वाह नहीं हो पाया है। इसके लिए सुधी पाठक अवश्य क्षमा करेंगे।

इस स्वर्णिम शृखला की सौन्दर्यमयी भावी लडी भी शीघ्र ही उनकी कृपा से प्रकाश में आयेगी। इसी प्रार्थना-कामना के साथ आपका हार्दिक अभिनन्दन।

जिन बन्धुओ ने इस प्रकाशन में अभूतपूर्ण सहयोग दिया है उनका यह लेखक पूर्णतया आभारी है।

'जय शकर-जय दाता' के उद्घोष के साथ हर्षपूर्वक।

दाता-निवास
कार्तिक पूर्णिमा वि. स २०४३

एक अकिंचन
रज कण

बाँसा की पहाड़ियों में

आज तक जितने भी महापुरुष हुए हैं उनमें से अधिकतर किसी एक निश्चित स्थान पर रहे नहीं। वे तो इच्छा रहित होते हैं। सभी स्थान उनके अपने है और सभी स्थानों से वे अलग हैं। स्थान विशेष मे न तो उनका लगाव होता है और न अलगाव। भगवत् प्रेरणा और भगवत् कृपा ही उनके लिए मुख्य है। 'जाहि विधि राखे राम, ताहि विधि रहिये।' यही उनका मुख्य भाव होता है। जहाँ व जिस प्रकार परमात्मा उन्हें रखता है उसी में वे आनन्द मानते हैं। ऐसा क्यों न हो, विश्वात्मा का स्वरूप जो वे ठहरे। उनकी स्थिति तो सदैव गीता में वर्णित स्थिति के सदृश ही होती है। वे तो पूर्णतया समदृष्टि वाले होते हैं।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

समदर्शी पुरुष सब प्राणियों में अपने स्वरूप को ही स्थित देखता है, अतः स्थान विशेष पर अवस्थित होने का प्रश्न ही नहीं उठता है। श्री दाता की भी यही स्थिति रही। उन्हें न कभी किसी स्थान पर ठहरने से प्रसन्नता हुई और न त्यागने से दुःख ही हुआ। 'दाता' की इच्छा ही उनकी इच्छा रही।

श्रीदाता के जीवन के प्रथम बारह वर्षों में अधिक समय नान्दशा गाँव के 'गढ़' में व्यतीत हुआ। उसके पश्चात् बारह वर्ष 'हवेली' में बीते। बारह वर्ष 'नोहरे' में निवास कर 'हर निवास' में पदार्पण हुआ। हर निवास में भी लगभग बारह वर्ष ही विराजना हुआ। श्रीदाता बहुधा यही कहते आये हैं, "मेरे दाता का हुक्म बारह वर्ष से अधिक एक स्थान पर रहने का नहीं है। बारह वर्ष बाद स्थान में परिवर्तन करना ही पड़ता है।" स्वप्न में भी श्रीदाता के शब्द कभी मिथ्या होते नही सुने गये। हर निवास हर प्रकार से

साधन-सम्पन्न स्थान रहा है। साधारण व्यक्ति को ऐसे स्थान के परित्याग में कष्ट ही होता है। किन्तु दाता को तो हर निवास से मोह था ही नहीं। उन्हें तो वही करना था जिसकी प्रेरणा मिल रही थी।

हर निवास में जीवन सम्बन्धी सभी आवश्यक सुख-सुविधाएँ थी। वहाँ का वातावरण भी शान्त और सुखद था। सतसंग, भजन-कीर्तन तो वहाँ प्रतिदिन का काम था। भक्ति-गंगा की अविरल जल धारा वहाँ निरन्तर बह रही थी, जिसमें अवगाहन-आचमन कर अनेक लोग अपने जीवन को सफल कर रहे थे किन्तु जैसा कि आपने श्रीगिरधरलीलामृत भाग २ में पढा है, कुछ गाँव के एवं निकट क्षेत्र के तामस वृत्ति वाले लोग श्री दाता के उत्थान को एव भक्तिरस मे सने जीवन को देखकर जल ही नहीं रहे थे वरन् अपने कुप्रयासों में इनके जीवन को कटकाकीर्ण बनाने की चेष्टा में रत थे। ऐसे द्वेष एव स्वार्थ से परिपूर्ण भावना वाले लोगो ने उस क्षेत्र में वातावरण को अशान्त ही बना रखा था। परिजन भी इस कार्य में पीछे नहीं थे। समर्प युक्त, भयकर, झझावात सुदृढ और सबलों को भी हिला कर रख देते हैं। श्रीदाता का हृदय तो सरल एवं करुणा प्लावित जो ठहरा। ऐसे पर कातर हृदय को आघात तो पहुँचता ही है। दुनियां तो स्वार्थ की संगी है। जो लोग 'विशेष' मे प्रेम न कर 'स्वार्थ' से ही प्रेम करते हैं, ऐसे लोगो को क्या आवश्यकता पडी भगवत-भक्तो की, भक्ति गंगा की ? उन्हें क्या चाह है प्रेमानन्द की ? उन्हे तो चाहिए स्वार्थ-स्वार्थ-और स्वार्थ। ऐसे स्वार्थमय वातावरण में एक हरिभक्त का रहना कितना कष्टदायक हो सकता है।

भगवत भक्त श्री तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है—

"जा को प्रिय न राम वैदेही,
तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही ॥"

श्रीदाता ने सोचा, 'यह घर-बार, यह सम्पत्ति, ये परिजन, ये सुख-सुविधाएँ और ये साधन किस काम के, यदि ये दाता के नाम स्मरण में बाधक बनते हैं। सोने की वह कटारी किस काम की

जो प्राण हरने में सहायक हो। वह अंजन किस काम का जिससे नेत्र ही फूट जावे। उन्होंने मन ही मन नान्दशा छोड अन्यत्र वास करने का निश्चय कर लिया।

बचपन से ही श्रीदाता को गौओं से बड़ा प्रेम था, गो-पालक जो ठहरे। ये गौओं के जीवन आधार है और गायें इनके लिये माँ के समान परम-पूज्य। उस समय इनके पास लगभग चालीस गायें थी। एक से एक बढ़कर सुन्दर और गुण सम्पन्ना। देवरी, छालर, झूमर, गोमती, भूरी, गुलाबी, चँवरी, जमना, लाखी आदि कामधेनु का अवतार। ऐसी गायें जिन्हें प्रणाम करने मात्र से मनवांछित फल की प्राप्ति हो जाय। श्रीदाता के सामने समस्या हो गई इनके पोषण की। वैसे तो वे चराचर के पोषक है। कुछ गायों को पोषण करना इनके लिये क्या कठिन? किन्तु साथ ही मर्यादा पुरुषोत्तम जो हैं। संसार की इस नाटयशाला में सामान्य गृहस्थ का प्रदर्शन जो करना है। नान्दशा में गोचर भूमि जो थी, जिस पर अनेक गाँवों की गायें चरा करती थी, कृषि के लिए उठा दी गई। गोचर भूमि समाप्त-प्राय हो गई। चरना तो दूर गायों के खड़े रहने के लिए भी गोचर भूमि नही रही। श्रीदाता को गायों को ऐसे स्थान पर लेजा कर रखना आवश्यक हो गया जहाँ पर्याप्त गोचर भूमि हो, पानी और घास का जहाँ बाहुल्य हो तथा बे-रोक-टोक गायों के चरने व विचरने की सुविधा हो।

स्थान का चयन

श्रीदाता की अन्यत्र बसने की इच्छा हो और उपयुक्त स्थान नहीं मिले, यह कैसे संभव हो सकता है। स्थान तो पूर्व निश्चित है, केवल प्रकाश में आने मात्र की देर है। एक बार श्रीदाता जयपुर से नान्दशा पधार रहे थे। अजमेर से जीप को राष्ट्रीय मार्ग संख्या ८ पर ले चलने का आदेश दिया। दीवेर से कुछ आगे चलकर एक स्थान पर जीप को रुकवाकर वे नीचे उतर पड़े। वर्षाऋतु का वैभव चारों ओर फैला हुआ था। हरियाली छाई हुई थी और चारों ओर की पहाड़ियाँ मखमली परिधान में अपने सौन्दर्य पर इठला रही थी। चिड़ियों की चहचहाट, कोयलों की

कुहू-कुहू, पपीहो की पीऊ पीऊ और झींगुरो की झन-झनाहट उस स्थान की रमणीयता में चार चाँद लगा रही थी। शान्त, सुगन्धित और सुमधुर वायु ने बरबस ही श्रीदाता के मन को मोह लिया। वे अनायास ही पास के गाँव की ओर चल पडे। एक किलो मीटर के लगभग चलने पर उन्हे एक पलाश-कुन्ज दिखाई दिया, पास ही एक कुआँ था जो किनारे तक पानी से भरा था। श्रीदाता अपने सेवको सहित उस कुएँ पर जा बैठे। साथ में लाये हुए भोजन को करने के बाद वही शान्ति से बैठ गये। बैठे-बैठे ही उन्हे प्रेरणा हुई *"यही वह स्थान है जहाँ उन्हे अब रहना है।"* उन्होंने अपना आशय सेवको को बताया। प्राकृतिक सौन्दर्य को देखते हुए वह स्थान बडा रमणीक है किन्तु एक गृहस्थ के रहने के लिए उन लोगो को उपयुक्त तो नही लगा किन्तु श्रीदाता की इच्छा के विपरीत किसी को बोलने का साहस नही हुआ। उन्होंने श्रीदाता की हाँ में हाँ करते हुए बताया कि रहने के लिए यह स्थान बडा उपयुक्त एवं उत्तम है।

उस दिन तो वापिस नान्दशा पधारना हो गया किन्तु तीन-चार दिन बाद ही पुन वहाँ पधारना हुआ। उस स्थान के पास वाले गाँव में जाकर वहाँ के लोगो से वहाँ की विस्तृत जानकारी ली गई। वह स्थान जिसके लिए जानकारी दी गई थी किसी समय यह नाथ पथियो का सिद्ध स्थल रहा है तथा वर्तमान में भी एक नाथ-सन्त का समाधि स्थल है। बांसा, झूटो का गुड्डा और ओडा के मध्य स्थित है और एक वैश्य के अधिकार में है। आसपास की पहाडियो में, दो ऊँची पहाडी श्रेणियो के मध्य की घाटी और इधर-उधर बसे छोटे छोटे गाँवो मे भी जाना हुआ। पहाडियाँ *भिन्न-भिन्न प्रकार के हरे-भरे पेडो, जिनमें बाँसो की अधिकता थी* और ऊँची ऊँची मोटी घास से आच्छादित बडी सुहावनी लग रही थी। झाडियाँ और पेड इतने घने थे, तथा पहाडियाँ इतनी ढालू थी कि उनमें होकर जाना बडा ही कठिन काम था। पहाडियों के बीच, घाटियों में कल-कल नाद करते हुए स्वच्छ, पानी के नाले बह रहे थे। पहाडियो के बीच स्थित भूमि में छोटे-

छोटे खेत थे जिनमें मक्का और चावल की फसलें थीं। सौन्दर्य से ओतप्रोत वहाँ का शान्त वातावरण बरबस ही वहाँ आनेवाले लोगों के चित्त को आकर्षित किये बिना नहीं रहता।

उस क्षेत्र के निवासी सरल हृदय, भोले-भाले, अनपढ़ और गरीब हैं। साहस और परिश्रम में उनकी तुलना नहीं। वहाँ की पहाड़ियाँ शेर, बघेरे, चीते, भालू जैसे हिंसक जन्तुओं से भरी पड़ी हैं। उन्हीं पहाड़ियों में वे निर्भय होकर अपने पशुओं को चराते हैं, घास के गट्ठर और लकड़ी की मोलियाँ लाते हैं तथा अन्य आवश्यक कार्य करते हैं। वे बड़े भले हैं। ऐसे भोलेभाले लोगों के बीच रह कर सेवा करना बहुत भला कार्य है। दाता ने अपने निश्चय को स्थायित्व का रूप दे दिया।

दाता निवास का निर्माण

प्रयास कर वह भूमि वैश्य से चार हजार रुपयों में खरीद ली गई। पास की कुछ भूमि और खरीद ली गई। कुछ दूर पहाड़ियों के मध्य सोलह बीघा जमीन और मिल गई जो बन्धे के नाम से जानी जाती है और जिसमें अब अनेक फलदार पेड़ लगा दिये गये हैं। गायों के लिए पहाड़ियों के मध्य बीस बीघा गोचर भूमि की व्यवस्था हो गई। सड़क के किनारे की कुछ पड़त भूमि सरकार से ले ली गई। इस तरह प्रभु कृपा से कृषि एवं चारागाह के रूप में भूमि की अच्छी व्यवस्था हो गई।

भूमि की तो व्यवस्था हो गई किन्तु आवास की समस्या जटिल थी। कारण, पास में जो पैसा था वह तो कृषि योग्य भूमि के क्रय करने में खर्च हो गया। नान्दशा स्थित भूमि और मकान को विक्रय करने का विचार हुआ किन्तु वह भी संभव नहीं हो सका। मकान तो बनाना ही था। निराश होने की बात नहीं थी किन्तु समस्या सामने थी। पास में पैसा नहीं, चूना, रेत अत्यधिक महँगा। चूना तीस किलो मीटर दूर से व रेत बीस कि. मी. दूर से लाना होता है। कारीगर भी दूर से अर्थात् उदयपुर, देवगढ़, नाथद्वारा, भीम आदि स्थानों से लाने होते हैं। मकान बनाने को तो बात-बात में पैसा चाहिये और पास में फूटी कौड़ी नहीं। केवल मात्र संबल

था तो दाता का। उसी के बल पर हर निवास का निर्माण हुआ और अब उसी के बल पर यहाँ का आवास बनना था। श्रीदाता तो इच्छा रहित है। उन्हे तो इच्छा है तो एकमात्र दाता की, उस जगत पिता की जो कि जगत का नियामक है। उन्होंने तो अपना कुछ रखा भी तो नही। जो कुछ है सो दाता का ही है। दाता ही उनके सर्वस्व है, अत उनका योग-क्षेम अन्य कौन वहन कर सकता है ? वही तो करेगा जिसका आश्रय उन्होंने लिया है। भगवान कृष्ण ने गीता में अर्जुन को स्पष्ट शब्दो में आदेश दिया है —

> सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेक शरण व्रज।
> अह त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥

जब जीव सम्पूर्ण धर्मा कर्मो का आश्रय छोड कर भगवान की शरण में आ जाता है तो फिर वह चिन्ता रहित हो जाता है क्योकि वह तो भगवान की अनन्य-शरण हो गया। कमी किसी बात की रही नही, उसका तो धर्म-कर्म रहा नही। वह तो निश्चिन्त, नि शोक, निर्भय और नि शङ्क होकर भगवान के चरणो में पडा है। भगवान के सम्बन्ध की दृढता होने पर जब ससार-शरीर का आश्रय सर्वथा नही रहता, तब जीने की आशा, मरने का भय, करने का राग और पाने का मोह — ये चारो ही नही रहते।

> चिन्ता दीनदयाल को मो मन सदा अनन्द।
> जायो सो प्रति पालसी, रामदास गोविन्द ॥

अत दाता का ही आधार-आसरा रख कार्य प्रारम्भ कर दिया गया।

सन् १९६३ ई। अर्थात् विक्रम सवत् २०१९ की बसन्त पञ्चमी को भवन-निर्माण के कार्य का श्रीगणेश किया गया। दाता का नाम लेकर श्रीदाता के पूज्य पिताजी श्री ठाकुर श्री जय सिहजी ने अपने कर-कमलो द्वारा कृषि भूमि के निकट ही एक खुले स्थान पर नींव का पहला पत्थर रखा। कुछ लोगो ने निगरानी हेतु अपनी सेवाए अर्पित की। जहा श्रम-दान की आवश्यकता हुई वहाँ कुछ व्यक्ति आगे आये। पूरा मकान चूने

और पत्थर से बनाया गया। ईंट एवं सीमेन्ट का कहीं भी नाम नहीं। कार्यारंभ तो उदयपुर के कारीगरों द्वारा किया गया किन्तु बाद में देवगढ़, भीम, ब्यावर, अजमेर, खटामला आदि स्थानों से भी कारीगर बुलवाये गये। कई परिवर्तन-परिशोधन के पश्चात् निर्माण कार्य दो वर्ष और चार माह में पूरा हुआ। प्रारभ से लेकर भवन निर्माण के अन्त तक आर्थिक समस्या व्यवस्थापकों की चिन्ता का कारण ही रही। कठिनाइयाँ सदैव ही मुँह बाये खड़ी रहती। कारीगर भग गये, चूना नहीं है, बजरी की व्यवस्था नहीं हुई, मजदूरों का चुकारा करना है, सामान कैसे व कहाँ से मंगाया जावे आदि प्रश्न सदैव ही बने रहते थे किन्तु आवश्यकता के समय सभी की पूर्ति बड़े चमत्कारिक ढंग से हो जाती थी। पूर्ति किस प्रकार होती थी उसका एक छोटा सा उदाहरण प्रस्तुत है। कारीगरों, मजदूरों, पट्टियाँ, चूना आदि का चुकारा करना था। कारीगरों और मजदूरों का तकाजा भारी था। व्यवस्थापक ने श्रीदाता से निवेदन किया। लगभग चार हजार रुपयों का चुकारा था।

श्रीदाता– चुकारा कर दो।

व्यवस्थापक जी– भगवन्, इतने रुपये पोते नहीं हैं।

श्रीदाता– जिनको जरूरी हो, उनका चुकारा फिलहाल कर दो। बकाया लोगों को बाद में दे देना।

व्यवस्थापक जी– भगवन्, सभी लोग चुकारे की माँग कर रहे हैं। चुकारा किये हुए एक माह से ज्यादा हो गया। चुकाना तो पड़ेगा।

श्रीदाता कुछ देर असमंजस की स्थिति में रहे, फिर बोले, "अच्छा, हिसाब की पुस्तिका लाओ।"

व्यवस्थापकजी ने हिसाब की पुस्तिका एवं रुपये जो उनके पास शेष थे श्रीदाता के सामने रख दिये। श्रीदाता ने हिसाब देखकर नोटों को पुस्तिका में रख पुस्तिका बन्द कर दी और चुकारा करने बैठ गये। उन्होंने मन में यह निश्चय किया कि मजदूरों को इस समय चुकारा कर दिया जाय। शेष व्यक्तियों को बाद में रुपयों की व्यवस्था होने पर चुका दिया जावेगा। उन्होंने एक एक

मजदूर को बुला बुला कर चुकारा करना प्रारंभ किया। रुपये पुस्तिका से निकाल-निकाल कर देते गये। मजदूर सभी निपट गये। उन्होंने रुपयो को गिना नही। एक-एक कर कारीगरो को भी बुलाया गया। उन्हे भी उनका पारिश्रमिक दे दिया गया। लगभग सभी का चुकारा हो गया। देखनेवालो और विशेष कर श्री देवीदत्तजी को परम आश्चर्य हो रहा था। वे चमत्कृत थे। रुपये तो सातसौ के लगभग थे व चुकारा चार हजार का। यह कैसे संभव हो सकता है? चुकारे के बाद पुस्तिका में रखे रुपयो का संभाला किया गया। रुपये उसमें उतने ही थे जितने रखे गये थे। अद्भुत चमत्कार! इस तरह चुकारा करते वक्त कुछ न कुछ इस प्रकार की घटना हो ही जाया करती थी।

मकान का नाम 'दाता निवास' रखा गया। मकान हर-निवास की तरह ही चार भागो में बँटा है किन्तु हर-निवास से बडा है। प्रवेश के लिए एक बडा मुख्य द्वार है। द्वार में प्रवेश करते ही दाईं ओर सत्सग भवन और बरामदे सहित अतिथि कक्ष है। बाईं ओर दो छोटे कमरे एवं एक बडा कमरा है। सत्सग भवन और बडे कमरे के सामने खुला आँगन है।

भीतरी भाग भी दो भागो में विभक्त है। एक ओर गौ-शाला, कुँआ, शौचालय एवं खुला आँगन है तो दूसरी ओर रसोई गृह सहित छ कमरे बरामदा व खुला आँगन है। मकान के पीछे की भूमि में चक्की है।

मुख्य द्वार के बाहर दोनो ओर दो बडे चबूतरे है जिन पर पत्थर के चौके जडे है। हर-निवास की तुलना में यह भवन बडा भी है और सुन्दर भी। इस भवन के निर्माण में किसी भी व्यक्ति का आर्थिक सहयोग नही लिया गया। यह विशाल भवन कैसे बन गया, यह विषय सब के लिए आश्चर्य पैदा करने वाला है। दाता के लम्बे हाथ है। उनके लिए क्या संभव और क्या असंभव। उसकी इच्छा थी अत भवन तो बनना ही था।

गृह प्रवेश

निर्माण कार्य के पूरा होने पर 'गृह प्रवेश' का आयोजन

सन् १९६५ ई. अर्थात् वि. सं. २०२२ की आषाढ मास की पूर्णिमा को रखा गया। इस अवसर पर सभी सत्संगी, भक्तजन और परिवार के लोग उपस्थित हुए। पाँच दिवस का अखण्ड कीर्तन हुआ। पूर्णिमा के दिन पूरे विधि-विधान के साथ गृह-प्रवेश का कार्य सम्पन्न हुआ। सात-आठ दिन तक खूब धूमधाम के साथ सत्संग भजन और कीर्तन हुआ। ऐसा आनन्द रहा जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है।

गृह प्रवेश के पश्चात् भी रहा—सहा निर्माण का काम चलता ही रहा। एक दिन की घटना है। कोशीथल निवासी एक बन्दा मध्याह्न के समय एक टांड के नीचे विश्राम कर रहा था। टांड पर ढेर सारा लोहे का सामान पड़ा था। कई मन वजन रहा होगा। अचानक टांड वाली पट्टी टूट कर बन्दे के ऊपर आ पड़ी। तोप छूटने जैसी आवाज हुई। लोग भाग कर कमरे में पहुँचे। बन्दा पट्टी और लोहे के सामान के नीचे दबा पड़ा था। सभी ने मिलकर शीघ्रता से लोहे का सामान एवं पट्टी के टुकड़ों को हटा कर उन्हें बाहर निकाला। वे पूर्ण रूप से बेहोश थे व स्थान-स्थान पर घाव लगे हुए थे जिनमें से रक्त बह रहा था। जयपुर के भक्तजन भी उस समय वहीं थे। डाक्टर साहब भी विद्यमान थे। उन्होंने प्राथमिक उपचार किया। बेहोशी दूर नहीं हुई। श्रीदाता के पधारने पर लोगों ने पुकार की। कुछ समय बाद कुछ-कुछ होश आया। डाक्टर साहब ने उन्हें तत्काल अस्पताल में पहुँचाने की राय दी। तत्काल जीप में डाल कर उन्हे भीलवाड़ा अस्पताल में पहुंचाया गया। भीलवाड़ा नहीं पहुँचे तबतक तो हालत गंभीर थी किन्तु अस्पताल मे पहुंचते-पहुंचते वे काफी स्वस्थ से लगने लगे। डाक्टरों ने जाँच की। एक्स-रे भी कराया गया। कहीं कुछ चोट नहीं आयी। सभी को आश्चर्य हुआ। यह दाता की कृपा ही थी कि वे बच गये अन्यथा ऐसी परिस्थिति में तो शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।

दाता निवास का विस्तार

दाता निवास में वास करने के पश्चात् दिन शान्ति से बीतने

लगे। लोगो का आना तो वहाँ भी वैसा ही बना रहा जैसा नान्दशा में था किन्तु प्रपञ्चमय वातावरण से छुट्टी हुई। धीरे-धीरे दाता निवास का विकास होने लगा। दाता निवास के बाहर एक अतिथि कक्ष और उसके सामने गौओ के लिए एक दालान बना लिया गया। श्री गिरधर सिंह जी भी वहीं आकर रहने लगे। उन्होंने दाता निवास के उत्तर मे उसी से लगा हुआ मकान बना लिया। कुछ ही दिनो बाद वे उस मकान को छोड अपने पुत्र की नौकरी के कारण करेडा में जा बसे। उस मकान को भी खरीद लिया गया और आवश्यक सशोधन कर लिया गया जिस वजह से अब ठहरने वालो को काफी सुविधा हो गई। सन् १९७४–१९७५ मे सामने के कमरो पर कमरे और बरामदा बना लिया गया। बिजली की व्यवस्था भी हो गई। कुआँ तो भवन के साथ ही बनवा लिया गया था, अब बिजली आ जाने से मोटर लगा दी गई। टकी का निर्माण करा नल की व्यवस्था की गई। मकान के पीछे के स्थान पर चक्की लगा दी गई। इस प्रकार दाता-निवास आधुनिक सुविधाओं से परिपूर्ण हो गया। स्वर्गमा आनन्द रहने लगा। गर्मी की ऋतु मे तो वह शिमला से कम नही है। वहाँ का वातावरण इतना शान्त और मनमोहक है कि आनेवाले प्रत्येक प्राणी का मन बरबस ही लग जाता है। जो लोग पहले इस परिवर्तन के विरोधी थे वे ही अब इस स्थान की प्रशसा करते नहीं अघाते।

व्यवस्था

दाता निवास मे आने पर भी श्रीदाता का कार्य तो पूर्ववत ही रहा। यहाँ भी आय के साधन के रूप में कृषि कार्य और पशु पालन को महत्त्व दिया गया। पशुपालन में गो-सेवा तो प्रधान है ही किन्तु यहाँ कुछ परिवर्तन हो गया। यहाँ कुछ भैंसे व कुछ बकरियें भी खरीद ली गई। कुछ वर्षो बाद एक ऊट व कुछ ऊँटनियें भी खरीदी गई। इन साधनो से जो आय होती है उससे भण्डार का खर्च सरलता से चल जाता है। वैसे भण्डार के खर्चे का कोई पार तो है नहीं। कोई दिन ऐसा नहीं जाता जब बाहर के कोई अतिथि न आते हो। कभी पाँच, कभी दस, कभी पन्द्रह, कभी

बीस और कभी कभी बीस से भी अधिक लोग भण्डार में प्रसाद पाते है। आये दिन मन-मन आटे की बाटियाँ बनती ही रहती है। अधिक व्यक्ति होने पर यदि वे अपनी व्यवस्था स्वयं करते है तो व्यवस्था बाहर हो जाती है अन्यथा बाटियों का सामान भी भण्डार से ही खर्च होता है। खेतों मे मक्का, गेहूँ, चने के अतिरिक्त भण्डार खर्च में आवश्यक वस्तुएँ जैसे गन्ना, मेथी, मिर्ची, साग-सब्जी आदि वस्तुएँ भी पैदा कर ली जाती है।

फसल बोने, पानी, खेती के कार्य के लिए वेतन भोगी व्यक्ति हैं। भूमि यहां की बड़ी उपजाऊ है। मकई की पौंध इतनी बड़ी होती है कि यदि उसमें ऊँट को खड़ा कर दिया जाय तो भी दिखाई नहीं दे, और भुट्टा इतना बड़ा होता है कि एक व्यक्ति के पेट भरने के लिए एक भुट्टा ही पर्याप्त है। फलों के पेड़ भी हैं। आम यहाँ के इतने मीठे हैं जिनकी कोई तुलना नहीं। अन्य फलों मे अमरूद और पपीता मुख्य हैं।

गाये चरने पहाड़ियों पर जाती हैं। उनकी व्यवस्था हेतु एक-दो व्यक्ति रहते हैं जो अच्छी तरह उनकी देखभाल करते हैं, चराते है और हिंसक पशुओं से उनकी रक्षा भी करते है। भैंसियों व पाँड़ियों के चराने की अलग व्यवस्था है। सभी पशुओं के देखरेख की सुन्दर व्यवस्था होते हुए भी श्रीदाता स्वयं भी बहुधा जंगल मे जाकर उन्हें संभालते हैं तथा दाता-निवास में आने पर स्वयं खड़े रह कर व्यवस्था देखते है। नान्दशा की तरह यहाँ भी श्रीदाता की एक आवाज मे सभी पशु दाता को घेर कर खड़े हो जाते हैं।

दाता-निवास पर आने वाले लोगों का ताँता ही लगा रहता है। प्रातः से लेकर संध्या तक कई लोग आते है। कुछ दर्शनों के लिए, कुछ अपनी आध्यात्मिक भूख मिटाने के लिए और अधिकांश अपने दुःख-दर्द की पुकार लेकर आते है। यहाँ श्रीदाता का अधिकतर समय लोगों की सेवा करने में ही व्यतीत होता है। प्रभु-चर्चा तो मुख्य है। हरि-चर्चा, भजन, कीर्तन आदि निरन्तर हुआ ही करते हैं। श्रीदाता के दरबार जैसा दरबार मिलना बहुत ही कठिन है। योगी को योग करना पड़ता है, साधक को साधना करनी पड़ती है,

भक्त को भक्ति करनी पडती है, कर्मी को कर्म करना पडता है, ज्ञानी को ज्ञान प्राप्त करना पडता है, तपस्वी को तप करना पडता है, ध्यानी को ध्यान लगाना पडता है किन्तु यहाँ तो कुछ भी करने की आवश्यकता नही है। श्रीदाता फरमाते हैं, "दाता के बन जाओ और मस्त हो जाओ।" ठीक ही तो है। दाता के बन जाने के बाद भक्त का अपना रह ही क्या जाता है। भगवान कृष्ण गीता में आदेश देते हैं –

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्यस्य मत्पर ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्त सतत भव ॥

चित्त से सम्पूर्ण कर्म दाता को अर्पण करके, दाता परायण (शरणम्) होकर और समता का आश्रय लेकर निरन्तर जो दाता में चित्त लगाने वाला हो जाता है तो फिर करना-कराना क्या है ? चित्त में यह धारणा कर ली जाय कि मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर आदि और ससार के व्यक्ति, पदार्थ, घटना परिस्थिति आदि सब दाता के ही हैं। वे ही इन सब के मालिक है। इनमें से कोई भी वस्तु किसी की व्यक्तिगत नहीं है। केवल इन वस्तुओं का सदुपयोग करने को ही दाता ने व्यक्तिगत अधिकार दिया है। इस दिये हुए अधिकार को भी दाता को अर्पण कर देना है। शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदि से जो क्रियाएँ होती है वे सब दाता की मरजी से ही होती है। अहकार के वशीभूत प्राणी उन्हे अपनी मान लेता है। उस "अपनापन" को भी दाता को अर्पण कर देना चाहिए क्योंकि वह तो केवल मूर्खतावश माना हुआ है, वास्तव में है नहीं।

दाता ही मेरा परम आश्रय है, उसके सिवा मेरा कुछ भी नही है। कुछ लेना है न देना है। ऐसा अनन्य भाव हो जाना ही दाता-परायण होना है। दाता तो स्वकीय है, अपने है। उन्हे यदि हम अपना मानेंगे तो वे हमारे वश मे हो जावेंगे। 'मै तो हूँ भगत का दास, भगत मेरे मुकुटमणि'। अत, दाता के बन जाओ और मस्त हो जाओ।

श्रीदाता के यहाँ कई लोग आते है। बडे-बडे व्याख्याता, चिकित्सक, अधिकारी, वकील, न्यायाधीश आदि। वे यहाँ आते है

और आनन्दित होकर जाते है। इनमें एक हैं डाक्टर मिश्रा। वड़े मस्त प्रकृति के व्यक्ति हैं तथा आध्यात्म जगत मे उनकी अच्छी गति है। श्रीदाता की उन पर वड़ी कृपा है। एक वार जयपुर में वे 'पहाड़ी वावा' के दर्शनार्थ गये। पहाड़ी वावा ने उनसे पूछा, "तुम दाता-निवास जाते हो। वहाँ क्या करते हो? वहाँ की क्या साधना पद्धति है?" श्री मिश्रा जी ने उत्तर दिया, "वावजी! वहाँ तो खूव वाटियाँ खाते हैं और रेत में लोटते है।" सुनकर वावा खूव हंसा और वोला, "तुम्हारे गुरु महान हैं! उनके जो वन्दे उनके आश्रित हैं, उन्हें कुछ करने की आवश्यकता ही नहीं है।"

दाता निवास के मुख्य द्वार के सामने खुला स्थान है जहाँ एक-दो ट्रक रेत पड़ा हुआ है। यहाँ आने वाले वन्दों को श्रीदाता खूव वाटियाँ खिलाते हैं। वाटियाँ खाने के वाद इसी रेत में आकर वैठ जाते हैं या लेट जाते हैं। अद्‌भुतलीला है दाता की, कुछ देर रेत में लोट लेने पर अधिक खाया हुआ भोजन थोड़ी ही देर में पच जाता है। आये दिन इसी तरह की लीलाएँ देखने को मिलती हैं। दाता-निवास का जीवन वड़ा सरस, शान्त एवं मधुर है। एक उत्तम आश्रम के समान यहाँ का जीवन वड़ा ही आनन्ददायक है।

श्रीदाता के जीवन की तरह ही मातेश्वरी जी का जीवन त्याग और तपस्या का जीवन है। नान्दशा की तरह यहाँ भी प्रातः से सायं तक काम करना पड़ता है। मकान की सफाई, गाय-भैंस का दूध निकालना, दूध गर्म करना, दही जमाना, दही विलोना, भोजन वनाना, वर्तनों की सफाई करना, पशुओं को वाँटा देना आदि अनेक कार्यो में व्यस्त रहना पड़ता है। भोजन वनाने का काम वड़ा ही जटिल है। पांच वजे प्रातः जला चूल्हा दो वजे तक और चार वजे सायं जलनेवाला चूल्हा रात्रि के लगभग वारह वजे तक जलता ही रहता है। भोजन करने वालों की संख्या तो निश्चित है ही नहीं। इन कार्यो के अतिरिक्त श्रीदाता की सेवा करना, वच्चों की सेवा करना व गृहस्थ के अन्य कार्य भी करने ही होते हैं। मातेश्वरी जी का शरीर वात-प्रधान शरीर है जिससे शारीरिक अस्वस्थता वनी ही रहती है। शारीरिक व्याधि के होते हुए भी इतना कार्य करना परम आश्चर्य है। अन्नपूर्णा मातेश्वरी जो

ठहरी। जगत जननी ही इतना काम कर सकती है। साधारण स्त्री के वश के यह बाहर है। यहाँ आने वाले सभी लोग उनसे माँ का स्नेह पाते हैं। यहाँ कोई भेद-भाव नहीं है। जैसा व्यवहार कु. हरदयाल सिंह जी के साथ देखने को मिलता है वैसा ही व्यवहार वहाँ आने वाले प्रत्येक व्यक्ति के साथ होता है। उनका हृदय विशाल समुद्र के समान है जिसमें अपार स्नेह भरा पडा है। वे पर-कातर तो है ही। थोडे से पराये दु ख मे उनका हृदय पसीज जाता है करुणामयी जो ठहरी।

अन्य लोगो की तरह परिवार के लोगो की सेवा भी निरन्तर होती ही है। परिवार एव परिजनो के सदस्यो पर होने वाले आवश्यक व्यय में श्रीदाता का सदैव ही योगदान रहा है। कई गरीब लोग भी श्रीदाता तक पहुँच जाते है। कई निर्धन लोगो की लडकियो के विवाह तक का व्यय दाता के भण्डार मे किया गया है।

श्रीदाता की सभी लीलाएँ अद्भुत ही होती हैं जो मन-बुद्धि से परे है। दाता-निवास मे कुछ दूर हट कर जमीन में खडी एक बडी सी चट्टान थी जिस पर वहाँ के निवासी प्रेतात्मा के वास की शका करते थे। श्रीदाता ने उस चट्टान को वहाँ से हटाने की आज्ञा दे दी। खडी एक भारी चट्टान थी। बिना साधनो के निकलवाना सरल नहीं था। कई चेन कुप्पियाँ टूटी तब जाकर वह चट्टान वहाँ से हटाई जा सकी। वहाँ से हटा कर ठीक मुख्य द्वार के सामने कुछ दूरी पर चार स्तभ खडे कर उन पर उसे रख दिया गया। इसमें बडा परिश्रम करना पडा। इस कार्य में लगभग ६ वर्ष लगे होंगे और अनुमानत दस हजार रुपये खर्च हुए होंगे किन्तु वहाँ परिश्रम और व्यय का क्या प्रश्न? जो काम करना है सो करना ही है।

खेत के मध्य एक सन्त की समाधि है जिस पर पक्का समाधिस्थल बनवा दिया गया। अब वहाँ प्रति दिन घी का दीपक जलाया जाता है। बन्धा नामक स्थान भी बडा रमणीक है। वह भूमि सचमुच महापुरुषों के रमण योग्य भूमि है। अनेक हरे एव घने पेडो से घिरी हुई वह भूमि पुस्तकों में वर्णित नन्दनबन की समानता

करती है । वहाँ पूर्व की ओर की टेकरी पर एक पक्का मकान बना दिया गया है तथा साथ ही भूमि के मध्य कुआँ भी खुदवा दिया गया है जिसमें स्वच्छ व सुस्वादु अमृत तुल्य पानी है । स्थान इतना रमणीक और शान्त है कि वहाँ साधक का मन तत्काल एकाग्र हो जाता है । वहाँ अब अनेक फलों के पौधे लगा दिये गये हैं जिस वजह से वहाँ का सौन्दर्य कई गुना बढ़ गया है ।

श्रीदाता के इस क्षेत्र में पधारने से यहाँ के लोगों को कई लाभ हुए । आध्यात्मिक चेतना और दुःख में सहयोग के अतिरिक्त श्रीदाता के सहयोग से विद्यालय, डाक घर और पटवार घर की स्थापना हुई । बिजली की व्यवस्था से भी कई कठिनाइयाँ कम हुई । पास ही एक सुन्दर तालाब भी बन गया जिसमें वर्ष भर पानी रहता है तथा जिसकी वजह से कई कुओं के पानी के स्तर में वृद्धि हो गई । इस क्षेत्र में अधिकतर रावत लोग रहते हैं जो मदिरा पान, अफीम सेवन आदि अनेक व्यसनों से परिपूर्ण थे । पहले ही गरीब फिर इन दुर्व्यसनों से आर्थिक स्थिति दयनीय होना स्वाभाविक है । भला हो श्रीदाता का कि उनका इस क्षेत्र में आना इनके और इनके कुटुम्बियों के लिए वरदान सिद्ध हुआ । अनेक लोगों को इन व्यसनों से मुक्ति मिली । यहाँ के लोगों में मानवीय गुणों का विकास श्रीदाता के इस क्षेत्र में आगमन के कारण ही हुआ है । अब यहाँ सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक सुधार प्रगति पर है । अब यहाँ के निवासी श्रीदाता को पिता, माता, गुरु, भगवान आदि सब कुछ मानते हैं और उनके चरणों में अपार श्रद्धा रखते हैं । छोटे से छोटे कार्य के लिए वे श्रीदाता के पास सलाह लेने चले आते हैं । बीमारों के लिए तो वे बहुत बड़े डाक्टर ही हैं । बीच में ठीक बारह वर्ष वहाँ रहने के पश्चात् श्रीदाता ने नान्दशा रहने का विचार किया व कुछ माह रहे भी किन्तु यहाँ के लोगों की करुण पुकार से वापिस वहीं आ गये । अब इस क्षेत्र में आनन्द ही आनन्द है । बड़े ही भाग्यशाली हैं यहाँ के लोग । धन्य हैं यहाँ के निवासी और धन्य हैं इनके रक्षक श्रीदाता ।

○○○

बदरीनाथ के दर्शनार्थ

श्रीदाता के 'दाता-निवास' में निवास करने पर भी श्रीदाता के पास आने वाले भक्तों की भीड में कमी हुई हो, ऐसा कुछ नही हुआ। भक्तजनो, आर्तजनो एवं जिज्ञासुओ की भीड तो निरन्तर दिन दूनी और रात चौगुनी होती ही गई। यही नही, भक्तलोग श्रीदाता को अपने यहाँ भी आमन्त्रित करते। इनमे पहल जयपुर वाले भक्त-जनों की होती। एक बार जून सन् १९६७ में जयपुर वाले भक्तजनो ने वडा आग्रह कर श्रीदाता को जयपुर पधारने की प्रार्थना की। श्रीदाता तो सहज स्वभाव मे, दयालु जो ठहरे, उन्होंने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और दिनाक ७ को उनकी भेजी हुई कार में जयपुर के लिए प्रस्थान कर दिया। मार्ग में अजमेर वालो की विनय पर रात्रि विश्राम वही हुआ। जहाँ श्रीदाता ठहरते हैं, दर्शनार्थियों की भीड का हो जाना तो स्वाभाविक है। अनेक श्रद्धालु भक्तजन आ उपस्थित हुए। रात्रि के तीन वजे तक सत्सग वार्ता चलती ही रही। चाँदमल जी जोशी वर्ता रहे थे कि सत्सग में ज्ञान और भक्ति के अनेक तत्वो पर वातचीत हुई। वडा ही आनन्द रहा। श्रीदाता ने जो कुछ फरमाया उसका सार है कि इस विश्व में दाता के सिवा और कुछ है ही नही। हमें मनुष्य शरीर दाता की दया से मिल गया है तो इसे व्यर्थ न खोकर, दाता के चिन्तन में लगा सार्थक करना चाहिए। हमारा अहंभाव ही हमें दाता से अलग करता है अंत आप दाता के शरणागत हो जाओ। अहंभाव को उसको अर्पण कर दो फिर देखो किस तरह 'मैं' की समाप्ति होकर शुद्ध तत्व 'तू ही तू' रह जाता है।

अगले दिन प्रात ही जयपुर के लिए रवाना हो गये। चलते वक्त उन्होंने श्री चाँदमल जी को कार में विठा लिया। वे जैसे थे वैसे ही बैठ गये। न कपडे, न रुपये पैसे। श्रीदाता की जयपुर में एक दिन पूर्व से ही प्रतीक्षा थी। लोग वडी सख्या में एकत्रित थे।

श्रीदाता के पहुँचते ही सभी ने दाता की जय-जयकार की। लोग बड़े आनन्दित हुए। सभी ने दर्शन एवं सत्संग का लाभ उठाया।

यात्रा की योजना

संध्या समय जयपुर के प्रमुख भक्तजन श्रीदाता के पास बैठे थे और इधर उधर की वातें चल रही थी। ठीक उसी समय पर्यटक विभाग के निर्देशक श्रीदाता के दर्शन हेतु आये। वे हाल ही वदरीनाथ की यात्रा करके आये थे। उन्होंने वदरीनाथ की यात्रा का प्रसंग चलाते हुए, वदरीनाथ दर्शन, मार्ग का प्राकृतिक सौन्दर्य, यात्रियों की रेल-पेल, स्वर्गाश्रम के सत्संग आदि की भूरि-भूरि प्रशंसा की। साथ ही अपना सुझाव भी दिया कि श्रीदाता को भी वद्रीधाम के दर्शन करना चाहिए। माथुर साहव भी वहीं विराजे थे। उन्हें अपनी वड़ी लड़की की सगाई का दस्तूर दिल्ली ले जाना था और वे श्रीदाता को भी दिल्ली ले जाना चाहते थे। उन्हें यह प्रसंग वहुत अच्छा लगा। उन्होंने भी समय का लाभ उठाया। अन्य लोगों ने भी जोर लगाया। श्रीदाता की इच्छा तो उस समय नहीं थी किन्तु सभी का विशेष आग्रह देख कर उन्होंने 'हाँ' कर दिया। एक सेवक कार लेकर दाता-निवास पधारे और वहाँ से मातेश्वरी जी, कुँवरानी जी आदि को जयपुर ले आये।

प्रस्थान

जयपुर से दो कारें रवाना हुई। एक में श्रीदाता, मातेश्वरी जी आदि और दूसरी में माथुर साहव और उनका परिवार। श्री समुद्र सिंह जी एवं श्री चाँदमल जी भी साथ थे। दिनांक ११–६–६७ को दिल्ली पहुँचे। बीकानेर हाउस में विराजना हुआ। दिनांक १२–६–६७ को माथुर साहव की लड़की की सगाई का दस्तूर ठाट-वाट से हो गया। दस्तूर के वाद माथुर साहव ने अपने परिवार वालों को जयपुर भेज दिया व कार वहीं रोक ली। कोटा से सूचना मिलते ही व्यास जी अपने कुटुम्ब सहित आ गये। श्रीदाता के साथ वदरीनारायण जाने वालों की संख्या अधिक हो जाने से एक स्टेशन वेगन किराये पर कर ली गई। कुँ. हरदयाल सिंह भी दिल्ली आ गये थे अतः वे भी साथ हो गये।

हरिद्वार में

दिनांक १३–६–६७ को भोजनोपरान्त हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया गया। हरेभरे खेतो के मध्य होते हुए तीनो वाहन चार बजे के लगभग हरिद्वार पहुँचे। हरिद्वार हिमालय की गोदी में स्थित है। यह स्वर्गद्वार के सदृश है। उसके लिए कहा गया है–

"स्वर्ग द्वारेण तत् तुल्य गङ्गा द्वार न सशय ।"

हरिद्वार को कई नामो से पुकारा जाता है यथा हरद्वार, हरिद्वार, गङ्गाद्वार, कुशावर्त आदि। यह पाँच पुरियो से मिल कर बना है। इसमें अनेक तीर्थ हैं। प्रसिद्ध तीर्थ हरि की पेडी है जिसे ब्रह्म कुण्ड भी कहते हैं। जन श्रुति है कि भर्तृहरि जी ने तपस्या करते हुए यहीं अमर पद पाया था। इसी स्मृति में उनके भाई राजा विक्रमादित्य ने इस कुण्ड का निर्माण कराया था। श्रीदाता सीधे ही हरि की पेडी पहुँचे। शाम का समय हो गया जिस कारण वातावरण में ठण्डक हो गई। गगा का पानी ठण्डा था किन्तु श्रीदाता ने अपने सब भक्त जनो सहित उसमें स्नान किया। स्नानोपरान्त विष्णु चरण पादुका, मनसा देवी साक्षीश्वर और गगाधर महादेव के दर्शन किए। राजा मानसिह की छतरी भी दर्शनीय है। सध्या समय गगा के घाटो का दृश्य बडा ही मनोरम हो जाता है। श्रीदाता बडी देर तक यहाँ के दृश्यो का आनन्द लेते रहे और पुण्यसलिला भागीरथी की महिमा का वर्णन करते रहे।

ऋषिकेश

हरि की पेडी से चल कर श्रीदाता कुशवर्त, विल्वकेश्वर, नीलपर्वत और कनखल के दर्शन कर आगे बढ गये और सीधे ऋषिकेश जा कर ठहरे। ऋषिकेश प्रसिद्ध धार्मिक स्थल है। यहाँ काली कमली वालों की सुन्दर धर्मशाला है जिसके ऊपरी मजिल के दो कमरो में लोग ठहर गये। उस दिन धर्मशाला में विविध प्रकार के लोग ठहरे हुए थे। बडी भीड थी। हँसी-मजाक, नाच-गान, भजन-कीर्तन आदि वातावरण से वह धर्मशाला परिपूर्ण थी। धर्मशाला के एक भाग में विवाह के कारण पजाबियो द्वारा भगडा नृत्य का आयोजन भी था। नाच की बडी धूमधाम थी। श्रीदाता

कुछ समय तक तो इस कोलाहलमय वातावरण को देखते रहे। सब के सुव्यवस्थित होने पर कीर्तन करना प्रारंभ कर दिया। 'श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्दा, हरे दाता हरे राम राधे गोविन्दा' की गूंज फैलने लगी। धीरे धीरे कई अन्य लोग भी कीर्तन में आकर सम्मिलित हो गये। सभी कीर्तन मे मस्त हो गये। मध्य रात्रि तक यही क्रम चलता रहा। अन्त में सभी ने विश्राम किया।

वदरी नारायण की ओर

अगले दिन त्रिवेणी घाट पर स्नान कर भरत मन्दिर में पधारना हुआ। मन्दिर में भीड़ थी। वहाँ से राम मन्दिर, वाराह मन्दिर और चन्द्रेश्वर मन्दिर में पधारे। वहाँ से कुछ मन्दिरों के और दर्शन कर वदरी नारायण की ओर चल पड़े। सड़क पहाड़ियों के मध्य ऊपर नीचे होकर जाती है। सड़क के दोनों ओर का दृश्य बड़ा ही सुहावना था। स्थान-स्थान पर स्वच्छ पानी के झरने अपने कल-कल रव से कर्णरन्ध्रों को अनुगुंजित करते हुए अपनी सुषमा से नेत्रों की दर्शन पीपासा को वढ़ाते हुए अपने अस्तित्व की सूचना दे रहे थे। पहाड़ियों को काट-काट कर वनाये गये छोटे-छोटे खेतों में खड़ी हरीभरी फसलें वहाँ की छटा को द्विगुणित कर रही थी। ऐसे सुरम्य किन्तु विकट मार्ग से टिहरीगढ़वाल होते हुए करणपुर पहुँचे। करणपुर पहुँचते पहुँचते माथुर साहव की कार खराव हो गई। कुछ देर रुक कर उसे ठीक करने का प्रयास किया गया। जब तीनों ड्राइवरों का प्रयास विफल गया तो मजबूर होकर माथुर साहव वाली कार को और उसमे वैठे हुए लोगों को वहीं छोड़ दोनों वाहन आगे वढ़ गये। माथुर साहव को कह दिया गया कि कार के ठीक होते ही वे वदरी नारायण आ जावें।

दोनों वाहन श्रीनगर होते हुए पीपल कोट पहुँचे। यात्रियों की काफी भीड़ थी। डाक बंगले में भी ठहरने को स्थान नहीं मिला। ज्यों त्यों कर डाक बंगले के वरामदे के एक कोने में रात्रि व्यतीत की। अगले दिन वहुत सवेरे ही वहाँ से निकल पड़े। पीपल कोट से आगे सड़क संकरी, विकट और घुमावदार है तथा ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों के मध्य होकर जाती है। उस पर एक ओर से ही वाहन चलाये

जा सकते हैं। यदि वाहनो के चालक थोडी सी भी असावधानी कर बैठें तो वाहन हजारों फिट नीचे बहने वाली नदी में जा पडे और उसके एक टुकडे का भी पता नहीं चले। एक ओर मार्ग की भयकरता प्राणो के लिए सकट पैदा कर रही थी तो दूसरी ओर वहाँ की सुरम्यता, प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त वहाँ की घाटियाँ, बर्फीली चट्टानें और बहते हुए नालो की कल-कल ध्वनि से युक्त दृश्य नेत्रो को आनन्द प्रदान कर रहे थे। बीच-बीच में यत्र-तत्र खेतों में काम कर रहे कृषक और मजदूर दिखाई दे जाते जो वेषभूषा से गरीब और चेहरे से भोले लगते थे। ऐसी विचित्रताओ के मध्य होते हुए वे जोशी मठ पहुँचे। जोशी मठ जाने के बाद दोनो वाहनो को रोक दिया गया। एक समस्या आ खडी हुई। श्री समुद्र सिंह जी वहाँ के सैनिक अधिकारी से मिले। सौभाग्य से सैनिक अधिकारी परिचित निकल गया। उसने विशेष आज्ञापत्र जारी कर वाहनो को आगे ले जाने की अनुमति दे दी। वे आगे बढे। मार्ग में चमोली की घाटी मिली जो अपने आप में बडी विकट एव भयकर है। एक ओर ऊँची दीवार सदृश पहाडियाँ तो दूसरी ओर हजारों फिट नीचा खड्डा। उस घाटी की विकटता दिलो को हिला देने वाली थी। ऐसे समय में स्वत ही प्रभु का नाम स्मरण हो आता है। यात्री भजन-कीर्तन बोलने लगते है। उन्हे मृत्यु का भय जो ठहरा। श्रीदाता के साथ वाले तो वैसे ही पूरे मार्ग कीर्तन कर रहे थे। दोनो वाहन चालक भी उस घाटी से अपरिचित होने से घबरा से गये। उनके हाथ-पाँव भी फूलने लगे। एक को तो बुखार तक हो आया। यह तो श्रीदाता की अनन्त कृपा ही थी कि दोनो वाहन उस घाटी को सहीसलामत पार कर सके।

बदरीनाथ की छाया में

तीन बजे श्रीदाता अपने साथियों सहित बदरीनाथ पहुँचे। डाक बगले में ठहरने की व्यवस्था हुई। उस दिन सर्दी की अधिकता थी। इतनी ठण्ड थी कि रात्रि को एक-एक व्यक्ति को तीन-तीन रजाइयाँ ओढनी पडी। सौभाग्य की बात यह हुई कि बिस्तर की समुचित व्यवस्था पैसे देने पर वहाँ के पुजारी द्वारा कर दी गई।

अगले दिन अर्थात् १६-६-६७ को प्रातः ही सब लोग उठ गये। ठण्ड तो थी ही। ठण्ड के कारण बिस्तर छोड़कर बाहर निकलना भारी पड़ रहा था किन्तु श्रीदाता के साथ सभी को बाहर आना ही पड़ा। श्रीदाता स्नान हेतु अलखनन्दा के किनारे पहुँचे। अलखनन्दा का पानी अत्यधिक ठण्डा होने से लोगों को स्नान करने मे कठिनाई होती है अतः यात्री अलखनन्दा के दर्शन मात्र ही कर पाते हैं। स्नान तो सभी तप्त कुण्ड में करते हैं जिसका पानी काफी गर्म रहता है।

श्रीदाता अलखनन्दा की धारा की ओर चल पड़े। धारा तक पहुँचने का मार्ग भी दुरूह था। श्रीदाता ने न तो अलखनन्दा के ठण्डे पानी की परवाह की और न दुर्गम मार्ग की। धीरे धीरे चलकर वे धारा के किनारे पहुँचे और पानी में कटि पर्यन्त जा स्नान किया। श्रीदाता को स्नान करने में देर लगती है। स्नानोपरान्त 'हरे हर' अर्थात् मानसिक पूजा भी पानी में खड़े-खड़े ही करते हैं। उन्हे वहाँ स्नान करते देख कई लोग आश्चर्य करने लगे। कुछ लोग तो कहने भी लग गये कि यह बाबा ठण्ड से कहीं ठण्डा न हो जाय। किन्तु दाता की दया से ऐसा कुछ हुआ नही।

श्रीदाता के स्नान कर लेने के बाद अन्य लोगों ने भी वहाँ स्नान की इच्छा की किन्तु एक के अतिरिक्त अन्य सभी को मनाई हो गयी। श्री चाँदमल जी भी पानी में नहीं जा सके। वे किनारे पर बैठ लोटे से नहाये। अन्य लोगों ने तप्त कुण्ड में स्नान किये। स्नानोपरान्त बदरीनाथ के दर्शन हेतु पधारना हुआ। जाते वक्त बाँयीं ओर शंकराचार्य जी का मन्दिर है। वहाँ के दर्शन कर निज मन्दिर में पधारना हुआ। मन्दिर मे भारी भीड़ थी। सामान्यतः जैसा अन्य मन्दिरों में देखा जाता है वैसा वहाँ भी देखने को मिला। पण्डों में स्वार्थ-प्रवृत्ति की प्रधानता थी। वहाँ भी वजन के आधार पर दर्शन व्यवस्था थी। गरीब लोग तो भली प्रकार दर्शन भी नहीं कर पा रहे थे। श्रीदाता और उनके साथवालों ने ज्यों त्यों कर दर्शन किये। बदरीनाथ की मूर्ति शालिग्राम शिला में बनी ध्यानमग्न चतुर्भुजी मूर्ति है। बदरीनाथ के दाहिने कुबेर और सामने उद्धव की

मूर्तियाँ है । उद्धव के पास ही चरण पादुकाएँ है बायी ओर नर-नारायण और समीप ही देवी और भूदेवी की मूर्तियाँ है । वहाँ से परिक्रमा में पधारना हुआ । परिक्रमा में लक्ष्मी जी का मन्दिर है । दर्शन कर सभी लोग वापिस डाक बगले में आ गये ।

श्रीदाता उमी दिन वहाँ से लौटना चाहते थे किन्तु व्याम जी ने विनय करते हुए कहा, "भगवन्! यहाँ तीन दिन ठहरने का माहात्म्य है, अत कम से कम आज तो यही ठहरना चाहिए" । श्रीदाता ने अनमने भाव से कहा, "जैसी आप लोगो की मौज ।" उस दिन वही ठहरना हो गया ।

भोजनोपरान्त सभी श्रीदाता के पास जा बैठे । एक ड्राइवर कबीर मार्गी था । उसने कहा, "सबसे बडा साहिब तो कबीर ही हुआ है । कबीर से बडा कोई नही है ।" अन्य लोगो को यह कथन ठीक नही लगा । उस समय यह कथन तर्क का विषय बन गया । तब श्रीदाता ने फरमाया, "सब अपने अपने ठिकाने ठीक है । कबीर जी के जन्म के पूर्व भी कोई रहा होगा । साहिब तो जो है सो है । दाता के विषय में अनेक भ्रान्त धारणाएँ लोगो ने फैला रखी है किन्तु किसी को दाता के न जन्म का पता है और न अन्त का । दाता तो जन्म-मृत्यु से परे है । वे तो आदि अनादि है । बडे-बडे ऋषि-महर्षियो ने उनकी खोज की किन्तु वे कुछ भी पता नही लगा सके । वेदो ने तो दाता के लिए 'नेति नेति' कह दिया है । अत दाता के आदि और अन्त का पता चलाना सम्भव नही ।" यह सुन कर सभी चुप हो गये । कुछ समय पश्चात् बात आगे बढाने को चाँदजी बोले, "भगवन्! लोग कहते है कि श्री गोरक्षनाथ जी प्रथम गद्यकार है । गद्य लेखन उनके बाद मे ही प्रारभ हुआ है ।" यह सुनकर श्रीदाता खूब हंसे । बाद में उन्होंने कहा, "वे तो बडे महान् है । उन्होने किसका प्रारभ किया और किसका नही किया, इस बात का विवेचन करना सरल नही है । जब उनके आदि और अन्त का ही पता नही है तो फिर वे क्या है और उन्होने क्या किया इसका पता कौन चला सकता है । महान् की बात महान् ही जाने ।"

शाम को सब लोग आसपास के दृश्य देखने निकल पडे । पूर्व दिन की तुलना में ठण्ड कम थी अत घूमने फिरने में कोई

कठिनाई नहीं हुई। वहाँ बड़ी बड़ी शिलाएँ और शिलाखण्ड थे। वे प्रकृति के मनोहर स्वरूप का निरीक्षण करते रहे। वहाँ के दृश्यों को देखते-देखते ही दिन समाप्त हो गया। सभी वापिस डाक बंगले पर लौट आये। रात्रि को भजन-कीर्तन चला।

वापसी

दिनांक १७-६-६७ को प्रातः १ बजे वहाँ से वापसी के लिए प्रस्थान किया गया। मार्ग सकरा और दुर्गम था अतः वाहन धीमी गति से ही चल रहे थे। मार्ग की छटा सुहावनी थी। एक ओर हिमाच्छादित पहाड़ियाँ तो दूसरी ओर हजारों फीट नीचे बहती हुई नदी। सड़क कभी पहाड़ के मध्य, कभी ऊपर, कभी नीचे होकर जा रही थी। यदि ड्राइवर की जरा सी भी चूक हो जाय तो किसी का कहीं पता भी नहीं चले। ड्राइवर बड़ी सतर्कता से गाड़ियाँ चला रहे थे। चलते चलते दोनों वाहन ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ सड़क पर पहाड़ी का अंश छत की तरह से निकला हुआ था। छतनुमा पहाड़ी से पानी टपक रहा था। ऐसा लग रहा था कि मिट्टी अब गिरी-अब गिरी। वाहन कुछ आगे बढ़े ही थे कि सचमुच मिट्टी वाहनों के आगे आ गिरी जिससे आगे जाने वाला मार्ग अवरुद्ध हो गया। यह तो भगवान की बड़ी कृपा ही रही कि मिट्टी वाहनों पर नहीं गिरी अन्यथा क्या हुआ होता यह तो भगवान ही जान सकता है। वाहन खड़े हो गये और भयभीत से सब लोग उनसे उतर पड़े। श्रीदाता ने कहा, "अरे भले आदमियों! इन गाड़ियों को छत के नीचे क्यों खड़ा कर रखा है? क्या मरना है? गाड़ियों को धीरे-धीरे पीछे ले लो और आप लोग भी पीछे हटो। अब तो गाड़ियाँ मार्ग साफ होने पर ही निकल सकेंगी।" वहाँ कब और मिट्टी गिर पड़े इसका क्या ठिकाना था अतः सब ही गाड़ियों में जा-बैठे और धीरे धीरे उन्हें पीछे हटा लिया गया।

श्रीदाता, मातेश्वरी जी, चाँदमल जी, कुँ. हरदयाल सिंह जी और कुँवरानी जी वहीं खड़े रह गये। श्रीदाता धीरे धीरे आगे की स्थिति देखने को आगे बढ़े। मातेश्वरी जी आदि भी उनके साथ ही साथ आगे बढ़े। मलवे को पार कर वे आगे बढ़े ही थे कि पीछे से

पहाडी का वहुत वडा भाग टूट कर सडक पर आ गिरा । ये लोग वाल-वाल वचे । अव तो मार्ग पूर्णतया अवरुद्ध हो गया । लौट कर अपने वाहन तक पहुँचना अव तो कठिन ही नही असभव हो गया । इन लोगो के पास न तो अतिरिक्त कपडे ही थे और न अन्य सामान ही । चादमल जी श्रीदाता के साथ थे किन्तु उनके पास भी कुछ नही । जेव तक उनकी खाली थी । श्रीदाता के पास तो धोती और एक लकडी के अलावा कुछ रहता ही नही । वडी विपम परिस्थिति में पड गये वे लोग । यह तो दाता दयाल की कृपा ही थी कि साथ के लोगो को और वाहनो को वहाँ से हटा लिया गया था और दाता स्वय भी वहाँ से आगे वढ गये थे अन्यथा सव ही की मृत्यु निश्चित थी ।

श्रीदाता वदरीनाथ से एक दिन पूर्व ही लौटना चाहते थे । किन्तु व्यास जी के विशेप आग्रह से उन्हे ठहरना पडा और उन्होने अनमनेपन से स्वीकृति दी थी । उस समय तो अनमनेपन का रहस्य किसी ने नही जाना किन्तु अव सवके सामने काच की तरह साफ हो गया । पीछे वाले पीछे रह गये और श्रीदाता के लिए आगे वढने के सिवा कोई चारा नही था । जोशी मठ से आयी हुई वसे सडक के अगले छोर पर ठहरी हुई थी । वे पुन जोशी मठ की ओर जाने को तैयार खडी थी । एक वस ड्राइवर ने इन्हें वस में बैठ जाने को कहा किन्तु किराया देने को था नही अत हिचकिचाने लगे । इस पर मातेश्वरी जी ने अपने पास से कुछ नोट निकाल कर दिये । टिकिट खरीद कर वस में जा बैठे और जोशी मठ जा पहुँचे । श्रीदाता वस से उतरकर एक ओर जा खडे हुए और वेचैन से जोशी जी व्यवस्था के लिए इधर उधर फिरने लगे । पास में फूटी पाई नही । चिन्तित से वे इधर उधर घूम ही रहे थे कि उनकी निगाह माथुर साहव पर जा पडी । माथुर साहव की कार खराव होने से वे कर्णपुर में ही ठहर गये थे । कार के ठीक होने पर वे वहाँ से रवाना होकर यहाँ तक पहुँचे थे व आगे की ओर वढ रहे थे । माथुर साहव ने जोशी जी को देखकर कार रोक दी । फिर सारी व्यवस्था सरलता से हो गई ।

माथुर साहब ने वदरीनाथ जाना स्थगित किया और दिनांक १८-६-६७ को प्रातः ही श्रीदाता सहित कार द्वारा श्रीनगर की ओर चल पड़े। कुछ लोग वस द्वारा रवाना हुए। उस दिन निर्जला एकादशी थी अतः खाना पीना तो कुछ था नहीं फिर भी श्रीनगर में कुछ विश्राम कर देव प्रयाग पधारना हो गया। देव प्रयाग, अलखनन्दा और भागीरथी का संगम स्थल है। संगम पर श्रीरघुनाथ जी, आद्य विश्वेश्वर और गंगा-यमुना की मूर्तियाँ हैं। वहाँ गृद्धाचल, नरसिंहाचल और दशरथाचल नामक तीन पर्वत हैं। इस क्षेत्र को प्राचीन सुदर्शनक्षेत्र कहते हैं। सभी लोगों ने संगम पर स्नान किया। स्नानोपरान्त काली कमली वालों की धर्मशाला में जा विश्राम किया। कुछ विश्राम के वाद श्रीदाता ध्यान में विराज गये। मातेश्वरी जी, जोशी जी, माथुर साहब आदि सभी श्रीदाता के शरीर को ध्यान का केन्द्र विन्दु वना ध्यान करने लगे। लगभग दस मिनिट तक ध्यान का क्रम चलता रहा। श्रीदाता ने सभी को ध्यान में हुए अनुभव के वारे में पूछा। लोगों ने अपना अपना अनुभव वताया। दाता ने फरमाया, "एक क्षण के लिए भी दाता में मन लग जाय तो समझ लो काम वन गया। ध्यान की मुख्य वात ही यह है कि निद्रा को आने न दो व मन को कहीं जाने न दो। हर समय तो उसकी झलक मिलती नही। घनघोर घटाएं छायी हुई हैं और आपको सुई पिरोनी है। विजली चमकती है तो अनन्त प्रकाश हो जाता है। सुई पिरोने वाला सावधान है तो सुई आसानी से पिरो लेता है। विजली कह कर तो चमकती नही और न उसका निश्चित समय है अतः हर ससय तैयार रहने वाला व्यक्ति ही सुई पिरोने में सफल होता है। अतः हर समय तैयार रहना है। सीप में पानी की वून्द गिरते ही सीप का मुँह वन्द हो जाता है और वून्द मोती वन जाती है। मुँह खुला रह जाय तो सीप के मुँह में गिरा हुआ पानी, पानी में मिल जाता है। फिर मोती की आशा रखना ही व्यर्थ है।" श्रीदाता ने कुछ देर ठहर कर फिर फरमाया, "मन के स्थिर होने पर जो आनन्द मिलता है वह कथनी में नही आता। वह तो गूंगे का गुड़ है। मेरे दाता हद वेहद है। वह तो है सो है। उसका कोई भी वर्णन नहीं कर सकता है। वेद उसको नेति नेति

वताता है। शास्त्रो ने, ग्रन्थो ने, ऋषि महर्षियो ने किसी ने भी उसका भेद नही पाया है। सच ही कहा है –

वेद पुराण वके सगरे और ये सब हद की वात सुनावे।
वेहद की वात को जाने नही वपुरे यह वेहद कहाँ से लावे।
वेहद देश मे सन्त चले उस देश समाय के फेर न आवे।
नृप मान कहे अब कहे कौन हम को जो कोई जाय सो
मौन हो जावे ॥

दाता के सिवा ह ही क्या है। जो कुछ है सो वही है। दिन व रात में एक क्षण भी फालतू न जाने दो। उसकी महर ही महर है।"

माथुर साहब वदरीनाथ के दर्शन नही कर पाये थे। उनके मन मे शायद यह भाव रहे हो कि यहाँ तक आकर भी भगवान वदरीनाथ के दर्शन नही कर सके जब कि श्रीदाता व अन्य लोगो ने दर्शन कर लिए। श्रीदाता ने उनके मन के भावो को ताड लिया। श्रीदाता ने फरमाया, "मेरे दाता तो सभी स्थानो पर समान रूप से है। जितना वह दाता-निवास में है उतना ही वह यहाँ भी है। वदरीकाश्रम मे भी वह उतना ही है। पाने वाले उसे घर वेठे ही पा लेते है। नही मिलना होता है तो चाहे वदरीकाश्रम जाओ, चाहे रामेश्वर। साकाराम कैलाश मे रमा। कैलाश में भी दाता उतना ही था जितना नान्दशा में था। विशेषता कुछ भी नजर नही आई। मेरे दाता तो भक्त के भावो में है। धन्नाजाट ने तो उसको अपने हाली में ही देख लिया। नामदेव जी ने उसके दर्शन कुत्ते में किए। साकाराम तो जब उसकी चमक होती है तो आपकी जूतियो में ही उसको देख प्रणाम कर लेता हूँ। यात्राएँ तो वना दी गई है। सन्तो के दर्शन हो जाते है व उसके वारे में सुनने को मिल जाता है। मनुष्य तो वावरा है जो उसको यत्र-तत्र खोजता फिरता है। मानसिंह जी ने तो स्पष्ट शब्दो में कहा है –

वावरी काहे को कान्ह टटोले।
जहाँ है कान्ह वहाँ नही खोजे, फिरत घरो-घर डोले।
जो डोले तो डोल भलां ही, कान्ह वसे तव ओले ॥

कान्ह शब्द को अर्थ साँच कहे, क्यों नहीं चित्त से खोले ।
"का" है "आन" जिसे तू ढूँढ़त, कान्ह ही कान्ह सव डोले ।।
देवनाथ गुरु कृपा करी जव, अमृत पियो अतोले ।
मानसिंह अव सव दुःख छाँड़े, निडर होय मुख वोले ।।
गुरु कृपा हो जाय तो सव टंटा ही मिट जाय ।"

श्री चाँदमल जी को अपने भाई की लड़की की शादी मे पीसागन जाना था अतः वे आज्ञा लेकर चले गये । दिनांक १७–६–६७ को प्रातः गंगा स्नान के उपरान्त ऋषिकेश के लिए प्रस्थान कर दिया । वहाँ पहुँचते पहुँचते मध्याह्न हो गया । उस दिन वहीं विराजना हुआ । पथावरोध के कारण जो लोग पीछे रह गये थे वे शाम को आ गये । उनके आने से सभी के मन में छायी हुई उदासी दूर हो गई । ऋषिकेश में कई दर्शनीय स्थल हैं जिन्हें जाते वक्त नही देखा जा सका था । दिनांक २०–६–६७ को उन्हें देखने का कार्यक्रम वनाया गया । त्रिवेणी के घाट पर स्नान कर शिवानन्द आश्रम में पधारना हो गया । वहाँ से स्वर्गाश्रम गये । स्वर्गाश्रम वड़ा ही रमणीक स्थान है । वहाँ जो विशाल गीता भवन वना है वह अपने आप में अनूठा है । वहाँ सत्संग की अच्छी व्यवस्था है । वड़े वड़े सन्तों, महर्षियों और महापुरुषों के प्रवचन हुआ ही करते हैं । परमार्थ-निकेतन जिसमे अनेक सन्त निवास करते हैं, यहीं है । गीता भवन को देख सभी वड़े प्रभावित हुए । शिवानन्द आश्रम से लगभग डेढ़ मील दूर लक्ष्मण झूला है जहाँ लक्ष्मण जी का मन्दिर और अन्य मन्दिर हैं । लक्ष्मण झूला और वहाँ की सुन्दरता को देख सभी का चित्त गद्-गद् हो गया । श्रीदाता वड़ी देर तक वहीं ठहरे रहे । वाद में वहाँ से चलकर अन्य स्थानों को देखते हुए धर्मशाला में पधार गये ।

ऋषिकेश ऋषि भूमि होने से अत्यधिक पवित्र है । न मालूम कितने सन्तों और महापुरुषों की यह तपस्थली रही होगी । उस दिन सारे दिन श्रीदाता भाव भूमि मे रहे । रात्रि को श्रीदाता ने वहाँ विपयक अनेक गाथाओं का वर्णन करे उस भूमि की भूरि-भूरि प्रशंसा की । श्रीदाता ने फरमाया, "किसी भूमि का महात्म्य भूमि

के कारण न होकर सिद्धो की सिद्धि के कारण होती है। महात्माओ के तप के प्रभाव से ही भूमि मुँह बोलती है। तीर्थ है क्या ? हमारे ऋषि मुनियो ने अपनी तपस्या, त्याग और परोपकार से ही अपने निवास स्थान को तीर्थ का नाम दिया है। वे अणु-परमाणु जो महापुरुषो द्वारा उस क्षेत्र मे विकीर्ण हुए है वे अपना शाश्वत प्रभाव रखते है। वे अपनी पवित्रता से आने वाले व्यक्तियो के मन को ही पवित्र नही करते अपितु तन पर भी प्रभाव डाले बिना नही रहते। इसी लिए तीर्थ यात्रा को आवश्यक भी माना है। यह ऋषिकेश अपने आप में बडा महत्व रखता है। निरन्तर सन्तो के एव महापुरुषो के आगमन से तथा भजन-कीर्तन और हरिनाम चर्चा से वातावरण में सत्य नाम की गूंज ही बराबर बनी रहती है। ऐसे स्थान पर किसी भी विचारधारा वाला प्राणी क्यो न पहुँचे उसके हृदय में कुछ समय के लिए ही क्यो न हो शान्ति और पवित्रता आये बिना नही रहती। कहावत है– "जैसा पीये पानी, वैसी बोले वाणी" और "जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन।" अत वीतरागी महात्माओ के स्वार्थत्यागमय, एव धर्मपरायण जीवन का वातावरण पर प्रभाव पडे बिना नही रहता। यहाँ का वायु मण्डल बडा पवित्र है। यहाँ आने पर हम सब का मन कैसा हो गया है यह आप लोग अवश्य अनुभव कर रहे होगे। मनुष्यो पर तो प्रभाव पडता ही है किन्तु यहा आने पर पशु-पक्षी भी अहिंसक बन जाते है। रामायण में आपने पढा होगा कि जिन दिनो चित्रकूट पर रामचन्द्र जी, सीताजी और लक्ष्मण जी के साथ निवास करते थे, उन दिनो निषादादि के हृदय परिवर्तन का कारण भी वहाँ का शुद्ध-पवित्र वातावरण ही था। यथा –

"यह हमारि अति बडि सेवकाई। लेहिं न वासन वसन चोराई॥"

सन्तो का प्रभाव ही महान् होता है। सन्त और भगवान में कोई भेद नही है। इसीलिए सन्तो का हमारे यहाँ बडा आदर है। उनके सम्पर्क से ही मनुष्य में वे सब गुण आ जाते है जिनका होना मनुष्य मात्र के लिए जरूरी है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मत्सर आदि विकारो से शीघ्र ही छुटकारा मिल जाता है और

अन्तःकरण पूरी तरह शुद्ध हो जाता है, यदि मनुष्य सन्तों के सत्संग में रहते हों।" इस तरह श्रीदाता ने बड़ी देर तक सन्तों की महत्ता का वर्णन किया। और भी कई महत्वपूर्ण बातों पर श्रीदाता फरमाते रहे। सभी लोग आनन्दित हो गये। जो लोग पीछे रह गये थे वे कुछ उदास से थे किन्तु ऋषिकेश में आते ही जो श्रीदाता का प्यार और सत्संग मिला उससे वे निहाल हो गये। उनकी सारी उदासी और थकावट बात की बात में नष्ट हो गई। श्रीदाता का सत्संग लगभग रात्रि के दो बजे तक चलता रहा। इसके बाद ड्राइवर चिमन सिंह ने भजन बोले। अन्त में सभी लोगों ने विश्राम किया।

दिनांक २१-६-६७ को प्रातः ऋषिकेश से रवाना होकर हरिद्वार होते हुए दिल्ली पधारना हुआ। मार्ग में कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई। दिल्ली पहुँचने पर सब श्रीदाता का आदेश ले, अपने अपने स्थानो पर चले गये। श्रीदाता जयपुर होते हुए दाता-निवास पधार गये।

धन्य हैं वे लोग जिन्हें श्रीदाता के साथ बदरीनाथ के दर्शनों का अवसर मिला।

○ ○ ○

चम्बल के बाँधों पर

राजस्थान सरकार ने अपने क्षेत्र में चम्बल नदी के पानी को रोक कर बिजली और कृषि के विकास के लिए एक बृहत् योजना की क्रियान्विति की है जिसमें गाँधी सागर, राणा प्रताप सागर, जवाहर सागर, कोटा बैरेज आदि हैं। पहाड़ों के मध्य तेज गति से बहती हुई चम्बल नदी के पानी को रोकना साधारण व्यक्ति का कार्य नहीं है। बाँधों के निर्माण के साथ ही साथ बिजलीघरों के निर्माण का कार्य भी था। एक योग्य और दक्ष इन्जीनियर ही अपनी देखरेख में इस कार्य को करा सकता है। भाग्य से राजस्थान सरकार को एक ऐसा व्यक्ति मिल गया जिसने अपनी योग्यता, परिश्रम और पूरी निष्ठा से इन सभी कार्यों को मूर्त रूप दे दिया। वे व्यक्ति हैं इन्जीनियर श्री शिवप्रकाशन। शिवप्रकाशन जी बगलोर के निवासी हैं। ये बड़े ईमानदार, परिश्रमी, कर्तव्य परायण और योग्य व्यक्ति हैं। दक्षिणी भारत के कई राज्यों में काम कर इन्होंने अपनी ईमानदारी, योग्यता और दक्षता की छाप लगाई है। इन्होंने राजस्थान में अपनी नियुक्ति के बाद अनेक इन्जीनियरों के सहयोग से ऊपर वर्णित सभी बाँधों और उनके साथ के बिजली घरों का सफल निर्माण करवाया है। ये उच्च कोटि के वैज्ञानिक हैं साथ ही साथ सरल एवं सात्विक विचारों वाले भी। अहकार तो उन्हे छू भी नही गया है। साधारण वेशभूषा और सरल व्यवहार में इन्हे देखकर कोई यह अनुमान नही लगा सकता है कि ये इतने महान् व्यक्ति हैं। जीवन के प्रारंभ से ही साधु-सन्तों पर इनकी बडी श्रद्धा रही है और अपने जीवन काल में अनेक सन्तों के सम्पर्क में आये हैं। सन्तों की कृपा और सत्सग के फलस्वरूप ही इनकी आस्था भगवान के प्रति अनन्त है। अपने कार्य से कुछ न कुछ समय उपासना का ये निकाल ही लेते हैं।

आये दिन दिल्ली इन्हे जाना ही पडता रहा है। बीकानेर हाउस में ठहरने से इनका श्री समुद्र सिंह जी से अच्छा परिचय

हो गया और उनके कारण ये श्रीदाता के सम्पर्क में आये । श्रीदाता में इन्होंने अपने इष्ट-देव के दर्शन किये । इसीलिए उनका श्रीदाता के चरणों में सच्चा प्रेम और अटूट श्रद्धा हो गई। इनकी दृढ़ निष्ठा, सच्ची लगन और सच्चे प्रेम के कारण श्रीदाता की सहज कृपा उन्हें प्राप्त हुई । श्रीदाता सरलतम और अहंकार रहित व्यक्ति की वहुधा प्रशंसा कर दिया करते हैं ।

एक वार अगस्त सन् १९६९ में शिवप्रकाशन जी ने श्रीदाता को इन बाँधों पर पधारने का निवेदन किया । प्रार्थना इस प्रेम से की गई कि श्रीदाता से अस्वीकार करते नहीं वना । उनकी ही कार में ही दिनांक ११–८–६९ को दाता-निवास से रवाना हो गये । कांकरोली, गंगापुर आदि स्थानों पर होते हुए भिलवाड़ा पधारे । गंगापुर से इस अनुचर को भी साथ ले लिया । भीलवाड़े में उस दिन रात्रि को चम्वल विजली विभाग के इन्जीनियर के बंगले पर विराजना हुआ । इन्जीनियर साहव श्रीदाता के नाम से तो परिचित थे किन्तु उन्होंने श्रीदाता के दर्शन कभी किये नहीं थे । अचानक श्रीदाता को अपने यहाँ देखकर वे गद्‌गद् हो उठे । उन्होंने श्रीदाता का अपूर्व स्वागत किया और एक सुन्दर एवं सुसज्जित कमरे में ठहराकर सभी आवश्यक व्यवस्था कर दी । वे दाता के व्यवहार एवं उनकी वाणी से वड़े प्रभावित हुए । सूचना मिलते ही भीलवाड़ा के भक्त जन भी उपस्थित हो गये । इन्जीनियर साहव और उनके कुटुम्वी जनों ने श्रीदाता एवं उनके भक्त जनों की खूव सेवा की । रात्रिभर सत्संग चलता रहा । श्रीदाता का उस दिन फरमाना चरित्र निर्माण पर था । उनका कहना था कि चरित्र के विना व्यक्ति छूछा है । चरित्र ही मनुष्य को ऊपर उठाता है । चरित्र है तो मानव मानव है वरना उसके विना वह जानवर से भी गया वीता है । चरित्र ही राष्ट्र को सवल वनाता है, आदि ।

भीलवाड़ा से एक जीप की व्यवस्था और कर ली गई । दिनांक १२–८–६९ को मांडलगढ़, वीजोलिया होते हुए भीमलत पधारना हुआ । भीमलत, वीजोलिया और वूंदी के वीच में एक सुन्दर प्राकृतिक स्थान है । एक नाले पर एक वहुत वड़ा गर्त है

जिसमें काफी उँचाई से पानी गिरता है। वहीं शिव की मूर्ति है। नाले पर पास ही सिंचाई विभाग का डाक बंगला बना हुआ है। प्राकृतिक छटा से युक्त यह स्थान पर्यटकों के लिए दर्शनीय है। आमोद प्रमोद के लिए आये दिन लोग आया ही करते हैं। शिवप्रकाशन जी तो कोटा चले गये किन्तु श्रीदाता का विराजना उस दिन वहीं हुआ। पहले सभी ने बड़े मजे से स्नान का आनन्द लिया फिर शिवलिंग के पास जा बैठे। एक दो व्यक्तियों ने शिव जी का अभिषेक किया। श्रीदाता बड़ी देर तक वहीं विराजकर यह सब कुछ देखते रहे। बाद में डाक बंगले पर पधारना हो गया। रात्रि को बिजोलिया से कई लोग श्रीदाता के दर्शनार्थ आ गये। बड़ी देर तक सत्संग वार्ता चलती रही।

जवाहर सागर पर

अगले दिन अर्थात् १३–८–६९ को प्रात ही वहाँ से प्रस्थान कर बून्दी होते हुए कोटा बैराज पर पधारना हुआ। कोटा बैराज को देख सीधे ही जवाहर-सागर बाँध पर पहुँचे। उस समय जवाहर सागर बाध निर्माणाधीन था। चम्बल का पानी रोका नहीं गया था। बाँध का कार्य जोरशोर से चल रहा था। शिवप्रकाशन जी ने भी श्रीदाता के भोजन की व्यवस्था वहीं बाँध पर की थी। श्रीदाता के सम्मान में उन्होंने एक बड़े भोज का आयोजन किया जिसमें अनेक इन्जीनियरों और कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त कोटा के अधिकारियों को भी आमंत्रित किया गया था। श्रीदाता जिस समय जवाहर-सागर बाँध पर पहुँचे उस समय सभी आमंत्रित व्यक्ति उपस्थित थे। सभी ने मिलकर श्रीदाता का भव्य स्वागत किया। श्रीदाता को एक बड़े कमरे में ले जाया गया। वहाँ कुर्सियाँ सजी हुई थी। श्री दाता के लिए अलग से बड़ी कुर्सी लगा रखी थी। श्रीदाता कुर्सी पर बिराजते नहीं। अपना आसन (मृगचर्म) साथ रखते हैं जिसको जहाँ बैठना होता है वहीं बिछा लेते हैं और बैठ जाते हैं। इस बात का पता चलते ही शिवप्रकाशन जी ने तत्काल कुर्सियों को हटवा कर एक बड़ी दरी बिछवा दी। सभी उस पर बैठ गये। श्रीदाता भी उनके सामने बैठ गये। कुछ देर तो चुपचाप

बैठे रहे फिर मुस्कराते हुए बोले, "आप सब तो बहुत बड़े लोग हो। माकाराम तो आप लोगों के सामने एक छोटा सा है। आप लोग तो मारे दाता का बताया हुआ बहुत बड़ा काम कर रहे हैं। लाखों लोगों के पालन-पोषण के आप लोग माध्यम हो। कितने गरीब लोगों को आप लोग रोजी-रोटी दे रहे हैं। जो लोग दाता के बताये हुए काम को ईमानदारी और निष्ठा से करते हैं वे मेरे दाता के बड़े प्यारे होते हैं। दाता आप लोगों से दूर तो हैं नहीं। दूर क्या, वह तो आप के अन्दर ही है। जो उसको पाने की इच्छा करता है, यदि उसकी इच्छा में तीव्रता है तो उसे अवश्य सफलता मिलती है। होनी चाहिए पक्की लगन।" इस प्रकार श्रीदाता ने उन्हें प्रभु की ओर बढ़ने की प्रेरणा दी। उन्होंने कहा कि कर्म तो करना ही पड़ता है। यदि कर्म नहीं करें तो करमहीन कहलावेंगे। कर्म करते हुए भी 'उसको' याद रखें यही बड़ी बात है। जो लोग हिन्दी जानते थे वे तो ठीक तरह से समझ गये किन्तु जो हिन्दी नही जानते थे उन्हें श्रीदाता के शब्दों को समझने मे कठिनाई हुई। वे कुछ निराश अवश्य हुए किन्तु वे भी श्रीदाता की सरल प्रकृति से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे।

भोजन का समय हो गया। श्रीदाता किस तरह और कैसा भोजन करते हैं इससे श्री शिवप्रकाशन जी अनभिज्ञ थे। उन्होंने तो सोचा कि आमतौर से जैसा बड़े लोग भोजन किया करते है वैसा ही होता होगा। अतः आधुनिक तरीके से मेजे सजा दी गई और तस्तरियों मे भोजन रख दिया गया। छुरी, काँटे और चम्मच रख दिये गये। आग्रह पर श्रीदाता का पधारना हुआ और वहाँ की व्यवस्था देख एक ओर खड़े हो गये। भोजन के लिए सभी लोग तैयार थे। श्रीदाता ने उन सबको भोजन प्रारंभ करने को कहा। उन लोगों ने श्रीदाता से भी विनयपूर्वक आग्रह किया किन्तु साथ वाले लोगों के समझा देने पर सबने श्रीदाता की उपस्थिति में भोजन किया। भोजनोपरान्त श्रीदाता के लिए अलग से व्यवस्था हो गई।

भोजनोपरान्त श्री शिवप्रकाशन जी श्रीदाता को वहाँ हो रहे कार्य को दिखाने ले गये। निर्माण कार्य तीव्र गति से चल रहा था जिसमें सैकडो व्यक्ति कार्यरत थे। इन्जीनियरो ने वहाँ का पूरा प्रारूप बताया। वहाँ चल रहे कार्य से एव प्रारूप से सभी बडे प्रभावित हुए।

रावत भाटा में

वहाँ से विदा होकर कोटा होते हुए रावतभाटा पहुँचे। श्रीदाता के आगमन की सूचना मिलते ही वहाँ के अनेक लोग, कर्मचारी और अधिकारी दर्शनो के लिए उपस्थित हो गये। कुछ देर साधारण परिचयात्मक बातो के बाद सत्सग प्रारभ हो गया। अधिकतर व्यक्ति श्रमिक एव कार्यकर्ता थे अत श्रीदाता ने कर्तव्य एव चरित्र के महत्व पर बहुत कुछ बताया। उन्होने समझाने की चेष्टा की कि कर्तव्यनिष्ठ एव चरित्रवान व्यक्ति ही जीवन में कुछ कर सकता है। मनुष्य जीवन साधारण सा जीवन तो है नही। बडा बहुमूल्य जीवन है। जिस प्रकार एक मूल्यवान हीरे की सभी व्यक्ति बडे यत्न से रक्षा करते है, उसी प्रकार इस मनुष्य जीवन की भी रक्षा करनी चाहिये। चरित्र निर्माण ही इसकी सुरक्षा का बडा साधन है। चरित्र निर्माण से यह जीवन सुसस्कृत होता है। अच्छे गुणो के समूह को ही चरित्र की सज्ञा देते आये है। लोग कहते है कि प्राणी यदि अपने अन्दर किसी एक गुण को भी दृढता से अपना लेता है तो अन्य गुण स्वत ही दौडे चले आते है। यदि कोई व्यक्ति सत्य बोलने का निश्चय कर ले और वह सत्य बोलने लग जावे तो वह स्वत ही ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ, नैतिक और सदाचारी बन जावेगा। किसी भी अच्छी बात को पकड कर जीवन में उतार ही लेना चाहिये। उन्होने आगे कहा, "चरित्र निर्माण में सगति का बडा प्रभाव पडता है अत प्रत्येक व्यक्ति को सदा सत्पुरुष की सगति करनी चाहिए। सत्पुरुष सदैव सत्य का सग ही करते है। सत्य किसे कहते है? सत्य वही अविनाशी शक्ति है जो शाश्वत है। उसी का सहारा रखने पर यह जीवन रूपी बेडा इस ससार रूपी सागर से पार हो जाता है।"

इस प्रकार की बातें चलती रही फिर कीर्तन हुआ तथा ध्यान कराया गया। ध्यान के अन्तर्गत कई लोगों को दिव्य अनुभव हुए। अनेक लोगों ने अपने शीश झुका दिये।

अणुभट्टी के मुख्य इन्जीनियर अपनी पत्नी सहित श्रीदाता के दर्शन हेतु आये। उनकी पत्नी बीमार थी। उनके गले में भारी दर्द था। हर समय गले मे पट्टी लगानी पड़ती थी। शिवप्रकाशन जी ने दाता से उनको स्वस्थ करने की प्रार्थना की। इन्जीनियर साहब ने अपनी पत्नी का कई अस्पतालों में इलाज कराया। अच्छे अच्छे डाक्टरों के प्रयास भी फलदायक नहीं रहे। गले से पानी का उतरना भी सरल नहीं था। खड़े होने में भी भारी कष्ट होता था। श्रीदाता ने उन्हें खड़े होने को कहा किन्तु उन्होंने खड़े होने में असमर्थता जाहिर की। उन्होंने बताया कि बिना सहारा लिए खड़ा नहीं हुआ जाता है। श्रीदाता ने उनकी ओर कुछ हाथ का संकेत किया और फिर खड़े होने को कहा। इस बार थोड़ा सा प्रयास करने पर वे खड़े हो गये। खड़े ही नहीं हुए वरन् कुछ बिना सहारे चल-फिर भी लिये। इन्जीनियर साहब एवं उनके साथी बड़े प्रभावित हुए। इन्जीनियर साहब ने श्रीदाता को अणुबिजलीघर देखने पधारने की प्रार्थना की। अगले दिन ९ बजे प्रातः वहाँ जाने का निश्चय किया गया।

राणाप्रताप सागर बाँध

दिनांक १४-८-६९ को प्रातः ही राणाप्रताप सागर बाँध देखने पधारना हुआ। बांध लबालब भरा हुआ था। दृश्य बड़ा ही सुन्दर था। पाल पर होकर श्रीदाता धीरे-धीरे आगे बढ़े। साथ में अधिक लोग तो थे नहीं। श्री शिवप्रकाशन जी एवं उनके दो तीन साथी और श्रीदाता के साथ वाले व्यक्ति। श्री शिवप्रकाशन जी के साथी रात्रि को हुए सत्संग से प्रभावित तो थे ही किन्तु वे श्रीदाता की विशेषता को जानने के जिज्ञासु थे। पाल के मध्य में जाकर श्रीदाता ठहर गये। वे पानी में चलने वाली लहरों को देखने लगे। अन्य लोग भी उधर ही देख रहे थे। अचानक सभी ने लहरों पर तेज प्रकाश देखा। लहरें उस प्रकाश में जगमगाने लगी।

लहरों का दृश्य बड़ा ही मनमोहक था। ऐसा प्रकाश कभी किसी ने देखा नहीं था। सभी स्तब्ध थे। यह दृश्य एक मिनिट के लगभग रहा होगा बाद में स्थिति पूर्ववत हो गई। इन्जीनियर लोग श्रीदाता की ओर देखने लगे। श्रीदाता मुस्करा रहे थे। उन्होंने कहा, "दाता की शक्ति अनन्त है, उसका कोई पार नहीं है। अपने अस्तित्व को बताने के लिये कभी कभी भटकते हुए प्राणियों को अपनी झलक का अनुभव करा देते हैं। प्राणी में एक भूख जागृत कर देते हैं जिससे उसकी तृप्ति में वह आगे बढ़ता रहे।"

वहाँ से आगे बढ़े। दूसरे सिरे पर बिजलीघर था जो चालू नहीं हुआ था। सुरग निर्माणाधीन थी। सुरग, चुलिया बाँध आदि देखते हुए पहाड़ी पर स्थित बगले पर गये। वहाँ से राणाप्रतापसागर का विस्तार ठीक से देखा जा सका। वहाँ से चल कर ठीक नौ बजे अणु बिजलीघर पहुँचे। वहाँ पहले से ही बहुत से श्रमिक एवं अन्य लोग उपस्थित थे। मुख्य इन्जीनियर भी उपस्थित थे। सभी ने मिलकर श्रीदाता का अभूतपूर्व स्वागत किया। कुछ देर के लिए सभी एक स्थान पर बैठ गये। कुछ लोगों ने अपने सकटों को दूर करने की प्रार्थनाएँ कीं। कुछ सत्सग सम्बन्धी बातें हुईं। उस समय दोनों बिजलीघर बन्द थे। एक तो बन्द था ही, दूसरे में कुछ सफाई का कार्य चल रहा था, इस हेतु वह भी बन्द हो था। श्रीदाता का पधारना बिजलीघर में हुआ। इन्जीनियर साहब ने अच्छी तरह बिजलीघर सम्बन्धी सभी बातें बताईं तथा किस प्रकार वह कार्य करता है यह भी बताया। वहाँ से वापिस उस स्थान पर आ गये जहाँ सभी लोग उपस्थित थे। सभी चाहते थे कि श्रीदाता उन्हें कुछ कहें अत श्रीदाता को उन्हें सम्बोधित करना ही पड़ा। श्रीदाता ने अपने प्रवचन में मनुष्य-जीवन को सार्थक करने पर बल दिया। उन्होंने बताया कि दाता ही सभी कामों का कर्ता-धर्ता है। प्राणी तो कठपुतली मात्र है। कठपुतलीवाला जैसे कठपुतली को नचाता है, उसी तरह वह नाचती है उसी तरह दाता प्राणी को जैसे नचाता है वह भी नाचता है लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि प्राणी समझ बैठता है कि नाचने वाला मैं ही हूँ। बस यही

अन्तर आ जाता है। अहंभाव के वशीभूत होकर प्राणी जब अपने को हर कार्य का कर्ता समझने लग जाता है फिर कर्म के फल का भोक्ता भी उसे ही बनना पड़ता है। अतः दाता ही सब कुछ है इस बात का ध्यान रखते हुए उसका ही आधार रखो। प्रवचन से सभी बड़े प्रभावित हुए।

मुख्य इन्जीनियर की पत्नी पर कृपा

प्रवचन के बाद श्रीदाता ने इन्जीनियर साहब की पत्नी को बुलवाया। वह चल कर वहाँ आयी। रात्रि को हुई पुकार से यह परिवर्तन तो आ पाया। फिर भी दूध आदि कुछ ले नहीं पा रही थी तथा गले में भारी दर्द था। श्रीदाता ने उनको सामने खड़े होने को कहा। गलेपर पट्टी लगी थी जिसको खोलने को कहा गया। पट्टी खोलने में वह हिचकिचाने लगी। उनको डाक्टर ने बताया था कि पट्टी खोलने पर दर्द बढ़ जावेगा। श्रीदाता मुस्कराते हुए बोले, "तुम डरो नहीं। पट्टी खोल दो"। डरते डरते उसने पट्टी खोली। पट्टी खोलने पर उसे राहत का अनुभव हुआ। श्रीदाता ने पैर की अंगुलियों को दबाया और फिर पूछा, "देखो! अब कैसे है?" उसने बताया कि दर्द में कमी हुई है। श्रीदाता ने हाथ से कुछ संकेत किया जिससे उनका दर्द दूर हो गया। फिर श्रीदाता ने दूध लाने को कहा। दूध आ जाने पर एक गिलास दूध उन्हे पिला दिया। इन्जीनियर साहब आश्चर्य से देखते ही रह गये। उनकी आँखों मे आँसू टपक पड़े तथा मुँह से कुछ बोला ही नहीं गया। वर्षों की बीमारी क्षणमात्र में दूर हो गई। वे काष्ठवत भूमि पर श्रीदाता के चरणों में लोट गये। उपस्थित समुदाय दाता की जय-जयकार करने लगा।

गाँधी सागर पर

अणु-बिजलीघर से प्रस्थान कर सीधे गाँधी सागर बाँध पर पहुँचे। बाँध का दृश्य बड़ा ही सुन्दर एवं आकर्षक था। चम्बल के दोनों किनारे, बड़े ऊँचे, जिनमे सैकड़ों दरारे, एक से एक बढ़कर दुर्गम, देखने वाला देखता ही रह जाय, बड़े विचित्र थे, प्रकृति का अनोखा नमूना था। वहाँ के दृश्य को देखने में बड़ा ही आनन्द

जाया। वह वर्णनातीत था। वहाँ से विजलीघर में गये। विजलीघरो मे बने टर्नरो को देखा। वहाँ बडी ठण्डक थी। पानी मे किस प्रकार पखे चलाये जाते है व किस प्रकार विजलीघरो में बिजली तैयार की जाती है, यह सब विस्तार मे वहाँ के इन्जीनियर ने बताया। तेज गति से बहने वाली चम्बल के पानी को नियन्त्रित कर मानव हित के लिए प्रयोग में लेना सचमुच एक साहसिक एव सराहनीय कार्य है। इसके लिए आयोजको की एव निर्माण कर्ताओ की जितनी प्रशसा की जाय कम ही है। विजलीघर से निकल कर चम्बल के दूसरे किनारे पर पधारना हुआ। चम्बल का कटा-फटा किनारा इतना रोचक दृश्य प्रस्तुत कर रहा था कि देखने की पिपासा शान्त ही नही हो पा रही थी। किन्तु समय को ध्यान में रख वहाँ से हटना ही पडा।

वहाँ से गाँधी सागर पर विस्तार की ओर बनी पाल पर पधारना हुआ। गाँधी सागर का विस्तार देखने योग्य है। बाँध से तो नदी ही दिखाई देती है किन्तु विस्तार को देख कर ही अनुमान लगाया जा सकता है कि कितनी बडी योजना है गाँधी सागर बाँध की।

वहाँ से डाक बगले में पधारना हुआ। भोजन की व्यवस्था वही थी। विश्राम के समय श्रीदाता 'दाता' की लीलाओ का वर्णन करते रहे। रात्रि को वापिस रावतभाटा पधारना हो गया। वहाँ भजनो का आयोजन था। लगभग अर्ध-रात्रि तक सभी आनन्द के समुद्र में गोते लगाते ही रहे।

गूजर ग्वालों का पुनर्मिलन

अगले दिन रावत भाटा से कोटा के लिए प्रस्थान किया गया। कुछ ही दूर चले होगे कि मार्ग में कुछ गाये सडक के एक ओर चरती दिखाई दी। श्रीदाता ठहर गये। वे कार से उतर कर गायो मे पधारे। गायो के ग्वाले परिचित निकल गये। जब श्रीदाता गायो को लेकर पठार में पधारे थे उस समय ये ग्वाले भी वही थे। श्रीदाता को देखकर वे इतने प्रसन्न हुए कि उनकी प्रसन्नता का वर्णन करना सरल नही। श्रीदाता उनको लेकर पास ही स्थित

एक पुराने शिव मंदिर में पधार गये और बड़ी देर तक उनसे बातें करते रहे। गायें भी मन्दिर के पास आ गई। श्रीदाता गायों में गये। किसी को पुचकारा, किसी के सिर पर हाथ रखा, किसी की पीठ को सहलाया, इस तरह गायों को स्नेह देकर उनके बीच खड़े हो गये। गायें भी उनकी ओर एकटक निहारती रही। सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा था। दृश्य बड़ा सुहावना था।

हरे हर (सन्ध्या पूजन) की वेला हो गई। भगवान हरेहर करने लगे। साथी लोग एवं ग्वाले हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। हरे हर के पश्चात् गूजर ग्वालों ने वहीं ठहरने का आग्रह किया किन्तु उन्हे समझा कर श्रीदाता कोटा के लिये रवाना हो गये।

अविचल भक्ति

रावतभाटा से कोटा पधारना हो गया। श्री शिवप्रकाशन जी जिस बंगले मे रहते थे वह बहुत बड़ा था किन्तु वे तो केवल एक दो कमरों को ही काम में ले रहे थे। एक कमरा उनका उपासना गृह था जिसमे एक ओर कुछ तस्वीरें रखी थी। एक तस्वीर श्रीदाता की भी थी। इसी कमरे मे श्रीदाता का पधारना हो गया। श्री शिवप्रकाशन जी ने श्रीदाता की विधिवत पूजा की। पूजा के वक्त उनकी शारीरिक एवं मानसिक स्थिति बड़ी विचित्र सी हो गई। शरीर उनका रोमांचित एवं गद्‌गद् था। आँखों से अश्रुविन्दु ढलक कर कपोलों से होते हुए हृदय पट्ट पर गिर रहे थे। उनकी इस अवस्था का वर्णन करना बड़ा ही कठिन था। वे पूर्ण भावमय थे। श्रीदाता भी शान्त मुद्रा में दोनों हाथों को सामने किये हुए पूर्ण भावावेष में खड़े थे। भक्त और भगवान उस समय दोनों ही एकाकार थे। दर्शकगण एक ओर खड़े उस अपूर्व दृश्य को देख कर आनन्दित हो रहे थे। कुछ समय तक यही गति रही। फिर श्रीदाता उसी कमरे में एक ओर विराज गये और श्री शिवप्रकाशन जी कुछ ही दूरी पर उनके सामने हाथ जोड़ कर बैठ गये। उनके नेत्रों में तो उस समय भी तरलता थी और वाणी मूक थी। बड़ी देर तक चुप ही बैठे रहे फिर बोले, "भगवन्! इस दास पर बड़ी कृपा की। सुदामा के पास आपको अर्पण करने को तन्दुल तो थे किन्तु इस

दास के पास तो कुछ भी नहीं है । मैं तो अज्ञानी, जड बुद्धि और स्वार्थी प्राणी हूँ । कभी आपका भजन-पूजन करता नही । पेट भरने में ही सदा लगा रहता हूँ । ऐसे जड प्राणी पर भी आपकी इतनी महान् कृपा ! भगवन् ! आप कितने दयालु हैं, पतित पावन हैं, सहृदय और महान् हैं । आप अपने सेवको के अपराधो पर ध्यान न देकर सहज कृपा कर उन्हे किस तरह अपना लेते हैं, इसका उदाहरण कही अन्यत्र नही मिल सकता । नाथ, मैं आपके चरणो की विमल भक्ति का इच्छुक हूँ ! प्रभु ! कृपा हो जाय । ”

भगवान का भक्त कितना और कैसा विनम्र और सहिष्णु होता है यह कही देखना हो तो शिवप्रकाशन जी में देखा जा सकता है । श्री चैतन्य महाप्रभु के शब्दो मे –

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीय सदा हरि ॥

तिनका सदा सबके पैरो के नीचे पडा रहता है । हवा जिधर उडा ले जाय, उधर ही चला जाता है किन्तु प्रभु भक्त तो अपने को उससे भी नीचा मानता है । वृक्ष कडी धूप सहता है, आँधी और घनघोर वर्षा का आघात सहन करता है । अपकृत्य करने वालो को लाभ पहुँचाता है । भक्त भी वृक्ष की तरह ही अपना सर्वस्व देकर दूसरो को लाभ ही पहुँचाता है ।

मान बडा मीठा विष है, सभी बडे चाव से इसे पीते हैं किन्तु भक्त स्वय अमानी रहकर जिनको कोई मान नही देता, उनको भी मान देता है । सदा कीर्तन करने योग्य कुछ है तो वह भगवान का नाम-गुण ही है । भक्त सदैव हरि नाम का स्मरण ही करता है ।

श्री शिवप्रकाशन जी भी पूर्ण भक्त ही हैं । कितने विनम्र और सहिष्णु हे वे । उनका प्रेम, उनकी विनम्रता, उनका दैन्य देखने योग्य एव अनुकरणीय था । श्रीदाता ने पुचकारते हुए उन्हे आश्वस्त किया । ठीक उसी समय कोटा के भक्तजन भी आ गये । पूजा गृह छोटा था अत श्रीदाता वहाँ मे उठ कर बडे कमरे में आ विराजे । और भी दर्शनार्थी आ बैठे । श्रीदाता प्रसन्न मुद्रा में अपनी अमृत रूपी वाणी का प्रसाद वितरित करते रहे । लोगो की

भीड़ धीरे धीरे बढ़ती ही गई। भोजनोपरान्त भी भीड़ बनी ही रही। लोग अपने दु:ख-दर्द की बातें करते ही रहे।

रात्रि को कई अधिकारीगण भी दर्शनार्थ उपस्थित हुए। भजन-कीर्तन की व्यवस्था थी। श्रीदाता भावमग्न हो विराजे रहे। भजन-कीर्तन के बाद विशेष लोग बैठे रहे। वे श्रीदाता के मुखारविन्द से कुछ सुनना चाहते थे। उनकी जिज्ञासा देख श्रीदाता ने फरमाया, "और कहो।" इस पर एक अधिकारी बोले, "स्वामीजी! यह विश्व तो दु:ख का घर है। दु:ख की दावाग्नि में यह निरन्तर जल रहा है। हमें उसकी लपटें दिखाई नहीं पड़ती। काम, क्रोध, लोभ, मोह हमें घेरे रहता है। चारों ओर दु:ख ही दु:ख है। शान्ति कहीं नहीं है। हमें बताने का कष्ट करें कि शान्ति कहाँ और कैसे मिल सकती है।"

श्रीदाता ... "आप ठीक कहते हैं। यह संसार तो दु:ख का घर है। यह नाशवान है। नाशवान वस्तुएँ कभी सुख का कारण बनी हैं? नाशवान् वस्तुओं से मोह करना तो दु:ख को न्योता देना है। संसार के जितने भी रिश्ते हैं, सब झूठे हैं। माता, पिता, भाई, बन्धु, पति, पत्नी आदि सभी स्वार्थ के सगे हैं, हमारे नहीं। अत: उनसे सुख मिलने का प्रश्न ही नहीं है। सांसारिक वस्तुएँ, दिखने में तो अच्छी हैं, आकर्षित भी करती हैं लेकिन उनका प्रयोग ही दु:खदायी है। कारण, वे भी तो नष्ट होने वाली हैं, अस्थाई हैं। संसार से शान्ति और सुख की आशा करना व्यर्थ है। जलते संसार में भला शान्ति कहाँ?"

अधिकारी - .. "यही तो जानने की इच्छा करते हैं कि शान्ति कहाँ मिल सकती है।"

श्रीदाता ... "शान्ति है। सुख है। आनन्द है। अनन्त शान्ति, सच्चा सुख, शाश्वत आनन्द – शान्ति, सुख और आनन्द का महासागर है जहाँ खड़े हो जाने पर संसार की ज्वाला शान्त हो जाती है ... त्रिताप का भय नष्ट हो जाता है।"

अधिकारी ... "स्वामी जी! वह कहाँ है?"

श्रीदाता ... "दाता को छोड़ कर शान्ति, सुख और आनन्द अन्यत्र

और कहाँ मिल सकता है ? दाता के शरणापन्न होने पर ही शान्ति मिल सकती है। यदि आप लोग शान्ति चाहते हो तो दाता के बन जाओ। आपका जो यह 'अह' है, जो यह 'मे' है उसे दाता में अर्थात् 'तूं' मे समावेश कर दो फिर देखो ! कितना आनन्द, कितनी शान्ति मिलती है। याद रखो, अह कभी नष्ट नहीं होता है कारण अह तो कर्म करने वाला आनन्द है जो 'तूं' का आनन्द लेता है। यदि अह नष्ट हो जाय तो फिर तूं ही तूं रह जाता है। फिर 'तूं' का आनन्द कौन ले। अत शान्ति प्राप्त करने के लिए ससार के शरणागत न होकर दाता के शरणागत हो जाओ, आप यह कहोगे कि यह काम तो कठिन है। सही है, कठिन है तो इतना है, कि जिसकी कोई हद ही नही है। लोग एक जन्म नही, कई जन्मो तक प्रयत्न करते है किन्तु उन्हे सफलता नही मिलती। बडे-बडे ऋषि-महर्षि भी शरणागत नही हो सके। किन्तु सरल है तो इतना कि शरणागत होने मे कुछ लगता ही नही। यह तो शरणागत होने वाले पर निर्भर है। जब तक सिर पर भार है तब तक बोझ ढोना ही पडता है। भार हटा कि बोझ ढोना भी बन्द। गोपियो को शरणागत होने मे कितना समय लगा ? दाता तो इतने दयालु है कि जो उसकी शरण में जाता है उसको शरण में ही नहीं लेते वरन् पूर्ण रूप से वह उसके बन जाते है। दाता तो शान्ति के, शीतलता के महासागर हैं। वहाँ कामनाओ की ज्वाला, त्रितापो की ऊष्मा तक नहीं पहुँचती हे।"

श्रीदाता ने ठीक ही तो फरमाया है। जो दाता का बन जाता है उसको कामना, वासना आदि कोई भी तग नही कर सकता। ससार के दुखो से वह सदा दूर ही रहता है। गीता में भी कहा गया है –

> विहाय कामान्य सर्वान्पुमाश्चरति निस्पृह ।
> निर्ममो निरहकार स शान्तिमधिगच्छति ॥

बडी देर तक सत्सग-वार्ता चलती रही।

अगले दिन प्रात ही वहाँ से प्रस्थान का कार्यक्रम था किन्तु जिला उद्योग अधिकारी के आग्रह पर भोजन हेतु रुक जाना पडा।

वैद्य शिवशंकर जी के विशेप आग्रह पर उनके घर भी पधारना हुआ। उनकी श्रद्धा, भाव देखने योग्य था। भोजन के समय मोदमय वातावरण था। श्रीदाता लोगों को खूब हंसाते भी जा रहे थे व खूब खिला-पिला भी रहे थे। भोजन करने मे ही लगभग दो घण्टे लग गये। श्रीदाता हँसी-मजाक मे ही वहुतों को वहुत कुछ दे देते हैं। उस दिन कई भक्त लोगों की मनोकामना पूरी हुई।

शाम को चार वजे के लगभग कोटा वैराज देखते हुए वहाँ से प्रस्थान कर दिया। वून्दी से आगे विजोलिया-मांडलगढ़ की सड़क पकड़ी। आये भी उसी सड़क से थे। उधर एक दिन पूर्व भारी वर्षा हुई थी और नदी-नालों में अपार पानी वह रहा था। वून्दी में इस वात का पता नहीं चल पाया क्योंकि विना कुछ जानकारी लिए ही आगे वढ़ गये थे। कुछ आगे निकले ही थे कि सड़क पर वहता पानी मिला। पहले तो सोचा कि पानी थोड़ा ही होगा किन्तु जव पानी अधिक से अधिक होता गया तो रुक जाना पड़ा। कार से उतर कर देखा तो चारों ओर पानी ही पानी दिखाई दिया। कार को देख कर पास के गाँव के कई लोग आ गये। उन्होंने वताया कि कल रात्रि से ही सड़क पर पानी वह रहा है। ८–१० मील तक सड़क पर पानी है। नदी की वाढ़ की वजह से पानी ही पानी है। कोई भी वाहन सड़क पार नहीं कर रहा है। रात्रि को तो यात्रियों से भरी एक वस भरी हुई नदी में वह गई वताते हैं। यात्रियों का क्या हुआ, भगवान ही जाने। चारों ओर पानी ही पानी था। आगे वढ़ना संभव नही। वापिस लौटने के सिवा कोई चारा नहीं। अतः वापिस वून्दी की ओर चल दिये। रात्रि विश्राम वून्दी में किया।

श्रीदाता के साथ वाले लोग शीघ्र ही वापिस अपने स्थान पर पहुँचना चाहते थे किन्तु दाता की लीला को कौन जान सकता है? भक्तजनों के वहुत रोकने पर भी कोटा मे तो विराजना नही हुआ किन्तु वून्दी में रुक जाना पड़ा। वून्दी डाक-वंगले का भाग्य जो था।

वून्दी आने पर वर्षा और उसके पानी के ताण्डव नृत्य का समाचार सुनने को मिला। वस के साथ साथ एक ट्रक के वहने के समाचार भी थे। कई लोगों को मृत्यु से वचा लिया गया किन्तु

कुछ लोग तो मृत्युमुख में गये ही। अगले दिन भी सडक साफ नहीं हुई, इसलिए देवली, केकडी, विजयनगर होकर पधारना हुआ। विजयनगर मे कमला फेक्ट्री में श्री रामसिंह जी मिल गये। उनके आग्रह पर स्नान हेतु वही ठहरना हो गया। भोजन के लिए भी उनका आग्रह रहा किन्तु यह कह कर कि भोजन मान्डल मे होगा, मना कर दिया। वही से एक बन्दे को आगे माडल भेज दिया गया। माडल में श्रीदाता के परम भक्त श्री शिवशकर जी रहते है। उनकी तीव्र इच्छा थी कि श्रीदाता का पधारना उनके फार्म पर हो किन्तु अपनी इच्छा को वे व्यक्त नही कर सके। श्रीदाता तो सर्वज्ञ है। एक भक्त कोई इच्छा करे और दाता उसको पूरी न करे यह कैसे सभव हो सकता है ? ज्योंही श्री बसीधर जी ने माडल जाकर श्रीदाता के पधारने की सूचना दी कि वे बागबाग हो उठे। पूरे घर में व आसपास एक आनन्द की लहर दौड पडी। आवश्यक सब तैयारी कर वे बडी उत्सुकता से श्रीदाता के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। दो बजे के लगभग श्री दाता का पधारना हुआ। सभी ने श्रीदाता के दर्शन कर बडे प्रेम से दाता की जय जयकार की। श्रीदाता बडे प्रेम से वहाँ विराजे, हरेहर (भोजन) की, सत्सग दिया और अपने निज सेवक की सभी मनोकामनाएँ पूरी की। ऐसे है दीनदयाल दाता। बून्दी से प्रस्थान तक या कह दिया जाय कि विजयनगर नही पहुँचे तब तक किसी को पता भी नही था कि आज का भोजन श्री शिवशकर जी के यहाँ होगा। भगवान की लीलाएँ अनोखी ही होती है।

माडल से भीलवाडा, गगापुर होते हुए श्रीदाता का पधारना दाता-निवास हो गया।

धन्य है भगवान और उनके भक्त।

○ ○ ○

लीला सिंधु अगाध है

हर-निवास की तरह ही दाता-निवास में भी बीमार एवं आर्त्त लोगों की भीड़ रहने लगी। चाहे-अनचाहे श्रीदाता को उनकी पुकारें सुननी ही पड़ती। लोग बड़े स्वार्थी होते हैं। उन्हे तो केवल स्वहित की ही चिन्ता रहती है। किसी को उनके कारण दुख होता है या सुख, इसकी क्या चिन्ता है? श्रीदाता का दिल तो मक्खन की तरह स्निग्ध है, हल्की सी उष्णता मे तरल हो जाता है। फलस्वरूप शारीरिक कष्ट भोगना पड़ता है। दाता-निवास में निवास करने के एक-दो वर्ष बाद से ही वे कभी कभी अस्वस्थ रहने लगे।

एक बार श्रीदाता के एक बन्दे को उदयपुर जाना हुआ। वहाँ वे विद्याभवन के संस्थापक, सहयोगी एवं प्रौढ़ शिक्षा के कर्मठ कार्यकर्ता श्री सोनी से मिले। इधर उधर की औपचारिक वार्ता के बाद श्री सोनी ने पूछा, 'श्रीदाता कहाँ विराज रहे है? वे कैसे हैं?" उस बन्दे के मुँह से अनायास ही निकल पड़ा, "दाता आजकल दाता-निवास में विराज रहे है और वे अस्वस्थ है।" यह सुन कर श्री सोनी हँस पड़े। वे बोले, "दाता भी कभी अस्वस्थ होते हैं! वे तो परम पुरुष हैं। आया होगा कोई सौभाग्यशाली बीमार। सुन ली होगी उसकी पुकार। दाता तो दूसरों का दुःख लेकर ही प्रसन्न होना जानते हैं।"

श्री सोनी जी के शब्द एक बड़े तथ्य को प्रस्तुत करते हैं। आये दिन यही देखने को मिलता है कि अनेक लोग अपने दुःखों की पुकार करते हैं। कइयों के कष्टों को दूर करते हैं और कइयों के के कष्टों को स्वयं अपने ऊपर ले लेते हैं और फिर सामान्य जन की तरह उन्हें भोगते हैं। हमने देखा है कि श्रीदाता का जीवन बड़ा संयमित है। प्रकृति के नियमों का वे पूर्णतया पालन करते रहे हैं और इसीलिए उनकी शारीरिक शक्ति यथावत बनी रही है। एक

दो साधारण उदाहरणो को छोड वाल्यावस्था एव युवावस्था में वे कभी बीमार नही रहे। किन्तु ५३ वर्ष की आयु के पश्चात् अर्थात् दाता-निवास में निवास करने के दो-तीन वर्ष बाद मे उनके शरीर में रोग दिखाई देने लगे। रोगो का उपचार होता है। इस विज्ञान के युग में असम्भव क्या है किन्तु आश्चर्य है कि श्रीदाता के शरीर मे रोग आते है और रोग के आते ही तत्काल उपचार भी कराया जाता है। किन्तु उपचार से कुछ होता जाता नही है। बल्कि उपचार से बीमारी अधिक ही बढती है रोग तो दाता की इच्छा मे ही मिटता है। श्रीदाता तो किमी रोग के होने पर उपचार के लिए मना ही करते है किन्तु जब सेवक लोग अधिक आग्रह करते हैं तो वे चुप हो जाते हे। वे तो फरमाया करते है, "शरीर है तो बीमारी तो होगी ही। यह शरीर दाता का है। बीमारी भी उसी की है। उमी की इच्छा से बीमारी आती है। उमका शरीर है वह जैसा रखना चाहेगा, रखेगा। होगा तो वही जो वह चाहेगा। आप लोग बीच में क्यो अडगा लगाते हो।" किन्तु क्या किया जा मकता है।-शरीर का स्वस्थ होना जरूरी है। श्रीदाता का जीवन तो मार्वजनिक जीवन है। अनेकों का हित उनके जीवन मे जुडा हुआ है अत उनका शरीर तो स्वस्थ रहना ही चाहिये। जब तक शरीर स्वस्थ है तभी तक-सभी शारीरिक क्रियायें विधिवत चलती रहती हैं किन्तु शरीर अस्वस्थ हुआ नही कि सभी क्रियाओ के सम्पादन में अडचनें आने लगती है। अत सेवको का भाव तो यही रहता है कि श्रीदाता तन-मन मे स्वस्थ रहें।

युवावस्था की दो बीमारियाँ

श्रीदाता उदयपुर रिशाले की नौकरी में थे तब उन्हे एक बार अतिसार की बीमारी हो गई। दस्तो पर दस्ते लगने लगी। खूब उपचार कराया किन्तु कोई फल नही हुआ। अन्त में वे नान्दशा आ गये। यह बीमारी उन्होने अपने एक सैनिक साथी पर दया कर के ली। एक सैनिक साथी को यह बीमारी थी वह बडा दु खी था। इन्हें उस पर दया आ गई। फलस्वरूप वह तो अच्छा हो गया और ये बीमार हो गये।

नान्दशा आने पर भी बीमारी में कोई सुधार नहीं हुआ। दिन प्रति दिन शरीर क्षीण होने लगा। शारीरिक कमजोरी बहुत हो गई। श्रीदाता के मुखारविन्द से ही सुनने को मिला कि वे इस बीमारी से विशेष परेशान रहने लगे। वे सोचने लगे कि शरीर का अन्त नजदीक आया लगता है। एक दिन दोपहर को वे अनमने से बैठे थे कि उनके कानों में एक आवाज सुनने को मिली, "घबराते क्यों हो ? दो-चार कच्चे प्याज खा लो। दस्तें मिट जावेंगी।" उस समय तक श्रीदाता प्याज व लहशुन का प्रयोग नही करते थे। दोनों वस्तुएँ तामसी प्रकृति की हैं। दाता की इच्छा एवं आदेश समझ उन्होंने तत्काल एक आदमी को खेतों में भेजकर कच्चे प्याज मंगवाये और उन्हें धोकर चार-पाँच प्याज चबा गये। उसी वक्त दस्तें बन्द हो गई और अतिसार की शिकायत सदा के लिए समाप्त हो गई।

दाता के कुछ अनन्य सेवकों में से थे। वे मस्से की बीमारी से बड़े दु:खी थे। इस बीमारी से वे लोग कमजोर हो गये थे तथा उनके मुँह पीले पड़ गये थे। बीमार होते हुए भी उनका जाना प्रति दिन नान्दशा होता था और सत्संग में वे लोग बैठते भी थे। श्रीदाता को उन पर दया आ गई। हुआ यह कि दाता के भी मस्से की बीमारी हो गई। इन लोगों को तो राहत मिली किन्तु श्रीदाता अधिक पीड़ित रहने लगे। जयपुर, भीलवाड़ा आदि स्थानों पर उपचार कराया गया किन्तु व्यर्थ। जयपुर में एक हकीम रहता था जो वंशपरम्परा से एक असाध्य बीमारी से पीड़ित था। पुकार के लिए नान्दशा आया। उसकी बीमारी को तो दूर किया किन्तु चूंकि वह मस्से की बीमारी का हकीम था अत: उससे स्वयं का व अपने सब सेवकों का इलाज करवाया। लगभग पन्द्रह व्यक्तियों का एकसाथ मस्से का इलाज किया गया। देखने में बड़ा अद्भुत नजारा था। अनेकों पर कृपा हो गई किन्तु स्वयं की बीमारी बनी ही रही। लुहारिया गाँव में भी एक हकीम आया था। श्रीदाता ने उससे भी इलाज कराया किन्तु सब व्यर्थ। कई दिनों तक यह बीमारी बनी रही। दाता की कृपा से ही धीरे धीरे इस बीमारी से छुटकारा मिला।

खून की कमी

जुलाई १९६६ मे एकाएक श्रीदाता का स्वास्थ्य गिरने लगा। कमजोरी लगने लगी एव हाथ-पैरो मे दर्द रहने लगा। धीरे धीरे भूख लगना बन्द हो गया व जी घबराने लगा और बेचैनी बढ गई। अगस्त के अन्त तक तो हालत यहाँ तक हो गई कि खाना-पीना और उठना-बैठना भी कठिन हो गया। चारभुजा- काकरोली आदि मे डाक्टरो को बुलाया गया और उनका उपचार कराया गया किन्तु व्यर्थ। तदनन्तर क्रमश देवगढ, गगापुर और उदयपुर से डाक्टरो को बुलाया गया किन्तु कोई लाभ नही हुआ। इसके विपरीत ज्यो ज्यो इलाज कराया गया बीमारी बढती ही गई। शरीर की गिरती हुई अवस्था सब की चिन्ता का कारण बन गई। किन्तु श्रीदाता को कोई चिन्ता ही नही थी। बाहर जाने को कहते तो फरमा देते, "शरीर तो व्याधि का मूल है। कर्म का भोग तो भोगने से ही छूटेगा। यदि अवधि आ गई है तो ओसरा (बारी) तो निकालना ही पडेगा। गन्दी देह का क्या भरोसा। तुम लोग चिन्ता क्यो करते हो। दाता की जो मरजी होगी, वही तो होगा।"

मजेदार बात तो यह थी कि इतनी बीमारी के होते हुए भी पुकारो के सुनने और सत्सग को समय देने में कोई कमी नही आई। उन दिनो में भी सदैव की भाँति भीड तो लगी ही रहती। पता नही ऐसे समय मे शरीर में शक्ति कहाँ से आ जाती। जिज्ञासु एव मुमुक्षु लोगो के बीच घण्टो बैठ कर बात कर लेते। पता नही उस समय उनकी बीमारी कहाँ चली जाती। सत्सग सम्बन्धी बाते समाप्त होते ही कराहना प्रारभ हो जाता। अद्भुत और अनोखी लीला थी। जब बीमारी दिन प्रति दिन बढती गई तो अजमेर मे चाँदमल जी व जयपुर मे समुद्र सिंह जी को बुलाया गया। वे अपने साथ डाक्टरो को लाए। उचित निरीक्षण के बाद डाक्टरो ने अजमेर ले चलने का परामर्श दिया। उन लोगो के आग्रह पर श्रीदाता का अजमेर पधारना हो गया।

डाक्टर माथुर ने विभिन्न प्रकार की जाँच के बाद निष्कर्ष निकाला कि शरीर में खून की कमी है और 'वात' के कारण

पाचन क्रिया में विकृति आ गई है। उपचार प्रारंभ किया गया। ऐसा लगा कि बीमारी का तो बहाना ही था। न मालूम कितने लोगों को अनेक रोगों से मुक्त करना था और कितने लोगों पर कृपा कर सत्संग लाभ देना था। श्रीदाता को अजमेर पधारे हुए सुन कर कई लोग दर्शनार्थ पधारे उनमें श्री लक्ष्मीलाल जी जोशी और नाथद्वारा वाली भक्तिमति भूरीबाई मुख्य थे। आध्यात्म जगत में भक्तिमति भूरीबाई का स्थान बहुत ऊँचा है। भूरीबाई के पधारने पर श्रीदाता बड़े ही आनन्दित हुए। भूरीबाई ने बड़े प्रेम से श्रीदाता को दूध का प्रसाद अर्पित किया।

गले का फोड़ा

सन् १९६६ के प्रारंभ से ही श्रीदाता के गले में एक ओर सूजन सी दिखाई देने लगी। अजमेर में इलाज के वक्त वह अधिक बढ़ गई। जिस प्रकार परमहंस श्री रामकृष्ण देव के गले की गाँठ का प्रारंभिक स्वरूप था वैसा ही वह भी दिखाई देने लगा। देखने वालों को केन्सर की शंका होने लगी। भक्त लोग तो चिन्तित थे ही किन्तु श्री लक्ष्मीलाल जी एवं भक्तिमति भूरीबाई भी कम चिन्तित नहीं हुए। उन्होंने डाक्टरों से परामर्श कर इसकी परिचर्या हेतु श्रीदाता से आग्रह किया। प्रेमपूर्वक की गई प्रार्थना का असर हुआ और श्रीदाता ने कुछ दिनों बाद उपचार कराना स्वीकार कर लिया।

कुछ दिनों तक दाता-निवास रह कर श्रीदाता वापिस अजमेर पधार गये। मेहरा गेस्ट हाउस में विराजना हुआ। अगले दिन जाँच हेतु अस्पताल मे पधारना हुआ। ज्योंही अस्पताल में प्रवेश किया एक अनोखी घटना देखने को मिली। दरवाजे के पास ही भीतर की ओर जामोला गाँव की ओर का एक व्यक्ति लेटा हुआ था। श्रीदाता उसके पास पहुँचे। पास में कोई था नहीं। श्रीदाता ने उसे पूछा किन्तु वह बोला नहीं, केवल मात्र देखता रहा। कुछ ही देर में साथ वाले आदमी दौड़ कर आ गये। साथ वाले व्यक्ति ने बताया कि डाक्टरों ने बीमारी को असाध्य बताकर छुट्टी दे दी है।

अब घर ने जा रहे हैं। वह बीमार व्यक्ति लकवे का मरीज था। श्रीदाता ने उसे खडा करने को कहा। दो व्यक्तियो ने उसे खडा किया। श्रीदाता ने उस ओर कुछ सकेत किया। श्रीदाता की कृपा से देखते ही देखते वह ठीक हो गया। उन लोगो के हर्ष का ठिकाना नही और अन्य लोगो के आश्चर्य का। श्रीदाता वहाँ से चल पडे। नाल चढते हुए श्री चाँदमल जी को फरमाया कि इस समय दाता की इतनी महर है कि जो भी व्यक्ति कुछ माग करे उसे वह वस्तु मिल जाय। इस समय यदि अस्पताल के सभी व्यक्ति ठीक होने की पुकार करे तो वे ठीक हो जायें। ऐसी महर कभी कभी ही होती है।

जाँच के पश्चात् श्रीदाता को अस्पताल में भर्ती कर लिया गया और दिनाक २८–१०–६६ को १२ से २॥ के बीच ऑपरेशन कर गाँठ निकाल दी गई। ऑपरेशन के समय डाक्टर झाला, डाक्टर राजानी, डाक्टर माथुर आदि थे। ऑपरेशन के समय श्रीदाता को क्लोरोफार्म सुघाया गया किन्तु दाता बेहोश नही हुए। ऑपरेशन के समय श्री लक्ष्मीलाल जी जोशी, श्री चाँदमल जी आदि मौजूद थे। श्रीदाता को बिस्तर पर लिटा दिया गया। चूँकि लगभग चौदह टाँके लगे थे अत बोलना बिल्कुल बन्द कर दिया और लोगो को बिठा दिया गया कि कोई दाता के पास न आने पावे व न श्रीदाता किसी से बोलें। किन्तु सब बेकार था। स्वय डाक्टर भी अपने आदेशो का पालन नही कर सके। रात्रि के समय भी सेवको की ड्यूटी लगाई गई। दो व्यक्तियो को ड्यूटी पर नियुक्त किया गया। अन्य लोगो को वहाँ से हटा दिया गया। कुदरत दाता की कि दस बजे के लगभग दोनो को ही निद्रा आ गई और रात्रिभर वे गहरी निद्रा में सोते रहे। प्रात शिवसिह जी जब अन्दर आये तब श्रीदाता ने हँसते हुए फरमाया, "देख रे शिवा! तेरे लगाये चौकीदारो को तो देख। कितनी बढिया चौकीदारी कर रहे है।" इतना बडा ऑपरेशन, लगभग चौदह टाँके लगे होगें किन्तु श्रीदाता पर इसका कोई प्रभाव नही। उनका व्यवहार तो निरोग आदमी के समान था।

दो दिन बाद श्रीदाता को कॉटेज वॉर्ड में ले लिया गया। श्रीदाता के ऑपरेशन की जानकारी होते ही लोगो की भीड उमडने लगी। दूर-दूर से लोग आने लगे। आने का क्रम प्रात ७ से रात्रि के

१० बजे तक चलता ही रहता। डाक्टरों के मना करने पर भी श्रीदाता को पूरे दिन बोलना ही पड़ता था। पूरे दिन सत्संग वार्ता ही चलती थी। इस बीमारी के दौरान श्री चाँदमल जी एवं श्री गिरधर सिंह जी की सेवाएँ अद्वितीय थी।

दिनांक ३-११-६६ को अस्पताल से मुक्ति मिली। छः दिन काला बाग में श्री चाँदमल जी के यहाँ विराजना हुआ। लोग सत्संग के लिए वहीं पहुँच जाया करते थे। वहाँ से प्रस्थान के पूर्व श्रीदाता ने सभी डाक्टरों को बुलाया। श्रीदाता ने उन्हें विशेष सत्संग दिया। श्रीदाता ने फरमाया, "आप लोग तो मानव मात्र की निरन्तर सेवा करते हैं। आप तो मेरे दाता के समान ही हो। सेवा में ही मेरे दाता हैं। दाता ही सारभूत वस्तु है बाकी सब बकवास है। अतः यदि आप लोग जीवन में आनन्द चाहते हैं तो इसी बात को मन में अच्छी तरह बिठा लें। अमूल्य धन आपके पास है अतः आप मालामाल तो हैं ही। उसका लाभ उठावें। निःस्वार्थ भाव से आप उसके बन जाँय तो वह आपका बन जावेगा। फिर आप ही आप रह जाओगे। आप मरीज की सेवा करते हैं। मरते हुए को बचाने की भरसक कोशिश करते हैं किन्तु आप जानते हैं कि जिलाना आपके हाथ में नहीं है। आप प्रयास मात्र करते हैं। मारने व जिलाने वाला तो वही एक है अतः वही हमारे लिए साध्य है। प्रयास हमारा साधन है। उस एक साध्य को साध लेने पर हमारा काम बन जाता है। हमारी अनन्य भक्ति द्वारा हमारे लिए यह काम सरल हो जाता है। बात बहुत छोटी व सरल है। बस आप उसके बन जाओ वह आपका बन जावेगा"। इस प्रकार श्रीदाता ने उन्हें समझाने का प्रयास किया। फिर सभी से ध्यान कराया। ध्यान में अनेकों को भिन्न भिन्न अनुभव हुआ। सभी आनन्दित हुए। विशेष कर डाक्टर लोग श्रीदाता से बड़े प्रभावित हुए। डाक्टरों की सेवा के बदले श्रीदाता ने उन्हें अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराई। अगले दिन श्रीदाता "दाता-निवास" पधार गये।

बीमारी की पुनरावृत्ति

तीन वर्ष निर्विघ्न निकले। इसके पश्चात स्वास्थ्य पुनः

धीरे धीरे गिरने लगा। कमजोरी बढने लगी व भूख का लगना बन्द हो-गया। रक्तचाप व दिल की बीमारी की आशका होने लगी। डाक्टरो को बुलाया गया। डाक्टरो ने जाँच कर यही निष्कर्ष निकाला कि खून की कमी है उन्होने दवा प्रारभ की। कई टॉनिक भी दिये गये किन्तु बीमारी घटने के स्थान पर बढती ही गई। अन्त में डाक्टर राजेन्द्र से परामर्श किया गया। डाक्टर राजेन्द्र ने अजमेर आने की सलाह दी। दिनाक २४-१-७० को श्रीदाता का पधारना अजमेर हुआ। सहकारी समिति की अतिथिशाला में विराजना हुआ। डाक्टर माथुर का इलाज चला। चार दिन पश्चात् डाक्टर राजेन्द्र ने इलाज अपने हाथ में ले लिया जो एक माह तक चलता रहा।

बीमारी तो बहाना मात्र थी क्योकि श्रीदाता का कुछ पता ही नही चलता था। एक क्षण में तो वे ठीक दिखाई देने लगते तथा दूसरे ही क्षण ऐसा लगने लगता कि स्थिति बडी गभीर है। कभी दो-दो तीन-तीन दिन तक कुछ नही खाते-पीते और कभी भूख की अधिकता बताकर दिन में तीन-चार बार कुछ खा लेते। लोगो के आने पर घण्टो प्रवचन देने बैठ जाते। उस समय ऐसा लगता कि श्रीदाता के नख में भी रोग नही है।

श्रीदाता ने अजमेर प्रवास में कई लोगो की व्यथाओ को दूर किया। इनमें कुछ डाक्टर भी थे। लोगो पर महर करनी थी इसलिए स्वय बीमार बने। अजब लीला है श्रीदाता की।

उन्ही दिनो श्रीदाता के दातो में भी दर्द रहने लगा। दिनाक २०-११-६६ को डाक्टर खट्टर द्वारा एक दांत निकाला गया था, तभी से दाँतो में दर्द रहने लगा अत कुछ दांत और निकलवा दिये गये। जयपुर से डाक्टर तेजकुमार जी ने उन दाँतो के स्थान पर नकली दांत लगा दिये थे।

एक माह के इलाज के बाद श्रीदाता का पधारना वापिस दाता-निवास हो गया। कुछ दिनो तो स्वास्थ्य ठीक रहा, किन्तु ज्यो ही दवा लेना बन्द किया कि पेट में गडबडी रहने लगी। भूख का लगना भी बन्द हो गया। हाथ-पैरो में कमजोरी महसूस होने

लगी। डाक्टर शर्मा ने शंका प्रकट की कि यह बात दाँतों के कारण हो सकती है, इस पर जयपुर जाकर सभी दाँत निकलवा दिये गये और उनके स्थान पर बत्तीसी लगवा दी गई किन्तु फिर भी स्वास्थ्य मे कोई अन्तर नहीं आया। तब डाक्टरों ने बीमारी को 'गेस्टिक ट्रबल' नाम दिया। इसी का उपचार प्रारभ हुआ किन्तु सब व्यर्थ।

इसी बीच मातेश्वरी जी (श्रीदाता की पत्नी) भी इसी प्रकार की बीमारी से बीमार रहने लगी। उनके सिर में दर्द रहना, चक्कर आना, पैरों में सूजन आना आदि बातें होने लगी। मातेश्वरी जी को घर का सारा काम भी करना होता तथा साथ ही श्रीदाता की सेवा भी करनी होती अतः कभी कभी उनकी स्थिति बड़ी विषम हो जाती थी। कई बार जाँच हेतु जयपुर भी पधारना हुआ। किन्तु स्थिति उनकी भी बिगड़ती ही गई।

जुलाई सन् १९७४ मे दोनों को ही जयपुर ले जाया गया। एक माह तक दोनों का ही उपचार हुआ। इस बार श्रीदाता का विराजना दोनों बाबा श्री भजनानन्द जी और श्री चेतनानन्द जी के पास, जो तुलसी मार्ग में सेठ त्रिलोकचन्द जी के मकान में रहते थे; हुआ। सेवा मे जयपुर के सभी सत्संगी बन्धु व भक्तजन थे। चाची जी की सेवा की कोई तुलना नहीं।

दोनों बाबाओं के आनन्द का क्या वर्णन किया जाय। ऐसा लगा मानो दोनों बाबाओं पर कृपा करने को ही श्रीदाता एवं श्री मातेश्वरी जी ने बीमारी का आवरण ओढ़ा। दोनों ही बाबा बडे सरल चित्त, बड़े भोले, बड़े त्यागी एवं महान् थे। श्रीदाता के चरणों में उनका विशेष स्नेह था। श्रीदाता ने एक माह तक उनके पास रह उनकी इच्छाओं की पूर्ति ही नहीं की वरन् उन्हें दिव्य-दर्शन देकर निहाल कर दिया। वे श्रीदाता के परम प्रेमी बन गये। वे निरन्तर श्रीदाता के पास ही बने रहते। उनके कारण निरन्तर दिव्य सत्संग होता रहता था। संध्या के हरेहर (उपासना) में दोनों बाबा अवश्य रहते। पहाड़ी बाबा भी यदाकदा वहीं आ जाया करते थे। खूब सत्संग वार्ता होती। भक्त लोगों के लिए सत्संग का बड़ा स्वर्णिम अवसर था। बीमारी का बहाना लेकर श्रीदाता का

विराजना इतने लम्बे समय तक जयपुर हो जावेगा, यह विश्वास जयपुर वालों को भी नही था। श्रीदाता के वहाँ विराजने से अनेक भक्त लोगों का जयपुर में आना हुआ। जयपुर वालो को उनकी सेवा का भी अवसर मिला। चाची जी एव कुछ बहनो को तो सेवा में इतना तल्लीन होना पडता था कि कई दिनो तक वे सो भी नही सकी। धन्य है वे माताएँ और बहनें जिन्हे श्रीदाता ने सेवा का ऐसा अपूर्व अवसर दिया और जिन्होने भली प्रकार इस अवसर का लाभ उठाया।

एक माह तक सेठ त्रिलोकचन्द जी की कोठी स्वर्ग ही बन गई। प्रात से लेकर रात्रि के दो बजे तक सत्सग प्रेमियो की भीड ही लगी रहती क्योंकि वहाँ तो निरन्तर सत्सग रुपी गगा की धारा का प्रवाह बना था। जो कोई भी आया वह आनन्द के सागर में गोते लगाने लगा और भूल गया कि वह वहाँ क्यो व कितने दिन के लिए आया है। वह यह भी भूल गया कि उसके वहाँ रहने से अन्य लोगों को कितना कष्ट होता है व खर्चे का कितना भार पड रहा है। जयपुर वाले भक्त-जन भी धन्य है कि उनके ललाट पर तनिक भी सोच की रेखा नही आयी। सदा प्रसन्नचित्त, सदैव तत्पर।

श्री भजनानन्द जी का आश्रम बिदानों में है जहाँ एक दिन श्रीदाता का पधारना हुआ। बाबा भी साथ था। उन्होंने बडे प्रेम से श्रीदाता एव श्री मातेश्वरी जी की आरती सजोई। उस प्रेमानन्द का वर्णन करना सभव नहीं।

इसी आनन्दमय वातावरण में श्रीदाता का स्वास्थ्य सुधरता गया। खून की कमी की पूर्ति हुई और शरीर का पीलापन जाता रहा। स्वस्थ होने पर श्रीदाता का पधारना दाता-निवास हो गया। नवम्बर १९७४ में जाँच हेतु पुन जयपुर पधारना हुआ। इस बार भी दोनों बाबाओ के पास ही विराजना हुआ। डाक्टरो ने वहीं ठहर कर औषध लेने का आग्रह किया जिस पर वही विराजना हो गया। इस बार भी वही वातावरण बना। प्रात से देर रात्रि तक सत्सग-कीर्तन चलता रहता। बाबा लोगो के आनन्द की कोई सीमा नही। भजनानन्द जी को इस बार श्रीदाता में श्रीकृष्ण

भगवान के दर्शन हुए, ऐसा उन्होंने सभी के सामने स्वीकार किया। चाची जी व दो अन्य बालिकाओं को भी भगवान के दिव्य दर्शनों की अनुभूति हुई। भजनानन्द जी पर जो महर हुई उससे उनका कायापलट ही हो गया। वे पूर्णतया अन्तर्मुखी हो गये। इस बार श्रीदाता के शरीर के उनके अन्तिम दर्शन थे क्योंकि सन् १९७५ में उन्होंने इस नश्वर शरीर को छोड़ ही दिया। श्री समुद्र सिंह जी पर भी कृपा कर दी। वे भी प्रभु की दिव्य अनुभूति पाकर कृतार्थ हुए। अनेक लोग भी भगवान के दर्शन कर और उनके अनुभूत वचन सुन अपने मन की अशान्ति को दूर कर आनन्दित हो गये। इस प्रकार आनन्द की एक अपूर्व लहर बहाकर श्रीदाता दिनांक २६–११–७४ को पुष्कर पधार गये।

पीलिया का प्रकोप

इसके बाद से श्रीदाता व मातेश्वरी जी की शारीरिक अस्वस्थता बढ़ती ही गई। कभी कभी तो साधारण सी दवा काम कर देती है और कभी कभी बड़ी दवा भी काम नहीं करती है। बीमारी की वजह से कई बार जयपुर व अजमेर जाना पड़ा किन्तु अस्थाई स्वास्थ्य लाभ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होता था। दो-चार दिन ठीक निकलते और फिर से तबियत खराब। इसी प्रकार चलता रहा और सन् १९८० आ गया। सत्संग, भजन-कीर्तन और पुकारों में किसी प्रकार की कमी नहीं आयी। लोग श्रीदाता को अपने-अपने ग्रामों में भी ले जाते रहे। जुलाई मे जयपुर वालों ने जयपुर पधारने का आग्रह किया। इधर भीलवाड़ा वालों का आग्रह रहा। श्रीदाता ने किसी को भी निराश नहीं किया। श्री कल्याणमल जी मूँदड़ा के घर हुए कीर्तन में पधार कर सब को आनन्दित किया। पन्द्रह अगस्त को जयपुर जाना निश्चित हुआ। तेरह अगस्त को भीलवाड़ा पधार गये। वहाँ से अजमेर और किशनगढ़ के भक्तों को अपूर्व आनन्द रस का पान करा जयपुर पधारे। अथक परिश्रम और शरीर की अस्वस्थता से शरीर मे शिथिलता का अनुभव तो भीलवाड़ा में ही होने लगा था किन्तु फिर भी श्रीदाता ने शरीर की परवाह न कर अहर्निश जग कर लोगों को आनन्द रस का पान कराया।

पन्द्रह अगस्त की रात्रि को ग्यारह बजे जयपुर पहुँच गये थे। वहाँ भक्त लोग उन्हे घेरे ही रहे। सत्सग के साथ ही साथ पुकारो की भरमार थी। लगभग ३५० पुकारे इस बार हुई होगी। पुकारे भी साधारण नही। जटिल से जटिल। लोग नारियल लेकर सारे दिन श्रीदाता को घेरे ही रहे। पहले ही श्रीदाता अस्वस्थ, विश्राम का नाम नही और ऊपर से जटिल पुकारे, वे तग हो गये। वहाँ मे उन्होने लौटने का निश्चय किया। लौटते समय एक बुढिया नारियल लेकर सामने आ गई। उसके लडके की पुकार थी। वह दो-तीन दिन से लाइन में खडी थी किन्तु उसे अवसर ही नही मिला। एक लडका तो उसका लडाई में मारा गया और दूसरा लडका दो वर्ष से पीडित है। उसकी रीढ की हड्डी में खराबी है व पूरे शरीर पर पट्टियाँ बन्धी है। उठ-बैठ भी नहीं सकता है। डाक्टरो ने निराशा प्रगट कर दी है। इसी कारण वह दु खी है। उसने अपने लडके की जीवन भिक्षा माँगी। श्रीदाता पुकारो से परेशान तो थे ही अत उसे यह कह कर टाल दिया, "माकाराम के हाथ में कुछ नही है।" श्रीदाता जयपुर से अजमेर आ गये। दो-तीन घण्टे अजमेर में ठहर कर बोले, "वह बुढिया बडी दु खी है रे। उस पर दाता को कृपा करनी है। माकाराम को वापिस जयपुर जाना पडेगा।" यह सुन कर वहाँ उपस्थित लोगो को आश्चर्य हुआ। श्रीदाता जयपुर के लिए चल पडे। सीधे ही अस्पताल पहुँचे और उस बुढिया की अनुपस्थिति में ही उसके बेटे की पुकार सुनी। कितने दयालु है श्रीदाता।

रक्षाबन्धन निकट थी अत २२-८-८० को जयपुर से भीलवाडा पधार गये। जब भीलवाडा पधारे तब ज्वर था फिर भी रात्रि भर सत्सग में विराजे रहे। अगले दिन दाता-निवास पहुँच गये। ज्वर ने तेजी पकडी। खाना-पीना बन्द। २६-८-८० को रक्षाबन्धन होने से श्री हरदयाल सिंह जी दाता-निवास पहुचे उस समय तेज बुखार था। भीलवाडा उपयुक्त डाक्टर के न मिलने से जयपुर फोन द्वारा डाक्टर शर्मा को सूचना दी। वे डाक्टर मिश्रा जी को लेकर रवाना हुए। मार्ग में अजमेर से उन्होने डाक्टर रामावतार जी

को भी ले लिया । २८–८–८० को वे दाता-निवास पहुँच गये । जाँच करने पर उन्हें पीलिया की शंका हुई । वे श्रीदाता को अजमेर ले गये । वहाँ जाँच करने पर पीलिया निकला । अगले दिन अर्थात् २९–८–८० को जयपुर पधारना हो गया । वहाँ सेठी कॉलोनी में प्रभुनारायण जी के बंगले पर व्यवस्था की गई । जयपुर की जाँच से भी पीलिया की ही बीमारी निकली ।

जयपुर अस्पताल के मुख्य डाक्टरों की राय भी ले ली गई व उपचार प्रारंभ कर दिया गया । तीन-चार दिन तो हालत खराब ही रही । दिनांक १ एवं २ सितम्बर को तो यहाँ तक हालत खराब रही कि लोग घबरा से गये । २ सितम्बर के बाद से प्रभु कृपा से धीरे धीरे स्वास्थ्य में सुधार होने लगा । अजमेर में जाँच के समय खून लेने में कुछ असावधानी हो गयी थी अतः श्रीदाता ने इन्जेक्शन लगाने के लिए बिल्कुल मना कर दिया इसलिए स्वास्थ्य लाभ में देरी हुई । एक माह और ग्यारह दिन तक जयपुर ठहरकर इस बीमारी का उपचार कराना पड़ा ।

सेठी कॉलोनी वैसे तो एकान्त मे है फिर भी लोग तो पहुँच ही जाते थे । इस बार काका जी ने व्यवस्था अपने हाथ में ले ली थी जिससे आने वाले भक्तों को दूर से ही श्रीदाता के दर्शन कर सन्तोष करना पड़ता था । सन्ध्याकालीन 'हरेहर' के समय लोग अवश्य समीप से दर्शन कर पाते थे । डाक्टर भार्गव, डाक्टर सिंघवी, डाक्टर तलवार आदि भी दाता के दर्शन करने आये । डाक्टर तलवार ने तो आते ही कहा, "तुम लोगों ने दाता को क्यों कैद कर रखा है । जो विश्व के लोगों के संकट को दूर करने वाला है वह क्या बीमार होगा । ये तो आप लोगों के लिए बीमार बने बैठे हैं । आप लोगों के संकट दूर करने और आप लोगों को कुछ देने को ही तो दाता जयपुर पधारे हैं । लोगों को उनके दर्शन करने दिया करो ।"

दिनांक २४–९–८४ से ही श्रीदाता एक दो घण्टे प्रति दिन बाहर विराजने लगे । उस समय सत्संग चर्चा होती ही । बाहर बैठने वाले लोग चुप तो बैठते थे नहीं । भजन-कीर्तन तो हर समय चलता ही रहता था । श्री गिरधरसिंह जी ने इस सेवक को एक पत्र

लिखा जिसमें लिखा था, " काका जी के घर तो एक प्रकार का यज्ञ ही हो रहा है। श्रीदाता भी अब कुछ देर बाहर विराज कर सत्सग देते है। वे तो आज कल मोतियो की वर्षा कर रहे हैं।" उनके इन शब्दो से वहाँ का चित्र आँका जा सकता हे। अनेक लोग श्रीदाता के दर्शन करने उन दिनो वहाँ आये। लक्ष्मणगढ के आश्रम वाले श्री श्रद्धानाथ जी महाराज भी श्रीदाता की खुशी पूछने पधारे। वे श्रीदाता के दर्शन कर बडे आनन्दित हुए। उन्होने हँसते-हँसते कहा, "हम तो आपको सच्चिदानन्द प्रभु और साक्षात् भगवान मानते है और यहाँ आपने क्या स्वाग रच रखा है। अब तो आप अपनी माया समेटो।" इसपर श्रीदाता मुस्करा कर रह गये।

उन दिनो बाहर से भी कई लोग पहुँचे। जयपुर वालो ने सब की अच्छी सेवा की। गिरधर सिंह जी ने जो पत्र लिखा उसमें आगे लिखा है, " डाक्टर शर्मा साहब, मिश्रा जी हर वक्त दाता की हाजरी में तैयार रहते है। काकाजी के घर वालो की सेवा का तो इस पत्र में वर्णन नही हो सकता। रामसिह जी काकामा यही विराज रहे है।" यद्यपि पत्र में सक्षेप सा लिखा गया है किन्तु जयपुर वालो की सेवा का वर्णन करना सभव नही। मास्टर साहब सात मील दूर रहते हे और आने जाने में साइकिल का प्रयोग करते है। किन्तु फिर भी हर काम में तत्पर। सेवा मे वहाँ वाले एक से एक बढ कर। कोई मिसाल नही। धन्य है जयपुर के सत्सगी बन्धु जिन्होने श्रीदाता की और श्रीदाता के बन्दो की अपूर्व सेवा की।

दिनाक ६-१०-८० को जाँच रिपोर्ट बिल्कुल ठीक पाई गई अत श्रीदाता ने दाता-निवास जाने की इच्छा प्रगट की। डाक्टरो ने भी यही सोचा कि यहाँ की जलवायु श्रीदाता के लिए उतनी लाभप्रद नही है जितनी दाता-निवास की हो सकती है। अत उन्होने श्रीदाता की इच्छा का इस शर्त पर अनुमोदन कर दिया कि वे बराबर दवा लेते रहे व भोजन डाक्टरो के निर्देशानुसार ले। जाने के पूर्व श्रीदाता के स्वास्थ्यलाभ की खुशी में श्री शर्मा (जज) ने सभी को खीर पुडी का भोजन-प्रसाद कराया। बडा ही आनन्द रहा। दिनाक ६-१०-८० को श्रीदाता की ओर से सभी के लिए

प्रसाद की व्यवस्था हुई। कोई रह न जाय इस बात का श्रीदाता ने पूरा ध्यान रखा। पिलानिया जी जो आ नही पाये के सिवा कोई प्रेमी प्रसाद लेने से वंचित नहीं रहा।

दिनांक ८-१०-८० को चार बजे जयपुर से रवाना होकर अजमेर पधारना हो गया। उस दिन अजमेर वालों पर कृपा की। अगले दिन भीलवाड़ा पधारना हुआ। रात्रि को सभी इस भय से चुपचाप बैठे थे कि भजन बोलने से कहीं श्रीदाता को कष्ट न हो, दाता ने कहा, "तुम लोग चुप क्यों हो?" इस पर अर्ज किया, "आप अस्वस्थ हैं। आवाज होने से आपको कष्ट होगा।" श्रीदाता हँस कर बोले, "किसने कहा कि उसका नाम लेने पर कष्ट होता है। उसका नाम तो कष्ट मिटाने वाला है।" फिर क्या था! प्रभु की आज्ञा मिलते ही भजन बोले जाने लगे। श्रीदाता भी सत्संग भवन में विराजे रहे व रात्रि भर आनन्द की वर्षा होती रही। अगले दिन सायंकाल नान्दशा पधारना हुआ। वहाँ से दाता-निवास पधार गये। श्रीदाता के स्वस्थ होने पर चारों ओर हर्ष की लहर दौड़ पड़ी।

पीलिया से तो मुक्ति मिल गई किन्तु कुछ दिनों बाद पेट की गड़बड़ी तो शुरू हो गई जो कभी ठीक हो जाती है और कभी ज्यादा हो जाती है। वायु की अधिकता भी पेट की गड़बड़ी का कारण बनती है। इसी तरह से गाड़ी चल रही है।

हृदय रोग की शिकायत

सन् १९८४ में शिवरात्रि एवं फाग का उत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा तक लगभग सभी लोग अपने-अपने स्थानों के लिए प्रस्थान कर चुके थे। एक-दो व्यक्ति ही वहाँ ठहरे थे। द्वितीया के दिन प्रातः किसी ने बताया कि बासा वाले शंभूसिंह जी को लकवा हो गया। सुनकर श्रीदाता कुछ गंभीर हो गये। बात आयी-गई हो गयी। तीसरे पहर बाहर बने हुए बरामदे में जी बहलाने को श्रीदाता विराज गये व तास का खेल खेलने लगे। दो-तीन मिनिट के खेल के बाद श्रीदाता के हाथ से पत्ती गिरने लगी। हमें आश्चर्य हुआ। देखते ही देखते दाहिने हाथ ने काम करना बन्द

कर दिया। श्रीदाता उठने लगे तो उठा नही गया। दो व्यक्तियो ने मिल कर उन्हे उठाया। दाहिने पैर ने काम करना कम कर दिया। पकड कर श्रीदाता को मकान मे ले गये और बिस्तर पर लिटा दिया। देखते ही देखते हाथ और पैर ने काम करना फिर से शुरू कर दिया। कुछ देर बाद श्रीदाता स्वय उठे व बाहर पधार गये। पुन उसी स्थान पर बैठकर तास की पत्ती हाथ में ली। पत्ती हाथ में आते ही वही घटना फिर घटित हुई। इस-बार कुछ असर नाक व मुंह पर भी दिखाई दिया। श्रीदाता को पुन अन्दर बिस्तर पर लिटा दिया गया। सभी चिन्तित हो गये। पास में जीप थी ही अत जयपुर पधारने को निवेदन किया गया। स्पष्ट मना कर दिया। कह दिया, "यदि जाने की अवधि आ गई है तो चले जावेगे। ओसरा (अवसर) तो निकालना ही है। इस गन्दी देह का क्या भरोसा?" रात्रि नजदीक आ गई अत. सभी चुप हो गये। प्रात पुन प्रार्थना की। अधिक आग्रह पर जयपुर पधारने को तैयार हुए। जीप में कष्ट की बात तो थी किन्तु कार मगाने में तो समय लगने का प्रश्न था अत जीप का ही प्रयोग किया गया। श्रीदाता जीप मे आगे बिराज गये। दाता-निवास से रवाना होकर कुछ समय तक अजमेर रुकना हुआ। अजमेर से जयपुर फोन कर दिया था। जयपुर सीधे सेठी कालोनी पधारना हुआ। सभी लोग मौजूद थे। डाक्टर मिश्रा, डाक्टर शर्मा, डाक्टर मधोक आदि पहले से ही विद्यमान थे। जांच के सभी यत्र भी वही उपलब्ध कर लिये गये थे। जाते ही जांच कर ली गई व उपचार प्रारभ कर दिया गया। उपचार तो तमाशा मात्र था। श्रीदाता को तो लीला करनी थी। दूसरे दिन तक बीमारी आधी रह गई व तीसरे दिन तो बिल्कुल ठीक। तीन दिन बाद ही वापिस लौटने की इच्छा हो गई। बडी विनय के बाद दो-तीन दिन और ठहरना हुआ। वही पुकारो की भीड प्रारभ हो गई। सत्सग-प्रवचन तो पूरे समय चलता ही था। वातावरण मे प्रसन्नता की झलक थी अत चारो ओर आनन्द ही आनन्द की लहर थी। अन्त में, डाक्टरो से छुट्टी लेकर वापिस दाता-निवास पधारना हो गया। जाते ही शभूसिह जी के बारे में पूछा। मालुम हुआ कि केवल एक दिन उनका आधा अग रह गया

था और उसी दिन रात्रि को वे ठीक भी हो गये। यह सुन कर हम सब को वास्तविक रहस्य मालुम हुआ।

इस प्रकार आये दिन श्रीदाता किसी न किसी की बीमारी अपने पर ले लेते हैं और फिर शारीरिक कष्ट उसके स्थान पर स्वयं भोगते हैं। किया भी क्या जा सकता है? जानते हैं कि वे सर्व शक्तिमान हैं व समर्थ है तथा कोई रोग उन्हें कष्ट नहीं दे सकता है किन्तु वे तो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और हम इस दुनियां के साधारण जीव। उनकी लीलाओं को भला क्या समझें। अतः चिन्तित भी होते हैं, दुःखी भी होते हैं। है सब उसी का खेल। प्रार्थना है कि दिखाओ सब कुछ लेकिन हाथ पकड़े रहना जिससे विचलित न हो जांय।

○ ○ ○

बिहार की सन्त मण्डली का आतिथ्य

घटना है सितम्बर सन् १९७१ ई की। श्रीदाता का पधारना जयपुर हुआ। उस समय विहार प्रदेश की एक सन्त मण्डली जिसके छप्पन सदस्य थे जयपुर में आयी। उस मण्डली ने यह नियम बना रखा था कि हर वर्ष अखण्ड कीर्तन करते हुए पैदल विहार से तीर्थों तक जाना। उस मण्डली में युवा एव वृद्ध सन्त थे। कीर्तन तन्मयता एव मस्ती से होता था। उस मण्डली का ठहरना कुछ दिनो जयपुर में हो गया। उनके कीर्तन की धूम शहर में ही नही अपितु दूर दूर के क्षेत्र तक पहुंच गई। श्रीदाता को जब यह सूचना मिली तो उन्होने भी कीर्तन-दर्शन की इच्छा व्यक्त की। उन्होने बताया कि दाता के नाम का सकीर्तन सौभाग्यशाली पुरुषो को ही सुनने को मिलता है। इस कलिकाल में तमोगुण की प्रधानता है और उसके चक्कर में आकर मनुष्य अपना आपा खो बैठता है। वह तो विकारो की जड है। उससे वासनाओ में अभिवृद्धि होती है तथा मनुष्य राग, द्वेष, कलह और सघर्ष के भीषण दलदल में फँस कर अध पतन की ओर अग्रसर होता है। उसके जीवन में कामिनी और काञ्चन का महत्व बढ जाता है और विवेकहीन होकर वह शान्ति से कोसो दूर चला जाता है। मानव जीवन का परम लक्ष्य तो परम आनन्द की प्राप्ति ही है और यह परम आनन्द, यह परम शान्ति दाता ही दे सकते है। जो व्यक्ति इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु दाता के चरणो में लीन हो जाता है वह व्यक्ति वास्तव में धन्य है। कहा भी है—

कुल पवित्र जननी कृतार्था
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपार सच्चित्सुख सागरेऽस्मि-
ल्लीन परे ब्रह्मणि यस्य चेत ॥

श्रीदाता ने गोपियो का उदाहरण देकर समझाया कि गोपियो का मेरे दाता के चरणो में जैसा अनुराग था वैसा ही अनुराग हमारा

भी उसके चरणों में होना चाहिए। गोपियाँ पूर्णतया दाता में लीन थी। उद्धव जी ने जब उनको (गोपियों को) योग की शिक्षा देनी चाही तब उन्होंने उन्हें बताया कि योग तो उन्हें सिखाया जाता है जहाँ वियोग है। हमारा तो सदा ही श्याम के साथ संयोग है –

स्याम तन, स्याम मन, स्याम हैं हमारे धन,
आठों जाम ऊधो हमें स्याम ही सों काम है।
स्याम हिये, स्याम जिये, स्याम बिनु नाहिं तिये,
आँधे की सी लाकरी आधार स्याम नाम है।
स्याम गति, स्याम मति, स्याम ही हैं प्राणपति,
स्याम सुखदाई सो भलाई सोभा धाम है।
ऊधो तुम भये बौरे, पाती लेकर आये दौड़े,
जोग कहाँ राखें, यहाँ रोम रोम स्याम हैं।

कैसा अनन्य प्रेम है गोपियों का। गोपियाँ श्याम का स्मरण करते करते श्याम-मय हो गई। जो व्यक्ति सदा दाता का स्मरण करते है, जिनका प्रभुचरणों मे अनन्य प्रेम है वे धन्य हैं। उन्हें हम नमन करते हैं। हमीं क्या सभी नमन करते हैं।

गायन्ति रामनामानि सततं ये जना भुवि।
नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यः पुनः पुनः॥

मेरे दाता का नाम ही ऐसा है जिसके स्मरण मात्र से ही भव के कोटि कोटि पाप एक पल भर में नष्ट हो जाते हैं।

"नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े।"

अजामिल ने यमदूतों के भय से अन्तिम समय नारायण का नाम ले लिया। उसका वह नाम लेना अकारथ नहीं गया। तत्क्षण उसका उद्धार हो गया। सच्चे मन से लिया हुआ उसका नाम कभी व्यर्थ नहीं जाता। उसे कोई चाहे रीझ कर भजे चाहे खीझ कर, फल अवश्य मिलता है। तुलसीदास जी ने कहा है –

तुलसी अपने राम को रीझ भजो या खीज।
भूमि पड़े सो जमिहैं उलटो सीधो बीज॥

कोई कहता है कि वह व्यक्ति खाट पर बैठ कर माला फेर रहा है। अरे ! वह तुमसे तो अच्छा है जो कैसे भी हो माला तो फेर रहा है। हमने तो सुना है –

उलटा नाम जपत जग जाना। बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना ॥

अत उनके प्रति अनुराग तो पैदा करो। उससे सच्चा प्रेम करने पर वह दूर नहीं है। भगवान ने तो स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है –

नाहं वसामि वैकुण्ठे, योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

ऋषि-मुनियों ने, विद्वान पुरुषों ने एवं शास्त्रों ने भगवत् प्राप्ति के ज्ञान, योग, कर्म, भक्ति आदि साधन बताये हैं किन्तु इस कलिकाल में भक्ति ही सबसे सरल है। उससे प्रेम कर लो और उसे पा लो। न कुछ रगना और न कुछ समय। शास्त्रों में भक्ति नौ प्रकार की बताई गई है। यथा –

श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवनम् ।
अर्चन, वन्दन, दास्य सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

प्रत्येक एक से एक अधिक है। इसमें कीर्तन का दूसरा स्थान है। कीर्तन दाता चिन्तन का अभ्यास कराने वाला अमोघ साधन है। दाता के नाम का उच्च स्वर में सकीर्तन करने से समस्त भौतिक विकारो के बीज उसी प्रकार निस्सार हो जाते हैं जैसे भाड में पडा चना। सकीर्तन से तन की पवित्रता, मन की एकाग्रता, वाणी की शोभा आदि में वृद्धि होती है। अत. कीर्तन तो कीर्तन ही है। श्रीदाता ने इच्छा की और व्यवस्था न हो ऐसा कैसे हो सकता है ? श्रीदाता का कीर्तन में पधारना हुआ। साथ में भक्त लोग थे। बडा ही आनन्द रहा। सन्त लोग भी श्रीदाता के दर्शन कर बडे प्रभावित हुए। उनके महन्त जी को देखकर श्रीदाता गद्‌गद् हो गये। चूंकि उनका जयपुर में ५–७ दिन ठहरने का कार्यक्रम था अत श्रीदाता ने उन्हे दाता-निवास चौबीस घण्टे के लिए आने का निमत्रण दे दिया जिसे महन्त जी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। ५ सितम्बर इसके लिए निश्चित हुआ।

उन लोगों के लाने सम्बन्धी व्यवस्था जयपुर वाले भक्तों को सौंप श्रीदाता का पधारना दाता-निवास हो गया। श्रीदाता को सन्तों और प्रभुभक्तों का आतिथ्य करने में वड़ा ही आनन्द आता है। सन्तों और प्रभुप्रेमियों को दाता सद्गुरु का स्वरूप ही मानते हैं। उन्होंने सन्त मण्डली के ठहरने एवं उनके स्वागत की समुचित व्यवस्था की। वाहर चौक में एक वड़ा शामियाना लगा दिया गया और उसे समुचित ढंग से पुष्प-लताओं, केलों के पत्तों, कागज की फरियों और महापुरुषों के चित्रों से सजा दिया गया। स्वागतार्थ द्वार भी वनाये गये जिन पर 'स्वागतम्', 'दाता तूँ ही', 'ओम् तत् सत्' आदि शब्द लिख दिये गये। राजा-महाराजाओं के स्वागत की सी तैयारियाँ की गई।

इधर भक्त लोगों में से जिसने भी सुना वहाँ पहुँच गया। जिज्ञासु एवं सत्संगप्रेमी लोग भी आ पहुँचे। लोगों का एक मेला सा लग गया। मण्डली के आने का समय तीन वजे का था। मुख्य सड़क दाता-निवास से लगभग एक किलो मीटर दूर है। श्रीदाता भक्तों सहित "श्री कृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्दा, हरे दाता, हरे राम राधे गोविन्दा" कीर्तन करते हुए दाता-निवास से सड़क पर गये। सन्तों के पधारने में देर हो गई अतः सड़क पर ही कीर्तन चलता रहा।

जयपुर में श्रीदाता ने कुछ अन्य सन्तों को भी आमंत्रित किया था। तीन वजकर कुछ मिनिट ही निकले होंगे कि एक कार आकर रुकी। कार से राजगढ़ (अलवर) के महन्त जी श्री गंगाभारती जी उतरे। श्रीदाता ने आगे बढ़ कर उन्हें नमस्कार किया एवं उनका स्वागत किया। श्री गंगाभारती जी श्रीदाता का दर्शन कर भाव-विभोर हो गये। सभी ने मिल कर दाता की एवं भारती जी की जय-जयकार की। वात-चीत चल ही रही थी कि एक जीप आकर ठहरी। उसमें से श्री नारायण दास जी महाराज और कुछ सन्त उतरे। श्री नारायण दास जी जव जयपुर में पधारे तव इस समागम का पता चला तो वे सत्संग लाभ के लोभ का संवरण नहीं कर सके और हरिमोहन जी और कुछ सन्तों को लेकर दाता-निवास के लिए चल पड़े। सभी ने उनका स्वागत किया।

सडक के दोनो ओर लोग खडे थे व मधुर ध्वनि में कीर्तन चल रहा था। बडा ही मनोरम दृश्य था। ठीक पाँच बजे दो बसे आई। एक मे सन्त मण्डली और दूसरी मे जयपुर वाले भक्तजन। सन्त मण्डली कीर्तन कर रही थी –

'हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे', और इधर वाले 'श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्दा, हरे दाता हरे राम राधे गोविन्दा'। सन्त मण्डली के साथ 'भगवान मुरली मनोहर' का एक सुन्दर श्री विग्रह था जिसे एक सुन्दर विमान में स्थापित कर रखा था। विमान को बस से उतारा गया। विमान के पीछे सभी सन्त कीर्तन करते हुए बस से उतरे। भक्तजनों ने पुष्पहार अर्पित कर सभी का स्वागत किया। भगवान की जय-जयकार से आकाश गूंज उठा। लोग विमान के आगे नृत्य करने लगे। सन्तो का अभूतपूर्व स्वागत किया, जिसका वर्णन करना कठिन है। इसके बाद बीच में भगवान का विमान व सन्त मण्डली और आगे पीछे श्रीदाता के भक्तजन कीर्तन करते हुए दाता-निवास की ओर बढे। कीर्तन की ध्वनि ने चारो ओर के वातावरण को सुमधुर बना दिया। बडा ही आनन्ददायक दृश्य था।

दाता-निवास के बाहर चार स्तम्भो पर एक पत्थर की बडी शिला रखी हुई है, उसपर भगवान मुरली मनोहर का श्री विग्रह स्थापित कर पास ही तीनों महापुरुषो (सन्त मण्डली के प्रधान सन्त, श्री गगाभारती जी और श्री नारायणदास जी) को बिठा दिया गया। आरती का थाल लाया गया और आरती सजोई गई। आरती के बोल थे –

ओंकार धरत ध्यान प्रेम प्रीति जोई,
सर्वाधार निराधार पार न पावे कोई।
पार पाय फिर न आय जाय मिलत सोई। ओंकार
चारो वेद नेति कहत अक्षर नही कोई,
बावन अक्षर बीच देखो अमल अक्षर वोई। ओंकार
योगीजन धरत ध्यान जोवत नित सोई,
बावन अक्षर परे जो देख तेरा तू ही होई। ओंकार

गंगाभारती जी श्री दाता को प्रणाम करते हुए ।

दाता निवास में गगाभारती जी और श्री दाता एव मातेश्वरीजी

शब्द मात्र जानू नाहीं, ओम् रूप विभू कहाय,
सत्‌गुरु शरण माँही सहज सूरति पोई ॥ ओंकार...

लोग बड़ी मस्ती से आरती बोल रहे थे। अनेक लोग भावमग्न थे और उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा वह रही थी। बड़ा मनोरम एवं आनन्ददायक दृश्य था। आरती के पश्चात् बड़े कोमल एवं मधुर स्वर में श्रीदाता ने सभी का कुशल क्षेम पूछा। तीनों महापुरुषों ने गद्‌गद् होकर हाथ जोड़ दिये। उस समय आनन्दातिरेक से उनकी वाणी मूक हो गई। इसके पश्चात् सभी को उनकी सुविधानुसार ठहरा दिया गया।

सन्त मण्डली का कीर्तन अखण्ड था। एक कमरे में भगवान् का विमान स्थापित कर दिया गया और बाहर कीर्तन करने वाले बैठ गये। कीर्तन का आनन्द लेने वाले कीर्तन में सम्मिलित हो गये। साज-बाज के साथ किया जाने वाला कीर्तन बड़ा ही मधुर और कर्णप्रिय था। सुनने वाले भावविभोर हो रहे थे। लोक लाज छोड़ कई नृत्य कर रहे थे। प्रेम की गति बड़ी ही विचित्र है। कहा भी है —

प्रेम नदी जब उमड़े श्याम सिन्धु की ओर।
लोक-रीति-मर्यादा सब डारे पर्वत फोर॥

जो व्यक्ति एकमात्र भगवान का हो जाता है वह प्रेम रूप परमतत्व को प्राप्त कर लेता है। इसका अन्यतम साधन कीर्तन है। श्रीदाता की महती कृपा से कई लोगों को यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ। चारों ओर आनन्द की वृष्टि हो रही थी। बड़ा ही हृदयस्पर्शी दृश्य, रोम-रोम पुलकित, उल्लसित एवं तन्मय।

विश्राम और भोजन के पश्चात् सभी सन्त (कीर्तन करने वालों के अतिरिक्त) पाण्डाल में एकत्रित हो गये। अन्य भक्तजन भी आ बैठे। भगवत चर्चा चल पड़ी। उस समय श्रीदाता ने ज्ञान और भक्ति की बड़ी विशद चर्चा की। उन्होंने गोपियों का उदाहरण देकर भक्ति की विशेषताओं का प्रतिपादन बड़े मार्मिक शब्दों में किया। उन्होंने बताया, "ज्ञान और भक्ति एक ही स्थान पर पहुँचने के दो मार्ग हैं।। ज्ञान विशाल है और उसमें तर्क का स्थान

अधिक है। उसमें समय की कोई सीमा नही। जीवन बीत जाते है। भक्ति में समर्पण की वजह से सरलता है। समर्पण से मन में स्थिरता आती है जिससे उद्देश्य की पूर्ति सरल हो जाती है। भक्ति में प्रेम की प्रधानता है। प्रेम का अर्थ है परे म अर्थात् म से परे। अहम् की दाता के चरणो में भेंट। मै अर्थात् अहम् की समाप्ति, वाद तूं ही तूं रह जाता है। प्रेम जगत में सार और कुछ सार नही।"

श्रीदाता ने गोपियों का उदाहरण देकर उद्धव और गोपियो के सवाद के माध्यम से ज्ञान और भक्ति के बारे में बडो देर तक प्रवचन किया। श्रीदाता के मुखारविन्द से मधुर हरि चर्चा से सभी सन्त एव भक्तजन गद्गद् हो गये। वे दाता के शब्दो से बडे प्रभावित हुए। प्रवचन के समय कई लोगो की आंखो में आंसू थे। प्रवचन के पश्चात् पाण्डाल में भी कीर्तन चल पडा। धीरे धीरे कीर्तन की समा वॅध गई। लोग बडे प्रेम से नृत्य करने लगे। नृत्य करते-करते कुछ लोग सुबकियां ले ले कर रोने भी लगे। कुछ लोग खिलखिला कर हँस रहे थे। विचित्र दृश्य था। प्रेमावेश में कई लोगो को अपने शरीर की सुध-बुध भी नही थी। श्रीदाता भी प्रेमाधिक्य के कारण भावावेश में थे। बडा ही मनोहारि दृश्य उपस्थित था। सुना गया है कि मन बडा चचल होता है किन्तु ऐसा लग रहा था कि उस समय सभी का मन भगवान के चरणो में स्थित था। सभी भगवत् प्रेम में मस्त थे। जो व्यक्ति भगवान मे प्रेम करता है, उसे आनन्द की अनुभूति हुए विना नही रहती। गीता में श्री भगवान आदेश देते है –

> मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्त परस्परम्।
> कथयन्तश्च मा नित्य तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥
> तेषा सततयुक्ताना भजता प्रीतिपूर्वकम्।
> ददामि बुद्धियोग त येन मामुपयान्ति ते ॥

अर्थ– जिनका चित्त मुझ में लगा है, जिनके प्राण मुझ मे फँसे हैं, जो नित्य आपस में मेरी महत्ता को समझते-समझाते हैं, मुझ से प्रेम करते हैं, जो मेरी बात कहते है, मुझ में सन्तुष्ट हैं, निरन्तर मुझ में ही रमण करते है, उन निरन्तर मुझ में लगे हुए, प्रेमपूर्वक मेरा भजन

करने वालों को मैं अपना वह बुद्धियोग देता हूँ, जिससे वे मुझे ही प्राप्त होते है।

श्रीदाता की महती कृपा से उस समय सभी को परमानन्द की अवश्य प्राप्ति हुई होगी। मै प्रेम के सागर श्रीदाता के चरणों में वार वार नमन करता हूँ। श्रीमद्भागवत में कहा गया है–

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥

सभी को आनन्द के रस का पान करा श्रीदाता मकान में पधार गये। अन्दर जाकर उन्होंने श्री नारायणदास जी और श्री गंगाभारती जी को बुलवाया। उन्होंने भोजन नहीं किया था। एक ओर मातेश्वरी जी विराज रहे थे। पास ही श्रीदाता विराजे थे। दोनों संन्त श्रीदाता के सामने विराज रहे थे। कुछ लोग भी वहाँ आ बैठे। मातेश्वरी जी ने दोनों सन्तों को दूध लाकर पिलाया। श्रीदाता ने फरमाया, "दाता के इस कूकर पर आपने बड़ी कृपा की। आप महान् हैं। आपके पधारने से यह कुटिया पवित्र हो गई।" श्री नारायणदास जी ने कहा, "महान् तो आप है। आपने दर्शन देकर इन जीवों को कृतार्थ किया। हम तो भवसिन्धु में भटक रहे हैं। आपने आधार तो दिया है। आप तो दाता हैं, और हम भिखारी हैं।"

श्रीदाता, "मारो राम तो आपकी जूती के वरावर भी नहीं है। म्हांको राम तो दाता के नाम को भिखारी है। नाम रूपी दानों की आस रखता है।"

श्री गंगाभारती जी – "आपकी यही तो विशेषता है। देने वाला कभी नहीं कहता की मैं देता हूँ किन्तु वह निरन्तर देता ही रहता है। आप तो दाता ही दाता है। हमारी झोली आपके सामने है।"

श्रीदाता – "मेरे राम के पास तो झोली ही नहीं है। यह खालड़ा (शरीर) है जो आपका है सो समर्पित है।"

प्रत्येक सन्त अपने आप को छोटा व अन्य को महान् वता रहा था। सुनने वालों को उनकी वातों में रस भी आ रहा था व हँसी भी। हँसी इसलिए कि उनमें दैन्यता की सीमा ही नहीं।

तीनो सर्व शक्तिमान और महान् किन्तु अपने आप को छोटे से छोटा बताने की चेष्टा कर रहे थे। उनकी बातो के रहस्य को, गूढता को समझ पाना श्रोताओ के लिए सम्भव नही था फिर भी वे लोग उनकी बातो में रस ले रहे थे। बडी देर तक बातचीत चलती रही। बाद में वे अपने विश्रामस्थल पर पधार गये।

सन्ध्या समय पश्चात् सन्तो के सम्मान में आतिशबाजी का आयोजन किया गया। आतिशबाजी के नये नये नमूने थे जो वहा के जन साधारण के लिए दुर्लभ थे। आतिशबाजी मे सभी का मनोरजन हुआ, विशेष कर वहाँ के ग्रामीण वासियो का। भिन्न-भिन्न रगो के अगारो को प्रस्तुत करने वाली इस प्रकार की आतिशबाजी को देखने का उनका प्रथम ही अवसर था।

रात्रिभर कीर्तन होता रहा। प्रात काल स्नानादि नित्य-क्रियाओ से और दूध, चाय और नाश्ते से निवृत्त होने के बाद सब लोग (कीर्तन करने वालो को छोड) पाण्डाल में आ बैठे। सन्त मण्डली ने कृष्ण-लीलाओ की झाँकियाँ प्रस्तुत की। लीला-प्रदर्शन के अन्तर्गत भावभीने भजन भी गाये गये। बडा सरस वातावरण रहा। दो बजे तक लीला-प्रसग चलते रहे। बाहर पण्डाल में रास-लीला प्रसग चल रहे थे, उधर श्रीदाता ने तीनो महान् सन्तो को अन्दर बुलवा लिया। तीनो के मध्य सत्सग वार्ता चल पडी। सन्तो के पास तो सत्संग और हरिचर्चा ही मुख्य है। दुनिया की बातो से उन्हे क्या मतलब? उस समय जीव-ब्रह्म आदि विषयो पर गम्भीर चर्चा हुई। भक्तो की महिमाओ के भी प्रसग चले। श्रीदाता ने अन्त में मन की अवस्था का वर्णन करते हुए उस पर किस प्रकार सरलता से विजय प्राप्त की जा सकती है, अनेक उदाहरण द्वारा बताया। साथ ही भोग के बाद त्याग की महत्ता पर प्रकाश डाला। इस प्रकार वहाँ योग, प्रेम, ज्ञान आदि की चर्चाएँ चलती रही।

बाद में श्रीदाता ने तीनो ही सन्तो को वस्त्र, फल-फूल और मुद्राएँ भेंट स्वरुप अर्पित की। उन्होंने भी श्रीदाता को प्रणाम करते हुए रुपये भेंट किये। श्रीदाता ने उन्हे सिर चढा वापिस कर दिये और बोले कि हमें तो गृहस्थ धर्म का पालन करने दे। गृहस्थियो के

लिये आप वन्ध्य हैं। जव इस तरह की वात हो रही थी, तव वहाँ एक विचित्र दृश्य उपस्थित हुआ। दाता-निवास में एक तोता था जिसका पींजरा श्रीदाता के पास ही रखा था। सन्त मण्डली के पास भी तोता था जिसको कुछ खिलाने-पिलाने के लिये अन्दर लाया गया। दोनों पींजरे पास-पास थे। सन्तों के तोते ने आते ही 'जय श्री कृष्ण' का उच्चारण किया जिसे सुनकर दाता-निवास का तोता वोला, 'जय दाता की'। सभी लोग उनकी ओर देखने लगे और उनके मिलन का आनन्द लेने लगे। दोनों तोते आपस में चोंचें मिला कर प्रेम प्रदर्शित कर रहे थे। उनके मिलन को देख कर उपस्थित लोग हँस पड़े। श्रीदाता ने विहार वाले महन्त जी से कहा, "आप वड़े हैं। हमारे जैसे साधारण व्यक्ति आपका क्या आतिथ्य कर सकते हैं। हमारे तो सुदामा के चावल हैं। जानते भी कुछ नहीं। इनको आपने स्वीकार कर लिया यह आपकी उदारता है। आप तो साक्षात् भगवान हैं। आपने चोवीस घण्टों का समय दिया। मेरे दाता की भी आपके लिये यहाँ पाँच वजे तक की ही आज्ञा है। दो वजने वाले है। आप हरे हर (भोजन) कर जयपुर पधार जावें। जयपुर वाले लोग आपके साथ चलेंगे। हमारे से गलतियाँ तो वहुत हुई हैं। आप वड़े हैं। क्षमा करें।"

यह सुन कर वे महापुरुष पानी पानी हो गये। नेत्रों में पानी आ गया। वाणी ने उत्तर दे दिया। वे वोल नही सके। केवल मात्र नमस्कार कर उठ खड़े हुए और अपने विश्रामस्थल पर पधार गये। अन्य दोनों महापुरुष भी अपने विश्रामस्थल पर पधार गये।

सन्तों के सम्मान में एक वृहत् भोज का आयोजन किया गया जिसमें अनेक प्रकार के व्यञ्जन थे। वड़े प्रेम से सभी ने प्रभु प्रसाद का भोग लगाया। सौभाग्यशालियों को ही ऐसा प्रभु प्रसाद मिलता है। हँसी मजाक के वातावरण में भोजन चलता रहा। स्वयं श्रीदाता प्रत्येक सन्त के पास पहुँचे और सभी को रूच-रूच कर भोजन कराया। सभी ने उस दिन रुचि से अधिक ही भोजन पाया। सभी वड़े प्रसन्नचित्त और मस्त थे।

कुछ देर विश्राम करने के पश्चात् श्री नारायणदास जी, एव श्री गगाभारती जी ने जाने की आज्ञा माँगी। विदाई का दृश्य बड़ा अनोखा था। जब भारती जी विदा हो रहे थे तब मातेश्वरी जी ने उन्हे प्रणाम किया। तब उन्होने नेत्रो में आँसू ला करुणार्द्र शब्दो में कहा, "माँ! मै तो तेरा अबोध बच्चा हूँ। छोटा सा बच्चा हूँ। मुझे तो तुम आशीर्वाद दो। गद्गद् और अश्रुमिश्रित वाणी में कहे गये इन शब्दो को सुन कर सभी गद्गद् हो गये। स्वय श्री हनुमान शर्मा आई जी पुलिस जो भारती जी के शिष्य है, इस दृश्य को देख कर गद्गद् हो गये और उनके नेत्रो से भी अश्रुबिन्दु टपक पडे। श्री नारायणदास जी की भी यही गति थी। उन्होने तो श्रीदाता एव मातेश्वरी जी को दण्डवत प्रणाम किया। वाणी उनकी मूक थी व नेत्रो से अविरल जलधारा वह रही थी। श्री नारायणदास जी तो दैन्य की मूर्ति ही है। दोनो ही सन्त भारत के माने हुए सन्त है। ऐसे महान् सन्तो को विदा करते हुए सभी को कष्ट हो रहा था किन्तु किया क्या जा सकता था। रमता जोगी और वहता पानी सदा पवित्र एव स्वच्छ होता है।

विहार के महन्त जी ने भी अपनी मण्डली को विदा होने के लिए कहा किन्तु उनके अनुयायियो की इच्छा न होने से उन्हे चुप रह जाना पडा। वे सभी भोजनोपरान्त पाण्डाल में आ बैठे। वहाँ के सुखद वातावरण ने उनके मानस को बदल दिया था। वे भूल गये कि वे केवल एक दिन के लिए ही आये है और उन्हें भी पाँच बजे तक यहाँ से जयपुर के लिए प्रस्थान करना है। वे दो-तीन दिन वही ठहरने की इच्छा कर बैठे। उन्होने रास-लीला प्रारभ कर दी। चार बजे के लगभग श्रीदाता बाहर पधारे और उन्हे रासलीला करते देख बोले, "उन्हे कह दो कि इनके जाने का समय हो गया है, अपनी तैयारी करे। पाँच बजे के बाद इनके यहाँ ठहरने का दाता का हुक्म नही है।" हम लोगो ने उन्हें यह बात बताई किन्तु वे तो रास-लीला में लगे हुए थे अत उन्होने कोई ध्यान नही दिया। इस पर श्रीदाता ने सजावट, द्वार, शामियाना आदि हटा लेने के लिए कह दिया। श्रीदाता के आदेशानुसार पहले सजावट का सामान

हटाया फिर वने हुए द्वार को हटाये। सजावट व द्वार हटाने में कुछ समय लगा ही और हमने सोचा कि हमारे ऐसा करने से सन्त लोग रास-लीला को वन्द कर शामियाने के नीचे से हट जावेंगे किन्तु हमारा सोचना व्यर्थ ही रहा। रास-लीला चलती ही रही। हमें भी शामियाने को उतारने में संकोच हुआ, कारण रास-लीला का चलना और पाण्डाल मनुष्यों से खचाखच भरा रहना। साथ ही सन्तों ने भी शामियाना खोलने को मना कर दिया। हमारी विषम स्थिति हो गई। साँप-छछूंदर की सी स्थिति हो गई। नहीं खोलते है तो श्रीदाता के आदेश की अवज्ञा होती है और खोलते हैं तो सन्तों का अपमान होता है। किंकर्त्तव्य विमूढ़ से खड़े रह गये। समय की घड़ी अपनी गति से चल रही थी। खड़े-खड़े आठ वज गये। श्रीदाता आठ वजे वाहर पधारे। आते ही अनमने पन से वोले, "तुम लोगों ने अभी शामियाना नहीं हटाया। शीघ्र हटाओ।" हमने निवेदन किया, "भगवन! सन्त लोग आज जाने के मूड में नहीं हैं। रास-लीला चल रही है और वे शामियाने को हटाने से मना कर रहे है। ऐसी अवस्था में हम क्या करें?"

श्रीदाता, "इन्हें सीख दी जा चुकी है फिर भी ये लोग नहीं जाना चाहते हैं तो इनकी ये जानें।" यह कह विना कुछ आदेश दिये अन्दर पधार गये। श्रीदाता उदास थे। हम लोगों की स्थिति भी नाजुक थी, हम लोग धर्म-संकट में पड़ गये और साथ ही श्रीदाता के इस प्रकार के व्यवहार पर आश्चर्य भी हुआ, कारण अतिथियों के प्रति ऐसा व्यवहार क्यों? किन्तु इस व्यवहार का रहस्य क्या था, इस वात को तो दाता ही जानें! हम लोगों ने साहस कर शामियाने का एक डण्डा हटाया। दूसरा डण्डा हटाने जा ही रहे थे कि हमारे सामने अचानक एक विचित्र दृश्य उपस्थित हो गया। स्वच्छ आकाश में एकाएक वादल छा गये। वड़ी तेज हवा चल पड़ी और तेज वर्षा प्रारंभ हो गई। यह सव इतना आकस्मिक हुआ कि सव लोग आश्चर्यचकित होकर देखते रह गये और किसी को सम्भलने का मौका ही नहीं मिला। अन्त में लोग भागने लगे। लोगों को भागते देख कर संयोजक सन्त ने कहा, "आप लोग भागें

नही, बैठे रहे। वर्षा नही होगी हम कह रहे है वर्षा नही होगी।" किन्तु उनकी कौन सुनता। हवा इतनी तेज थी कि बहुत लोगो के होते हुए भी हम शामियाने को गिरने से न बचा सके। बहुत से लोग शामियाने के नीचे दब गये जिन्हे बडी कठिनाई से निकाला गया। श्रीकृष्ण और श्रीराधा का अभिनय करने वाले किशोरो के वस्त्र भी पानी से लबालब भीज गये। वे भी शामियाने के नीचे रह गये। उन्हे भी निकाला गया। जरीदार बहुमूल्य वस्त्रो की हालत बिगड गई। नीचे बिछी हुई दरियाँ कीचड-पानी से लथपथ हो गई और सभी के वस्त्र पानी से तर हो गये। तेज हवा के कारण वातावरण एकदम ठण्डा हो गया और सभी लोगो के दाँत ठण्ड मे किटकिटाने लगे। सभी की बडी दयनीय स्थिति हो गई। कुछ समय तक तो हवा और पानी का प्रकोप जारी रहा, फिर धीरे-धीरे शान्त हो गया। आकाश फिर से स्वच्छ हो गया व तारे छिटक आये।

वर्षा बन्द होने पर श्रीदाता बाहर पधारे। बाहर सब लोगो की हालत देख उनका करुणामय हृदय करुणा से प्लावित हो गया। उन्होंने सभी को धैर्य एव ढाढस बधाया। सन्तो ने अपनी भूल स्वीकार की और जयपुर जाने को उद्यत हुए। वे लोग गीले कपडो सहित बस में जा बैठे। अन्दर से भगवान का विमान लाया गया और उसे ससम्मान बस पर रखा गया। जयपुर वाले भी अपनी बस में जा बैठे। श्रीदाता और भक्तजनो ने महन्त जी एव सभी सन्तो को नमस्कार किया। उस समय मौसम ठीक हो गया था व वातावरण में कुछ गर्मी आ गई थी जिससे सभी वापिस सामान्य स्थिति में आ गये थे। सभी को बडी भावभीनी विदाई दी गई। दोनो बसे जयपुर के लिए रवाना हुई। सद्गुरु के आदेश के न मानने पर सकट का आना स्वाभाविक ही है। यदि ऐसा वातावरण नही बनता तो सन्त लोग वहाँ से जाने को तैयार नही होते और यदि वे वहाँ ठहरते तो क्या अनहोनी घटना घटती, इसके बारे में कौन कुछ जान सकता है?

भगवान का कीर्तन और नामस्मरण अमोघ है। कैसे भी उसके नाम का जप हो व्यर्थ नही जाता। इसमें किसी प्रकार की शका

नहीं होनी चाहिये। नाम संकीर्तन से सभी प्रकार की भौतिक इच्छाओं की पूर्ति होती है किन्तु दाता के प्रेमी को तो सभी सांसारिक इच्छाओं से परे होना चाहिए। दाता-प्रेमी के लिए आवश्यक है कि उसका चित्त शान्त और विचार शुद्ध हो। अपने इष्टदेव का ध्यान करते हुए उसके स्वरूप को सन्मुख रख शुद्ध भाव से ही कीर्तन करना चाहिये। संकीर्तन में पहले कीर्तन करने वाला और वह जिसका कीर्तन किया जाता है, दो ही होते हैं किन्तु धीरे-धीरे कीर्तन करने वाला समाप्त होकर जिसका कीर्तन हो रहा है वही वह रह जाता है। सच्चे भगवत् प्रेम से ही ऐसा संभव है और ऐसा कीर्तन ही सार्थक है। वासनाओं के वशीभूत होकर मन इधर उधर विचलित होकर विचरण करता रहे और मुँह कीर्तन बोलता रहे, ऐसा कीर्तन केवल मात्र मनोरंजन की संज्ञा में आता है। दाता तो अन्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और दयालु हैं। वे भक्तों की पुकार पर तुरंत प्रकट होते हैं, परन्तु दीन भाव से शरणागत होकर पुकारने की आवश्यकता है। उसे प्रसन्न करने के लिए किसी वाह्य उपकरण अथवा सामग्री की आवश्यकता नहीं है। वह तो विशुद्ध प्रेम और भाव पर प्रसन्न होता है। पापात्मा व्यक्ति भी मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीर को अपने इष्टदेव के प्रति समर्पण करके पवित्र-हृदय से उसके नाम का जप-संकीर्तन करता है तो वह शीघ्र ही पवित्र होकर चिन्ता, भय, हर्ष, शोक, राग-द्वेष आदि विकारों से मुक्त हो जाता है तथा परमानन्द को प्राप्त होता है। कीर्तन तो अमोघ शक्ति है फिर विचार उठता है कि विहार वाली मण्डली का प्रत्येक सदस्य भगवत् प्रेम में लीन था। उनका संकीर्तन उन्हें ही नही अपितु अनेकों को मस्त करने वाला था। उनके कीर्तन की चारों ओर धूम थी फिर उनपर यह विपत्ति क्यों आयी? प्रश्न जटिल अवश्य है किन्तु विचार करने पर हल मिलता ही है। दाता मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, वे अपने भक्तों के अहंकार को, उनकी मनमानी को सहन नहीं कर सकते। उनके मन में आये हुए विकार या प्रमाद को तत्काल दूर करते हैं। महन्त जी ने अपने अनुयायियों को फौरन तैयार होने के लिए कहा। उन्होंने उनके आदेश का पालन न कर एक प्रकार से उनका अपराध कर बैठे। अपने भक्त का अपमान कैसे

महन करता प्रभु । इस माध्यम से उसने उनकी भूल तत्काल बता दी । कैसा नीतिज्ञ है वह । कितना महान् है वह । धन्य है वह लीलाधारी और उसकी लीला ।

सब सन्त लोग अपने अपने स्थानो पर चले गये । छोड गये अपनी याद । ऐसा अवसर प्रभु कृपा से ही मिल पाता है । वे दो दिन बडे आनन्द के वातावरण में व्यतीत हुए । अपने जनो को आनन्द की अनुभूति कराने और उन्हे बोध हेतु ही श्रीदाता अवसर देते हैं । वे सत्सग देने हेतु सन्तो के दर्शन भी कराते हैं और साथ ही साथ यह भी बता देते हैं कि कौन कितने गहरे पानी में है । इस सन्त सम्मेलन का अपूर्व आनन्द वास्तव में गूगे का गुड है जिसका गूंगा स्वाद तो लेता है किन्तु कितना मधुर है यह नही बता पाता ।

ООО

श्री नारायणदास जी के आश्रम पर

एक समय श्रीदाता दाता-निवास के बाहर बने ओटे (चबूतरा) पर विराज रहे थे तथा महापुरुषों की चर्चा हो रही थी। भगवान बता रहे थे कि भारत बड़ा पुण्यशाली देश है। यहाँ अनेक महापुरुष हुए हैं व हैं जो अपनी अमृत वाणी से लोक में आनन्द की वर्षा करते रहे हैं व कर रहे हैं। उनकी वाणी कल्याणदायिनी होती है तथा दर्शन पाप नाशक होता है। महापुरुष में और भगवान में कोई अन्तर नहीं है। महापुरुष अर्थात् सन्त की प्राप्ति भगवत प्राप्ति सदृश ही होती है –

निगमागम पुराण मत एहा। कहहि सिद्ध मुनि नहि संदेहा ॥
संत विसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही ॥

'मो ते अधिक संत करि लेखा।'

'जानेसि संत अनंत समाना, राम ते अधिक राम कर दासा'। सन्त सदैव अपने मन को दाता के चरणों में ही लगाये रखतें हैं। सोते-जागते, खाते-पीते, चलते-फिरते, हर दम उनके लिये तो दाता ही दाता है। दाता ही उनके लिए पिता, दाता ही माता, दाता ही बन्धु, दाता ही भगिनी, दाता ही अनुचर, दाता ही धन, दाता ही उनके लिए सब कुछ होता है। उनका हृदय नवनीत के समान है। जिस प्राणी को ऐसे सन्तों के दर्शन हो जावें समझना चाहिए कि उसपर दाता की अनन्त कृपा है कारण –

सतसंगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकउ बारा ॥

इस प्रकार की बात चल रही थीं कि डाकिया ने कुछ पत्र लाकर दिये। दाता ने उन पत्रों को लेकर एक ओर रख दिया। उन पत्रों में एक निमंत्रण पत्र था। श्रीदाता ने उसे उठा लिया व खोल कर पढ़ने लगे। पढ़ने के बाद फरमाया कि संत श्री नारायणदास जी के यहाँ का निमंत्रण है। नवरात्रि में १०८ कुण्डी का 'रामयज्ञ' कर रहे हैं। बड़े आग्रह से उन्होंने बुलाया है, किन्तु जाना कैसे

सभव हो सकता है। उस समय कु बीरेन्द्र सिंह जी बीमार थे और उन्हे इस अवस्था में छोड जाना सभव नही था। अत बात आयी-गयी हो गयी।

दो चार दिन निकले होगे कि श्री नारायणदास जी ने श्री चाँदमल जी जोशी को दाता के पास इस निवेदन के साथ भिजवाया कि आपको मय भाभा के पधारना है। आप दोनो के आये बिना यह यज्ञ सफल नही होगा। अधूरा ही रहेगा। अत. अवश्य पधारना है। उनकी इस प्रेम मिश्रित विनय पर श्रीदाता को अपना इरादा बदलना ही पडा। वे मातेश्वरी जी को साथ लेकर यज्ञ के लिए चल पडे।

श्री नारायणदास जी का एक परिचय

जयपुर, अलवर एव सीकर क्षेत्र की सीमापार त्रिवेणी नाम का एक सुन्दर स्थल है जो अजीतगढ और शाहपुरा के मध्य स्थित है। इस स्थान के एक ओर ऊँची पहाडी के मध्य भगवान जगदीश का एक प्राचीन मन्दिर है तो दूसरी ओर की पहाडी पर देवी का मन्दिर है। अजीतगढ के पास की पहाडियो मे एक, एक जगदीश की पहाडी से व एक पूर्व की ओर की पहाडियो मे जलधारा ने आकर एक बडी जलधारा के रूप में वन नदी का रूप ग्रहण कर लिया जिस पर श्री गगादास जी ने एक आश्रम की स्थापना की। इस आश्रम का विकास धीरे धीरे वर्तमान में एक बडे आश्रम के रूप में हो गया है, जहाँ अनेक मन्दिर व धर्मशालाएँ निर्मित हो चुकी है।

श्री गगादास जी के शिष्य श्री भगवानदास जी हुए, जो एक सिद्ध सन्त थे। श्री भगवानदास जी और श्रीदाता का मिलन उनके शिष्य श्री हरिमोहन जी के घर जयपुर में हुआ। दोनो का मिलन अपूर्व था। उस समय उनके पट्टशिष्य श्री नारायणदास जी साथ थे। श्री भगवानदास जी, श्रीदाता से बहुत प्रभावित हुए और उन्ही के आग्रह पर श्रीदाता का पधारना प्रथम बार त्रिवेणी हुआ। यह घटना १९५३ की है।

श्री भगवानदास जी की महासमाधि के वाद श्री नारायणदास जी आश्रम के अधिकारी हुए। श्री नारायणदास जी सरलचित, विनयी, परिश्रमी, सन्तोषी, परोपकारी, त्यागी और पवित्र हृदय वाले सन्त हैं। भक्त शिरोमणि तुलसीदास जी की तरह वे भी दैन्य की मूर्ति, राम के परम भक्त और सेवक हैं। उन्होंने गुरु कृपा से त्याग, तपस्या और साधना के वल पर अपार शक्ति का संचय कर लिया। आसपास के ही नहीं, दूर दूर के लोग उन्हें वड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते है। उस क्षेत्र में उनका इतना मान है कि वे जो भी कह देते हैं, उसे लोग अन्धे होकर मान लेते हैं। उन्हें लोग साक्षात् भगवान का स्वरूप ही मानते हैं। छोटे-वड़े, गरीव-अमीर, मूर्ख-विद्वान और अच्छे-वुरे सभी प्रकार के लोग वहाँ आते हैं और आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। आश्रम में आये सभी लोगों की समभाव से सेवा करते हैं। गुरु-कृपा से अनेक वार इन्हें दिव्य दर्शनों की अनुभूति हुई है। जगदीश के मन्दिर से प्रतिवर्ष भगवान् जगदीश विमान से पुरी पधारते हैं। पुरी पधारते और लौटते वक्त इन्हें ऐसे दर्शन होते हैं, ऐसा स्वयं ने एक वार प्रत्यक्ष में फरमाया है। इन्हीं के प्रयास से यहाँ एक महाविद्यालय का निर्माण हुआ है जो अपने आप में अनोखा है।

राम-यज्ञ

श्री नारायणदास जी भगवान राम के अनन्य भक्त हैं। नवरात्रि सन् १९७३ में इनकी इच्छा राम महायज्ञ करने की हुई। इच्छा मात्र के होते ही इनके अनुयायी भक्तजन तत्काल तैयार हो गये। वात की वात मे लाखों रुपये, अन्न, वस्त्र, घृत आदि एकत्रित हो गया। १०८ कुण्डी यज्ञ की व्यवस्था की गई। नदी के विस्तृत आँगन में एक विशाल यज्ञ मण्डप का निर्माण किया। लकड़ी और फूस के वने मण्डप को पूरा करने में लगभग एक माह का समय लगा। वड़ा सुन्दर वर्णनातीत मण्डप निर्मित हुआ। मण्डप के अतिरिक्त प्रवचन, कथा, सत्संग आदि के लिए अलग-अलग पाण्डालों की व्यवस्था की गई। आने वाले साधुओं, महापुरुषों, विद्वानों और अतिथियों के लिए अनेक टेण्ट, छोलदारियाँ, फूस की कुटियाँ आदि

की व्यवस्था की गई। यज्ञ का निमन्त्रण भारत भर के सन्तो, मठाधीशो, महापुरुषो और विद्वानो को दिया गया। अनेक सन्त; मठाधीश, महापुरुष और विद्वान इस यज्ञ में उपस्थित हुए। आसपास की जनता का तो कहना ही क्या? लाखो की भीड थी किन्तु व्यवस्था अतीव सुन्दर थी। हर समय लड्डू-पुडी का भोजन तैयार रहता था। प्रभु कृपा से नदी की जलधारा में जल की वृद्धि हो गई और पानी की समस्या भी हल हो गई। नवरात्रि के प्रारंभिक दिन प्रात ८ वजे महान और विज्ञ पण्डितो द्वारा यज्ञ प्रारभ हुआ।

यज्ञ में

यज्ञ में श्रीदाता का पधारना दिनाक ७-४-७३ को लगभग एक वजे हुआ। जयपुर से श्री समुद्र सिंह जी, डाक्टर वी के शर्मा, प्रभुनारायण जी, वैद्य श्री दुर्गाप्रसाद जी, कुजविहारी जी आदि अनेक भक्तजन श्रीदाता के साथ हो गये। वडी भीड थी। बडी कठिनाई से भीड में होते हुए वे मण्डप की ओर वढे। उस समय उस दिन का यज्ञ समाप्त हुआ ही था। पण्डित लोग और यजमान लोग अपनी अपनी यज्ञ-कुण्डो मे उठ कर यज्ञ स्थल मे वाहर आने की तैयारी में थे। श्री नारायणदास जी यज्ञ मण्डप में ही थे। उन्होने दूर से श्रीदाता को पधारते देख लिया। वे दौड पडे। उन्होंने आगे वढ श्रीदाता व मातेश्वरी जी को प्रणाम किया। पण्डित जन व अन्य लोगो ने भी उन्हें प्रणाम किया। श्री नारायणदास जी के नेत्रो में अश्रुविन्दु झलक आये और वाणी उनकी गद्‌गद् हो गई। श्रीदाता एव मातेश्वरी जी ने व अन्य लोगो ने भी श्री नारायणदास जी को प्रणाम किया। श्री नारायणदास जी स्थिर होकर हाथ जोड सामने हो गये। मानो विभीषण के सदृश भगवान से विनय कर रहे हो—

सुनत विभीषण प्रभु कै वानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी॥
पदअवुज गहि वारहिं वारा। हृदय समात् न प्रेमु अपारा॥
सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अन्तरयामी॥
उर कछु प्रथम वासना रही। प्रभुपद प्रीति सरित सो वही॥
अव कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मनभावनी॥

श्रीदाता भी संकोचवश हाथ जोड़ सामने खड़े हो गये मानो श्रीराम जिस प्रकार विभीषण को पुरस्कृत कर रहे हैं वैसे ही वे भी श्री नारायणदास जी को स्नेह विमल भक्ति अर्पित कर रहे हों —

जो संपति सिव रावनहिं दीन्हि दिये दस माथ।
सोइ संपदा विभीषणहिं सकुचि दीन्हि रघुनाथ ।।

बड़ा अद्भुत मिलन दृश्य था। सब के सब इस मिलन दृश्य को आश्चर्यचकित नेत्रों से देख रहे थे। यह सेवक भी उस समय वहीं विद्यमान था। उस समय रामायण में वर्णित वह दृश्य सामने आ गया जब भारद्वाज ऋषि के आश्रम में श्रीराम का सीता सहित वनगमन के समय पधारना हुआ। ऋषि भगवान राम का स्वागत करने आगे बढ़े, उस समय वे इतने भाव विभोर थे कि उन्हें उनके शरीर की सुध-बुध भी नहीं रही। यही दशा श्री नारायण दास जी की उस समय थी। उन्हें रोमांच हो आया, नेत्रों से अश्रुबिन्दु झलक आये और शरीर की सुध-बुध भी जाती रही। श्री हरिमोहन जी ने उन्हें सँभाला और आगे पधारने को कहा तब वे प्रकृतिस्थ हुए। श्रीदाता ने सभी को हाथ जोड़ अभिवादन किया और मुस्कुराते हुए श्री नारायणदास जी से बात करने लगे। भीड़ उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी अतः श्री नारायण दास जी श्रीदाता को लेकर वहाँ पधारे, जहाँ उनके ठहरने की व्यवस्था थी। श्रीदाता के ठहरने की व्यवस्था मुख्य मण्डप से कुछ दूर एक खेत में तम्बू लगा कर की गई थी जो एकान्त में था।

यद्यपि श्रीदाता के ठहरने की व्यवस्था भीड़भाड़ से दूर एकान्त स्थल में की गई थी किन्तु श्रीदाता के आगमन की सूचना छिपाये छिप सकती है? बात की बात में यह सूचना फैल गई और दर्शनार्थी, भक्त और जिज्ञासु आने लगे। कई लोग श्रीदाता के सम्मुख आ बैठे। उन्हें कुछ विश्राम तक नहीं करने दिया गया। कुछ पुकार लेकर भी आये। कोई अस्वस्थ, कोई आँख की रोशनी विहीन तो कोई रोजी-रोटी का इच्छुक। श्रीदाता ने उनकी भी सुनी और फरमाया, "जिसने हमें पैदा किया है उसको हमारे पालन

पोषण की चिन्ता है। जिसने हमें बनाया है वही रोटी भी देगा, कपडा भी देगा व मकान भी। अरे! जिसने हमें पैदा करने के पूर्व ही माँ के स्तनो में दूध दे दिया क्या वह अब हमें खाने को नहीं देगा। ये पशु-पक्षी जो नौकरी नही करते, वे तो भूखे ही मरते होगे? मलूकदास जी ने तो साफ फरमाया है –

अजगर करे न चाकरी, पछी करे न काम।
दास मलूका कह गये, सब के दाता राम॥

सभी को देने वाला तो वही राम है। वे फिर कहते है –

हरि समान दाता कोउ नाही। सदा विराजै सतन माही॥
नाम विसंभर विश्व जियावै। साँज विहान रिजिक पहुँचावै॥

ऐसे उस पालनहारे का आधार छोड कर दर-दर भटकना हमारा पागलपन ही है। हम लोग अपने शरीर की चिन्ता करते है, इसको सजोते है-सँवारते है किन्तु इसके भीतर बैठने वाले की परवाह नहीं करते है। यही हमारी भूल है –

इस जीने का गर्व क्या, कहाँ देह की प्रीत।
बात कहत ढह जात है, बारू की सी भीत॥
देही होय न आपनी, समझु परी है मोहि।
अबही ते तजि राख तू, आखिर तजिहैं तोहि॥
सुन्दर देही पाइ के, मत कोई करै गुमान।
काल दरेरा खायगा, क्या बूढा क्या ज्वान॥

अत हमें शरीर से ऊपर उठ कर सोचना चाहिये। हमारा न कोई आदर है न सत्कार, न मान है न प्रतिष्ठा। व्यर्थ ही अहकार के वशीभूत होकर मरे जा रहे है। हमारी इच्छाओ और वासनाओ का तो कोई अन्त ही नही है। प्रभुता के लिए मरे जा रहे है। कितने भोले है हम। जिसके लिए हमें मरना चाहिये उसे तो बिलकुल ही भूले बैठे है –

प्रभुता ही को सब मरै, प्रभु को मरै न कोय।
जो कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होय॥

मेरे दाता तो विश्वपति हैं। उनका भण्डार अनन्त है। सभी वस्तुएँ भरी पड़ी हैं। वहाँ कमी किसी वात की नहीं। कमी है तो हमारी ही है। हम उसे तो भूले वैठे हैं और भण्डार की साधारण वस्तुओं में ही फँसे वैठे हैं अतः यदि हमें मरना है तो उसी के लिए क्यों न मरें जिससे वह ही हमारा हो जाय। हमें तुच्छ वासनाओं से वचना चाहिये।

दाता सर्वशक्तिमान है। सभी शक्तियाँ उसमें निहित हैं। वह सर्वव्यापी भी है। आप में, हम में और सभी में वह व्याप्त है। जव आप में वह है तो आप भी कम शक्तिवान नहीं है किन्तु आपको यह अनुभव नहीं, भान नहीं, इसीलिए अपने आपको असहाय, अशक्त महसूस कर दर दर भटक रहे हो। सर्व शक्तिमान होकर शक्ति हीन हो रहे हो। आपके शत्रु आप पर आक्रमण कर रहे हैं और आप असहाय से होकर उनसे पराजित हो रहे हो। कैसी दयनीय स्थिति है।" एक व्यक्ति ने कहा, "हमारे कौन से शत्रु। हमारे तो कोई शत्रु नहीं हैं।" श्रीदाता ने फरमाया, "आपके कोई शत्रु नहीं हैं तो अच्छी वात है। यह शरीर विकारों का घर है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, असंतोष, निर्दयता, असूया, अभिमान, शोक, स्पृहा, ईर्ष्या और निन्दा इस के शत्रु हैं। मौका देखते ही ये शत्रु आक्रमण कर वैठते हैं और हम पर हावी हो जाते हैं। हम इनके चक्कर में आकर विषयी वन जाते हैं। हम अहंकारी, लोलुप, क्रोधी, चंचल, कठोर, दम्भी, व्यभिचारी आदि न मालुम क्या क्या वन जाते हैं। इनके चक्कर में पड़ कर हम अमूल्य जीवन और उसकी शान्ति खो वैठते हैं और उस परमानन्द से दूर चले जाते हैं।"

"अतः हमें सँभल जाना चाहिए। दाता को सव कुछ मान, पूर्ण रूप से उस पर हमें समर्पित हो जाना चाहिए। दाता लगने में तो वहुत कठोर लगते हैं किन्तु हैं नहीं। वे तो परम दयालु हैं। कृपा के सिन्धु हैं। जो उसका हो जाता है, उसके तो वे दास ही हो जाते हैं। धन्ना जाट के यहाँ तो वे हाली तक वन गये—

कुण जाने लक्ष्मी नाथ थारी लीला न्यारी रे।
यो त्रिलोकी को नाथ जाट के वन गयो हाली रे॥

दाता तो भक्तों के दास के भी दास बन जाते हैं। एक भजन में कहा है –

> जो करे अमार आस, ताँर करि सर्वनाश ।
> तनु जे छाँडे ना आस, ताँरे हई दास रे दास ।।

अतः हमें तो सब कुछ छोड निःस्वार्थ भाव से उसकी शरण ग्रहण करनी चाहिए –

> जो जाको शरणो लियो, ताकहँ ताकी लाज ।
> उलटे जल मछली चले, बह्यो जात गजराज ।।

हमारा भला इसी में है। शरणागत होने पर ही परम शान्ति, परम आनन्द मिलता है। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ज्ञान से, योग से, हर प्रकार से समझाने का प्रयास किया। किन्तु जब उसके कुछ भी समझ में नही आया, एक प्रश्न हल हुआ तो दूसरा खडा हो गया तो भगवान ने फरमाया –

> तमेव शरण गच्छ सर्वभावेन भारत ।
> तत्प्रसादात्परा शान्ति स्थान प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।।

अर्जुन के शरणागत होने पर ही उसे परम शान्ति का अनुभव हुआ और वह कर्म को प्रभु समझ कर्म करने लगा। वन्दे के तो कुछ कर्म है नही। सब कर्म उसी के है अतः हमें कर्म तो करना ही है अन्यथा हम कर्महीन कहलायेंगे। किन्तु उसी के कर्म समझ हमें कर्म करना चाहिये जिससे हम कर्म-बन्धन से मुक्त हो जाय। हमने शरीर धारण किया है इसलिये कर्म तो हमें करना ही पड़ेगा किन्तु कर्म कर्म में अन्तर है। एक कर्म तो हम अपने समझ कर करते हैं और एक मालिक के कर्म समझ।

कहने का अभिप्राय है कि हमे सच्चे मन और निःस्वार्थ भाव से दाता का चिन्तन करना चाहिये। दाता के चिन्तन से ही हमें शान्ति मिल सकती है। यह संसार की जो हाय-हाय है वह सब दाता की शरण होने पर ही मिट सकती है। हमारा देह धारण करना तब ही सफल है जब हम दाता से प्रेम करें। सहजो बाई ने कितना स्पष्ट संकेत दिया है –

जग मे कहा कियो तुम आय ।
स्वान जैसो पेट भरि कै, सोयो जन्म गँवाय ।।
पहर पछिले नाहिं जागो, कियो ना सुभ कर्म ।
आन मारग जाय लागो, लियो ना गुरुधर्म ।।
जप न कीयो तप न साधो, दियो ना तैं दान ।
वहुत उरझे मोह मद में, आपु काया मान ।।
देह घर है मान का रे, आन काढ़ै तोहि ।
एक छिन नहि रहन पावै, कहा कैसो होय ।।
रैन दिन आराम ना, काटै जो तेरी आव ।
चरणदास कहैं सुन सहजिया, करो भजन उपाय ।।

जितने भी महापुरुष हुए है उनका यही कथन है कि सव प्रपंच छोड़ भगवान के चरणों में प्रीति रखो । खाते-पीते, सोते-जागते, चलते-फिरते निरन्तर उसकी याद रखो । जिओ तो उसकी राग मे और मरो तो उसकी राग में । जिस प्रकार पनिहारी उछलती कूदती हुई, सव कुछ देखती हुई—वात करती हुई पानी की गागर को घर ले जाती है, उसी प्रकार आप भी उसकी धुन में रहते हुए, सव कुछ काम करते हुए अपना जीवन यापन करो । हमारा काम तो कहने का है । मानो न मानो आपकी मरजी है । "ज्यो मन माने की वात, दाख छुआरा छाड़ि के विषकीड़ा विष खात" ।

इस प्रकार श्रीदाता ने वड़ी देर तक सत्संग किया । सभी श्रीदाता से वड़े प्रभावित हुए । भोजन एवं विश्राम कुछ भी नही हुआ था अतः प्रार्थना करने पर श्रीदाता का पधारना तम्वू में हो गया । आये हुए लोग तो उठ कर चले गये किन्तु और अनेक लोग आ गये । वाहर वड़ी भीड़ हो गई अतः श्रीदाता वापिस वाहर पधार कर एक ओर जा विराजे । सामने लोग आ वैठे । उन लोगों ने दाता के न तो पूर्व मे दर्शन किये थे और न सुना ही, अतः वे वड़ी जिज्ञासा लेकर आये थे । उन्होंने श्रीदाता के वैठते ही अनेक प्रश्न करना प्रारंभ कर दिया । उनमें से एक व्यक्ति वीच ही में वोल पडा, "अरे ! आप लोग दाता को जानते नहीं हैं । मैं वर्षों से दाता को

जानता हूँ। दाता तो साक्षात् ईश्वर ही है। ये सब कुछ जानते है।" श्रीदाता ने मुस्कराकर कहा, "मेरा राम तो आप जैसा ही साधारण जीव हूँ। दाता की महर का रजानुरज हूँ। न कुछ समझता हूँ और न कुछ जानता हूँ। भूत-भविष्यत को समझना और जानना दुख का मूल है। जानने की तो एक ही बात है वह है दाता। उसको जानने में ही आनन्द है।" इस तरह दाता की महत्ता को श्रीदाता ने उन्हे समझाया।

शाम के कुछ समय पूर्व श्री नारायणदास जी पधार गये। उन्होंने श्रीदाता से निवेदन किया, "आपको बडा कष्ट हुआ है। असुविधा ही असुविधा है। आपको कुछ कष्ट नही होना चाहिए। यह सब आपकी कृपा का ही फल है। आप नि सकोच आदेश बतावे।" इस पर श्रीदाता ने फरमाया, "मेरे राम को तो आपके सिवा कुछ भी नही चाहिए। आपके तो अनेक मेहमान हैं, आप उनकी खैर खबर लें।" श्री नारायणदास जी के जाने के बाद भी बडी देर तक सत्सग चलता रहा।

हरेहर अर्थात् सन्ध्योपासना के बाद श्रीदाता सन्तो के दर्शन हेतु पधारे। साथ में भक्तजन थे। कुछ सन्त तो श्रीदाता से परिचित थे। कुछ सन्तो ने कुम्भ में परिचय हुआ था। वे लोग श्रीदाता से मिल कर बडे प्रसन्न हुए। अपरिचित सन्तो के पास भी गये। कुछ सन्तो ने श्रीदाता का स्वागत किया और बाते भी की। एक बगाल का साधु था। श्रीदाता की बातो से प्रभावित होकर वह बोला, "हमें वर्षों से साधु का वेष बनाकर रहने पर भी जो वस्तु नही मिली, उसको आपने गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए पा लिया, यह अद्भुत बात है। आप महान हैं। आज का दिन हमारे लिए अच्छा उदय हुआ कि आपके दर्शन हुए।" वह श्रीदाता से इतना प्रभावित हुआ कि कुछ कहते नही बनता। इस तरह सन्त मिलन में ही रात्रि के बारह बज गये।

आवास पर भी लोग उपस्थित थे। श्रीदाता ने उन्हें भी निराश नही किया। श्रीदाता ने उन्हें कहा, "आपको मेरे दाता से प्रेम है, यह जान कर प्रसन्नता हुई। हमारा एक भी सांस व्यर्थ

नहीं जाना चाहिए। मनुष्य जीवन का कोई ठिकाना नहीं। स्वाँस आया, नहीं आया, इसका क्या भरोसा ? जब तक स्वाँस है तब तक कमाई कर ली जाय। यही अच्छी बात होगी। विजली कब चमक जाय इससिए हरदम मोती पिरोने के लिए तैयार रहना चाहिए।" इस प्रकार बड़ी देर तक बातचीत होती रही।

अगले दिन अर्थात् दिनांक ८-३-७३ को प्रातः ही नौ बजे के लगभग श्रीदाता का यज्ञ-मण्डप में पधारना हुआ। यज्ञ आठ बजे से ही चालू हो गया। सभी कुण्डियों में घृत की आहुतियाँ दी जा रही थी। प्रत्येक कुण्डी पर एक विवाहित जोड़ा यजमान के रूप में व आहुति दिलाने को एक पण्डित था। बड़ी कुण्डी के पास प्रधान पण्डित आसीन था जो माईक पर मंत्रोच्चारण कर रहा था। प्रधान पण्डित के पास ही स्थित एक आसन पर श्री नारायणदास जी विराजमान थे। श्रीदाता एवं मातेश्वरी जी सीधे ही वहीं पहुँचे। उन्हें आते हुए देख श्री नारायणदास जी उठ खड़े हुए और प्रणाम कर पास ही श्रीदाता एवं मातेश्वरी जी को विठाते हुए बोले, "अहोभाग्य इस दास का कि आप पधार गये। माँ लक्ष्मी के साथ आप का पधारना हमारे लिए आनन्द का विषय है। आपके पधारने से अब यह यज्ञ पूर्ण होगा, इसमें कोई संशय नहीं। प्रभु ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो !" यह कहते कहते उनकी वाणी तरल हो गई और नेत्रों से अश्रुबिन्दु झलक आये। मातेश्वरी जी सहित श्रीदाता वहीं इस तरह विराज गये मानो माँ लक्ष्मी सहित लक्ष्मीपति विराज रहे हों। पण्डितों ने और जनता जनार्दन ने श्रीदाता और मातेश्वरी के जी भर कर दर्शन किये। बाद में श्रीदाता ने यज्ञ-मण्डप की परिक्रमा की और कुछ सन्तों के पास होते हुए आवास पर पधार गये।

यज्ञ-परिषद के सदस्यगण भी श्रीदाता के दर्शनार्थ उपस्थित हुए। अजीतगढ़ के वैद्य जी मुख्य सदस्यों में से एक थे। उन्होंने श्रीदाता से निवेदन किया, "आपके बारे में सुना तो बहुत है किन्तु दर्शन का लाभ आज ही मिला है। आज हमारे और इस क्षेत्र के लोगों का भाग्योदय हुआ है कि आप जैसे महापुरुष का पदार्पण

हुआ। वैसे इस क्षेत्र पर सदैव ही सन्तो की कृपा रही है, किन्तु आजकल इधर के लोग दुनियादारी में इतने उलझ गये है कि फुरसत ही नही मिलती। आजकल–आजकल करते ही समय बीता जा रहा है।" इसपर श्रीदाता ने मुस्कराते हुए फरमाया, "दर्शन तो महापुरुषो के या दाता के। माका राम तो छोटा सा प्राणी है। दाता के दरवार में पडे है। उसके हाथ की कठपुतली है। वह जैसे नचाता है, नाच लेते है। दुनियादारी का तो कोई अन्त ही नही। क्या किसी की आजतक इच्छा पूरी हुई है? क्योंकि एक इच्छा के पूरी होते ही दूसरी इच्छा जागृत हो जाती है। इच्छाएँ अनन्त है। इच्छाएँ पूरी नही होने पर दु ख होता है। इच्छा ही करनी है तो दाता की ही इच्छा करो जिससे सब ही दु ख समाप्त हो जाय। दाता के दर्शनो की भूख होनी चाहिए। यदि आपको दाता के दर्शनो की भूख नही है तो कृपा कर सत्सग रूपी चूरण ले लो ताकि आपको भूख लगने लग जावे। सत्सग से दाता के नाम लेने में रुचि होने लगती है।" इस प्रकार अनेक उदाहरण देते हुए हँसी मजाक के वातावरण में श्रीदाता ने उन्हे बहुत कुछ दिया। सभी बड़े प्रभावित होकर वहाँ से उठे।

... दिन को श्री नारायणदास जी आ गये। कुछ समय तक मूक सत्सग चलता रहा। फिर यज्ञ-सम्बन्धी कुछ चर्चा कर, वे यज्ञ-मण्डप की ओर चले गये। कुछ समय बाद शाहपुरा के अध्यापक, डाक्टर व कुछ अन्य व्यक्ति आ गये। उन्होने श्रीदाता से दर्शन सम्बन्धी अनेक प्रश्न किये। अपने प्रश्नो के सन्तोषप्रद हल से वे बडे प्रभावित हुए। उन्होंने श्रीदाता को शाहपुरा पधारने का न्योता दिया। श्रीदाता शाहपुरा पधारे व डाक्टर साहव के मकान पर गये। लोगो ने डाक्टर साहव के माध्यम से रुपयो की थैली भेंट करनी चाही। श्रीदाता ने फरमाया, "आप गरीबो की सेवा करते है अत भेंट तो हमें आपको चढानी चाहिए।" यह कह कर रुपये वापिस लौटा दिये। श्रीदाता ने अपनी मधुर वाणी में उन्हे सत्सग में रुचि लेने को कहा। श्रीदाता ने फरमाया कि दाता के चरणो में हम सब अनुराग रख सकते है। वहाँ अनुराग के अतिरिक्त किसी को भी

आवश्यकता नहीं है। सब समय, स्थिति और रूप में जीव उसकी शरण ग्रहण कर सकता है। यथा –

सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणः सदा
शक्ता अशक्ता अपि नित्य रङ्गिणः।
अपेक्ष्यते तत्र कुलं वलं च नो
न चापि कालो न हि शुद्धता च ॥

जो उसके प्रति अनुराग रखता है वही उसकी कृपा का अधिकारी है। उसके लिए न कोई ऊँचा है न नीचा। न शुद्ध है, न अशुद्ध। वस आप उसके वन जाओ।

डाक्टर साहव का वच्चा बीमार था। श्रीदाता ने उसकी पुकार सुनी। कुछ लोगों की पुकार सुन श्रीदाता वापिस त्रिवेणी पधार गये।

यज्ञ से वापसी

श्री नारायणदास जी चाहते थे कि यज्ञपर्यन्त श्रीदाता त्रिवेणी ही विराजें। रामनवमी तक तो नहीं किन्तु सप्तमी तक श्रीदाता विराज जाते किन्तु दाता को यह मंजूर नहीं था। रात्रि को दस वजे जयपुर से गिरधारी सिंह जी यह समाचार लेकर आ गये कि कु. वीरेन्द्र सिंह जी अधिक अस्वस्थ हैं और उन्होंने श्रीदाता के दर्शनों की इच्छा प्रकट की है। इस समाचार ने श्रीदाता के कार्यक्रम को वदल दिया। अगले दिन प्रातः ही वे श्री नारायणदास जी से आज्ञा लेकर रवाना हो गये। न चाहने पर भी श्री नारायणदास जी ने भारी मन से श्रीदाता को विदा किया। श्रीदाता के प्रस्थान के विषय में वहाँ किसी को मालूम भी नहीं हो पाया। जव मालूम हुआ तो लोग वड़े दुःखी एवं निराश हुए। श्रीदाता की कृपा से यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। आमतौर से देखा गया है कि यज्ञों में कोई न कोई विघ्न अवश्य होकर ही रहता है। वहाँ इस प्रकार की कोई बात नहीं हुई। एक विचित्र घटना अवश्य घटी। यज्ञ समाप्ति के वाद जव सभी को विदाई दी जा चुकी तो यज्ञ-परिषद ने मण्डप को उतारने का विचार किया। यह निर्णय इसलिए किया गया कि चूंकि इसमें

लाखो रुपयो का सामान है सो इसे अगले दिन प्रात ही उतार लिया जाना चाहिए। रात्रि को सब सोने की तैयारी में थे कि अचानक मण्डप में आग लगी व देखते ही देखते पूरा मण्डप कुछ ही क्षणो म राख की ढेरी हो गया। विचित्र लीला है प्रभु की।

श्रीदाता जयपुर होते हुए सीधे अजमेर पहुँचे। अस्पताल में जाकर कु वीरेन्द्र सिंह जी को दर्शन दिये। उस समय वे कुछ ठीक थे। श्रीदाता सहकारी समिति के गेस्ट हाउस में आ विराजे। वहाँ से उन्होने डाक्टर बी के शर्मा को यह कह कर कु वीरेन्द सिंह जी के पास भिजवाया, "जाकर कह दो कि इस समय तुम्हारे पर दाता की बडी महर है। उसका द्वार इस समय तुम्हारे लिए खुला हुआ है। तुम्हे जो चाहिए सो माँग लो।" ऐसा कहते हुए श्रीदाता को कम ही देखा गया है। डाक्टर साहब ने उन्हे जाकर कहा जिस पर वे हँसते हुए बोले, "मुझको कुछ भी नही चाहिए। दाता तो हर समय मेरे पास है। मुझे यहाँ से हटा कर दाता-निवास ले चलो। दाता के चरणो में प्राणो को विसर्जन करने के सिवा अब कौनसा काम होगा।" धन्य हैं कु वीरेन्द्र सिंह जी और उनकी अनन्यता। साधारण व्यक्ति होता तो यही कहता, "मुझे ठीक कर दो।" कुछ दिनो बाद ही कु वीरेन्द्र सिंह जी अपनी इह-लीला को समाप्त कर दाता-धाम सिधार गये और दाता के प्रति अपनी अनन्यता की अमिट छाप छोड गये। धन्य है कु वीरेन्द्र सिंह जी और उनकी जननी जिसकी कोख से ऐसा रत्न पैदा हुआ।

पुन त्रिवेणी पर

एक वर्ष बाद श्रीदाता का और त्रिवेणी पधारना हुआ। साथ में अनेक भक्त व अनुयायी थे। भजनानन्द जी व चेतनानन्द जी महाराज भी साथ थे। श्री नारायणदास जी श्रीदाता को वहाँ पधारे हुए देख अत्यधिक प्रसन्न हुए। उन्होने यथाशक्ति सबका आतिथ्य किया। त्रिवेणी के उस पावन आश्रम की पवित्रता ने सभी के मन को मोहित कर लिया। श्री भजनानन्द जी और श्री चेतनानन्द जी की प्रसन्नता का तो कोई ठिकाना ही नही था। वे कभी मन्दिर की तस्वीरो को देखते, कभी श्री नारायणदास जी के

पास बैठते तो कभी मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठ कर वहाँ के नैसर्गिक सौन्दर्य को देखते। श्रीदाता श्री नारायणदास जी के पास थे। ज्ञान की चर्चाएँ चल रही थी। अनेक लोग भी वहाँ उपस्थित थे। बातों ही बातों में श्रीदाता ने फरमाया, "पशु-पक्षी भी दाता से प्रेम करने में मनुष्यों से पीछे नहीं रहते हैं। वे उनसे आगे ही बढ़ते हैं। मनुष्य तो बार-बार दाता की अनुभूति होने पर भी भ्रमित हो जाता है किन्तु पशु पक्षी एक बार भी यदि उसका अनुभव कर लेता है तो उसे कभी नहीं भूलता।" श्रीदाता ने अपने जीवन में घटित अनेक प्रसंग इस बात के प्रमाण में सुनाये। कईयों को यह बात ठीक नहीं लगी। किन्तु वे बोले कुछ नहीं। श्रीदाता ने उनके भावों को ताड़ लिया।

पूरे दिन भीड़भाड़ बनी रही। सन्ध्या को आरती के समय श्रीराम की स्तुति में बोले जाने वाले भजनों को सुन श्रीदाता भाव विभोर हो गये। भक्त लोगों को भी बड़ा आनन्द आया। साथ में आये दोनों बाबाओं का तो कहना ही क्या? वे तो बड़े ही मस्त थे। श्री नारायणदास जी के शिष्यों ने बड़े प्रेम से सभी की खूब सेवा की।

श्रीदाता की तरह श्री नारायणदास जी भी गो-सेवा में विशेष रुचि रखते हैं। उनके पास आश्रम में कई गायें व एक साँड था। श्री दाता ने गायों व साँड को देखा। रात्रि को श्रीदाता एक बड़े कमरे में विराज रहे थे। साथ में आये हुए लोग भी बैठे थे। श्री नारायणदास जी वहाँ लगभग दस बजे पधार गये। श्रीदाता का प्रवचन चल रहा था। प्रवचन के पश्चात् श्री सीताराम जी, श्री श्रीराम जी आदि भजन बोलने लगे। बीच बीच में श्रीदाता भी कुछ फरमाते रहते। यह क्रम चल रहा था कि आश्रम का साँड कमरे के बाहर आकर खड़ा हो गया। लोगों ने उसे हटाने का प्रयास किया किन्तु मार खाने पर भी वह हिला तक नहीं। सत्संग प्रातः पाँच बजे तक चला तब तक वह एक ही मुद्रा में खड़ा रहा और सत्संग समाप्त होते ही अपने आप वहाँ से चला गया। जिन लोगों के मन में अविश्वास था कि पशु-पक्षी भी दाता के प्रति अनुराग

रखते हैं वे लज्जित हुए। श्रीदाता ने उस समय इतना ही कहा, "देखा आपने! कितना प्रेम होता है पशुओं का दाता के चरणों में। क्या कोई व्यक्ति इतनी देर एक आसन पर स्थिर होकर ठहर सकता है।"

प्रात अनेक लोग श्रीदाता के दर्शनार्थ आ गये। भक्ति सबधी चर्चा चल पड़ी। श्रीदाता के विचार उपस्थित लोगों ने जानने चाहे। श्रीदाता ने फरमाया, "अव्यक्त ब्रह्म में चित्त लगाना अत्यन्त कठिन और क्लेशमय है। निष्काम कर्म केवल साधन है। भक्ति ही अन्तिम सीढ़ी है। भक्ति की सिद्धि हो जाने पर कर्म करना, न करना बराबर है। भगवान शकराचार्य अद्वैतवादी थे किन्तु उन्होंने भी भक्ति को प्रधानता दी है। उनके मत से अपने शुद्ध स्वरूप का स्मरण कराना ही भक्ति है। यथा –

मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।
स्वस्वरूपानुसधान भक्तिरित्यभिधीयते ॥

(विवेक चूडामणि)

भावार्थ– मुक्ति की कारण रूप सामग्री में भक्ति ही सब से बढ कर है और अपने वास्तविक स्वरूप का अनुसधान करना ही भक्ति कहलाती है। श्री शकर की भक्ति द्वैत, विशिष्ट द्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत के अन्तर्गत बतायी हुई भक्ति से बिलकुल भिन्न होने में दुरूह है। इन वादो में मोक्ष प्राप्ति का सब से सुगम साधना भक्ति बताया गया है। भगवान शंकराचार्य की भक्ति ज्ञान की वस्तु है। साधारण नर-नारी के लिए तो ऐसे ईश्वर की खोज है जो उनको गोदी में बिठावे या वह स्वय आकर गोदी में बैठ जावे। इसी भावना ने ज्ञान के स्थान पर भक्ति की प्रधानता का प्रतिपादन किया है।" श्रीदाता ने उद्धव और गोपियों के सवाद का उदाहरण देकर ज्ञान और भक्ति के अन्तर को स्पष्ट किया। बड़ी देर तक यह सरल किन्तु सारगर्भित चर्चा चलती रही। इसी चर्चा के मध्य अनेक आचार्यों के सिद्धान्तों की चर्चा भी श्रीदाता ने की। शकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य आदि महापुरुषों के मतों को सरल भाषा में सुनने का अवसर कम ही मिलता है।

कुछ समय वाद श्रीदाता ने चलने का संकेत दिया । श्री समुद्र सिंह जी ने खड़े होकर श्री नारायणदास जी से प्रस्थान की आज्ञा मांगी । यह जान कर कि श्रीदाता पधार रहे हैं, वे मन ही मन उदास हो गये । उनके मुँह से कुछ बोल नहीं निकला । श्रीदाता ने उन्हें फिर आने का आश्वासन देकर शान्त किया । सभी को दुःखी छोड़ श्रीदाता ने वहाँ से जयपुर के लिए प्रस्थान किया । अपने आश्वासन के आधार पर वाद में कई वार श्रीदाता त्रिवेणी पर पधार कर श्री नारायणदास जी को आनन्दित कर चुके हैं ।

○ ○ ○

श्रीदाता सिद्ध सन्तों के सम्पर्क में

श्रीदाता के आठो याम दाता के चिन्तन में ही बीतते है। सत्सग, कीर्तन, भजन और सद्गुरु चर्चा हर दम दाता-निवास में होता है। वहाँ जो भी जाता है उसे सुख, शान्ति और आनन्द मिलता ही है। हरि प्रेमी जन श्रीदाता के यहाँ आते ही रहते है। सन्त श्रीदाता के वडे प्रिय हैं। उनसे मिलने हेतु श्रीदाता आये दिन बाहर पधारते रहते हैं। श्रीदाता फरमाते है, "भगवान तो सर्वव्यापी हैं। जितना यहाँ है, उतना ही रामेश्वर, द्वारिका, कैलाश आदि तीर्थों में है। वहाँ विशेषता यह है कि सन्तो और महापुरुषो के दर्शन हो जाते है और हरि नाम सुनने को मिलता है।"

हमने देखा है कि सन्त श्रीदाता को वडे प्रिय है और श्रीदाता सन्तो को। सत श्रीदाता के प्रिय क्यो न हो, क्योकि वे तो हरिमय ही होते हैं। सत वे है, जो नित्य सिद्ध सत्य-तत्व का साक्षात्कार करके, उसकी अपरोक्ष उपलब्धि करके उस सच्चिदानन्द-स्वरूप में प्रतिष्ठित हो चुके है। वह सत् ही चेतन है, वह चेतन ही आनन्द है। इस सत्-चित्-आनन्द में जो निरन्तर प्रतिष्ठित है वही सत है। सन्त दाता स्वरूप ही होते है, इसलिए श्रीदाता के लिए वे प्यारे हैं।

श्रीदाता राजगढ़ में

प्रात स्मरणीय महात्मा गगाभारती जी राजस्थान के पूर्वी भाग में स्थित राजगढ के शिवोपासक महन्त थे। उनका चित्त सरल, स्वभाव दयालु और व्यवहार सहृदय था। वे सत्य एवं न्याय प्रिय, गो-सेवक, कृपालु, गुरुभक्त एव ज्ञानवान थे। अवतारवाद और मूर्तिपूजा में उनका विश्वास था। वे उदार और विशाल हृदय वाले थे। उनका मानना था कि सभी धर्मो के मूल में एक ही परमात्मा है। अत सभी धर्म उसके है और वे सब उस परमात्मा को प्राप्त करने के साधन मात्र हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन लोकहित में ही बीता। अनेक लोगो ने उनसे आध्यात्मिक चेतना का पाठ पढा है और कई विद्वान

एवं उच्च अधिकारी उनके शिष्य हैं। भूतपूर्व आई. जी. पुलिस भी उनसे प्रभावित रहे व उनकी अच्छी श्रद्धा रही।

सन् १९७० के आसपास श्रीदाता का पधारना जयपुर हुआ, उस समय श्री हनुमान शर्मा सेवारत थे। उनकी पत्नी को साईटिका की बीमारी हो गई। विभिन्न उपचारों के कराने पर भी बीमारी बढ़ती ही गई। वे परेशान हो गये। श्रीदाता के चरणों में भी उनकी श्रद्धा थी। वे श्रीदाता के यहाँ अनेक बीमारों की पुकारें होती देखते किन्तु यह सोचकर वे चुप रह जाते कि शरीर तो बीमारियों का घर है, इसके लिए दाता जैसी महान् आत्मा को कष्ट देना उचित नहीं है। वे निश्चय कर चुके थे कि पुकार नहीं करेंगे किन्तु एक दिन दर्द बहुत बढ़ गया और उनसे देखा नहीं गया, अतः पुकार कर ही बैठे। वहाँ क्या देर थी। पुकार करते ही दर्द क्या बीमारी ही गायब हो गई। उस समय एकाएक उन्हें भारती बाबा की याद हो आयी। वे भी उन दिनों बीमार थे। भारती बाबा ने भी श्रीदाता के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। उन्होंने हनुमान शर्मा को भी श्रीदाता को राजगढ़ लिवा लाने के लिए कह रखा था। अच्छा समय देख उन्होंने भारती जी की अस्वस्थता के बारे में निवेदन करते हुए राजगढ़ पधारने हेतु निवेदन कर दिया। लीला तो सब कुछ उसी की थी किन्तु माध्यम श्री हनुमान शर्मा को बनाना था। राजगढ़ जाने की तत्काल योजना बन गई।

भारती जी

श्री हनुमान शर्मा की ही कार में श्रीदाता का पधारना राजगढ़ हो गया। ज्योंही श्री भारती जी को श्रीदाता के पधारने की सूचना मिली वे बाहर पधार गये। उनका हृदयकमल प्रसन्नता से खिल उठा, गद्गद् होकर उन्होंने श्रीदाता का स्वागत किया। बड़े सम्मान से दाता की पदरावणी मठ में हुई। श्रीदाता ने भारती जी को नमस्कार कर कहा, "मैं तो आपका अबोध और अज्ञानी बच्चा हूँ। आपके दूसरे बच्चों की तरह इस बच्चे पर भी कृपा ही रहनी चाहिए। मैं तो दाता के नाम रूपी दानों का भिखारी हूँ।" इन शब्दों को सुन प्रेमाधिक्य से भारती जी गद्गद् हो गये। कुछ देर

तो उनसे बोला ही नही गया। फिर बोले, "आप तो शिवरूप ही है। मेरे आराध्य देव है। आप सर्व समर्थ है किन्तु आपका स्वभाव ही है कि आप अपने दीन सेवकों को बडाई देते है। आपके सिवा ऐसा कौन है जो गरीबो को इतनी बडाई देता है। हमारा बडा सौभाग्य है कि माँ पार्वती सहित आज आपका पधारना हुआ है। आपके पधारने से हम कृतार्थ हो गये। मैं तो गरीब और दीन हीन हूँ। सुदामा तुल्य हूँ। जिस प्रकार आपने राम रूप धारण कर शबरी पर कृपा की उसी प्रकार इस रूप में मेरे पर भी कृपा करे।" यह कहते कहते उनके नेत्रो से अश्रुबिन्दु झलक आये।

थोडी ही देर में चारो ओर श्रीदाता के पधारने की सूचना फैल गई। लोग दर्शनार्थ दौडे आये। बडा मगलमय वातावरण हो गया। कुछ देर बाद श्री भारती जी के स्वास्थ्य सम्बन्धी पुकार हुई। श्री दाता ने अपनी लकडी को दो-तीन बार जमीन पर डाली और भारती जी की ओर हाथ का सकेत किया। प्रभु कृपा से तत्काल उनके शरीर की व्याधि समाप्त हो गई। उदासी और शारीरिक शिथिलता गायब हो गई और शरीर में शक्ति का अनुभव होने लगा। श्रीदाता ने उन्हे इधर-उधर फिर कर पुन देखने के लिए कहा। उन्होने इधर-उधर चलकर देखा। अपने आपको उन्होने स्वस्थ अनुभव किया। प्रसन्न होकर उन्होने श्रीदाता और सौ माता को साष्टाग प्रणाम किया। उपस्थित लोग आश्चर्य से यह चमत्कार देखते रहे।

वहाँ के लोगो ने श्रीदाता की खूब आवभगत की। रात्रि को प्रवचन एव भजन हुए। चूँकि श्री भारती जी की पुकार थी और पुकार सुनने के बाद श्रीदाता अधिक बिराजते नही अत दूसरे दिन वे जयपुर पधार गये।

विहार की सन्त मण्डली के आगमन के अवसर पर श्रीदाता ने श्री भारती जी को भी आमन्त्रित किया था और निमत्रण प्राप्त होते ही श्री शर्मा जी के साथ वे दाता-निवास पधारे। उनके इस मिलन का वर्णन आप 'विहार की सन्त मण्डली दाता-निवास में' में पढ सकेगें। श्री भारती जी ने श्रीदाता को शिव के रूप में व

मातेश्वरी को पार्वती के रूप में माना है। जब भी वे मातेश्वरी जी से मिले हैं सदैव यही कहते रहे हैं, "माँ! मैं तेरा अज्ञानी बेटा हूँ। तूं बड़ी दयालु है। दाता के पास इस जीव की भी सिफारिश कर दो। आदि।" कैसे उच्च भाव रहे हैं भारती जी के। ऐसे सन्त विरले ही होते हैं। श्रीदाता ने कुछ दिनों बाद उन्हें पत्र लिखा जिसकी प्रतिलिपि आप परिशिष्ट क (१) पर देख सकते हैं। पत्र से स्पष्ट जाहिर होता है कि श्री भारती जी कितने महान् थे व श्रीदाता की उनपर कैसी कृपा थी।

जुलाई सन् १९७४ में श्रीदाता का स्वास्थ्य खराब होने से जाँच हेतु जयपुर पधारना हुआ। उस समय भारती जी जयपुर ही विराज रहे थे। श्रीदाता उनसे मिलने पधारे। दोनों महापुरुषों का मधुर मिलन हुआ जिस तरह वनवास से लौटकर राम भरत से मिले व जैसा वातावरण रहा वैसा का वैसा वातावरण श्रीदाता और श्री भारती जी के मिलन का था। यथा –

राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदय लगाय अनुजहिं मिले प्रभु त्रिभुवन धनी।।
प्रभु मिलत अनुजहिं सोइ मो पहिं जात नहीं उपमा कही।।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले वर सुषमा कही।
बूझत कृपानिधि कुसल भरतहिं बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा सो मुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई।।
अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूड़त विरह वारीस कृपानिधान मोहिं कर गहि लियो।।

(रामचरित मानस)

श्री भारती जी की स्थिति भरत जी की सी थी। उनके मुँह से बोल तक नहीं निकल रहे थे। उपस्थित लोग भी इस मिलन से आनन्द ले रहे थे। उस आनन्द का वर्णन करना कठिन है। कुछ समय वहाँ ठहर कर श्रीदाता वापिस पधार गये।

अगले दिन श्री भारती जी तुलसी मार्ग में स्थित खण्डेलवाल भवन में जहाँ श्रीदाता विराज रहे थे वहाँ पधारे। श्री भजनानन्द जी एव चेतनानन्द जी महाराज भी वही विराज रहे थे। चारो महापुरुषो का सम्मेलन, क्या कहना उस सम्मेलन का, देव भी तरसते होंगे ऐसे सम्मेलन को देखने हेतु। हरएक अपने को छोटा व अन्य को महान् समझ आदर दे रहा था। उपस्थित लोग उनकी बातो में रस ले रहे थे। उनका परम सौभाग्य है कि उन्हे ऐसा अवसर मिला। उपस्थित लोगों में से कुछ लोगो की इच्छा थी कि श्री भारती जी के यहा श्रीदाता पधारे और २-३ दिन वही सत्सग हो किन्तु उनकी यह इच्छा पूरी नही हो सकी। पहले तो श्रीदाता का दक्षिण यात्रा का कार्यक्रम बन गया और इधर श्री भारती जी ने अपने नश्वर शरीर को त्याग दाता-धाम में प्रयाण किया। आज गगाभारती जी का पार्थिव शरीर हमारे बीच नही रहा किन्तु उनका प्यार, दाता के प्रति उनका असीम प्रेम भूलने की वस्तु नहीं है।

पहाडी बाबा के यहाँ

जिस प्रकार गगाभारती जी ने श्रीदाता के हृदय को जीत अपने भक्तजनो पर अपने प्रेम की अमिट छाप डाली उसी प्रकार एक सत और थे जो पहाडी बाबा के नाम से विख्यात थे। पहाडी बाबा को बगाली बाबा भी कहते थे। श्रीदाता और पहाडी बाबा का प्रथम मिलन पुष्कर में सन् १९५२ में हुआ था। तब से लेकर जब तक उनका नश्वर शरीर पचतत्व को प्राप्त नही हुआ तब तक अनेक बार आपस में मिलन हुआ और दोनो ने खूब हँस हँस कर बातें की।

पहाडी बाबा प्रसिद्ध कर्मयोगी बाबा श्यामाचरण लाहडी के पोता शिष्यो में से एक थे। आमेर की पहाडियो में इनका आश्रम है। उनके अनेक अनुयायी है। डाक्टर मिश्रा, वृजबिहारी जी आदि कई विद्वान एव अधिकारी उनके यहाँ जाते रहे हैं। अधिकतर उनका समय जयपुर में ही व्यतीत होता था। श्रीदाता के प्रति उनका अपार प्रेम था। वे श्रीदाता को साक्षात् ईश्वर ही मानते थे। शरीर से वे हृष्टपुष्ट एव शक्तिशाली थे और उनका शरीर काच के

समान चमकता था। सन् १९७० तक वे विलकुल स्वस्थ रहे फिर कुदरत दाता की कि वे रक्तचाप और हृदय रोग के शिकार हो गये। इसके पश्चात् वहुधा वे अस्वस्थ हो जाया करते थे। एक वार वे अधिक अस्वस्थ हो गये। उनके अनुयायियों की जिद पर वे सवाई मानसिंह अस्पताल में भर्ती हो गये। अनेक डाक्टर उनके शिष्य थे। उन्होंने उपचार में कोई कसर नहीं रखी किन्तु कुछ लाभ दिखाई नहीं दिया। सभी लोग घवरा गये। जव हालत अधिक खराव हो गई और वे वेहोश हो गये तव डाक्टर शर्मा को श्रीदाता की याद आयी। उस समय श्रीदाता जयपुर में ही विराज रहे थे। श्री शर्मा ने अपनी कार उठाई और श्रीदाता को लेने चल दिये। सुनते ही श्रीदाता उसी कार द्वारा अस्पताल पहुँचे। डाक्टर लोग चिन्तित से खड़े थे। श्रीदाता ने जाते ही डाक्टर को रक्तचाप एवं नाड़ी देखने को कहा। रक्तचाप ७४ व नाड़ी की गति असामान्य थी। वे घवरा गये व नेत्रों से आँसू टपक पड़े। उन्होंने श्रीदाता की तरफ देख कर अवरुद्ध कण्ठ से कहा, "हालत गंभीर है। वचना कठिन है।"

श्रीदाता ने दो-तीन वार हाथ की अँगुलियों को हिला कर कुछ संकेत किया और फिर डाक्टर को पुनः जांच करने को कहा। जाँच करते वक्त डाक्टर के चेहरे पर आश्चर्य एवं प्रसन्नता की रेखाएँ उभर आयीं। सव ही ने आश्चर्य से देखा कि रक्तचाप ९४ व नाड़ी की गति सामान्य की ओर थी। श्रीदाता ने हाथ का संकेत किया और फिर से जाँच के लिए कहा। पुनः निरीक्षण किया गया। दोनों ही सामान्य थी। वावा की वेहोशी भी संकेत के वाद ही से दूर हो गई और उन्होंने नेत्र खोल दिये। श्रीदाता को अपने सन्मुख देख मुस्करा दिये। उन्होंने मन ही मन श्रीदाता को प्रणाम किया। दो-तीन मिनिट वाद लघुशंका हेतु स्वयं उठकर मूत्रालय में गये। उनको स्वयं के प्रयास से उठकर चलते-फिरते देखकर सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये। किन्तु इसमें आश्चर्य की क्या वात है। उसकी कृपा से तो अनहोनी होनी होती ही है। मूत्रालय से लौट कर नल पर हाथ धोये फिर श्रीदाता को प्रणाम कर वोले, "आपने

मुझे जीवनदान दिया है। मैं आपकी कृपा का आभारी हूँ। हे सर्व शक्तिमान् दाता आपकी जय हो।"

यह है पहाडी बाबा पर श्रीदाता की अपूर्व कृपा। श्रीदाता जब भी जयपुर पधारते वे पहाडी बाबा से अवश्य मिलते। श्रीदाता के परम शिष्य डाक्टर श्री बृजकिशोर जी, श्री प्रभुनारायण जी और श्री बृजविहारी जी तो प्रति दिन ही उनके यहाँ जाते थे। पहाडी बाबा ज्योतिष के अच्छे ज्ञाता थे। एक बार वे बृजविहारी जी की जन्म पत्रिका देख रहे थे। बाबा ने कुछ देर जन्म पत्रिका देखी फिर बृजविहारी जी के चेहरे को देखा और बोले, "यदि यह जन्म-पत्रिका सही है तो इसके आधार पर तो आपको कभी का मर जाना चाहिए। फिर भी आप जीवित हैं तो इसमें किसी महान् शक्ति की कृपा है। आपको उस महान् शक्ति को पकड रखना चाहिए। आप जिस दिन उस शक्ति का आधार छोड दोगे, उसी दिन अपने आप को इस ससार में नही पाओगे।" यह सुन कर बृजविहारी जी और लोग स्तब्ध रह गये। डाक्टर श्री शर्मा ने बताया कि श्रीदाता की कृपा से ही गाडी चल रही है। बाबा बोले, "ऐसी ही बात है, तभी ये बच रहे हैं। दाता ही विधाता के लेख को बदलने में समर्थ हैं। ये परम सौभाग्यशाली हैं कि दाता की इन पर अपार कृपा है।" श्री बृजविहारी जी एक विचित्र बीमारी से पीडित हैं। उनके पूरे पैर का खून एकदम गाढा हो जाता है खून का सचार ही बन्द हो जाता है। डाक्टरों का खूब इलाज कराया किन्तु सब व्यर्थ गया। डाक्टरों ने तो कह दिया कि इसका कोई उपचार नही। हमें तो आश्चर्य है कि ये जिन्दा कैसे हैं?

एक बार बाबा से मिलने एक सन्त आये। उस समय डा मिश्रा, बृजविहारी जी, डाक्टर शर्मा आदि बैठे हुए थे। इधर उधर की बातें चल रही थी। सन्त ने योगेश जी को पूछा, "क्या करते हो?" योगेश जी ने कहा, "बडी बडी बाटियें खाते हैं और पडे रहते हैं।" सन्त इस बात को नहीं समझ सके और वे पहाडी बाबा की ओर जिज्ञासा से देखने लगे। इसपर पहाडी बाबा बोले, "इनके गुरुमहाराज ही इतने सबल हैं कि इनको कुछ करने की आवश्यकता

ही नही है। स्वामी विवेकानन्द जी ने क्या किया था। श्री रामकृष्ण देव की कृपा से ही वे सब कुछ हो गये। इनके गुरु-बड़े शक्तिशाली हैं। इसी कारण ये लोग मस्त घूमते हैं। इनकी शक्ति का मैं भी कायल हूँ।" कितने उच्च विचार हैं उनके श्रीदाता के प्रति।

जब उनको हृदय रोग का दूसरा दौरा पड़ा तब भी श्रीदाता भाग्य से जयपुर में ही थे। सुनकर वे अस्पताल में पहुँचे। पहाड़ी बाबा उस समय होश में थे। उन्होंने श्रीदाता से प्रार्थना की, "प्रभु! आप तो महान् हैं। आपके लिए कुछ भी अशक्य नहीं। आपकी कृपा से तो पंगु भी गिरि को लाँघ लेता है। कहा भी है—

मूकं करोति वाचालम् पंगुम् लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम्॥

आपके बनाये हुए विधान को आप ही पलटें यह उचित नहीं है। मर्यादा आपकी है और आप उसके रक्षक हैं। अतः आपकी कृपा चाहिये।" श्रीदाता मुस्करा दिये और बोले, "जो आया है सो तो जावेगा ही। जो बना है वह बिगड़ेगा ही। जो पैदा हुआ है वह मरेगा ही। इस शरीर की तो अवधि है। ओसरा (अवसर) तो निकालना ही पड़ेगा। दाता का नाम ही बड़ा है अतः आप तो मस्ती से सोते-सोते उसी का नाम रटे जाओ।

जाहि विधि राखे राम, ताहि विधि रहिये।"

पहाड़ी बाबा ने जान लिया कि अब जीवन-नैया किनारे आ लगी है। वे महात्मा तो थे ही। मृत्यु का भय भी नहीं था। कुछ दिनों बाद ही उन्होंने इस नश्वर शरीर को त्याग दिया। बाबा स्पष्ट वक्ता तथा सत्यनिष्ठ सन्त थे। उनके निधन से जयपुर के भक्तों को और अन्य प्रेमी जनों को बड़ा आघात् लगा।

भजनानन्द जी और चेतनानन्द जी

जयपुर के नींदड़बेलार्ड नामक गाँव के एक ब्राह्मण के यहाँ एक साथ दो बच्चे पैदा हुए जो जन्म से ही विलक्षण एवं वीतरागी थे। इनके पिता एक शिव मन्दिर के पुजारी थे। बड़े होने पर दोनों ही बालक शिव-पूजा मे रुचि लेने लगे। वे दुनियादारी से अलग

छूट कर शिव-भक्ति में ही अधिकतर समय बिताते थे। इनकी बढती हुई वैराग्य वृत्ति को देख कर पिता ने बडे लडके का विवाह यह सोचकर कर दिया कि इससे उसका मन घर के काम काज में लग जावेगा किन्तु उनकी इच्छा पूरी न हो सकी। बडे के एक लडका भी हुआ। एक दिन बाबा पयहरि जी महाराज उधर से आ निकले। उन्होंने रात्रि विश्राम शिव मन्दिर में किया। दोनो बालकों को देख वे बडे प्रभावित हुए। दोनो में वैराग्य के लक्षण देख उन्होने दोनो को ही राम का मन्त्र दिया। गुरु कृपा से कुछ ही दिनो में वीतरागी और त्यागी होकर उन्होंने घर छोड दिया। गुरुदेव की कृपा से बडे का नाम भजनानन्द व छोटे का नाम चेतनानन्द हो गया। भजनानन्द जी ने गोनेर के बीदानी गाँव में और चेतनानन्द जी ने चेतन पर्वत पर अपने आश्रम बना लिए। आश्रमो में 'सीताराम व हनुमान जी' के मन्दिर बनवा लिए गये। दो कुएँ भी खुदवाये। एक का नाम गगासागर व दूसरे का नाम गोपालसागर रखा गया। दोनो कुओ का जल पवित्र एव पाप नाशक है। जयपुर के आसपास के लोग उन्हे हनुमान जी का अवतार मानते है। दोनो ही बाबाओं का रहन-सहन और हरकते बन्दर के समान ही थी। दोनो में अन्तर केवल इतना सा था कि भजनानन्द जी कुछ गम्भीर और चेतनानन्द जी अत्यधिक चचल थे। चेतनानन्द जी दो मिनिट भी चुप नही बैठ सकते थे। बन्दर की तरह दाँत निकालना, मुंह बनाना, फुदकना, दौडना, कूद कर किसी की पीठ पर जा बैठना, चुटकी बजाना, किसी के सिर में मार बैठना आदि हरकते उनके लिए सामान्य सी थी। पहनावा उनका धोती, बगलबन्दी और टोपा था। बोलना बहुत ही कम होता था। कहने का तात्पर्य है कि वे पवित्र आत्मा वीतरागी और महान सन्त थे।

वर्ष का आधा समय इनका जयपुर में ही बीतता था। जयपुर में इनके अनेक भक्त थे। त्रिलोकचन्द सर्राफ इनका अनन्य भक्त है। उसने इनके रहने के लिए तुलसी मार्ग पर एक बगला खाली कर दिया। ससुराल पक्षवालो के कारण प्रभुनारायण जी इन बाबाओं के सम्पर्क में आये और उन्ही से श्रीदाता को दोनो सन्तो का

परिचय मिला। दोनों सन्तों की इच्छा भी श्रीदाता के दर्शनों की हुई। प्रभुनारायण जी ही दोनों वावाओं को दाता-निवास ले गये। श्रीदाता ने इन्हें प्रणाम किया। अज्ञानी वालकों की तरह खड़े-खड़े वे देखते रहे। फिर वैठ कर टकटकी लगा दाता को देखने लगे। कुछ समय वाद दाल वाँटी का भोजन उनके सामने लाया गया जिसे देख कर वे जोर-जोर से हँसने लगे और वोले, "यह क्या छे? क्या इन्हें खाना छे? इस गाँव में तो खाने को गोले मिलते छ?" वे घर को गाँव की संज्ञा देते थे। भोजन कर वे वड़े प्रसन्न हुए और वोले, "दाता का प्रसाद अच्छा छः और खांवालां।" अगले दिन उन्हें खाने को मक्का की रोटी दी गई, जिसको खाकर वे वड़े ही प्रसन्न हुए। वच्चों की तरह मातेश्वरी जी के पास जा वैठे और वोले, "इस गाँव में तो प्रसाद अच्छा मिले छे। थे जयपुर आवोला जद मैं भी थाने खिलावाला।" वहाँ दो दिन रहे व वड़ी प्रसन्नता से रहे।

इसके वाद श्रीदाता जव भी जयपुर पधारते ये दर्शन अवश्य करते। सत्संग में वे चुपचाप वैठ जाते। उन्हें एक स्थान पर चुपचाप इस तरह वैठे देख लोगों को आश्चर्य होता था। जव श्रीदाता दाता-निवास होते और इन्हें मिलने की मन में आती तो प्रभुनारायण जी को कह देते और वे इन्हें दाता-निवास भिजवा देते। वहाँ का वातावरण उन्हें अच्छा लगता था। श्रीदाता के अनेक वन्दे इनसे परिचित हो गये। विचित्र नामों से जैसे गुलावी वावू, काला वावू, वाटी वावू आदि नामों से उन्हें पुकारा करते थे।

सन् १९७४ के जुलाई और नवम्वर मास में अस्वस्थता के कारण श्रीदाता को जयपुर ही विराजना पड़ा। उस समय श्रीदाता दोनों वावाओं के पास ही ठहरे। दोनों वावाओं ने वड़ी तत्परता से सेवा की। अधिकतर वे श्रीदाता के पास आकर वैठ जाते। संध्या समय की होनेवाली 'हरेहर' में वे अवश्य सम्मिलित होते। श्रीदाता की उन पर कृपा थी ही। एक दिन वड़े वावा को हरेहर में दाता के स्थान पर भगवान कृष्ण के दर्शन हुए। उस समय उनकी वड़ी विचित्र गति हो गई। उनके नेत्रों से अश्रु टपकने लगे।

उनका शरीर विचित्र प्रकाश से जगमगाने लगा। वे भाव में खो गये। इसके पश्चात् वे दाता को भगवान कृष्ण ही मानने लगे। इसके बाद से उनका उठते ही सबसे पहला काम होता था दाता के दर्शन करना। पहाडी बाबा से भी वे बडे हिलमिल गये। एक बार पहाडी बाबा श्रीदाता के दर्शन करने आये थे। वे केवल दूध का आहार लेते थे। श्रीदाता ने उनके सामने दूध का गिलास रखा। पहाडी बाबा अपने इष्ट देव को भोग लगाने लगे। इस बीच भजनानन्द जी ने दूध की गिलास उठा ली और यह कह पीने लगे, "प्रसाद बडा मीठा छे।" सभी हँस पडे। दूसरा दूध मगवाया गया। अब की बार चेतनानन्द जी ने उठा लिया। पहाडी बाबा हँस कर बोले, "ये दोनो बाबा हमे प्रसाद नही लेने देंगे। बडे भूखे है ये दोनो।" सभी हँस पडे। ऐसा था दोनो बाबाओ का विचित्र व्यवहार।

एक बार श्रीदाता का पधारना बाबा के आग्रह पर बीदानी हुआ। वहाँ उन्होंने श्रीदाता की और मातेश्वरी जी की आरती उतारी बीदानी के लोग भजनानन्द जी को बहुत मानते थे। उनको आरती सजोते देख उन्होने सोचा, "आज तो हमारे बाबा से भी बडा बाबा आया है।" दाता को आया हुआ सुन वे श्रीदाता के दर्शनो हेतु उमड पडे। श्रीदाता बडे विनोदी भी है। उन्होने एक तमाशा किया। जब सब लोग पास आ गये तो वे चट उठे और दोनो बाबाओं के चरण छू लिए। श्रीदाता को बाबाओ के चरण छूते देख वे भ्रमित हो गये। लोगो ने अपने बाबा को ही घेर लिया। इस बीच श्रीदाता एक ओर चल पडे।

चेतन बाबा भी श्रीदाता को एक दिन अपने आश्रम पर ले गये। श्रीदाता अस्वस्थ थे। अंत डाक्टर ने पहाडी पर चढने से मना कर दिया अतः श्रीदाता और मातेश्वरी जी पहाडी के नीचे ही ठहर गये। चेतन बाबा पहले ही आश्रम में पहुँच गये थे। जब उन्हे मालुम हुआ कि श्रीदाता पहाडी पर नही पधार रहे हैं तो वे स्वय अपने हाथ में पूजा की थाली लेकर पहाडी के नीचे आये और बडे प्रेम से युगल जोडी की आरती सजोई। वे बोले, "जय हो

दाता की।" वे गद्‌गद् हो रहे थे। श्रीदाता ने कहा, "मान लेना। आप नाराज मत होना, माका राम के लिए इस समय पहाड़ी पर चढ़ना कठिन है। अँधेरा भी हो गया है।" वावा वोला, "आपकी जैसी मौज छे। हम पर तो आपकी महरबानी हो गई छे।"

दोनों वाबा सत्संगी बन्धुओं को अपने भाई मानते थे और सभी के साथ वैसा ही व्यवहार करते थे। सत्संगियों के लिए दोनों वावाओं के कारण वातावरण वड़ा सरस एवं सुन्दर हो गया।

सन् १९७५ में वावा अचानक बीमार हो गये। कुछ ही दिनों में उन्होंने अपना शरीर पंचतत्व में मिला लिया। सभी के लिए यह घटना दुःखदायी थी किन्तु वश की वात थी नहीं। ठीक दस वर्ष वाद चेतनानन्द जी ने भी उन्हीं का अनुसरण किया। दो महान हस्तियाँ इस दुनियाँ से चली गई। जैसी दाता की इच्छा। सभी सन्तों की जय हो।

रामदास जी के यहाँ

वनोकर (भरतपुर) में श्री रामदास जी नामक एक वृद्ध सन्त विराज रहे हैं। वे सरल चित्त, परम उदार, महान् त्यागी, तत्वदर्शी, ज्ञानी, ध्यानी और सत्यनिष्ठ सन्त विराज रहे हैं। वे इतने वृद्ध हैं कि लोग उनकी आयु का अनुमान भी नहीं लगा पाते हैं। वहाँ के लोग और उनके शिष्य कहते हैं कि कई वर्षों से हम तो इन्हें इसी रूप में देख रहे हैं। कोई इन्हें २५० वर्ष के, कोई २०० के व कोई अधिक वर्षों की आयुवाले मानते हैं। उनकी आयु कुछ भी रही हो, इस समय वे १०० वर्ष से अधिक आयु वाले तो लगते ही हैं। एक वार वे अस्वस्थ हो गये। उनके अनुयायी डाक्टर शर्मा को वनोकर ले गये। डाक्टर साहव उनकी सरलता, सात्विकता, उदारता, सद्व्यवहार, त्यागवृत्ति, महानता, आतिथ्य सत्कार प्रवृत्ति देखकर वड़े प्रभावित हुए। उनसे सत्संग के प्रसंग में श्रीदाता की चर्चा हो आई। श्री रामदास जी ने कहा, "मैं दाता को जानता हूँ। कुंभ मेले के अवसर पर मैंने प्रयाग में प्रभुदत्त जी महाराज के यहाँ दर्शन किये हैं। समाचारपत्रों में भी उनके वारे में प्रकाशित

लेख देखा था। आप उन्हे यहाँ ला सके और हमें दर्शन करा दें तो वडी कृपा होगी।"

महापुरुषो की इच्छाएँ कभी अपूर्ण होती नही। उनके तो वेतार लगे होते है। उनके लिए तो सकल्प मात्र ही पर्याप्त है। उधर श्री रामदास जी की श्रीदाता के दर्शनो की इच्छा हुई, इधर श्रीदाता उनसे मिलन की इच्छा करने लगे। श्री शर्मा जी के माध्यम से वनोकर जाने की योजना वनी। अनेक वन्दे साथ चलने को तैयार हो गये। भरतपुर में आयी वाढ के कारण मार्ग सव खराव पडे थे फिर भी दिनाक २३–८–७७ को वनोकर के लिए जयपुर से वस रवाना हुई। श्रीदाता के साथ यात्रा करने का अवसर भाग्यशालियो को ही मिलता है। जयपुर से चलकर श्री भर्तृहरि जी की धूनी पर दिन भर ठहरना हुआ। हँसी-मजाक और सत्सग के वातावरण में पूरा दिन इस प्रकार व्यतीत हो गया मानो कुछ ही क्षण वीते हो। अलवर से आगे चलने पर सडकों पर गड्ढे थे और यत्र-तत्र पानी वह रहा था। ड्राईवर वडी कठिनाई से वस चला पा रहा था। अँधेरी रात्रि अलग। एक स्थान पर तो सडक पर अच्छी मात्रा में पानी वह रहा था। काफी समय तक रुकना पडा। ज्यो त्यो कर रात्रि के लगभग दो वजे वनोकर पहुँचे। पूरा गाँव प्रगाढ निद्रा में था। मन्दिर में भी पूरी शान्ति थी। वस और कार की आवाज से महाराज के शिष्यो की निद्रा टूट गई। एक शिष्य ने स्वामी जी को जगा दिया। श्रीदाता के पधारने की सूचना से वे अत्यधिक प्रसन्न हुए। वात की वात में सभी लोगो के सोने की व्यवस्था हो गई।

स्वामी जी के कई शिष्य है। चार वजे सभी शिष्य उठ वैठे। स्नानोपरान्त कुछ तो आश्रम की सफाई करने लगे और कुछ माईक पर भजन वोलने लगे। प्रभाती भी वोली गई। आवाज पूरे गाँव और दूर दूर के क्षेत्र तक पहुँच रही थी। उषाकाल, वातावरण का शान्त होना, स्वर की मधुरता और देववाणी में वोली जाने वाली प्रभाती, उसके प्रभाव क्या कहना? सभी लोग उठ वैठे और लगे प्रभाती का आनन्द लेने। अन्धेरा होने से शौच आदि से निवृत्त

तो नहीं हो पाये किन्तु देववाणी में बोले जाने वाले पदों का आनन्द लेते रहे। लगभग दो घण्टे तक यह कार्यक्रम चलता रहा।

प्रभात होते ही श्रीदाता एवं अन्य शौचादि से निवृत होने जंगल में चल दिये। श्रीदाता के साथ शिव सिंह जी आदि कुछ लोग थे। श्रीदाता ने फरमाया, "रात्रि को आकर सन्तों को कष्ट दिया। रात्रि विश्राम मार्ग में ही कर शौचादि से निवृत होकर ही सन्तों की सेवा में आना चाहिये था। हम गृहस्थी है, सन्तों की सेवा करनी चाहिए या सन्तों से सेवा लेनी चाहिए। अब भी हमारा कर्तव्य है कि यहाँ से जल्दी ही प्रस्थान कर दें। स्वामीजी अस्वस्थ हैं उन्हें अधिक कष्ट देना उचित नहीं।" श्रीदाता के मन्दिर मे पधारते-पधारते आठ बज गये। साथी लोगों को चलने की तैयारी हेतु कह दिया गया किन्तु आरती हो रही थी अतः कुछ लोग वहाँ ठहर ही गये। पूजा के बाद लोग स्वामीजी के पास आकर बैठ गये। श्रीदाता भी वहीं स्वामी जी से आज्ञा लेने पधार गये। स्वामी जी ने खड़े होकर श्रीदाता का स्वागत किया और उनके बैठ जाने पर स्वयं भी बैठ गये। स्वामी जी ने कहा, "आज तो मेरे घर भक्तों के साथ स्वयं भगवान पधारे हैं। कितने आनन्द का विषय है। आपके दर्शनों की प्रबल इच्छा थी। वृद्ध हूँ अतः आने में असमर्थ था। आपने बड़ी कृपा की।" श्रीदाता ने उन्हें आगे बोलने का अवसर न देते हुए बोले, "आप तो महान् हैं। हम तो आपके बच्चे हैं। आपको बेवक्त आकर कष्ट दिया। आप अस्वस्थ हैं। इस समय भी आपको ज्वर है। आप आराम कीजिये और हमें जाने की आज्ञा दीजिये। आपके दर्शन हो गये। हमें तो अमर निधि मिल गई। अब हुक्म हो जाय।" यह सुनकर स्वामीजी कुछ उदास हो गये। वे बोले, "भगवन, शरीर तो व्याधि मन्दिर है। कोई न कोई बीमारी लगी ही रहती है। इससे क्या? जो आनन्द प्रभु कृपा से मिल गया है उसे कैसे छोड़ दिया जाय। अभी भोजन तैयार हो जाता है। सभी लोग आनन्द से भगवान का प्रसाद लें और फिर पधारें।"

श्रीदाता... "बावजी! आपकी अपार कृपा है। जो कुछ मिल

रहा है आपकी कृपा से ही मिल रहा है। आपका दिया हुआ ही खा रहे हैं। बस अब आज्ञा हो जाय।"

उस समय तक अनेक गाँव वाले आ गये। साथ में दूध व अनाज था। वे भी प्रसाद लेकर ही जाने की प्रार्थना करने लगे। श्रीदाता ने अपने तोर-तरीके से सभी को मना लिया। इस पर स्वामी जी बोले, "भोजन न सही नाश्ता तो करके ही जाना पड़ेगा।" उत्तर की कौन प्रतीक्षा करे? फौरन एक शिष्य को नाश्ता तैयार कराने के लिए हुक्म दिया। सभी देखते ही रह गये।

श्री सत्यनारायण जी अपने साथियो सहित भजन बोलने लगे। स्वामी जी व गाँववालो ने बडा रस लिया। बीच बीच में श्रीदाता भजनों में आये हुए पदो की व्याख्या कर देते थे। आनन्द की समा बन गई। स्वामी जी और गाँववाले भाव विभोर होकर बडे प्रेम से भजन सुनते रहे।

नाश्ते के बाद वहाँ से बड़े प्रेम से विदा हुए। स्वामी जी, उनके शिष्यों व गाँववालों की आखो में प्रेमाश्रु थे। उस समय का दृश्य ही अद्भुत था। श्री रामदास जी काफी वृद्ध हैं। भ्रमण होता नहीं। अब बहुधा बीमार भी रहते हैं। श्रीदाता के प्रति उनका स्नेह अपार है। बीच में एक बार अस्वस्थ होने पर श्रीदाता कार द्वारा बनोकर पहुँचे। उनकी बीमारी की पुकार हुई और उन्होंने स्वास्थ्य लाभ किया।

अक्टूबर सन् १९८५ में भी वे अस्वस्थ हो गये। उन्होने श्रीदाता के दर्शनो की इच्छा की। श्रीदाता दयालु जो ठहरे। सुनते ही रवाना हो गये। साथ में जयपुर के भक्त जन थे। श्री शिवसिंह जी भी साथ थे। तीन कारें थीं। दिन के २-३० बजे श्रीदाता बनोकर पहुँचे। श्री स्वामी जी कितने ही अस्वस्थ क्यों न हो वे चार बजे स्नान कर आराधना में बैठ जाते थे। उस दिन उन्होंने २-३० बजे ही स्नान कर लिए। आराधना में बैठ ही रहे थे कि शिष्य ने कमरा खटखटाया। कमरा खोलने पर बाहर दाता को खडे पाया। उन्होंने कहा, "मैं जिसकी आराधना के लिए तैयार हुआ हूँ वह तो स्वयं ही यहा पधार गये हैं। अब मैं किस की

आराधना करूं।" श्रीदाता ने आगे बढ़ कर चरण स्पर्श करना चाहा। उन्होंने बीच में ही हाथ पकड़ कर मस्तक पर लगा दिया। मातेश्वरी जी ने आगे बढ़ कर चरणों मे प्रणाम किया। स्वामी जी ने उन्हें रोकते हुए कहा, "माँ! तू तो जगत् जननी है। जगदम्बा है। मैंने तो पहले से ही तेरा मन्दिर बना रखा है। तेरा बच्चा हूँ। कृपा रख।" सभी साथियों को स्वामी जी ने कहा, "आप लोग परम सौभाग्यशाली हैं, कि आप पर श्रीदाता की अपार कृपा है। सेवा में रहने का आपको मौका मिल रहा है। आप धन्य हैं।"

प्रसाद तैयार होने पर वहाँ लाया गया। हल्वे का प्रसाद था। श्रीदाता को एक दोने में नजर किया गया। श्रीदाता ने अपने पास रख लिया। स्वामी जी ने भी प्रसाद माँगा व बीमार होते हुए भी प्रसाद ग्रहण किया। उनके आग्रह पर श्रीदाता और मातेश्वरी जी ने भी प्रेम से प्रसाद लिया, यद्यपि श्रीदाता हलुआ यदाकदा ही आरोगते हैं। श्रीदाता में यही बड़ी विशेषता है कि प्रेम से दी हुई वस्तु को वे अस्वीकार नहीं करते हैं। २-३ घण्टों तक सत्संग होता रहा। रवानगी के वक्त उनकी शोचनीय स्थिति हो गई। उन्होंने श्रीदाता से निवेदन किया, "मैं गरीब हूँ। मेरी गरीबी पर ध्यान नहीं दिया जाय। आप महान् है। महानता ही रखी जाय। मुझ गरीब पर दया की जरूरत है। और दर्शन देने की कृपा करें।" चलते वक्त श्रीदाता ने उनके चरण छूना चाहा। स्वामीजी ने बीच ही में हाथ पकड़ कर मस्तक पर रखना चाहा। उनका कहना था कि ये हाथ मस्तक पर रहना चाहिये। उन्होंने मस्तक पर हाथ को रखने की कोशिश की। श्रीदाता ने हाथ छुड़ा लिया। इस पर वे रो दिये और बोले –

> बाह छुड़ाये जात हो निबल जानि के मोहिं।
> हृदय ते जब जाओगे सबल जानूँगा का तोहिं॥"

उनको अश्रु बहाते छोड़ श्रीदाता वहाँ से रवाना हो गये। कितना प्रेममय वातावरण था। वर्णन करना संभव नहीं। जून सन् १९८६ के मध्य स्वामीजी अस्वस्थ हो गये। फेफड़े में खराबी बताई गई। जून के अन्त में उन्हें जयपुर अस्पताल में लाया गया। हालत ज्यादा

खराब हो गई । डाक्टरो को केसर की शका हुई । फेफडे का सेक प्रारम किया गया । उन्हे श्रीदाता के दर्शनो की इच्छा हुई । बेतार का तार छूटा । इधर श्रीदाता की पीठ में दर्द प्रारम हुआ । इस हेतु दि ५-७-८६ को भीलवाडा पधार गये व ६-७-८६ को जयपुर । सभी को आश्चर्य हुआ । जयपुर पहुँचने के पूर्व ही स्वय का दर्द गायब । स्वामीजी को दर्शन जो देना था । ७-७-८६ को प्रात अस्पताल में पधारना हुआ । श्री रामदास जी अत्यधिक प्रसन्न हुए । उन्होने फरमाया, ' यहाँ भी आप है और वहाँ भी आप है । रखोगे तो रह लेंगे और भेज दोगे तो चले जावेगे । यहाँ भी हूँ तो आपका हूँ । वहाँ भी रहूँगा तो आपका ही रहूँगा ।" कितने ऊँचे भाव थे । दो-तीन दिन से दाता के दर्शन को तडप रहे थे । दाता के दर्शन कर वे एक अबोध बालक की तरह रो पडे । उस दिन, दिन को उन्हे खून की बोतल चढाई गई । चिकित्सको की असावधानी से सेटिंग गलत हो गया । २-२० पर खून दिया गया । २-३० तक तो उनकी हालत गभीर हो गई । तत्काल खून देना रोका गया । गलती तो हो ही गई । नतीजा स्वामी जी के शरीर को भुगतना पडा । दि ८-७-८६ को श्रीदाता पुन अस्पताल में पधारे । हालत गभीर थी । देखा नही जा सका । दो मिनिट ही कठिनाई से बैठ सके । फिर भी प्रसन्न मुद्रा में श्रीदाता को विदा किया । स्वामीजी के शिष्य श्रीदाता के सम्मुख खूब रोये और प्रार्थना की कि इन्हे उठा लिया जाय, इनकी घबराहट देखी नही जा सकती । श्रीदाता ने उन्हे धैर्य बँधाया और कहा कि श्रीदाता को मजूर होगा वही होगा ।

अस्पताल में निरन्तर उनका स्वास्थ्य बिगडता गया । दिनाक १५-७-८६ को रात्रि को मिश्री मावा प्रसाद का भगवान के भोग लगाया । रात्रि को इच्छा हुई कि दाल के पकोडो का भगवान के भोग लगाया जाय । रात्रि को ही दाल की व्यवस्था कर प्रातः ही पकोडे बना भगवान के भोग लगाया व स्वय ने भी प्रसाद लिया । सध्या को देखते देखते ही उन्होने अपना यह नश्वर शरीर त्याग दिया ।

कितने महान् पुरुष थे बाबा। श्रीदाता के दर्शनों की इच्छा थी सो किये व संसार छोड़ चल पड़े। वह महान् आत्मा-परमात्मा में लय हुए। निम्बार्काचार्य पद की महान् गद्दी का एक महान् सन्त चला गया। उनके चले जाने से कई लोगों को महान् शोक हुआ।

○ ○ ○

निष्काम सेवा सफल सेवा

"चाची! देखो सब लोग दाता के प्रेम में कितने मस्त हो रहे हैं। कितने आनन्द से ये लोग झूम रहे हैं! कैसी कैसी अनुभूति इन्हे हो रही है। कितने प्रसन्न हैं! दाता की मस्ती में कितने मस्त हैं। ध्यान के बाद जब दाता इन्हे पूछते हैं तो विचित्र विचित्र अनुभूति को होना ये बताते हैं। इन्हें दिव्य दर्शन होते हैं। दिव्य आनन्द और दिव्य शान्ति की अनुभूति होती है। ये लोग बड़े भाग्यशाली हैं। एक ओर हमें देखो। हमें तो अब तक दाता के नाम और स्वरूप की कुछ अनुभूति हुई नही! वैसे तो घर का काम ही काम, ध्यान करने का समय ही नही मिलता। यदि थोडा बहुत कदाचित् मिल भी जाता है तो मन लगता ही नही। सोचा दाता के पधारने से घर के कामकाज से कुछ तो छुट्टी मिली, दाता के पास रहने से कुछ तो सत्सग लाभ होगा किन्तु यहाँ भी काम से फुरसत नही। काम का तो अन्त ही नही। सोचते हैं इस काम के बाद फुरसत मिलेगी व दाता के सत्सग में बैठेंगे किन्तु एक काम के समाप्त होते ही दूसरा काम! काम का तो अन्त ही नही। हमारा तो जीवन ही बेकार है। कितनी अभागिनें हैं हम!" एक सत्रह वर्ष की बालिका प्रभुनारायण जी की पत्नी जिन्हे सब 'चाची' कहते हैं, से कहती है। उसकी वाणी में तरलता है, आँखो में पानी है और स्वर में भारीपन है। पश्चाताप की पराकाष्ठा। एक हम-उम्र बालिका भी पास बैठी है। मौन किन्तु हृदय में उसी प्रकार की आँधी है। भाव एक से हैं।

चाची कहती है, "घबराओ नही बच्चियो। तुम्हारी सेवा की कोई तुलना नही है। नि स्वार्थ सेवा भगवान की सब से बडी पूजी है। वह कभी निष्फल जाती नही। सच्ची सेवा ही भगवान की सच्ची पूजा है। मस्ती से सेवा करो। तुम्हारी इच्छा भगवान पूरी करेगा। वहाँ देर है अन्धेर नही। सबको भगवान के दिव्य स्वरूप के दर्शन हो रहे हैं, यह दाता की अपूर्व कृपा है। उन्हें होने दो।

आप मस्ती से अपना काम करो । देखने वाला दाता है । तुम्हारे काम को कोई देखे या न देखे, तुम्हें कोई मतलब नहीं होना चाहिये । बस तुम तो अपने कर्तव्य का पालन करते रहो । यही सत्संग है और यही बड़ा ध्यान है । ”

यह बातचीत उस समय की है जब श्रीदाता अस्वस्थ थे व जयपुर में तुलसीमार्ग में बाबा भजनानन्द जी एवं चेतनानन्द जी के पास विराज रहे थे । जयपुर वाले भक्तों ने उस प्रवास में श्रीदाता की ऐसी सेवा की जिसकी समता का उदाहरण मिलना कठिन है । काकाजी प्रभुनारायण जी और चाचीजी की सेवाएँ तो बेमिसाल ही हैं । वे तो महान् हैं । श्रीदाता के साथ दस-पन्द्रह सेवक तो रहते ही थे किन्तु साथ ही हाल-चाल पूछने वालों की भीड़ ही लगी रहती थी । हाल-चाल पूछने वाले जो वहाँ आ जाते थे वे भी वापिस लौटने का नाम नहीं लेते थे । इस तरह वहाँ श्रीदाता के साथ रहने वालों की काफी संख्या हो गई ।

सब को भोजन की व्यवस्था की जिम्मेदारी जयपुर वाले भक्तों की विशेष रूप में काकाजी की थी । चाचीजी की संरक्षता में भोजन उसी भवन में बनाया जाता था । कई महिला सत्संगी और बालिकाओं का भोजन तैयार करने में योगदान रहता था । उन दिनों चाचीजी, एवं दो बालिकाएँ तो अठारह से बीस घण्टा प्रतिदिन काम करती थी । लगातार काम करने पर भी उनके काम में न तो शिथिलता आती थी और न अरुचि ही । जितनी लगन, निष्ठा एवं परिश्रम से वे सेवा करती थी उतनी विरले ही कर पाते हैं । उनपर तो प्रभु कृपा ही थी वरना आज की पढ़ी लिखी बालिकाओं से इतनी अपेक्षा करना सम्भव नहीं ।

श्रीदाता के अस्वस्थ होते हुए भी उनके पास तो हरदम सत्संग चर्चाएँ चलती ही रहती थी । भक्तजन सत्संग में बैठते ही थे । अन्य माताएँ और बहनें भी समय निकाल कर श्रीदाता के पास बैठती थी । श्रीदाता के पास न बैठ सकने वालों में चाची एवं दो बालिकाएँ ही थी । उनके पास समय ही कहाँ था कि वे श्रीदाता के पास बैठ

बैठकर भजन, ध्यान और कीर्तन करती। वे तो निरन्तर व्यवस्था सम्बन्धी कार्य में, बुहारी निकालना, सफाई करना, भोजन बनाना, बर्तन साफ करना आदि आदि कार्यों मे ही रत रहती थी। दोनो बालिकाओ को सत्सग का अवसर नही मिल पाता था इससे वे दु खी अवश्य रहती थी किन्तु चाची के समझाने पर अपने आप में सन्तुष्ट थी। ध्यान में भिन्न-भिन्न व्यक्तियो के होनेवाले भिन्न-भिन्न अनुभवो को सुन सुन कर वे अपने हृदय को अवश्य कोसा करती थी। एक बार तो उन्होने अपने उद्‌गार चाची के सामने प्रकट ही कर दिये। इतना कुछ होते हुए भी उन्होने अपने कार्य में कभी अरुचि नही दिखाई, न दायित्व से कभी मुँह मोडा और न अपने कार्य म कभी चूक ही आने दी। एक माह पश्चात् श्रीदाता के स्वास्थ्य में सुधार आने पर वे दाता-निवास पधार गये।

कुछ ही दिनो बाद पुन स्वास्थ्य में कुछ खराबी होने से जयपुर पधारना हो गया। इस बार भी बाबाओ के पास ही विराजना हुआ। भीलवाडा, अजमेर आदि कई स्थानो के लोग श्रीदाता के साथ थे। नवम्बर का महीना था। जो व्यवस्था पिछली बार जुलाई में हुई थी, वही व्यवस्था इस बार भी थी। भोजनालय मे काम करने वालो में मुख्य रूप से चाची एव दोनो बालिकाएँ थी। इस बार भी उन्हे अन्य लोगो की तरह सत्सग का अवसर ही नही मिला। श्रीदाता तो अन्तर्यामी है। वे तो घट घट की जानने वाले है। जिस निष्ठा-लगन एव परिश्रम से ये बालिकाएँ काम कर रही थी, उनसे क्या छिपा था ? वास्तव मे देखा जाय तो सच्चा सत्सग तो उन तीनों का ही था। सर्दी की, निद्रा की, थकावट की परवाह न कर निरन्तर वे तो भगवान और भगवान के वन्दो की सेवा कर रही थी। यह सेवा तो अमूल्य थी ही, निष्फल जाने का प्रश्न ही नही।

एक रात्रि को श्रीदाता विश्राम कर रहे थे। पास ही समुद्र-सिंह जी और कुछ भक्तजन बैठे थे। माताएँ और अन्य कुछ बहनें भी पास ही बैठी थी। सभी ध्यान में मस्त थे। उधर चाचीजी एव दोनों बालिकाएँ रसोईघर में बर्तन साफ कर रही थी। उनके सामने साफ करने के लिए ढेरो बर्तन थे। हाथ तो उनके बर्तन साफ

करने में थे किन्तु उनका मन तो श्रीदाता के चरणों में था। काम करते-करते एकाएक उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि श्रीदाता जिस कमरे में विराज रहे हैं उस कमरे से तेज प्रकाश आ रहा है। धीरे धीरे प्रकाश तेज होता गया। वे तीनों प्रकाश में नहाने लगी। वे भौंचक्की हो गई। प्रकाश धीरे धीरे बढ़ता ही जा रहा था। अब उनके लिए देख पाना कठिन हो गया। उनके नेत्र प्रकाश की चकाचौन्ध में स्वतः बन्द हो गये। उन्हें समझ आयी कि दाता की सहज कृपा हुई है। वे प्रेम से गद्गद् हो गई। उनका शरीर रोमांचित हो उठा और नेत्रों से अविरल अश्रुधारा वह चली। बर्तन साफ करते करते ही वे ध्यानस्थ हो गई। यह स्थिति लगभग एक घण्टे तक बनी रही। उनका शरीर हल्का होकर तरोताजा हो गया। उनका हृदय आनन्दोल्लास से परिपूर्ण हो गया। वे प्रेम में उन्मत्त होकर दूने उत्साह एवं वेग से काम करने लगी। उनका जन्म सफल हो गया। वे धन्य हुई। उन्होंने जो कुछ किया उसका प्रतिफल उन्हें मिल चुका। निष्काम कर्म सच्ची साधना और अन्ततः सुखदसिद्धि में परिणित हुआ।

अगले दिन प्रातः जब सभी भक्तजन बैठे थे तब श्रीदाता ने उन तीनों को बुलाया और पूछा, "रात को कैसा रहा? तुम मेरे दाता को दोष देती रही हो, अब तो नहीं दोगी। तुम दुःखी थी कि मेरे दाता की महर तुम लोगों पर नहीं होती है। देखी दाता की महर। अब तो राजी हो।" यह सुन कर तीनों ही रोने लगी। रूँधे गले से उन्होंने कहा, "दाता तो बड़े दयालु है। हम तो नितान्त अज्ञानी व पशु हैं। हमारी क्या सामर्थ्य जो आपकी कृपा-लीला को समझ सकें। आपकी अपार कृपा है। आप तो महान् है।" उपस्थित लोग कुछ भी नहीं समझ पाये। उन्होंने जिज्ञासा के वशीभूत होकर पूछा, "क्या बात है।" श्रीदाता ने कहा, "चाची से पूछो कि क्या बात है?" पहले तो चाची चुप रही किन्तु जब श्रीदाता ने पुचकार कर सभी बात बता देने को कहा तो उन्होंने रातवाली सारी घटना कह सुनाई। सभी लोग सुन कर आनन्द विभोर हो गये। सभी प्रसन्न होकर उनकी सेवा और उनके भाग्य की सराहना करने लगे।

श्रीदाता ने फरमाया, "दाता दूर नही है। जो मन लगा कर नि स्वार्थ भाव से सच्ची सेवा करता है, उसकी सेवा कभी व्यर्थ नही जाती है। सेवा में दाता ही तो है। इन बाइयो पर दाता की कृपा हो गई तो क्या बडी बात है। यह तो उसकी महर है। इन्होने किस नि स्वार्थ भाव और सच्चे प्रेम मे मेरे दाता की और उसके बन्दो की मेवा की है, वह सब क्या दाता से छिपा है? क्या कोई इतनी सेवा कर सकता है। दाता महर ही क्या करे? इनकी सेवाएँ ही इतनी है, इनका प्रेम ही इतना है कि इनके सकेतो पर वह नाच सकता है। वह तो इतना दयालु है कि बन्दा यदि उसके लिए लेश मात्र भी झुकता है तो वह पूरा का पूरा झुक जाता है। बन्दे का झुकाव पूरे प्रेम, पूरी लगन एव पूरी निष्ठा मे होना चाहिये।

यह है सच्ची सेवा का फल जो श्रीदाता ने हमें बताया। बख्तावरमल जी और सूझा जी साधारण व्यक्ति थे। एक खाती और दूसरे कुभावत। वे निरे अपढ व देहाती थे किन्तु थे उच्च कोटि के भक्त। अपनी सेवा से ही उन्होने दाता को वश में कर रखा था। दाता की उन पर बडी कृपा थी। यह दाता की कृपा ही थी कि वे जो मुँह से शब्द निकालते वे सत्य हो जाया करते थे। सूझा जी बहुत गरीब थे किन्तु परोपकारी इतने थे कि उनके पास जो कुछ भी होता वह गरीबो की सेवा में लगा देते। खुद सदैव नक्द नारायण ही रहते। उनको स्वय को भूखा रहना पडे इसकी उन्हें चिन्ता नही। उनकी इस सेवा प्रवृत्ति से ही श्रीदाता की उन पर महर हुई। एक समय की घटना है। उनकी लडकियो की शादी थी। घर मे विशेष- कुछ था नही। थोडा बहुत जो कुछ बटोर सके उससे भोजन की तैयारी की। श्रीदाता को भी न्योता दे आये। मेहमानो और बरातियो की सख्या भोजन की मात्रा से, कई अधिक थी। श्रीदाता का पधारना हुआ नही। भोजन का समय हो गया। उसने आव देखा न ताव, रसोईघर का ताला लगाकर श्रीदाता को बुलाने चल दिया। नान्दशा उसके गाँव से चार मील दूर है। जाकर बोला, "भगवन! आप यहाँ विराज रहे हैं और वहाँ तो दल-बादल आ गया। नरसी महता वाली बात हो गई है। अन्न तो

थोड़ा है और धगाना ज्यादा है। प्रत्येक के हिस्से में एक एक ग्रास भी आना कठिन है। अब आप ही जानें। जाकर संभालो तो काम चल सकता है अन्यथा हँसी होगी तो आपकी होगी।" गजब की निष्ठा थी। श्रीदाता को वहाँ पधारना ही पड़ा। वहाँ जाकर देखा कि लोगों की भारी भीड़ लगी है। अनेक स्त्री-पुरुष और बालक भोजन की प्रतीक्षा में है। श्रीदाता ने सभी को एक साथ खेतों में बिठा देने की आज्ञा दी। भोजन परोसा गया। सभी ने मस्ती से भोजन किया। दाता की कृपा से भोजन मे इतनी वृद्धि हुई कि साथ बाँध देने पर भी कई दिन भोजन चलता रहा। अद्भुत चमत्कार था। उसका सच्चा प्रेम, नि:स्वार्थ सेवा, निष्ठा और सच्ची लगन के कारण प्रभु को वहाँ जाकर सभी काम करना पड़ा। आज भी श्रीदाता सूझा बा का बड़े प्रेम से नाम लेते हैं और दोनों ही भक्तों की अनन्यता की बातें लोगों को बड़े चाव से सुनाया ही करते हैं। कहते है, "बगतू और सूझा बा तो बगतू और सूझा बा ही थे। उनकी समता नही।"

नान्दशा के पास ही एक गाँव है नारायण खेड़ा। वहाँ एक ब्राह्मण और उसकी पत्नी बड़ी सेवाभावी थी। श्रीदाता के चरणों में उनका अतीव प्रेम था। दाता को वे श्रीकृष्ण के रूप में ही देखते थे। आये हुए की सेवा करना और दाता के दर्शन करना उनका मुख्य कार्य था। ब्राह्मण की पत्नी का नाम 'रामी' था। वृद्धा होने पर लोग उसे 'रामी माँ' कहने लगे। वह श्रीदाता को 'साँवरिया' कहा करती थी। उसकी भक्ति इतनी ऊँची थी कि स्वयं श्रीदाता उसके संकेतों पर नाचा करते थे। उसके घर में गायें और भैंसें खूब थी। वह मक्खन इकट्ठा करती और कहती, "यह मक्खन तो मेरे साँवरिया के लिए है। मैं उसको खिलाऊँगी।" एक दिन उसके यहाँ एक साधु आया। उसने मक्खन खाने को माँगा। सेवा परायण माँ ने उसे बड़े प्रेम से मक्खन खिलाया। साधु मक्खन खाकर चला गया। दूसरे दिन रामी माँ नान्दशा गई। श्रीदाता ने कहा, "रामी माँ! कल तुमने मेरे दाता को मक्खन खिलाया। मेरे दाता की कुछ और भी खाने की इच्छा थी किन्तु तुमने मक्खन के

अलावा कुछ भी नही खिलाया।" इस पर रामी माँ बोली "मेरे साँवरिया की तो छलने की आदत है। छलिया जो ठहरा। तेरी आदत चोरी चोरी आने की है। तुझ से कौन पार पा सकता है।" ऐसी थी दाता की कृपा उस माँ पर। माँ ही कहा करती थी कि साँवरिया की वजह से उसे चारो धामो के दर्शन हुए हैं। साँवरिया ने उस पर पर कई कृपायें की है। वह तो बडा ही दयालु है।

श्री समुद्र सिंह जी भी महान् भक्त एव प्रभु भक्तो के सेवक थे। उनकी सेवा के कारण ही श्रीदाता की उन पर अनन्त कृपा रही। श्रीदाता ने महर कर उन्हें समदर्शी बना दिया। ऐसे थे भगवान के सेवक। सच है जो भगवान की नि स्वार्थ भाव से सेवा करता है, भगवान उसके स्वय ही सेवक बन जाते हैं।

○ ○ ○

संकीर्णता समाज के लिए घातक

श्रीदाता सदा ही कमजोर वर्ग और गरीबों के सहायक रहे हैं। उन्हें सहारा दिया, प्रोत्साहन दिया, इसलिए वे दीनबन्धु हैं। उन्होंने इस संघर्ष को जीवन में भोगा है और उस पुरातनपंथी एवं संकीर्ण मनोवृत्ति वाले लोगों को पराजय का मुँह देखना पड़ा है। इसी संदर्भ में यह घटना श्रीदाता के समाज सुधारक व्यक्तित्व पर प्रकाश डालती है।

सन् १९७७ की वर्षा ऋतु, रिमझिम रिमझिम वर्षा कई दिनों से चल रही थी। चारों ओर पानी ही पानी। ऐसे वातावरण में भींगते हुए दो प्राणी दाता-निवास पहुँचते हैं। उन्हें श्रीदाता के दर्शन करने में कोई प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। लगभग दिन के ग्यारह वजे थे। उन दोनों को देखकर श्रीदाता ने फरमाया, "कैसे आना हुआ ?" "यह यात्रा दाता, पूरे स्वार्थ से भरी है। दाता का हुक्म चाहिए। भारी संकट में उलझ गया हूँ। प्रभु का आदेश लेने आये हैं।" आगन्तुक गद्गद् होकर बोलता है।

आगन्तुक पति-पत्नी भीतर के वरामदे में वैठ जाते हैं। श्रीदाता, अन्नपूर्णा मातेश्वरी, कैलास वहन व अन्य एक-दो महिलाएँ उपस्थित हैं "आज सुवह ही टेलीफोन से तार झनझनाये थे। माका राम ने हरेहर (भोजन) भी जल्दी कर लिया। वैसे हरे हर देरी से होती है। वोलो सारी वात वताओ।" श्रीदाता अच्छे मूड़ में फरमाते हैं।

"दाता, लड़की की सगाई आपकी कृपा से हो गई। पार्टी भी अच्छी मिल गई। परन्तु गाँव के भाई-वन्ध व समुदाय वाले सभी नाराज हो गये हैं। जाति से वाहर निकालने की धमकी दे रहे हैं। वे कहते हैं कि लड़के वाली पार्टी 'दस्सा' है। हमारी जाति का नहीं है। वहुत वदनामी कर रहे हैं। यह रजिस्टर्ड पत्र भी धमकी का भेजा है। इसमें सभी के सामूहिक हस्ताक्षर है ...।" आगन्तुक कहता है।

श्रीदाता हँस पड़ते हैं। हँसी में ऐसे भाव कि यह तो होता ही आया है–सदियों से। पत्र भी स्वयं श्रीदाता चश्मा लगा कर पढ़ते हैं और गम्भीर बन जाते हैं। यह गंभीरता क्षणिक रहती है। फिर वही सामान्य भाव। वे फरमाते हैं, "ये लोग अबोध हैं। किसी को आराम से जीते देख नहीं सकते। दुनिया देखी नहीं। प्रभु के दरबार में यह सब प्रपंच फालतू हैं। दाता की लीला बड़ी विचित्र है। भाका राम के साथ भी यही हुआ था। यह तो उसके मुकाबले कुछ भी नहीं है। गाँव के ठाकुर ने सारे ठाकुरों को बुलाया था। प्रस्ताव पास किया था। गाँव की सभी कौमों को डूँडी पिटवा कर कहा गया कि जो दाता के घर जावेगा वह दण्डित किया जावेगा। यह सब होता आया है। प्रपंची और मूर्ख लोग अभी भी संकीर्णताओं में जकड़े हुए हैं। ये बातें बड़ी घातक हैं। हिन्दू जाति इन संकीर्णताओं में बँट रही है और छिन्नभिन्न हो रही है। पिछड़ती जा रही है। समय कहाँ से कहाँ पहुँच गया है। मानव मानव एक है। ये ऊँच-नीच के भेद ही दु:ख के कारण हैं। शहरों में और अन्य प्रान्तों में अन्तरजातीय विवाह हो रहे हैं और सफल हो रहे हैं। मेरे दाता के पास ऐसे अनेक विवाहों की पुकारें हुई हैं।" श्रीदाता विस्तृत विवेचन करते जाते हैं।

कुछ मौन के बाद श्रीदाता आगे फरमाते हैं, "लड़की की क्या इच्छा है?"

"हुक्म! लड़की ने कहा है कि श्रीदाता का जो आदेश मिल जायेगा, वही मुझे मान्य होगा।" आगन्तुक महिला कहती है।

श्रीदाता फरमाते हैं, "जो दाता के आसरे हो जाता है उसका बेड़ा वही पार लगाता है।" उपस्थित एक कन्या को सम्बोधित करते हुए हास्य मुद्रा में फरमाते हैं, "देखा! शहर की पढ़ी लिखी लड़की दाता के हुक्म में चल रही है। तुम थोड़े दिन शहर हो आओ, दिमाग ही बदल जाये।" इस बात पर वह लड़की शरमाती है, और हँसी का ठहाका वातावरण को बोझिलपन से मुक्त कर देता है।

आगन्तुक व्यक्ति थे विनोद सोमानी 'हँस' और उनकी पत्नी। विनोद सोमानी अजमेर में इससे पूर्व मार्गदर्शन हेतु श्री चाँदमल जी जोशी से अनेक बार मिले थे। श्री जोशी जी ने कहा था, "आप इन दुनिया वालों की परवाह न करो। कोई सच्चा नहीं है। यह सब ईर्ष्या के कारण है। हर परिवार में कमजोरियाँ हैं। आप दाता का आदेश लेकर डटे रहो। सभी स्वतः झुक जावेंगे। आप स्वयं समाजसेवी लेखक हो, फिर डरना क्या?"

इसी प्रेरणा से वे दोनों श्रीदाता के दरबार में इस गुत्थी को लेकर पहुँचे थे। श्रीदाता ने कहा, "दाता का ही आसरा सबसे बडा है और सब ठीक है। सिर्फ तुम्हारे खिलाफ उठे बवण्डर की बात रह जाती हैं "

श्री विनोद, "इस पत्र का कोई उत्तर दिया जाय या नहीं।"
"क्या जरूरत है रे। इसका उत्तर तो मेरे दाता ही देंगे।" श्रीदाता संक्षिप्त सा उत्तर देते हैं।

अन्नपूर्णा मातेश्वरी उन दोनों को फुल्के परोसती हैं। श्रीदाता मजाक करते हैं कि "आप लोग पुड़ी लाये हो, हमारे यहाँ तो फुल्के हैं।" लिंग भेद पर यह हास्य ठहाकों में मिल जाता है।

आदेश मिल जाता है कि जो दाता की कृपा से हुआ है सो ठीक है। श्री विनोद और उनकी पत्नी को आदेश मिलता है कि इस बवण्डर से मुक्ति हेतु पुकार कर लो। पुकार होती है। प्रभु का गंभीर विवेचन व समाज के प्रति विस्तृत विश्लेषण सुनकर वे दोनों हल्का महसूस करते हैं। बरसती वर्षा मे ही वे आनन्द का आह्लाद लेते कैलास बहन को साथ लेकर अजमेर के लिए लौट पड़ते हैं।

○○○

वृन्दावन की यात्रा

वृन्दावन श्रीदाता के मन को मोहित करने वाला है। वृन्दावन के लिए अनेक वार श्रीदाता ने फरमाया कि वृन्दावन तो वृन्दावन ही है अत, नवम्बर मन् १९७७ में जब प्रोफेसर रघुवशी ने मथुरा-वृन्दावन पधारने के लिये अर्ज की तो तत्काल श्रीदाता की स्वीकृति मिल गई। एक वस मे कई भक्तजनो के साथ श्रीदाता का पदार्पण मथुरा-वृन्दावन हुआ।

मथुरा भगवान श्रीकृष्ण की जन्मस्थली और लीलाभूमि है। इसके लिए स्वय भगवान ने फरमाया है -

न विद्यते हि पाताले नान्तरिक्षे न मानुषे।
समाने मथुरायाः हि प्रिय मम वसुन्धरे ॥
सा रम्या च सुशस्ता च जन्म भूमिस्तथा मम।

(वाराहपुराण)

मथुरा का प्राचीन नाम मधुरा या मधुवन है। द्वापर में भगवान कृष्ण ने इस नगरी में अवतार लिया था किन्तु यह स्थान तो आदि काल से ही बडा पावन माना जाता रहा है। भगवान नारद जी ने ध्रुव को यह कह कर 'पुण्य मधुवन यत्र सान्निध्य नित्यदा हरे' ही मधुवन में भगवत् आराधना की राय दी थी। यही वह स्थान है जहाँ भक्तराज ध्रुव को भगवान के दर्शन हुए थे। उस समय यह मधुवन के रूप में था। बाद में मधु नामक दैत्य ने मधुरा या मधुवन नगर बसाया। यही मथुरा शत्रुघ्नजी की राजधानी भी रही थी।

मथुरा से ६ मील उत्तर में वृन्दावन है। वृज मण्डल के अन्तर्गत बारह बन है। जिनमें वृन्दावन एक है। इसको पृथ्वी का परमोत्तम तथा परम गुप्त भाग कहा गया है। वृन्दावन पूर्ण ब्रह्मसुख का आश्रय है। इसके बारे में अधिक क्या कहा जाय, यहाँ की धूलि के स्पर्श मात्र से ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है -

मुक्ति कहे गोपाल सूं, मेरी मुक्ति बताय ।
ब्रजरज उड़ मस्तक लगे, मुक्ति मुक्त हो जाय ।।

मथुरा-वृन्दावन से तात्पर्य पूरा मथुरा-मण्डल या ब्रज मण्डल से है जिसका विस्तार चौरासी कोस बताया गया है । मथुरा ब्रज के केन्द्र में है । ब्रज में स्थित तीर्थों में कहीं भी जाना हो तो प्राय. मथुरा होकर ही जाना पड़ता है । मथुरा के चारों ओर तीर्थ हैं । ब्रजभूमि ब्रजभूमि ही है । ज्योंही बस ने ब्रजभूमि में प्रवेश किया श्रीदाता भाव-विभोर हो उठे । भक्त लोग कीर्तन कर रहे थे । धीरे धीरे श्रीदाता समाधिस्त हो गये । मथुरा में होती हुई बस रात्रि के नौ बजे पावन भूमि वृन्दावन में पहुँची । वृन्दावन मे ठहरने की अच्छी व्यवस्था है । अनेक धर्मशालाएँ, मन्दिर एवं आश्रम हैं जहाँ यात्रियों को हर प्रकार की सुविधाएँ मिल जाती हैं । पण्डित नवल किशोर जी की वजह से बस सीधी श्रोतमुनि आश्रम के बाहर पहुँची । भक्तजनों ने भगवान की जय बोल कर कीर्तन बन्द किया । कीर्तन बन्द होते ही श्रीदाता सामान्य स्थिति में आ गये ।

श्रोतमुनि आश्रम बहुत बड़ा है । चारों ओर कमरे और कमरों के बाहर बरामदा है । बीच में विस्तृत खुला स्थान है जिसमें अनेक पेड़ लगे हैं । बीचोंबीच दो मंजिल का भवन बना हुआ है । पण्डित नवल किशोर जी ने ज्योंही श्रीदाता के पधारने की सुनी नंगे पाँव दौड़े आये । दण्डवत के पश्चात् वे श्रीदाता को आश्रम में ले गये । चार कमरों में ठहरने की व्यवस्था कर दी गई । कुछ विश्राम के बाद सभी श्रीदाता के सम्मुख जा बैठे । डाक्टर शर्मा धीरे धीरे अपने साथियों से बात कर रहे थे । श्रीदाता ने उनसे पूछा, "डाक्टर साहब क्या बात है ?" डाक्टर साहब तत्काल बोले, "भगवन् ! ऐसा सुना जाता है कि बड़े बड़े सन्त लोग तीर्थों में तीर्थों को पवित्र करने आते हैं जिससे वहाँ का महत्व बना रहे । कुंभ के मेले में भी बड़े बड़े नामी-अनामी सन्त पधारते हैं और गंगा स्नान कर गंगा को पवित्र करते हैं ।" श्रीदाता, . . . "दाता ही जाने । उसकी लीला का जानने वाला वही है ।" यह कह कर श्रीदाता ने इस प्रसंग को वहीं समाप्त कर दिया । भक्ति पर श्रीदाता का

प्रवचन चल पडा। श्रीदाता ने श्री धनुर्दास की भक्ति का उल्लेख अपने प्रवचन में किया तथा बताया कि जो व्यक्ति भौतिक वस्तुओं या शरीर के प्रति सच्चा प्रेम कर सकता है वह निश्चय ही भगवान का प्रेमी भी हो जाता है। सौन्दर्य का उपासक उस परम सौन्दर्य की प्राप्ति सरलता मे कर सकता है।

वृन्दावन में चारो ओर से कीर्तन की आवाजे आ रही थी। वहाँ का वातावरण प्रभुमय ही था अत बडा आकर्षक था। भोजनोपरान्त जयपुर वाली पार्टी भजन बोलने लगी। मीरा और सूर के भजन बोले गये। शान्त और माधुर्य रस से परिपूर्ण भजनो ने सभी को आनन्द विभोर कर दिया। श्रीदाता तो ध्यानस्थ हो गये। चैनसिंह जी एव छ्यालीलाल जी एक कीर्तन का पता लगाने गये थे, वे बडी देर से लौटे और आश्रम का दरवाजा बन्द हो जाने से बाहर ही रह जाना पडा। वे दोनो रात्रि भर वृन्दावन की सडको पर विचरण करते हुए भिन्न-भिन्न मन्दिरो में होनेवाले कीर्तनो का आनन्द लेते रहे। प्रात जब लौट कर आये तो श्रीदाता ने हँसी के वातावरण में कहा, "चैना जी! रात को तो तुम्हारी रजाइयें ठण्डियाँ भर रही थी।" उन्होने रात्रि का विवरण श्रीदाता को कह सुनाया। उन्होंने अपने विवरण में यह भी बताया, "कीर्तन की ध्वनि चारो ओर से आ रही थी, अत लगता तो था कि कीर्तन कही निकट ही है किन्तु वहाँ पहुँचने में कई गलियो को पार करना पडा। बडा चक्कर लगाने पर वह स्थान मिला। वहाँ कुछ स्त्रियाँ कीर्तन कर रही थी। वे हम दोनो को बेसमय आया हुआ समझ गलत आदमी समझ बैठी और हमारे पीछे ही पड गई। बडी कठिनाई से पीछा छुडा पाये। वापिस आये तो द्वार बन्द मिला। क्या करते? फिर कोई हमें गलत समझ न बैठे अत रात्रि भर वृन्दावन की गलियो में चक्कर काटने ही रहे।" उनकी इस प्रकार की बातें सुन कर सभी हँसने लगे।

पण्डित जी श्रीदाता के पास आकर बैठ गये। श्रीदाता ने उनसे आश्रम के बारे में पूछा। उन्होंने बताया, "भगवन! इस आश्रम के निर्माता श्री गणेश्वर जी महाराज है। इस समय वे बाहर

पधारे हुए हैं। ये वही महाराज हैं जो कांकरोली यज्ञ मे पधारे थे।" श्रीदाता ने कहा, "उनके तो दर्शन हुए थे। वे तो अन्धे हैं।" शास्त्रीजी ने कहा, "हाँ भगवन! वे अन्धे हैं। जन्मान्ध होते हुए भी वे वेदों के प्रकाण्ड पण्डित हैं। सारे वेद उनके कण्ठस्थ हैं। उन्होंने वेदों का मुद्रण भी कराया है। इस आश्रम के बीचोंबीच यह जो पीली इमारत है वहाँ वेद भगवान की स्थापना की हुई है। उन्होंने 'वेदोपदेश-चन्द्रिका' नामक पुस्तक की रचना भी की है। वे बड़े विद्वान हैं।"

इस प्रकार की बातें हो ही रही थी कि एक ओर से लाउड-स्पीकर पर प्रवचन की आवाज आने लगी। श्रीदाता ने जानना चाहा कि यह प्रवचन कहाँ हो रहा है। विद्यार्थी श्री मिश्रा, जो शास्त्री जी के साथ ही आया था, ने बताया, "यह प्रवचन अखण्डानन्द जी महाराज के आश्रम में चल रहा है। वहाँ जगत्गुरु शंकराचार्य जी पधारे हैं। उन्हीं का यह प्रवचन है।" श्रीदाता वहाँ जाने हेतु उठ खड़े हुए। अन्य लोग साथ हो लिए। आश्रम के द्वार के बाहर निकले ही थे कि एक वृन्दावन की नारी ने श्रीदाता के चरण छूने का प्रयास किया। श्रीदाता दो कदम पीछे हट गये। इस पर उसने रोष भरे शब्दों में कहा, "मुझे चरण क्यों नहीं छूने दिया?" श्रीदाता ने नम्र शब्दों में कहा, "माई! माको राम तो छोटा सा है।" श्रीदाता कुछ और आगे बोलते किन्तु उसने बीच ही में रोककर-तुनककर कहा, "कौन छोटा है और कौन बड़ा है, इसकी तो मुझे पहचान है। महाराज जी! मैं भी ब्रज की गोपी हूँ। मुझे क्या बहकाते हो। ब्रज की गोपियाँ सब जानती हैं।" यह उलाहना सुन श्रीदाता ने अपने कान को हाथ लगा कर कहा, "इस मिट्टी का असर अभी तक नहीं गया। माका राम तो इमसे बहुत घबराता है।" यह सुन वह नारी मुस्करा दी और एक ओर चल दी। सभी आश्चर्य से उसे देखते रहे।

अखण्डानन्द जी का आश्रम बड़ा ही रमणीक था। एक बड़ा मन्दिर बाईं ओर को है। सामने वाला मन्दिर संगमरमर का बना हुआ है। उसी मन्दिर में प्रवचन हो रहा था। बाहर अनेकों संन्यासी

कुछ बैठे थे तो कुछ खडे थे। श्रीदाता ने उस मन्दिर में दूसरे द्वार से प्रवेश किया। मन्दिर के भीतर एक बडा सभा भवन है। एक सन्यासी जी का प्रवचन चल रहा था। उनके छत्र लगा हुआ था व दो युवक सन्यासी चँवर ढुला रहे थे। उनके पीछे तख्तो पर अनेक सन्त बैठे थे। कुछ सन्त नीचे भी बैठे थे। प्रवचन सुनने वाले अनेक भक्त-जन थे। श्रीदाता एक ओर फर्श पर जा बैठे। उन्हे नीचे बैठा देख तख्त पर बैठे सन्तो में हलचल मच गई। एक सन्त उनमें से उठे और श्रीदाता के पास आकर तख्त पर बिराजने के लिए अर्ज करने लगे। श्रीदाता के मना करने पर वे एक ओर से आसन उठा लाये। श्रीदाता आसन पर बैठते नही इसलिए हाथ जोड मना कर दिया। वे निराश होकर चले गये। श्रीदाता १५-२० मिनिट प्रवचन सुनते रहे। श्री शकराचार्य ही फरमा रहे थे, "काम, क्रोध, असत्य, लोभ, तृष्णा आदि विकार ही मनुष्य मात्र के महान् शत्रु हैं। ये शत्रु जीव को पनपने नही देते हैं। इन शत्रुओ पर विजय पाना जरूरी है। कामना और वासना में फँसा हुआ जीव इन शत्रुओ पर विजय प्राप्त करने में सफल नही होगा। इनसे बचने के लिए कामना और वासना का तो अन्त ही करना पडेगा। तन, मन, वचन द्वारा नित्य श्रीहरि के चरणकमलो का चिन्तन ही इन शत्रुओ के चगुल से छुडा सकता है।" इसी प्रसग को लेकर प्रवचन चल रहा था। वहाँ से उठ कर श्रीदाता मन्दिर में श्रीकृष्ण विग्रह के दर्शन करने पधारे। विग्रह बाल स्वरूप श्रीकृष्ण का नृत्य मुद्रा में था तथा सुन्दर जरी के वस्त्रो से सुसज्जित था। सगमरमर का बना वह विग्रह इतना मनमोहक है जिसको देखने में नेत्र अघाते नही। वह लावण्य रूप देखते ही बनता है।

लखि लावण्य अनूप रूप ससि-कोटि लजावै।
विविध वरन आभरन बसन भूषण छवि पावै ॥

बडी देर तक सब लोग मत्रमुग्ध से श्री विग्रह को देखते रहे।

हरिमुख निरखत नैन भुलाने।

लोग वहाँ से हटना नही चाहते थे किन्तु समयचक्र ने मजबूर किया। वहाँ से बाहर पधारने पर मन्दिर के बाहर बैठे सन्यासियों के बीच

कानाफूंसी होने लगी। एक ने दूसरे से पूछा, "कौन है?" दूसरे ने उत्तर दिया, "तूंही पूछ ले।" जिज्ञासा का होना स्वाभाविक ही है। श्रीदाता उनकी कानाफूंसी सुन कर खड़े रह गये। उन्होंने उन सन्तों को सम्बोधित कर कहा, "'मैं कौन हूँ' इस बात का पता नहीं है। इसीलिए तो दर-दर की खाक छान रहा हूँ। आप लोगों को पता हो तो बता दो।" यह सुन कर सन्त लोग संकुचित हो गये। वे श्रीदाता के निकट आकर खड़े हो गये। श्रीदाता ने फरमाया, "मैं कौन हूँ? इस बात का पता न होने से ही तो जीव भ्रमित होता है। प्रश्न साधारण नहीं है। इसके उत्तर खोजने में तो कई महापुरुषों ने तो अपने जीवन खपा दिये। वेद भी नेति नेति कह कर चुप हो गये। इस संसार में जो कुछ है वह एक ही वस्तु है और वही सत्य है। सत्य क्या है – जो कभी नाश को प्राप्त नहीं होता है। इस संसार में जो कुछ दिखाई देता है क्या वह सत्य है? सत्य नहीं है, कारण सभी वस्तुएँ नाशवान हैं, यह जगत नाशवान है, प्राणी मात्र नाशवान है, सभी वस्तुएँ नाशवान है। केवल मात्र दाता ही अविनाशी हैं, इसीलिए एक मात्र वही सत्य है अतः वही चिन्तनीय है। वही आदि, मध्य और अन्त है।" इस प्रकार श्रीदाता ने "मैं कौन हूँ" इस प्रश्न को उन्हें समझाने का प्रयास किया। सभी अवाक होकर सुनते रहे। 'ब्रह्म ही सत्य है' इस विन्दु पर जगद्गुरु श्री शंकराचार्य जी ने भी फरमाया था :–

सर्पादौ रज्जुसत्तेव ब्रह्मसत्तैव केवलम्।
प्रपञ्चाधाररूपेण वर्त्तते तद् जगन्नहि॥

(सर्प आदि में रज्जु–सत्ता की भाँति जगत् के आधार या अधिष्ठान के रूप में केवल ब्रह्म सत्ता ही है, अतएव ब्रह्म ही है, जगत नहीं।)

घटावभासको भानुर्घटनाशे न नश्यति।
देहावभासकः साक्षी देहनाशे न नश्यति॥

(घट का प्रकाश सूर्य करता है, किन्तु घट के नाश होने पर जैसे सूर्य का नाश नहीं होता, वैसे ही देह का प्रकाशक साक्षी भी देह का नाश होने पर नष्ट नहीं होता।)

न हि प्रपञ्चो न हि भूत जात
न चेन्द्रिय प्राणगणो न देह ।
न बुद्धिचित्त न मनो न कर्त्ता
ब्रह्मैव सत्य परमात्मरूपम् ॥

(यह जगत नही है, प्राणी समूह नही है, इन्द्रिय नही है, प्राण नही है, देह नही है, बुद्धि चित्त नही है, मन नही है, अहकार नही है, परमात्मा स्वरूप ब्रह्म ही सत्य है ।)

लगभग पन्द्रह मिनिट उन सन्तो को आनन्द-रस का पान करा श्रीदाता आगे बढे । ज्योही मन्दिर के बाहर पधारे एक महिला ने आगे बढ श्रीदाता के चरण छू लिए । श्रीदाता अपने चरण किसी को छूने नही देते । साथ के लोगो ने उसे डाँट दिया किन्तु यह महिला तो ब्रज की गोपिका जो ठहरी । उसने किसी की भी परवाह नही की । आगे बढ चरण-रज ले मस्तक पर चढा नाचने लगी । वह भाव-विभोर थी । श्रीदाता ने फरमाया, "माई ! इसमें क्या रक्खा है । क्या कोई जगह या कण उससे खाली है । सर्वत्र वही वह है । कमी है तो इतनी सी है कि हम उसे पहिचानते नही । वह तो अनन्त सागर है । उस सागर की एक बूद भी मिल जाय तो यह जीवन सफल हो जाय ।"

वहाँ से 'हरे कृष्ण, हरे राम' के मन्दिर में पधारना हुआ । यह मन्दिर अँग्रेज नवयुवको द्वारा निर्मित नवीन वास्तु-कला का अद्भुत नमूना है । मन्दिर के बाहर के मैदान में दो-तीन अँग्रेज युवक व कुछ युवतियाँ वैष्णव पोशाक में खडे थे । एक के हाथ में तुलसी की माला थी । अन्दर के आहाते में मन्दिर बना है जिसकी दीवारो और छतो पर सुन्दर चित्राकन हो रहा है । सामने तीन मण्डप है । एक में राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति, एक में चैतन्य महाप्रभु की मूर्ति और एक में सीता-राम का श्री विग्रह है । श्री विग्रह आकार में छोटे किन्तु सुन्दर और आकर्षक है । एक अँग्रेज युवक वहाँ बडी तन्मयता से मृदग बजा रहा था । प्रभुपाद का एक सुन्दर चित्र भी वहाँ है । मन्दिर के मुख्य द्वार के पास पुस्तको की एक बिक्री केन्द्र

है जहां कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी अनेक पुस्तकें मिलती हैं। वहाँ रहने वाले सभी अँग्रेज पुरुष और महिलाएँ शुद्ध हिन्दी में वात कर रहे थे। वे लोग अपने आप को वैष्णव वताते हैं। पास ही में एक ओर गौ-शाला है। मन्दिर का वातावरण वड़ा शान्त और चित्ताकर्षक था। अँग्रेजों की कृष्ण-भक्ति के प्रति रुचि देख सभी वड़े प्रभावित हुए। वाहर आने पर श्रीदाता ने फरमाया, "देखो! त्याग इसे कहते हैं। भौतिक-वादी कहे जाने वाले इन लोगों ने अपना सव कुछ छोड़ दिया है। देश, भाई-वन्धु, जाति, समाज, खान-पान आदि इन्होंने सव कुछ छोड़ दिया है और पूर्ण वैष्णव वन गये हैं। धोती और कुर्त्ता पहनते हैं। यह सव कुछ इन्होंने दाता को प्राप्त करने के लिए किया है। यह जरूरी नहीं कि दाता इन्हें मिल ही गये हों। किन्तु देखना यह है कि उसकी प्राप्ति हेतु कितना त्याग है? क्या आप लोग ऐसा कर सकते हैं? यहाँ के लोग तो पाश्चात्य संस्कृति के रंग में रंगे जा रहे हैं और पश्चिम वाले अपने वालकों को भारतीय संस्कृति के रंग में रंगने के लिए प्रयास कर रहे हैं। एक वड़ा होस्टल वना रहे हैं जहाँ रख कर अपने वच्चों को भारतीय रंग में रंग सकें। केवल शान्ति और आनन्द प्राप्ति के लिए ही तो यह सव कुछ हो रहा है।"

वहाँ से चल कर श्रीदाता वाँकेविहारी जी के मन्दिर में पहुँचे। मन्दिर संकरी गली में है। इसी गली में जगत प्रसिद्ध गायक तानसेन के गुरु हरिदास जी का जन्म-स्थल है। वहाँ उनका एक चित्र लगा हुआ है। उस चित्र को नमस्कार कर फिर वाँकेविहारी जी के मन्दिर में पहुँचे। वाँके विहारी जी के दर्शन प्रति आधा मिनिट में होते हैं। यह व्यवस्था एक परदे के माध्यम से होती है। इसमें क्या रहस्य है, यह जानने की जिज्ञासा सभी की हुई किन्तु वहाँ उपस्थित लोगों से पूछने पर भी सन्तोषप्रद उत्तर नहीं मिल सका। एक ने वताया कि निरन्तर देखने से लोग पागल हो जाते हैं। उत्तर संतोषप्रद नहीं था किन्तु संतोष करना पड़ा।

वहाँ से चल कर श्रीदाता श्रोत मुनि के आश्रम में पधार कर आँगन में लगी दूव पर विराज गये। एक आगन्तुक ने जो अपने को

अग्रवाल बताता था आकर श्रीदाता को प्रणाम किया। वह जयदयाल गोयन्दका जी के सम्पर्क में आने के बाद वृन्दावन में ही निवास करने लग गया था। उसने कहा, "महाराज! वृन्दावन तो वृन्दावन ही है। कुछ दिन आप यहीं विराजें, तभी वृन्दावन भली प्रकार देखा जा सकता है। वृन्दावन तो वास करने की जगह है यहाँ आप जैसे सन्तो का विराजना हो तो अच्छा है।"

श्रीदाता, "ऐसी कौनसी जगह है जो वृन्दावन नहीं है।" बात भी ठीक ही है। यदि "मन चगा तो कठौती में गगा"। सभी स्थान उसके हैं और जहाँ वह रहता है वही तो वृन्दावन है। वह व्यक्ति कुछ देर तो चुप रहा फिर साथ के लोगो से बोला, "जिनकी आयु ४५ वर्ष से अधिक की है, उन्हे यहीं रहना चाहिए। सब कुछ छोड कर कृष्ण-लीलाओ को ही देखना चाहिए। इस ससार के झगडो से बच कर यहीं विश्राम करने में ही आनन्द है।" इस पर सीताराम जी हँस कर बोले, "हम तो बाबा के अनुयायी हैं। यदि बाबा आज्ञा दे दें तो हम लोग घर-बार छोड कर वृन्दावन आ जाँय। तुम बाबा से आज्ञा दिलवा दो।"

श्रीदाता, "गृहस्थ छोड देने से क्या ये लोग ससार से बाहर हो जावेंगे। ससार तो सन्यास ले लेने पर भी रहता है।"

आगन्तुक– "फिर भी आप इन्हें आज्ञा दे दें।"

श्रीदाता, "म्हाका राम की मनाई नहीं है। ये माताएँ और बहनें इन्हे आज्ञा दे दें।" इस पर उपस्थित माताएँ और बहनें बोल उठी, "नही, नही। हम लोग इन्हें अभी छुट्टी नहीं देंगे।"

बातचीत साधारण थी किन्तु थी सारगर्भित। वृन्दावन श्रीकृष्ण की लीलाओं का केन्द्रस्थल रहा है। वहाँ भक्ति-गगा निरन्तर बहती रहती है। राधा और राधा कृष्ण का नाम प्रत्येक में रूमी की जिह्वा का भूषण है। वहाँ की भूमि की विशेषता है तन्मय[भी] प्राणी वहाँ जाता है भावमग्न हुए बिना नहीं रहता। वहाँ है [ज]न को अपने में फँसाये रखती है। ईश-भक्ति ही जीव को

माया के चक्कर से वाहर करती है। माया-रूपी भँवर से वाहर निकलने पर ही आनन्द की प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार की विनोदमय वातावरण में वातचीत चल रही थी कि शास्त्री जी वही के चौकीदार को लेकर आ गये। उसके पेट मे कई वर्षो से दर्द था। उसकी पुकार हुई और देखते ही देखते वह स्वस्थ हो गया। एक पागल वालक की भी पुकार हुई। वह भी प्रभु की कृपा से स्वस्थ हुआ।

भोजनोपरान्त मधुवन देखने पधारना हुआ। मधुवन रास–लीला स्थल है। वड़ा रम्य एवं स्वच्छ स्थल है। उसकी सफाई भक्त-जनों द्वारा ही की जाती है। वहाँ लाल मुँह के वन्दर रहते है। एक वन्दर ने आगे वढ़ कर श्रीदाता के चरण-स्पर्श किये। इसपर सव हँस पड़े।

वहाँ से चल कर यमुना तट पर स्थित उस कदम्व के पेड़ को देखा जिसपर वैठ कर श्रीकृष्ण भगवान वंसी वजाया करते थे। वहाँ से निधिवन में पहुँचे। निधिवन में वन्दरों ने मातेश्वरी जी को घेर लिया। वे सव चरणों मे झुक-झुक कर वन्दना करने लगे। वड़ा अद्भुत दृश्य उपस्थित हो गया। वड़ी देर वाद पुचकार कर तथा अपना वरद हस्त उनके मस्तकों पर रख उन्हें अलग किया। वे दूर तो हट गये किन्तु मातेश्वरी जी के इर्द-गिर्द ही वने रहे। लगता था जैसे उनकी माँ राधा उनकी सार-संभाल करने मातेश्वरी समुद्र कुँवरके रूप में वहाँ आयी हों। श्रीदाता भी इस दृश्य को देख कर मुस्कराये विना नहीं रह सके। निधिवन में हरिदास जी की समाधि है।

संध्या समय हो गया। श्रीदाता ने संध्या की माला (हरे हर) वहीं फेरी। उस समय चंचल वन्दर भी चुप होकर एक टक दाता को निहारने लगे। एक वन्दर तो दाता के चरणों के निकट आ वैठा व ध्यानस्थ हो गया। जानवरों मे भी दाता के प्रति कितनी भक्ति होती हैं, कितना प्रेम होता है, यह प्रत्यक्ष रूप में लोगों को उस दिन देखने को मिला।

बाद में श्रीदाता का पागल बाबा द्वारा निर्मित करवाये जा रहे मन्दिर में पधारना हुआ। वहाँ से रगजी के मन्दिर में होकर वापिस पधारना हो गया।

विचित्र समागम

'परमहँस दाता महाराज की जय' एकाएक एक स्पष्ट, मंजुल और गर्जन जैसा स्वर सुनाई पड़ा। सन् १९७८ का जनवरी का महीना था, सन्ध्या के ६-२० का समय था। जयपुर धोलीपेड़ी के मन्दिर में श्रीदाता का सत्संग चल रहा था। सभी श्रीदाता के प्रवचन सुनने में इतने लीन थे कि उन्हें किसी के आने-जाने का भान तक नहीं था। सामान्य सा अँधेरा था। एक-दो जगह छोटे बिजली के वल्व लगे थे। वातावरण शांत था। अचानक गर्जन युक्त किन्तु मधुर आवाज सुन कर सभी की दृष्टि स्वर कर्ता की ओर हो गई। सभी ने देखा लक्ष्मीस्वरूपा नई दुल्हिन की वेशभूषा में एक महाराष्ट्रियन महिला सामने वाह्य चेतना विरहित अवस्था में अत्यंत तेजःपुंज, शान्त और दैवी सौन्दर्य की मूर्ति के समान खड़ी है। श्रीदाता सहित सभी उपस्थित भक्त-जन खड़े हो गये। उसके मुख पर इतना तेज था कि साधारण व्यक्ति तो उनके चेहरे की ओर देख भी नहीं सकता था। सभी लोग उस महिला के दर्शन कर चमत्कृत किन्तु साथ ही आनन्दित हुए। श्रीदाता मुस्करा दिये। लोगों ने मार्ग छोड़ दिया और वह महिला श्रीदाता के सामने पहुँची। उसके हाथों से कुंकुम लगातार प्रसाद के रूप में आ रहा था। पूज्य श्रीदाता भी वाह्य चेतना विरहित अवस्था में खड़े थे। उस महिला ने उन्हें प्रसादरूपी कुंकुम दोनों हाथों में दिया और फिर अपने ही हाथों से पूज्य श्रीदाता के वदन और धोती पर छिड़काव जैसा किया, जो कि वाद में मालूम हुआ कि वह दैवी सुगन्ध थी। कई दिन वाद भी श्रीदाता उस दैवी सुगन्ध का वर्णन करते रहे। अपरिग्रह व्रताचारी श्रीदाता उस महिला द्वारा दिया कुंकुम का प्रसाद अपने हाथों में लिए उसे सुरक्षित रखने हेतु अन्दर चले गये। अपरिग्रह होकर जो पाना है वह पाकर उसे कैसे सम्हालना चाहिए यही शिक्षा भगवान अपने आचरण द्वारा दे रहे हैं, ऐसा विचार उस समय श्री शुक्ला जी के मन में आया। श्रीदाता के

वापस आने तक उस महिला ने वहाँ उपस्थित लोगो को प्रसादी कुकुम अपने हाथो से दिया, जो लोगो के लिए नया अनुभव था और वे प्रसाद पाकर स्वय को धन्य महसूस करने लगे।

उस समय दोनो के मध्य जो सत्सग हुआ वह इस प्रकार है— श्रीदाता ने कहा कि दाता-माता एक ही है और माता के सामने दाता अबोध बालक ही रहता है। उस महिला ने भी दाता के शिव स्वरूप का वर्णन किया और कहा, 'परमहस का आशिर्वाद ही मेरे लिए योग्य है, उसकी माँग आपसे कर रही हूँ।" उन दो महान् आत्माओ का मिलन, उनके वचनामृत का पान, यही याद सारे उपस्थित लोगो का सहारा बन गई।

पाठक उस तेजोपुंज महाराष्ट्रियन महिला के बारे में जानने को उत्सुक होगे। श्री गोविन्द शिवराम शुक्ल के पूना के निवासी है जो बाद में थाना (बम्बई) में निवास करने लग गये। वे राजस्थान सरकार के अन्तर्गत उद्योग विभाग के सयुक्त निदेशक रहे। वे ईमानदार, सत्यनिष्ठ, परसेवी, धर्मपरायण, ईश्वरभक्त और सहृदय व्यक्ति है। उनसे प्राप्त जानकारी के अनुसार वह महिला और कोई नही परम पूजनीय मौ इदिरा बगा थी। बम्बई में तथा देशभर के उनके परिचित देह दृष्टि से सौ आक्का, यानी बडी बहन के रूप में उन्हे सम्बोधित करते थे, तथा उनकी पारमार्थिक उपलब्धियो के कारण उन्हे सौ माताजी कह कर सम्बोधित करते थे। माताजी एक ऐसी महान् आत्मा थी जिसे एक बार देखने पर ही, साधक के मन पर उनकी अलौकिकता तथा साक्षात् चैतन्य की मूर्ति के दर्शन होने से स्वाभाविकता से न मिटनेवाली छाप निरन्तर रहती है। मराठी में उन्हे सौ आई के नाम से भी सम्बोधित किया जाता रहा। श्री शुक्ल जी पर माता जी की असीम कृपा थी। सन् १९६८ में श्री समुद्र सिंहजी को माताजी के दर्शन हो चुके थे।

श्री शुक्ल के अनुसार महाराष्ट्र की वाई, महाबलेश्वर के रमणीय पर्वतीय क्षेत्र में, एक परम वैष्णव तथा पढरपुर के विठ्ठल की 'वारी' यानी सारठाना अषाढ मास तथा कार्तिक मास में मुख्यत सामूहिक रूप से कीर्तन करते हुए अपने गाँव से पढरपुर

तक पैदल जाना इसे बारी कहते हैं और जो बारी करता है उसे बारकरी कहते हैं। भेदभाव विरहित भक्ति का यह सुगम मार्ग, भगवान ज्ञानेश्वर, संतश्रेष्ठ सर्वश्री तुकाराम, चोखा महार, नामदेव इत्यादि सन्तों ने जनसाधारण मे धार्मिक चेतना, ईश्वर के प्रति प्रेम व सारा मानव समाज भेदभाव विरहित एक होकर विठ्ठल को मिलने जाना है, इस भाव से प्रसारित किया। ऐसे बारकरी कुटुम्ब में सौ. माताजी का जन्म दि. २०-१०-२७ को हुआ तथा बाल्यावस्था से ही साधु-सन्तों का दर्शन, आशीर्वाद उन्हें प्राप्त हुआ। तत्कालीन परंपरा के अनुसार किशोरी अवस्था में शादी तथा उसके साथ पारिवारिक जिम्मेदारियाँ सिर पर आ पड़ी परन्तु पू. माताजी का जन्म केवल इसके लिए नहीं था सो बम्बई में खार स्थित रामकृष्ण मिशन में माता जी की दीक्षा हुई। बाद में नित्योपासना, कठोर तपश्चर्या करते करते सौ. इंदिरा सौ. माताजी बनीं।

सौ. माताजी का इष्ट तुलजापुर की भवानी माता थीं जो कि महाराष्ट्र के संस्थापक छत्रपति शिवाजी महाराज की भी दैवत थी। पू. माताजी की साधना विशेषता यह थी कि वे जिस भाव में जाती उसी दैवी शक्ति का प्रसाद जैसे कुंकुम, विभूति, सिंदूर इत्यादि तथा विभिन्न प्रकार की सुगंधी का सृजन भी उनके हाथों से होता था। पू. माताजी अहर्निश अपने ही भाव में रहती थी परन्तु आवश्यकतानुसार सांसारिक कार्य, लोगों से बातचीत भी करती रहती। कभी वे अर्ध-चेतन अवस्था में और कभी बाह्य चेतना शून्य अवस्था में रहती। माँ के हाथों विभिन्न प्रकार के प्रसाद-रूपी कुंकुम, विभूति, सिंदूर, बुक्का इत्यादि पाकर साधक धन्य हुए हैं तथा उनकी पारमार्थिक प्रगति भी हुई है। सामान्य जीवों का कष्ट निवारण भी सेवा के रूप में माँ करती थी। इसके लिए ऐसे लोगों की तो भीड़ रहती थी। पारमार्थिक मार्गदर्शन हेतु जो लोग पू. माताजी के पास आते थे वे विशेष कृपापात्र होते थे।

पू. माताजी के पति दादर क्षेत्र के निवासी श्री नारायणराव बंगाली हैं जो बम्बई हाईकोर्ट में सहायक रजिस्ट्रार के पद पर कार्य करते रहे हैं। पति-पत्नी में अच्छा प्रेम रहा। श्री नारायणराव जी

निरन्तर अपनी पत्नी में ईश्वरीय शक्ति के बढने का अनुभव करते रहे और उन्होंने कभी अपनी पत्नी के भक्ति सम्बन्ध में विरोध नही किया। पूजनीय माताजी ने गृहस्थ सचालन के कार्यों में कभी शिथिलता नही दिखाई। इस समय उनके चार सन्तान–दो पुत्रियाँ व दो पुत्र है। लडकियो का विवाह हो चुका है।

पू माताजी जयपुर में आयी व शुक्ला जी पर किस प्रकार आनन्दरूपी अमृत की वर्षा की इसके लिए श्री शुक्ला जी कहते है, "मुझे आज भी वह दिन स्पष्ट है और सारी घटना जैसे कि मेरे सामने अभी हो रही है, ऐसा लगता है। ११ अगस्त सन् १९६८ शाम ५–३० पर सौ. आक्का जयपुर में हमारे गाँधी नगर निवास स्थान पर आ गई। बातचीत होते होते अचानक दैवी सुगन्ध से सारा मकान भर गया और सौ माताजी ने अचानक पूछा कि कहाँ साधना करते हो। पडोस वाले कमरे को निर्दिष्ट करते ही माँ आप ही वहाँ पर गई और भगवान श्री रामचन्द्र जी की तस्वीर के सामने खडे होकर समाधिस्थ हुई। अर्ध-चेतन अवस्था में काफी कुछ कहा, जो कि केवल कानो का ही नही परतु सारे मन, चित्त, बुद्धि के लिए अमृत सा था। इतने में अचानक धरती से भारी मात्रा में कुकुम आने लगा। उस समय का वातावरण ऐसा चैतन्य से परिपूर्ण लग रहा था कि जिसका वर्णन नही कर सकूँगा। और बहुत सारी बातें व अन्य घटना घटी जिनका वर्णन करना भी वाणी के लिए सभव नही है।" वे कहते है, "सौ माताजी का जयपुर पधारना कुल तीन बार हुआ। जिन्हे उस समय रात-दिन चलने वाले सत्सग में सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे धन्य है। पू दाता के शरणागत भक्तो में से काफी लोगों ने सौ माताजी के दर्शन जयपुर में तथा बम्बई में भी किए हैं।"

सन् १९७८, जनवरी माह में जयपुर में पूज्य श्रीदाता, पूज्य नाना महाराज तराणेकर और सौ माताजी, यह श्रेष्ठ सतत्रई एक समय उपस्थित थी। सौ माताजी को पूज्य श्री दाता महाराज के बारे में श्री शुक्ला साहब के माध्यम से भौतिक स्तर पर जानकारी मिली थी। सौ माताजी और नाना महाराज तराणेकर कई बार

विभिन्न स्थानों पर कई बार पहिले ही मिल चुके थे। संतों का मिलन कब और कैसे होता है, यह बात संत ही जानते हैं। सामान्य व्यक्तियों के लिए केवल जीवों को दर्शन सुख देने हेतु ही संतों का मिलना होता है ताकि सामान्य जीव देखने से ही परमानन्द की प्राप्ति कर सके। श्रीदाता से मिलने की इच्छा पू. माताजी और श्री नाना महाराज तराणेकरजी ने की थी अतः श्रीदाता जयपुर पधारे और अपने भक्तों को महान् सन्तों के मिलन का अनुभव दिया तथा सारे महान् सन्त कैसे एकरूप हैं, कैसा एक ही प्रकाश है, उसका यथार्थ दर्शन भी करवाया।

पू. माताजी एवं श्रीदाता का धोली पेड़ी के मन्दिर के आँगन में किस प्रकार मिलन हुआ यह सहृदय पाठक जान चुके है। मन्दिर से विदा होते वक्त पू. माताजी ने कहा, "कल आपको शुक्ला जी के घर पधारना है। आपको वहाँ का निमंत्रण है। आओगे न। हाँ अवश्य आना है।" यह कह आज्ञा लेकर पू. माताजी शुक्ला साहब के यहाँ पधार गई।

अगले दिन प्रातः ही श्रीदाता का दाता-निवास जाने का निश्चय पूर्व में ही हो गया था। ग्यारह बजे तक भोजन आदि से निवृत्त होकर दाता-निवास जाने की तैयारी होने लगी। पू. माताजी का दिया हुआ निमंत्रण तो एक प्रकार से विस्मृत सा हो गया था, न किसी ने स्मरण ही कराया। पू. माताजी का दिया हुआ निमंत्रण श्रीदाता को याद न रहे यह तो संभव नहीं है किन्तु श्रीदाता को तो लीला कर अपने भक्तों के आनन्द को द्विगुणित करना था। प्रस्थान के कुछ मिनिट पूर्व श्रीदाता को पूर्व संध्या में दिया हुआ निमंत्रण याद हो आया और तत्क्षण अपने भक्तों सहित शुक्ला साहब के मकान के लिए रवाना हो गये।

उधर प्रातः से ही श्री शुक्ला साहब के गाँधी नगर सरकारी निवास स्थान में स्वागत की जोरदार तैयारियाँ की गई। तोरण, कमानी, फूलों और पत्तियों से सारा परिसर सजाया गया था। आँगन में भक्तों और दर्शनार्थियों की अपार भीड़ थी। चारों ओर उत्साह एवं हर्ष का वातावरण था। सौ. माताजी हाथ में पूजा के

साहित्य की थाली लेकर पू दाता के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए हरिनाम सकीर्तन करते हुए मूर्तिवत द्वारपर खडी थी। सारे उपस्थित लोग पूरे जोर-शोर से पूज्य श्रीदाता के आगमन हेतु सकीर्तन कर रहे थे। ज्योंही पू दाता का आगमन हुआ पू माताजी ने आरती की। यहाँ पर सौ माताजी ने दूध, दही, घृत, शर्करा आदि से श्रीदाता के चरणार्विन्दो का प्रक्षालन कर चरणामृत को एक पात्र में ले लिया। फिर हाथ हिला कर पूर्व सध्या की तरह ही सुगन्धित कुकुम प्राप्त की और उसको श्रीदाता के चरणो में लगाया। इसके बाद वेदो में वर्णित विधान के अनुसार वेद मन्त्रो का उच्चारण करते हुए पूजा की। चरणो में पुष्प चढाये। मगल तिलक लगाया और पुन आरती की। श्रीदाता इतनी देर समाधिस्थ अवस्था में खडे रहे। सभी उपस्थित जनसमुदाय मत्रमुग्ध एव चकित दृष्टि से इस आनन्ददायक दृश्य को देख रहे थे। सभी को आश्चर्य तो इस बात का था कि श्रीदाता अपने चरणों को किसी को हाथ भी नहीं लगाने देते हैं, चरण धोना तो दूर की बात है। यहाँ तक कि वे अपनी सतान को भी पैर छून नहीं देते। यदि कोई श्रीदाता को तनिक झुक कर प्रणाम् करता है तो वे दूना झुक कर नमस्कार करते हैं। किन्तु उस दिन श्रीदाता को क्या हो गया? वे चुपचाप एव बालक की भाँति या एक प्रतिमा की तरह खडे रहे। सौ माताजी ने बडी मस्ती से चरण धोये, पूजा की, चरणामृत का पान किया और सभी को चरणामृत दिया, यह कैसी अद्भुत लीला थी। ऐसा आनन्ददायक दृश्य था जिसका वर्णन करना सभव नहीं।

सौ माँ ने पूज्य श्रीदाता को शुक्ला साहब के ठाकुर जी के पूजा कक्ष में बिठाया। वहाँ श्रीदाता व सौ माँ के बीच काफी बातचीत हुई। उपस्थित लोग दूर से ही देख रहे थे अत क्या बातचीत हुई इसका कुछ पता नही। इसके पश्चात् माताजी ने श्रीदाता को विभिन्न व्यञ्जनो सहित अनेक प्रकार के मिष्ठान्न का भोजन करवाया। श्रीदाता भोजन कर लेने के बाद साधारणतया कुछ खाते नहीं किन्तु उस दिन सारे ही नियम भुला कर एक छोटे से बालक की तरह आसन लगा खाने को बैठ गये। एक दैवी शक्ति

स्वरूप माँ अपने दैवी व अलौकिक पुत्र को प्रेमपूर्वक खिला रही है ऐसा दृश्य उपस्थित था। ऐसे दृश्य को देख कर सामान्य जनों की सुध-बुध खो बैठी अतः कौन क्या बोल रहा है यह खबर किसी के कानों तक नहीं पहुँच सकी। दर्शकों की सारी इन्द्रियाँ मानों आँखों में समाविष्ट हो गई थी और वे दैवी दर्शन से ही पूर्ण सन्तुष्ट हो गये थे।

थाल का बहुत सारा भोजन सौ. माताजी ने श्रीदाता को खिला दिया। उपस्थित सत्संगी भाई-बहनों ने भी प्रसाद लिया। भोजनोपरान्त श्रीदाता व भक्त-जन मकान के बाहर आँगन में बने लॉन पर आ गये। वहाँ श्री नाना महाराज तराणेकर विराजे हुए थे। दोनों सन्तों का अद्भुत मिलन हुआ। वर्णनातीत दृश्य था। पू. माता जी भी वहीं आ विराजी। पारमार्थिक विषयों पर चर्चा होती रही। जन समुदाय वचनामृत का आनन्द ले रहे थे। सामान्य जीवों को नाम और सदैव उसको याद करते रहना, इसी से जीवों का उद्धार हो सकेगा, यही मूल सूत्र रहा। बीच में हास्य-विनोद और तत्वों को अधिक स्पष्ट करने हेतु कहानियाँ इत्यादि से कितना समय गया उसकी सुध-बुध नही रही। सभी को ऐसा लगा कि यह पावन घड़ी निरन्तर बनी रहे, कभी भी समाप्त न हो। पू. दाता दाता-निवास जाने हेतु दोपहर बाद रवाना हुए और प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्मृतियों के खजाने भर-भर कर अपने अपने घर गया।

उपरोक्त प्रसंग का पुनः चित्रण सन् १९८० में अक्षय तृतीया के दिन दुबारा हुआ, ऐसा लगा। परन्तु अब जयपुर के स्थान पर यह घटना 'बम्बई' और 'ठाणे' में हुई। पू. दाता नासिक से बम्बई पधारे थे। अक्षय-तृतीया के अवसर पर श्री गहरीलाल जी के निमंत्रण पर वहाँ पधारना हुआ था। पू. दाता बम्बई के उपनगर मे रात्रि के १० बजे के बाद पहुँचे। पू. माताजी, श्री शुक्ला जी तथा उनके सभी परिवारजन उपस्थित थे। अक्षय तृतीया की पूर्व संध्या थी। वहाँ भी पू. दाता की आरती सौ. माताजी के हाथ में थी। द्वार पर ही पू. माताजी आरती करना चाहती थी किन्तु श्रीदाता ने संकेत से उन्हें मना कर दिया। श्रीदाता एवं पू. माताजी का पधारना

कमरे में हो गया। बातचीत चल पडी। बातो ही बातो में पूज्य माताजी को भावातिरेक हो आया। अपूर्व प्रकाश फैल गया। हाथों में सुगन्धित कुकुम आ गई जिसे उन्होंने श्रीदाता के चरणो में चढा दिया। फिर श्रीदाता की स्तुति करने लगो। अन्त में घर आने का निमत्रण देकर वे घर चली गई।

श्रीदाता दूसरे दिन दादर में पू माताजी के निवास स्थान पर गये। वहाँ पर दादर निवासी काफी भक्तो ने पू दाता का दर्शन किया। माँ ने उनके घर पर श्रीदाता की पूजा, आरती की। उस समय ऐसा लगा कि एक ज्योति दूसरी ज्योति की आरती कर रही है। दैवी क्षणो का वर्णन मानवी शब्दो में कैसे सभव है अत. उम दिव्य प्रसग का वर्णन, चित्रण पाठक अपने अनुभव, अपनी कल्पना-शक्ति से ही करे तो ज्यादा अच्छा होगा। वहाँ से पू दाता के साथ माताजी और सारे सत्सगी अलग अलग वाहनो में दादर से ठाणे पहुँचे। श्री शुक्ला साहव राजकीय सेवा से निवृत्त होकर ठाणे में एक छोटे से निजी मकान में निवास कर रहे है। अक्षय तृतीया के पुनीत पर्व पर उसी मकान में भगवान की पूजा आरती पू माँ ने की और जलपान हुआ। यहाँ पर एक विशेष बात हुई जिसे उल्लेख किये बिना नही रहा जायगा। श्री शुक्ला साहव और उनके परिवारजनो को पू दाता का अक्षय तृतीया के मगल मुहुर्त पर नये मकान में आगमन एक अलौकिक घटना थी। जयपुर से इतने दूर और अव वार वार पूज्य दाता का जयपुर में जैसा दर्शन होता था वैसा नही हो सकेगा, यह बात भी इतनी ही स्पष्ट थी, अत श्री शुक्ला साहव ने पू दाता से गद्गद् वाणी से प्रार्थना की, "अव हमारा यही सव कुछ है। देहत्याग हेतु लोग काशी जाते है, परन्तु यदि पू दाता कृपा करके इस छोटे से मकान में सव जगह अपनी पद-धूलि से इसे पवित्र करने की कृपा करे तो हमारे लिए यही काशी, वनारस या गगोत्री-जमनोत्री होगा।" अपार करुणा सागर दाता ने अक्षरश प्रत्येक कमरे में प्रवेश कर श्री शुक्ला साहव से हँसते हँसते पूछा, "क्यो! अव ठीक है ना?"

जलपान के पश्चात् पू दाता ठाणे से वम्बई हेतु रवाना हुए। पू माता जी और श्री शुक्ला साहव का समस्त परिवार पू दाता

को विदाई देने हेतु अश्रुपूर्ण नेत्रों से खड़े थे। समस्त वन्धुओं और भगिनियों के हृदय हिल गये।

ऐसी थी पूज्य सौ. माताजी-आक्का या आई या इन्दिरा। परमात्मा ऐसी महान विभूतियों को इस धराधाम पर अधिक समय रखता नहीं। पू. सौ. माता को भी शीघ्र ही दाता धाम जाना था ही। दिनांक १५ फरवरी सन् १९८१ को अचानक सौ. माताजी ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। श्री शुक्ला साहब आदि उस समय कोई भक्त विद्यमान नहीं था। श्री शुक्ला साहब भी सायं चार बजे दाह संस्कार के समय श्मशान में पहुँच गये। विचित्र लीला है प्रभु की। धन्य हैं वे भक्त-जन जिन्होंने दर्शन किये और धन्य हैं वे क्षण जिनमें उनके दर्शन हुए।

भक्त और भगवान की जय।

○ ○ ○

बालकृष्ण की लीलास्थली में

ब्रजभूमि भगवान कृष्ण की जन्मस्थली एव लीलास्थली रही है। इस भूमि का कण कण भगवान श्रीकृष्ण के चरणारविन्द के श्रम कणो से सिंचित है। यह वह भूमि है जहाँ श्रीकृष्ण ने अपनी बाल-लीलाओ से अनेको को समोहित किया था। इस भूमि में गोप-ग्वालो के साथ रहकर गौओ को चराते हुए श्रीकृष्ण ने अपनी अनोखी क्रीडायें की थीं। गोपियो से माखन-मिश्री खाने का यही तो स्थल है। इसी भूमि में रास-लीला होती थी। यह वही भूमि है जहाँ यमुना के किनारे कदम्ब की डाली पर बैठे हुए बालकृष्ण की मधुर मुरली की आवाज सुन गोपियाँ मूर्च्छित हो जाया करती थी। यह ब्रजभूमि बडी ही पवित्र है। इस भूमि के कण कण में मादकता भरी पडी है। इस भूमि के लिए सूरदासजी ने अपने विचार प्रकट किये हैं –

जो सुख ब्रज में एक घडी।
सो सुख तीनि लोक में नाही धनि यह घोषपुरी ॥
अष्ट सिद्धि नवनिधि कर जोरे, द्वारे रहति खरी।
सिव–सनकादि–सुकादि–अगोचर, ते अवतरे हरी ॥
धन्य धन्य ब्रज भागिनि जसुमति, निगमनि सही परी।
ऐसे सूरदास के प्रभु कौं, लीन्हो अक भरी ॥

ब्रजभूमि पावन भूमि है। जो यहाँ के रज-कण में स्नान करता है, निश्चय ही उसका मोक्ष हो जाता है। कहा जाता है कि एक बार मुक्ति ने भगवान से पूछा, "केशव! मेरी मुक्ति का उपाय बताओ।" भगवान ने सीधा सा उत्तर दिया, "बस जब ब्रज-रज तेरे सिर पर उड कर पड जाय, तब तू अपने को मुक्त हुआ समझ।" ऐसा है ब्रज एव ब्रज रज का महत्व। वृन्दावन ब्रज भूमि का हृदय है जिसमें अनेक ज्ञानियो और भक्तो का निवास है। अनेक वानप्रस्थी अपने जीवन के अन्तिम दिन इसी भूमि पर बिताने की चेष्टा करते है।

दूर-दूर के लोग इस भूमि के दर्शन कर अपने को कृतार्थ करते हैं। पुराणों में कथा है कि सतयुग में महाराज केदार की पुत्री वृन्दा ने श्रीकृष्ण को पतिरूप में पाने हेतु इसी स्थान पर दीर्घकाल तक तपस्या की थी। वृन्दा की पावन तपोभूमि होने से ही यह भूमि वृन्दावन कहलाई। श्री राधा-कृष्ण की निकुञ्ज-लीलाओं की रङ्गस्थली वृन्दावन ही है। वृन्दावन में सैकड़ों मन्दिर हैं जहां निरन्तर हरिकीर्तन, हरिचिन्तन, हरिकथा, रास-लीला आदि हुआ करते हैं। वर्ष में दो वार यहाँ भारी उत्सव होते हैं। एक होली के अवसर पर 'फागोत्सव' के रूप में और दूसरा श्रावण मास में 'झूलोत्सव' के रूप में। दोनों ही अवसरों पर भक्तों एवं दर्शकों की भारी भीड़ रहती है।

नवम्वर सन् १९७७ में जव श्रीदाता का पधारना वृन्दावन में हुआ था, उस समय केवल एक दिन ही विराजना हुआ था, और वह भी वृन्दावन में ही। श्रीदाता की 'फागोत्सव' के अवसर पर व्रजभूमि में पधारने की इच्छा थी अतः दिनांक १३-३-७८ को अनेक भक्तों सहित वे वृन्दावन पधारे। रात्रि के १० वजे श्रोतमुनि आश्रम पर पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही श्रीदाता के मुखारविन्द से निकला, "वृन्दावन में रहना और राधे राधे कहना।" अनायास ही निकले ये शब्द श्री राधा के महान् महत्व को वताते हैं। शास्त्री जी, नवल किशोर जी आश्रम में ही मिल गये जिन्होंने आवास की व्यवस्था कर दी।

प्रातः चार वजे से ही भजन, कीर्तन, कथा आदि की आवाजें आने लगी। ये ध्वनि में वरवस ही सव के मन मे कृष्ण भक्ति-भाव जागृत कर रही थी। विस्तर पर पड़े रहना किसी को अच्छा नहीं लगा। वातावरण का प्रभाव पड़े विना नहीं रहता। सभी विस्तर छोड़ उठ वैठे व भजन वोलने लगे। सीताराम जी, श्रीराम जी आदि ने भजनों की समा ही वाँध दी। स्वर माधुर्य से आनन्द की वर्षा होने लगी श्रीदाता समाधिस्थ हो गये। आठ वजे तक यही स्थिति वनी रही। इसके पश्चात् यमुना में स्नान करने हेतु चल पड़े। वाहन संकरी गलियों में होकर आगे वढ़े। गलियाँ संकरी होने से

बडे वाहन को चलने में कठिनाई हुई। जाना 'कालियादह' चाहते थे, किन्तु मार्ग के न जानने से निर्दिष्ट स्थान पर न पहुँच उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ आसपास के गाँवो में जाने का मार्ग था। वहाँ यमुना का पाट काफी चौडा था। एक ओर जल की गहरी धारा वह रही थी जिसपर गैस के ढोलो का अस्थाई पुल बना था। उस स्थान पर घाट तो था नही। नदी में पानी के किनारे-किनारे कीरो ने फसल वो रखी थी। दिखने में यमुना का पानी नीले रग का व गन्दला दिखाई दे रहा था जिसे देख कर सभी के मन में यह विचार आया कि ऐसे गन्दे पानी में कैसे स्नान किया जावेगा, किन्तु जब निकट से देखा तो पानी स्वच्छ व निर्मल था। श्रीदाता ने स्नान किया। किनारे पर ही पानी गहरा था और जलचरो का भय था फिर भी जल में प्रविष्ट हो स्नान करने के मोह को लोग त्याग न सके। कुछ लोग गहरे पानी में चले गये। खूब मस्ती से स्नान किया। उस पानी में स्नान से यह विशेषता रही कि सभी अपने को तरो व ताजा अनुभव करने लगे। सभी में एक प्रकार से नई शक्ति का सचार सा हुआ। सभी ने यमुना की पावन रेती को सिर चढा प्रणाम किया। फिर वहाँ से लौट पडे।

यमुना तट पर ही सुदामा आश्रम है। एक ओर उस आश्रम में सीता-राम का मन्दिर है तो दूसरी ओर सुदामा की कुटिया। आश्रम में अनेक सन्त ललाट पर लम्बा तिलक लगाये इधर उधर अपने-अपने कार्यो में व्यस्त थे। मन्दिर मे राम-लीला हो रही थी। तीन सुन्दर बालक राम, लक्ष्मण और सीता के वेप में रगमच पर कुर्सियो पर बैठे थे। वे ऐसे लग रहे थे कि साक्षात् राम, लक्ष्मण और सीता ही विराज रहे है। हम सब की दृष्टियाँ ठगी सी रह गई। राम वेषधारी बालक ताल, लय और मधुर वाणी से भजन गा रहा था जो अत्यधिक प्रभावशाली था। श्रीदाता एक ओर विराज गये। उस भजन ने सभी को भाव विभोर कर दिया। कुछ भक्तो के नेत्रो में अश्रुधारा वह चली। भजन में बडा आनन्द आया। कुछ भजन और बोले गये। दर्शक गण एव श्रोतागण तन्मय हो गये और वहाँ उपस्थित जनसमुदाय यह भूल गया कि वे राम,

लक्ष्मण और सीता न होकर केवल मात्र पात्र हैं । उस समय ऐसा लग रहा था कि स्वयं राम अपने छोटे भाई लक्ष्मण और अपनी प्राणप्रिया सीता के साथ लीला कर रहे हैं । ऐसे सुन्दर और मनमोहक वातावरण में एक घण्टा निकल गया । उस समय एक प्रकार से सभी कलियुग से त्रेतायुग में पहुँच गये थे । लीला समाप्त होने पर ही लोग वर्तमान में पहुँचे ।

सुदामा आश्रम के पास ही प्रभुदत्त जी महाराज का आश्रम है । आश्रम में एक पुराना कदम्ब का पेड़ है । मन्दिर छोटा, सुन्दर एवं आकर्षक है । दीवारों में विभीषण आदि के चित्र हैं । श्रीदाता बड़ी देर तक उन चित्रों को देखते रहे और साथ ही उनके सौन्दर्य की प्रशंसा भी करते गये । बीच बीच में प्रासंगिक कहानियाँ भी कहते गये । वहाँ की जानकारी से सभी बड़े प्रसन्न हुए । वहाँ से श्रोत मुनि आश्रम में लौट आये ।

आश्रम में श्री गंगेश्वर जी महाराज का विराजना हो रहा था । श्रीदाता उनसे मिलने पधारे । स्वामी जी जन्मान्ध होते हुए भी प्रकाण्ड विद्वान हैं । चारों वेद उनकी जिह्वा पर है । थोड़ी देर दोनों महान् सन्तों की बातचीत होती रही जो संकेतात्मक होने से लोगों के समझ में नहीं आयी ।

श्री गंगेश्वर जी महाराज के अनेक शिष्य एवं भक्त हैं । उन्होंने भारतीय वाङ्मय की बड़ी सेवा की है । वेदों को सामान्य लोगों तक पहुँचाने के लिए उन्होंने वेदों की ऋचाओं को कथा मिश्रित कर महान् कार्य किया है । हिन्दू समाज ही नहीं वरन् पूरा मानव समाज उनका ऋणी रहेगा । अनेक लोग उनके प्रति श्रद्धा रखते हैं तथा उनके कार्य के लिए मुक्त हस्त से दान देते हैं । वहाँ कई पण्डित एवं विद्वान निरंतर शोध कार्य करते रहते हैं । श्रीदाता ने उनसे मिल कर प्रसन्नता जाहिर की व उनके कार्य की भूरि भूरि प्रशंसा की ।

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद जी अपने प्रयासों से कृष्ण चेतना हेतु एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का निर्माण

किया है जिस का नाम 'कृष्ण चेतना हेतु अन्तर्राष्ट्रीय सस्था' (International Society for Krishna Conciousness) है। इस सस्था के सिद्धान्त चैतन्य महाप्रभु के भक्ति सिद्धान्तो के अनुसार है। यह सस्था मनुष्यो को पशुवृत्ति से देववृत्ति की ओर ले जाती है। अधिकतर विदेशो के लोग इसके सदस्य हैं वैसे मार्ग सभी मानवो के लिए खुला है। इस सस्था ने वृन्दावन में एक भव्य मन्दिर बनाया जिसका दिनाक १४–३–७८ को वार्षिकोत्सव था। लोगो के आग्रह पर श्रीदाता सभी के साथ उस मन्दिर के दर्शन हेतु रवाना हुए। मार्ग में 'आनन्दमयी मा' का आश्रम है। आनन्दमयी माँ से कुभ के मेले में श्रीदाता मिल चुके थे। आश्रम के ऊपर के कमरे में माँ विराज रही थी। लोगो की भीड लगी थी। श्रीदाता ने 'माँ' से मिलने की इच्छा की। वे अपने भक्तो सहित ऊपर पधारे। आनन्दमयी मा ने उठ कर श्रीदाता का स्वागत किया। श्रीदाता वस्त्रो को नही छूते हैं अत जाजम पर न बैठ कर एक ओर खुले फर्श पर खडे हो गये। मातेश्वरी जी 'माँ' के पास जा बैठी। 'माँ' ने श्रीदाता को फल भेंट किये। भीड अधिक होने से कुशलक्षेम पूछने के अतिरिक्त अन्य बात नही हो सकी।

आनन्दमयी माँ के आश्रम भवन से नीचे उतर कर ज्योंही भवन के बाहर की सीढियो पर श्रीदाता आये कि एक पुजारी सामने आया। उसने बडी श्रद्धा से श्रीदाता को प्रणाम किया और बोला कि दाता जैसे सन्तो से भय लगता है। ऐसे सन्त जब वृन्दावन में आते हैं तो कुछ न कुछ कारस्तानी कर जाते है। उसने बताया कि एक बार करोली के महाराज बांके बिहारी जी के मन्दिर में आये। वे बडे सुकुमार, सुन्दर और कृष्ण-भक्त थे। जब उन्होने बांके बिहारी जी से दृष्टि मिलाई तो वे उस सुकुमार बालक पर फिदा होगये और उनके साथ ही करोली चले गये। उन्होने वृन्दावन को सूना कर भुला ही दिया। बडी कठिनाई से वृन्दावन वाले उन्हे वापिस वृन्दावन ला पाये। तब ही से बांके बिहारी जी के प्रति आधा मिनिट में परदा होता है। यह इसलिए होता है कि कोई बांके बिहारी जी से दृष्टि न मिला सके। उन पर नेत्र स्थिर होने

के पूर्व ही परदा हो जाता है। उसने आगे कहा, "भगवन्! आप हमारे कृष्ण को वृन्दावन से न ले जाँय, वरना हम सव अनाथ हो जावेंगे।" इस प्रकार की भक्ति भरी कई वातें उसने श्रीदाता से कही। श्रीदाता मुस्कराते हुए सव सुनते रहे। श्रीदाता के दर्शनों से उस पुजारी को अपार आनन्द की अनुभूति हुई। उसने श्रीदाता को वाँके विहारी जी के मन्दिर में पधारने की प्रार्थना की।

वहाँ से चल कर श्रीदाता श्री प्रभुपाद जी द्वारा निर्मित मन्दिर में पधारे। वृन्दावन वासी उस मन्दिर को 'अँग्रेजों का मन्दिर' कहते हैं। वार्पिकोत्सव होने से उस मन्दिर की शोभा देखते ही वनती थी। मन्दिर को, वगीचे को व वाहर के आँगन को खूव सजा रखा था। विचित्र विचित्र रोशनियों से वह प्रकाशित था। वड़ी भीड़ थी। अँग्रेज युवक व युवतियाँ वैष्णव पोशाकों में व्यवस्था में लगे थे। सिर मुँडे हुए, सिर पर चोटी, ललाट पर तिलक, भोलीभाली सूरत, गेरुआ कुर्ता और उसी रंग की धोती, इस वानक में वे वड़े ही आकर्पक लग रहे थे। मन्दिर में उस समय 'हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे' की ध्वनि चल रही थी। वड़े भाव विभोर होकर लोग कीर्तन कर रहे थे। भौतिक युग में पले ये विदेशी युवक इस प्रकार तन्मय होकर कीर्तन करेंगे, हम में से किसी को यह कल्पना भी नहीं थी। वहुत देर तक श्रीदाता सहित हम सव लोग खड़े खड़े इस कीर्तन को सुनते और उनके हावभाव देखते रहे। हमने अपने आपको वहुत धिक्कारा। हम अपने आपको आध्यात्मिक नेता मानते हैं और भक्ति की डींग हाँकते हैं किन्तु उन अँग्रेज नवयुवकों की तुलना में नगण्य ही हैं। उन्होंने देश को, घरवार को और सभी प्रकार की सुख-सुविधाओं को त्याग कर, केवल शान्ति प्राप्ति हेतु किस प्रकार अपने आप को अर्पित कर दिया है। इस मन्दिर का वातावरण इतना मनमोहक था कि वहाँ से हटने की इच्छा ही नहीं हो रही थी, किन्तु समय का ध्यान रख श्रीदाता ने वहाँ से चलने का संकेत कर ही दिया।

वहाँ से चल कर निधिवन में पहुँचे। निधिवन निधिवन ही है, साफ, सुथरा और मनोहारी। अनेक महिलाएँ वड़े भक्ति भाव से

रास-लीला के भजन गाती हुई तत्परता से सफाई कर रही थी तथा भक्तिभाव से वहाँ की धूलि को मस्तक पर चढा कर गौरव का अनुभव करती जा रही थी। अनेक लाल मुँह के बन्दर कदम्ब की डालियों पर किलोलें कर रहे थे। कदम्ब के पेड़ो के बीच-बीच सुन्दर वीथिकाएँ वहाँ के सौन्दर्य में चार चाँद लगा रही थी। वहाँ का वातावरण बडा ही शान्त व मनमोहक था। इसी निधिवन में सन्त हरिदास जी रहा करते थे, तथा इसी में बाँके बिहारी जी प्रकट हुए थे। बाँके बिहारी जी रूप परमनिधि के प्राकट्य का स्थल होने से ही इसे निधिवन कहते है। निधिवन इतना नेत्रप्रिय था कि किसी के हटने की इच्छा ही नही हो रही थी किन्तु समय-चक्र बाध्य कर रहा था। किंवदन्ती एव वहाँ की प्रथा है कि सन्ध्या समय बाद वहाँ कोई प्राणी नही रहना है। यदि कोई रह जाता है तो पागल हो जाता है।

निधिवन से चल कर श्रीदाता एक तग गली में होकर स्वामी श्री हरिदास जी के आराध्यदेव तथा वृन्दावन वासियों के प्यारे स्वामी श्री बाँके बिहारी जी के मन्दिर में पहुँचे। यद्यपि मन्दिर छोटा सा और साधारण सा है किन्तु बडा ही मनमोहक और आकर्षक है। इस मन्दिर की अनेक विशेषताएँ है। श्री बाँके बिहारी जी के दर्शन लगातार नही होते है। प्रति आधा मिनिट में परदा कर दिया जाता है। चरणो के दर्शन केवल अक्षय तृतीया को ही होते है। शरद पूर्णिमा को ही वे वशी धारण करते है। केवल एक दिन अर्थात् श्रावण शुक्ला तृतीया को ही वे झूले पर विराजमान होते है। इस मन्दिर का वातावरण बडा शान्त और चित्ताकर्षक है। श्रीदाता के साथ सभी इस मन्दिर में बाँके बिहारी जी के दर्शन कर बडे प्रभावित हुए।

वहाँ से श्री रग जी के मन्दिर मे पधारना हुआ। श्री रग जी के मन्दिर के पास ही श्री गोविन्ददेव जी का मन्दिर है। वहाँ से लाल बाबू के दर्शन कर ब्रह्म कुण्ड पर पहुँचे। कहते है कि यह वही कुण्ड है जहाँ भगवान कृष्ण ने गोपों को ब्रह्म के दर्शन कराये थे। इसके पास ही काँच का छोटासा किन्तु सुन्दर मन्दिर है जो रोशनी में

बड़ा ही भव्य दिखाई देता है। श्री रंगजी के मन्दिर के पीछे 'ज्ञान गूदड़ी' नामक स्थान है। यह स्थान विरक्त महात्माओं की भजनस्थली है। वहाँ राम मन्दिर और टट्टी सम्प्रदाय का मन्दिर है। कहते हैं कि उद्धव जी का गोपियों के साथ संवाद यहीं हुआ था। वृन्दावन मन्दिरों का ही घर है। वहाँ घर घर मे मन्दिर है। सभी मन्दिरों के दर्शन संभव नहीं और सभी मन्दिरों में वह एक है यह सोच कर श्रीदाता श्रोत मुनि आश्रम में पधार गये। मार्ग में एक मन्दिर में रास-लीला हो रही थी। श्रीकृष्ण राधाजू को रूठना सिखा रहे थे। राधाजू सरलचित, बोलने में कहीं न कहीं गलती हो ही जाती। श्रीकृष्ण भी सिखाने में धैर्य नहीं खोते हैं। वे बार बार बोल कर की हुई गलती को ठीक करने का प्रयास करते हैं। अन्त में राधाजू को रूठना आ ही जाता है। इसी प्रसंग की लीला चल रही थी। लीला बड़ी स्वाभाविक एवं आकर्षक थी। ऐसा लग रहा था मानो वे वर्तमान के पात्र न होकर श्रीकृष्ण और राधा ही हैं। श्रीदाता बड़ी देर तक वहाँ खड़े रहे। मार्ग में एक और मन्दिर मे रास-लीला चल रही थी। वहाँ श्रीकृष्ण किशोरावस्था मे थे। कुछ देर वहाँ भी ठहर कर श्रीदाता आश्रम पर पधार गये। उस दिन की यात्रा बड़ी ही आनन्ददायिनी रही। स्थान स्थान पर श्रीदाता भक्तजनों के मन में उठने वाले भ्रमों और संदेहों को अपनी प्रभावशाली वाणी से दूर करते जाते थे और साथ ही प्रत्येक स्थान का महात्म्य भी बताते जाते थे।

रात्रि को दस बजे जयपुर वाले बन्धु अर्थात् श्री सीताराम जी एवं उनके साथी भजन बोलने लगे। कृष्ण-लीला सम्बन्धी भजन थे जो मधुर स्वर में बड़ी तन्मयता से बोले गये। आश्रम के कई लोग भी आ बैठे। रात्रिभर भजन चलते रहे, व आनन्द की वृष्टि होती रही। रात्रि बात की बात में बीत गई।

प्रातः श्रीदाता का पधारना गोकुल मे हुआ। गोकुल मथुरा से छः मील दूर यमुना के दूसरे किनारे पर है। गोकुल मे वल्लभ सम्प्रदाय के कई मन्दिर हैं। प्रत्येक मन्दिर में पण्डों की भीड़ थी। पण्डों के कारण मन्दिर के प्रवेश में कठिनाई अवश्य हुई। ज्यों त्यों

कर भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन किये। पण्डो की ज्यादती से मजा किरकिरा हो गया। काश, लुटेरो के रूप में ये स्वार्थी पण्डे तीर्थो में न हो तो कितना अच्छा हो! वहाँ से चल कर श्रीदाता का पधारना महावन में होते हुए ब्रह्माण्ड घाट पर हुआ। यह वही स्थान है जहाँ कहते है कि भगवान बालकृष्ण ने मृद्-भक्षण लीला की थी। वहाँ कुछ ठहर कर बलदेव गाँव के लिए रवाना हो गये। बलदेव गाँव में एक अच्छा सा मन्दिर है जिसमें बलदेव जी की विशाल प्रतिमा है। वहाँ पहुँचते पहुँचते ग्यारह बज गए। गर्मी अधिक हो गई और वहाँ भी पण्डो की ज्यादतियो का शिकार होना पडा। अत कुछ देर ठहर कर वहाँ से भी लौट जाना पडा। वहाँ से पुन ब्रह्माण्ड घाट पर पधारना हुआ। पण्डो का जमघट वहाँ भी था किन्तु वे अन्य यात्रियो से उलझ रहे थे। स्नान करने का अच्छा मौका था अत श्रीदाता ने वही स्नान किया। वहाँ पानी में जलचरो की अधिकता थी अत घाट पर बैठ कर ही स्नान करना पडा। स्नानोपरान्त श्रीदाता एक पेड की ठण्डी छाह में बैठ गये। कुछ पण्डे भी वहाँ आकर बैठे। वहाँ से यमुना के दोनो ओर दूर दूर तक का दृश्य दिखाई दे रहा था। एक पण्डे ने दूर के एक गाँव की ओर सकेत कर बताया कि वह गाँव सदैव बाढ से बचा रहता है। यमुना मे कितनी भी बाढ क्यो न आवे, उस गाँव में पानी नही जाता है। उसकी इस बात ने आश्चर्य में डाल दिया। सत्य क्या है प्रभु ही जानें। वहाँ श्रीदाता ने बाल-लीलाओ सम्बन्धी अनेक प्रसगो का वर्णन किया। भक्त लोगो को कई बातो की नई जानकारी हुई। वहाँ से लौटते समय मार्ग में कुछ लोगो को एक शव ले जाते देखा। वे शव को कन्धे पर उठाये दौडे जा रहे थे। ऐसा लग रहा था कि वे बडी दूर से आ रहे है। ब्रजमण्डल में यदि कोई मर जाता है तो उसके मृत शरीर को यमुना को अर्पण कर देने की प्रथा है। वहाँ जल-दाह को मोक्षदायक माना गया है।

सायकाल चार बजे श्रीदाता सब लोगो को लेकर पागल बाबा द्वारा निर्माणाधीन मन्दिर में पधारे। यह मन्दिर मथुरा और वृन्दावन के मध्य स्थित है। इस मन्दिर के निर्माण में लाखो रुपये व्यय किये जा चुके है और लाखो रुपये अभी व्यय होने की सभावना

है। निर्मित हो जाने पर मथुरा और वृन्दावन का यह सबसे बड़ा मन्दिर होगा। नवखण्ड के इस मन्दिर के प्रत्येक खण्ड में अलग अलग प्रतिमाएं स्थापित करने की योजना है। प्रतिमाएँ भी बन कर आ गई हैं। इसके ऊपर से देखने पर चारों ओर का दृश्य बड़ा मनोरम एवं सुहावना दिखाई देता है। एक ओर वृन्दावन तो दूसरी ओर मथुरा तथा आस पास स्थित कई गाँव वहाँ से दिखाई देते हैं। आँगन भी बड़ा विस्तृत है जिसमें कुण्ड, फँवारे, वाटिका आदि बड़े व्यवस्थित तरीके से बनाये गये हैं। एक ओर पागल बाबा की कुटिया थी। उस समय बाबा बीमार और अचेत अवस्था में थे।

श्रीदाता मन्दिर देखने के बाद बाबा से मिलने उनकी कुटिया की ओर बढ़े। ज्योंही श्रीदाता कुटिया में जाने लगे तो बाबा की सेवा में नियुक्त दो सेवकों ने आगे बढ़ कर बाबा की स्थिति बता कर उन्हें रोकना चाहा। उन्होंने श्रीदाता को पहचान लिया। दो सेवकों में स एक श्री मिश्रा व दूसरा प्राणी उनकी पत्नी थी। श्री मिश्रा पूर्व में मजिस्ट्रेट थे व वर्तमान में प्रथम श्रेणी के ठेकेदार। दोनों ही पूर्व में श्रीदाता के दर्शन कर चुके थे व इस समय भी वृन्दावन से निवृत होकर दाता-निवास जाने की योजना थी। दाता के दर्शन कर वे अतीव प्रसन्न हुए। वहाँ श्रीदाता के दर्शन हो जाना 'घर आयी गंगा' हो गया। उनकी रीढ़ को हड्डी में भारी दर्द रहने लगा था जिससे उठने, बैठने और चलने में भारी कठिनाई का अनुभव होता था। उनके गुरु वृन्दावन में आये थे अतः उनके साथ दोनों पति-पत्नी वृन्दावन आ गये। प्रणाम् करने के बाद वे बोले, "हमारे अहोभाग्य जो आपके दर्शन हो गये। आप कितने दयालु और महान् हैं। हम लोग तो आपके द्वारे आने की सोच ही रहे थे कि आपने हमें यहीं दर्शन दे दिये। बाबा की तबियत दो दिन से ज्यादा खराब है। डाक्टर की दवा दी गई किन्तु कुछ लाभ नही हुआ। अभी भी बेहोश है। सब घबरा रहे है। कुछ सूझता भी नहीं कि क्या करें? हमारे भाग्य से बाबा पर कृपा करने आप आ गये हैं। कृपया आप बाबा को ठीक कर दें।"

श्रीदाता वहाँ से एक ओर हट कर कुटिया के पास ही नीचे जमीन पर बैठ गये। पागल बाबा के अनुचर, भक्त और शिष्य लोग

भी वही आकर बैठ गये। श्री मिश्रा जी के गुरु जो सन्यासी के वेश में थे तथा जो सरलचित्त और निःस्पृह सन्त है, वे भी पास ही आकर बैठ गये। सर्वप्रथम तो श्रीदाता ने मिश्रा जी को उनकी रीढ की हड्डी के दर्द के बारे मे पूछा। उस समय रीढ की हड्डी का दर्द गायब था। वे उठे, बैठे और फिर चले। उन्हे किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हुई। वे प्रसन्न होकर पालथी लगाकर बैठ गये। श्रीदाता ने फरमाया, "श्रीदाता बडे दयालु है किन्तु बन्दा ठहरता कहाँ है। उसका मन तो फिरकनी की तरह फिरता है। दाता देने को तो खूब देता है किन्तु बन्दे में लेने की सामर्थ्य होनी चाहिए।" एक व्यक्ति ने पूछा, ' दाता है कहाँ ?" इसपर श्रीदाता ने फरमाया, "वह तो सर्वत्र है। तार-तार में है। वह तो कण कण में विद्यमान है। जैसे बिजली के तार मे रोशनी है। प्रत्येक बल्ब में रोशनी है। केवल बटन दबाने की आवश्यकता है। उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य, प्रत्येक स्थान एव प्रत्येक वस्तु रूपी बल्ब में दाता है। केवल स्विच दबाने मात्र की देर है उसको प्रकाशित करने को केवल 'कनेक्शन' चाहिये। एक परदा मात्र है। भ्रम का परदा पडा हुआ है। थोडी सी भूल पड गई है। उस भूल को मिटा देने पर दाता के दर्शन सुलभ हो जाते है।" इस प्रकार बडी देर तक सत्सग चलता रहा। पागल बाबा की पुकार भी दाता ने सुनी। श्रीदाता रात्रि को पुन पागल बाबा के पास पधारे। उस समय वे होश मे थे व तबीयत काफी अच्छी हो चुकी थी। वे दाता के दर्शन कर गद्गद् हो गये।

रात्रि का समय आ गया। चारो ओर कीर्तन-भजनो की ध्वनियों मे आकाश गूँजने लगा। जिधर देखो उधर आनन्द का वातावरण। वृन्दावन के प्रत्येक वासी के हृदय में बालकृष्ण एव राधा, जी के प्रति अपार भक्ति और प्रेम, देखते ही बनता है। सभी की अवस्था प्रेम मनवाली गोपियो सी थी। यथा :-

अब तो प्रगट भई जग जानी।
वा मोहन सों प्रीति निरन्तर क्यों निबहैगी छानी ॥
कहा करौं सुन्दर मूरति इन नैननि माँझ समानी।
निकसत नाहिं बहुत पचि हारी रोम रोम अरुझानी ॥

अब कैसें निरवारि जाति है, मिल्यौ दूध ज्यौं पानी।
सूरदास प्रभु अंतरजामी ग्वालिन मन की जानी ॥

कोई व्यक्ति ऐसा दिखाई नहीं देता था जो भगवान के प्रेम में मस्त न हो। यहाँ तक की ताँगेवालों के मुख से भी यही सुना जाता था, "हटिये राधाजी, देख के चलो राधाजी, राधे राधे बोलो, आदि।" वृन्दावन नहीं था वह तो अगाध प्रेमसिन्धु था, जिसकी थाह पाना सरल नहीं था। श्रीदाता के साथ जितने भी बन्दे थे उनकी हालत वहाँ के वातावरण को देख कर विचित्र सी हो गई तथा वे इच्छा करने लगे 'काश! हम ब्रज की रेणु होते तो कितना आनन्द रहता। भाग्यशाली है यह वृन्दावन क्षेत्र और यहाँ के वासी।'

आश्रम के पास ही एक मन्दिर है जिसमे उस समय रास-लीला चल रही थी। श्रीदाता के कुछ बन्दे अपने आप को नहीं रोक सके। वे रास-लीला देखने चले गये। वहाँ होली का दृश्य था। फूलों और गुलाल से होली खेली जा रही थी। कृष्ण राधा पर और राधा कृष्ण पर फूलों और गुलाल की वर्षा कर रहे थे। स्टेज पर फूलों का ढेर लग गया और वातावरण में गुलाल के कण छा गये। बीच बीच में भक्तों और दर्शकों पर भी गुलाल फेंक दी जाती थी जिससे दृश्य बड़ा रसीला हो जाता था, बड़ा ही मन-मोहक एवं आनन्ददायक नजारा था। श्रोत मुनि आश्रम में भी डाक्टर साहब सीताराम जी आदि ने भजन बोलना प्रारंभ कर दिया जो रात्रिभर चलते रहे। श्रीदाता ध्यानस्थ हो विराजे रहे।

अगले दिन अर्थात् १६-३-७८ को श्रीदाता का पधारना नन्दगाँव हुआ। नन्दगाँव मथुरा से २१ मील दूर है। यह छोटा सा गाँव है जो एक छोटी सी पहाड़ी को ढके हुए बसा है। पहाड़ी के सिरे पर गाँव के बीचोबीच नन्द बाबा का मन्दिर बना है। इस पहाड़ी को शिव का प्रतीक माना जाता है। मन्दिर मे नन्द, यशोदा, कृष्ण, बलराम, ग्वाल-बाल और राधाजी की प्रतिमाएँ हैं। गोकुल मथुरा से निकट होने से कंस का निरंतर भय था अतः नन्द बाबा अपनी गायों को लेकर यहाँ आ बसे थे। इस गाँव में और विशेष कर नन्द भवन में जाने पर बड़ी शान्ति का अनुभव हुआ। वहाँ

श्रीदाता की असीम अनुकम्पा से सभी के हृदय भाव विभोर हो गये। भगवान श्री कृष्ण के बाल-लीला स्थान को देख कर अपार आनन्द की अनुभूति हुई। वहाँ श्रीदाता और मातेश्वरी जी क्रमश हम सब को कृष्ण और राधा के रूप में दिखाई दिये। उस समय उनके दर्शनो से अघाते नही थे। कुछ समय बाद ही पाच-छ पण्डे आ गये वे सभी मिल कर एक साथ हो गये। उनमें से एक वृद्ध पण्डे ने नन्द बाबा और भगवान कृष्ण सम्बन्धी अनेक कथाएँ बताई तथा भवन की चारदिवारी के ऊपर ले जाकर चारो ओर के उन स्थानो को बताया जहाँ भगवान कृष्ण ने गो-चारण के समय अनेक लीलाएँ की थी। वहीं से बरसाना भी दिखाई देता है। उस वृद्ध ने पामरी-कुण्ड और उस सरोवर को भी बताया जहाँ राधा और श्रीकृष्ण सर्वप्रथम मिले थे। चार दिवारी की एक बुर्ज पर बैठ कर दो भजन भी उन्होने बडे भाव विभोर होकर सुनाये –

(१) आज ब्रज में होली रे रसिया,
होरी नही छ बर जोरी रे रसिया,
इतते आये कुँवर कन्हेया, उतते आयी राधा गोरीरे रसिया।
गोकुल से आये कुँवर कन्हैया,
बरसाने से राधा गोरी रे रसिया।
कृष्ण के हाथ कनक पिचकारी,
राधा के हाथ रग बोरी रे रसिया।
भर पिचकारी गोरे मुख डारी,
राधा के हाथ रग बोरी रे रसिया।
चन्द्रसखि ब्रज बाल कृष्ण छवि,
चिरजीव रहो ये जोरी रे रसिया।

(२) होरी खेलन आयो श्याम, आज याने रग मे बोरो री।
कोरे कोरे कलश मगाय, रग केसर घोलो री।
रग बिरगो करो आज, याने आँगन में घेरो री।
पीताम्बर लेओ छीन, पहनावो चोरी री।
हरे बास की बासुरी ने, तोर मरोरी री।

ताली दे दे नाच नचाओ अपनी ओरी री ।
चन्द्रसखी की यही वीनती, करे निहारो री ।

जिस समय ये भजन वोले जा रहे थे उस समय आकाश में वादल घिर आये और छोटी छोटी वून्दें गिरने लगी। ऐसा लग रहा था मानो प्रकृति भी अपने प्रिय के आगमन पर प्रसन्नता के आँसू गिरा रही हो। वहाँ उपस्थित जनसमुदाय के मन मयूर मस्ती से नृत्य करने लगे। वड़ा अद्भुत दृश्य उपस्थित हो गया। उस समय एक वन्दरों की टोली भी आ गई वह भी श्रीदाता के चारों ओर आ वैठी। उस समय का वातावरण वड़ा ही मोहक हो गया और जी चाहने लगा कि भजन चलते ही रहें व सव यहीं वैठे रहें, किन्तु श्रीदाता को यह मंजूर कहाँ ? वे उठ खड़े हुए और धीरे धीरे वहाँ का मुग्ध दृश्य देखते हुए गाँव के वाहर जहाँ वाहन खड़ थे आ गये। पण्डों ने प्रसाद हेतु दस रुपये माँगे। श्रीदाता ने उन्हें दस के स्थान पर वीस रुपये दिये। सभी प्रसन्न होकर श्रीदाता की जय वोलने लगे।

वहाँ से वरसाना की ओर चले। वरसाना वहां स ७ मील और मथुरा से ३५ मील दूर है। उसका असली नाम वृपभानुपुर है। वह भगवान श्रीकृष्ण की प्राण-प्रियतमा श्री राधा किशोरी की पितृभूमि है जो लगभग दो सौ फूट ऊँची एक पहाड़ी की ढाल में वसा है और दक्षिण-पश्चिम में चौथाई मील तक चला गया है। इस पहाड़ी का नाम वृहत्सानु या व्रह्मसानु है अतः वरसाना को वृहत्सानु या व्रह्मसानु भी कहते हैं। इसके चार शिखर हैं। इन्हीं शिखरों से एक पर मोरकुटी, दूसरे पर मानगढ़, तीसरे पर पानगढ़ और चौथे पर दानगढ़ है। वरसाने के दूसरी ओर एक पहाड़ी और है। दोनों पहाड़ियों की द्रौणी में वरसाना गाँव वसा है। दोनों पहाड़ियाँ जहाँ मिलती है वहाँ एक ऐसी तंग घाटी है कि अकेला मनुष्य भी उसमें से कठिनाई से निकल पाता है। दोनों का अङ्गरूप नाव के से आकार का एक ही पत्थर का है जो धरती पर जम रहा है। इसकी विचित्रता देखते ही वनती है इसी को सांकरी खोर कहते हैं। वरसाने में भादव सुदी अष्टमी से चतुर्दशी तक

मेला लगता है तथा फाल्गुन सुदी अष्टमी, नवमी और दशमी को होली की लीला होती है ।

पहाडी पर कई मन्दिर है जिनमें प्रधान मन्दिर लाडली जी का है जो प्राचीन है । सीढियो पर चढ कर जब इस मन्दिर को जाते है, तब मार्ग में महिभानु जी का मन्दिर है । सीढियो के नीचे पहाडी के मूल मे दो मन्दिर है । एक राधाजी की प्रधान सखियाँ (ललिता, विशाखा, चित्रा, इन्दुलेखा, चम्पकलता, रङ्गदेवी, तुङ्गविद्या और सुदेवी) का है तथा दूसरा वृषभानुजी का है । वृषभानुजी के मन्दिर में एक ओर श्री किशोरी जी सहारा दिये खडी है और दूसरी ओर उनके बडे भाई तथा श्यामसुन्दर के प्रिय सखा श्री दामा खडे हैं ।

श्री राधा जी का मन्दिर बडा भव्य है । वहाँ श्रीदाता का कुछ समय तक विराजना हुआ । वर्षा धीरे धीरे बूंदा वांदी के रूप में हो-रही थी । वातावरण ठण्डा और सुन्दर था । बन्दरो की एक टोली मन्दिर के चारो ओर की दीवारो पर एव कगूरो पर किलोले कर रही थी । मन्दिर में फाग की तैयारी हो रही थी क्योंकि अगले दिन से ही फाग-लीला प्रारभ होने वाली थी । भीड धीरे-धीरे बढ रही थी अत श्रीदाता वहाँ से उठ कर मन्दिर के बाहर पधार गये । बाहर चारो ओर का दृश्य बडा ही सुन्दर एव मनोहर था । प्रसन्नता और भारीपन की मिश्रित अवस्था में वहा से लौटना हुआ ।

बरसाने में भानु पुष्कर नाम का सुन्दर पक्का बना हुआ तालाब है जो वृषभानु जी द्वारा निर्मित ही बताया जाता है । पास ही राधाजी की माता श्री कीर्तिदा जी के नाम से कीर्ति कुण्ड है । मुक्ता कुण्ड और प्रिया कुण्ड नामक दो तालाब और हैं । सभी देखने में सुन्दर लगते है ।

बरसाने से श्रीदाता का पधारना गोवर्धन जी पर हुआ जो बरसाने से १४ मील है । गोवर्धन जी एक छोटी पहाडी के रूप में है जिसकी लम्बाई तो सात मील है किन्तु ऊँचाई बहुत ही कम है । कही कही तो भूमि की सतह से आठ-दस फीट ही ऊँचा है । गोवर्धन जी की परिक्रमा १४ मील की है । बहुत से लोग इसकी परिक्रमा दण्डवत प्रणाम करते हुए करते है । श्रीदाता का पधारना

गोवर्धन वस्ती के पास होता हुआ गोवर्धन जी के मुख पर हुआ। मानसी गंगा पर गिरिराज का मुखारविन्द है। मुख पर प्रतिदिन सैकड़ों मन दूध चढ़ाया जाता है। वहाँ दूध की नदी ही वहती रहती है। चरणामृत के रूप में लोग दूध ही लेते हैं। अनेक कुत्ते और बन्दर इसी दूध पर आश्रित रहते हैं। स्थान वड़ा ही मनोहारी है। पास ही तकीसरा नामक गाँव है। वहाँ के दर्शन कर गोवर्धन गाँव में पहुँचे। वहाँ मन्दिर के दर्शन कर मानसी गंगा नामक सरोवर को देखा। सरोवर वड़ा ही रम्य है तथा उसका पानी स्वच्छ, शीतल और पवित्र है। सरोवर देखने योग्य है।

गोवर्धन जी से मथुरा १६ मील है। वहाँ से चल कर मथुरा होते हुए वृन्दावन पहुँचे। शाम को पाँच वजे के लगभग सभी श्रीदाता के सामने जा वैठे। सत्संग चर्चा चली ही थी कि श्री मिश्रा और उनकी पत्नी जो एक दिन पूर्व पागल वावा के मन्दिर में मिले थे आ गये। उन्होंने वताया कि पागल वावा दाता के पधारने के कुछ देर बाद से ठीक हैं और अव दाता के दर्शनों के इच्छुक हैं। श्रीदाता ने कहा, "बावा बड़ा है। माका राम तो छोटा सा प्राणी है।" इस पर मिश्रा जी सहित सव ही लोग हँस दिये। श्रीदाता ने मिश्रा जी से पूछा, "आप कैसे हैं?" मिश्राजी ने वताया, "पहले से काफी अच्छा हूँ किन्तु कभी कभी कुछ दर्द हो जाता है।" श्रीदाता ने कहा, "इतना सा दर्द रह जाय तो कोई हर्ज तो नहीं हैं।" मिश्रा जी ने हाथ जोड़ कर विनय की, "भगवन! हर्ज तो कुछ नही है किन्तु आपकी कृपा से दूर हो जाय तो अच्छा है। मैं तो इस दर्द से घवराता हूँ।" श्रीदाता ने हाथ लगा कर कुछ सकेत किया और पूछा, "अव देखो दर्द कैसा है?" मिश्रा जी ने उठ कर, बैठ कर और चल कर देखा, दर्द गायव था।

मिश्राजी एवं वहाँ उपस्थित सभी लोगों को खुली आँखें ध्यान करने को कहा गया। श्रीदाता ध्यानस्थ हो गये और अन्य सभी खुली आँखों से श्रीदाता के शरीर को देखने लगे। सभी को भिन्न भिन्न प्रकार का अनुभव हुआ। यह सब कुछ चल ही रहा था कि वहाँ एक कार आकर रुकी और उसमें से तीन विदेशी उतर

कर आये। एक युवक और दो युवतियाँ थी। तीनों ही वर्जीनिया के निवासी थे। तीनो ही दण्डवत कर बैठ गये। युवक का विवाह हाल ही में हुआ था व धोक देने वृन्दावन में आये थे। मार्ग में उसकी पत्नी बीमार हो गई। मिश्राजी ने उसे अपनी पत्नी की बीमारी निवारण हेतु श्रीदाता से प्रार्थना करने का परामर्श दिया था। उसकी पत्नी कार में ही थी। ज्योंही वे आकर बैठे युवक को ड्राईवर से बुला लिया। शायद उसकी पत्नी की तबीयत ज्यादा खराब हो गई थी। वह कार में बैठ कर चला गया। मम्भव है उसे श्रीदाता पर विश्वास न हुआ हो क्योकि विश्वास ही फलदायक होता है।

दोनो युवतियाँ वही बैठी रही। श्रीदाता ने उनका नाम पूछा। एक ने अपना 'ईश्वरी' व दूसरी ने 'ओम्' बताया। हम सभी को भारतीय नाम सुन कर आश्चर्य हुआ। अधिक परिचय पूछने पर बताया कि उन्हे दुनिया में रहकर बडी अशान्ति का अनुभव होता है और शान्ति प्राप्त करने हेतु भारत में आई है। उन्होने वृन्दावन के बारे में बहुत कुछ सुना है अत वे वृन्दावन में चली आई। वृन्दावन उन्हे बडा अच्छा लगा है। भगवान कृष्ण की लीलाओं का वर्णन सुन सुन कर बडा आनन्द आता है। यहा ध्यान करने पर मन लगता है और ऐसा लगता है कि वे ठिकाने पर आ गये हैं। उन्हे यहा आनन्द आने लगा है। कुछ समय बाद श्रीदाता ने सभी को पुन ध्यान करने को कहा। लगभग पन्द्रह मिनिट तक सभी श्रीदाता के पचभूतो से बने शरीर को देखते रहे। इसके पश्चात् श्रीदाता ने ईश्वरी से पूछा, "आप क्या कर रही थी?" उसका उत्तर था, "वह श्रीदाता के शरीर को ध्यान से देख रही थी। उसको ऐसा लगा जैसे दाता के स्थान पर श्री नित्यानन्द जी विराज रहे हैं। अनेक बार मुझ को भ्रम हुआ कि ऐसा नही हो सकता किन्तु वास्तविकता यही थी कि नित्यानन्द जी को ही देखा।" श्रीदाता ने फिर ओम् को पूछा। उसने बताया, "मै ध्यान से दाता के चेहरे को देख रही थी। दाता के दर्शन हो रहे थे। एक अपूर्व तेज था चेहरे पर। मन लगा रहा। बडा ही आनन्द आया।"

उनके एक दिन के कुछ मिनिटों के प्रयास से ही इतनी उपलब्धि, यह देख कर कम आश्चर्य नहीं हुआ। यह श्रीदाता की महर नही तो और क्या है –

आसरा एक करतार का रख तू,
बीच मैदान के वाँध टाटी।
रहेगा वोही जिन्हें खलक पैदा किया,
और सव होगया खाक माटी।

हमारे आश्चर्य को देख श्रीदाता ने फरमाया, "इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। दाता का आसरा ही मुख्य है। जो अपने आप को दाता के चरणों में सौप देता है और जो अपना स्वयं का कुछ नहीं रखता, उसको दाता सव कुछ दे देता है। तुम लोग तो भार ढोये फिरते हो। तुम्हारा मन डोलता फिरता है। तुम लोगों से ठहरा तो जाता नहीं। व्यर्थ दाता को दोष लगाते हो।" श्रीदाता ने जो कुछ कहा अक्षरशः सत्य है। न तो हमें दाता पर दृढ़ विश्वास है और न कभी दाता की अनुभूति की इच्छा ही करते हैं। विना चाह दुनिया की कोई वस्तु ही नहीं मिलती तो फिर दाता जैसी अनमोल वस्तु कैसे मिल सकती है। दाता की भूख जब तीव्र होगी तभी जाकर काम वनेगा। जब उसके लिये छाती फटने लगेगी और हृदय में व्यग्रता होगी, तभी काम वनेगा।

हाय हाय हरि कव मिलैं, छाती फाटी जाय।
ऐसा दिन कव होयगा, दरसन करूँ अघाय॥
गद्‌गद् वाणी कंठ में आँसू टपकें नैन।
वह तो विरहन राम की तड़फत है दिन रैन॥

(स्वामी चरणदास जी)

भक्तिमति दयावाई ने भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं–

सोवत जागत हरि भजो, हरि हिरदे न विसार।
डोरी गहि हरि नाम की, 'दया' न टूटै तार॥
मनमोहन को ध्याइये, तन मन करिये प्रीति।
हरि तज जो जग में पगे, देखो वड़ी अनीति॥

प्रेम मगन गद्‌गद् वचन, पुलकि रोम सब अग ।
पुलकि रह्यो मन रूप में, 'दया' न ह्वै चित भग ॥

जो व्यक्ति दाता के प्रेम रस में सन जाता है, जिसको दाता सिवा कुछ नही अच्छा लगता है उस पर दाता की महर अवश्य होगी ही ।

कुछ देर बाद दोनो अँग्रेज युवतियाँ और मिश्रा दम्पति उठ कर चले गये । सत्सग-भजन चलता रहा । बहनो द्वारा गाये गये भजन बडे मार्मिक थे । श्रीदाता तो ध्यानस्थ हो रात्रि के दो बजे तक विराजे रहे । लोग भाव-विभोर होकर आनन्द के सागर में गोते लगा रहे थे । रात्रि कैसे व कब निकली, इसका भी भान लोगो को नही था ।

प्रात कुछ लोगो की सेवा-निकुञ्ज देखने की इच्छा हुई किन्तु श्रीदाता ने उन्हें रोक दिया । वे बिना किसी को कुछ बताये कार में जा विराजे । अन्य लोग भी वाहनो में जा बैठे । कार आगे-आगे व अन्य वाहन पीछे पीछे चले । कोई नही जान सका कि श्रीदाता कहाँ पधार रहे हैं । श्रीदाता की कार तग गलियो में होती हुई यमुना किनारे पहुँची । कार नदी के बीचोबीच पानी की धारा के पास जाकर रुक गई । अन्य लोगो ने अपने वाहन यमुना के किनारे ही रोक लिए व वाहनो से उतर पडे । लोगो ने यमुना को देख कर सोचा कि श्रीदाता स्नान करने पधारे हैं किन्तु दाता के पास धोती तो थी नही । कुछ समझ नही पडा । यमुना का जलस्तर पूर्व दिन के मुकाबले बढ गया था । पानी का स्तर उस समय भी लगातार बढ रहा था । वहाँ एक अस्थाई पुलिया गैसो के ढोलो पर बनी हुई थी जो पानी के साथ ही उठ रही थी किन्तु पानी दूर तक आ गया था और पुलिया पर पहुँचने हेतु पानी में से होकर जाना था । श्रीदाता ने बिना कुछ कहे पानी में प्रवेश किया । अन्य लोग भी पीछे पीछे चले । मातेश्वरी जी कुछ देर खडी रही फिर वे भी चल पडी । श्रीदाता जो केवल एक धोती ही पहनते हैं किन्तु अन्य लोगो के तो कपडे थे । कोई पेन्ट पहने था, कोई पैजामा तो कोई धोती । मातेश्वरी जी और बहनें लहगा व साडियाँ पहने थी । पानी कमर तक की ऊँचाई तक था । सभी के कपडे भीग गये ।

सभी लोग ज्यों त्यों पानी को पार कर पुलिया तक पहुँच गये। श्रीदाता पुलिया पर होकर दूसरे किनारे पहुँचे व किनारे-किनारे बनी हुई पगदण्डी पर चल पड़े। उन्होंने पीछे मुड़ कर भी नहीं देखा। लोग कुछ भी न समझ सके। किसी को कुछ पूछने का साहस भी नहीं हुआ। सभी पीछे पीछे जिज्ञासा लिये हुए चल पड़े। लगभग दो मील चलने पर एक आश्रम दिखाई दिया। पूछने पर मालूम हुआ कि वहाँ देवरिया बाबा ठहरे हुए हैं।

देवरिया बाबा वृद्ध सन्त हैं। कहते हैं कि उनकी आयु एक सौ बीस वर्ष से भी अधिक है। वे फूस की टपरी लकड़ी के खम्भों पर बना कर उसमें निवास करते हैं। वे जमीन पर न तो बैठते हैं और न विश्राम ही करते हैं। वहाँ भी उनके भक्तों ने एक कुटिया बना कर कुटिया के आँगन में फूस का कोट बना दिया है जिसके बीचोबीच मचाननुमा एक झोपड़ी थी। श्रीदाता सहित सब लोग फूस के बने प्रवेश द्वार से आँगन में पहुँच गये। वहाँ पूर्व से ही बहुत से दर्शनार्थी उपस्थित थे। मिश्राजी और दोनों अँग्रेज युवतियाँ भी वहीं उपस्थित थी। वे नाव द्वारा यमुना पार कर पहले ही पहुँच गये थे। उन्हें बाबा के दर्शन नहीं हुए थे। लोगों ने बताया कि बाबा यमुना विहार कर रहे हैं और कोई यह नहीं बता सकता कि यह विहार कब तक चलता रहेगा।

श्रीदाता के साथ वाले लोग श्रीदाता के पीछे ही एक पंक्ति में खड़े हो गये। श्रीदाता ने फरमाया, "बाबा के दर्शन को आये हो, चुप क्यों हो? कीर्तन बोलना प्रारंभ करो। बाबा को कीर्तन सुनाओ।" फिर क्या था। 'श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्दा, हरे कृष्ण हरे राम राधे गोविन्दा' की ध्वनि से आकाश गूँजने लगा। बड़ी मधुर ध्वनि में कीर्तन होने लगा। अँग्रेज युवतियाँ और मिश्रा दम्पति ने भी कीर्तन में योग दिया। अन्य उपस्थित लोग आश्चर्य से देखने लगे। कुछ देर तो कीर्तन सामान्य गति से चला फिर तो समा ही बँध गई। लगभग एक घण्टे तक बाबा नदी के बाहर नहीं निकले। फिर नदी से बाहर आकर तीर की गति से मचान पर चढ़ गये। मचान पर जा, पैर धोकर वे कुछ समय कुटिया में चले

गये। कुछ ही देर बाद बाबा कुटिया से बाहर आ गये और बरामदेनुमा बने मचान पर बैठ गये। उन्होने सभी को देखा। सभी को देखकर बोले, "सीताराम कहो।" उन्होंने श्रीदाता को कुछ देर गौर से देखा और फिर बोले, "कृष्णाय नम गोविन्दाय नम।" जब उन्हे मालूम हुआ तो वे बोले, "आप लोग मेवाड से आये है। आप लोगो ने बडे मधुर स्वर में कीर्तन सुनाया, बडा अच्छा किया। कलियुग में एक नाम आधारा। कीर्तन ही मोक्ष को देनेवाला है। दाताराम ने कृपा की, यह बडी अच्छी बात है। दाताराम तो मेरी प्यारी आत्मा ही है।" यह कह उन्होंने अपने एक भक्त शिष्य को प्रसाद वितरण करने को कहा। बतासे का प्रसाद था। जब वह भक्त श्रीदाता को प्रसाद देने लगा, तब बाबा बोले, "अरे! दाताराम तो मेरा हृदय है। इनकी झोली भर दो। खूब झोली भर दो। दाताराम तो दाताराम ही है। अब जाओ। खूब कीर्तन करो। मौज करो। आप सब का कल्याण होगा।" यह कह कर बाबा ने हाथ जोड दिये। वे अपने स्थान से उठे। वृद्ध तो थे ही, कुबड निकल रही थी तथा सीधे खडे नही हो सकते थे किन्तु स्फूर्ति गजब की थी। वे त्वरित गति से कुटिया में चले गये। श्रीदाता भी वहाँ से चल पडे। मार्ग में बाबा के सम्बन्ध में ही बाते होती रही। पुलिया पर लौटे तब तक दो घण्टे का समय हो गया था। यमुना का पानी इस बीच काफी चढ गया था। श्रीदाता आगे और हम सब पीछे पीछे। पुलिया पार कर पानी को पार किया। सूखे हुए कपडे पुन गीले हो गये। जहाँ कार छोड कर गये थे वहाँ लगभग एक फुट पानी था। अन्य वाहन वालो ने अपनी चाबी लगाकर कार को हटा न ली होती तो कार यमुना के पानी में बह जाती। कार श्री दुर्गाप्रसाद जी वैद्य की थी। यमुना में जो खेत थे उनमें भी दो-दो फुट पानी आ गया था। अचानक पानी आने से खेतो में बडा नुकसान हुआ। कृषक लोग अपनी फसलें बचाने में लगे थे। यमुना का पानी गन्दला था अत स्नान करने का विचार छोडना पडा और गीले कपडो में ही आश्रम में पहुँच गये।

भोजनोपरान्त जयपुर लौटने की योजना बनी। इसी बीच ईश्वरी, ओम् एव मिश्रा दम्पति आ गये। कुछ समय तक बातचीत

होती रही। दोनों अँग्रेज युवतियाँ दाता के प्रति अटूट श्रद्धा रखने लगी थीं। नित्यानन्द जी को वे गुरु के रूप में मानती थी व श्रीदाता को नित्यानन्दजी के रूप में देखा था अतः वे गुरु के रूप में ही देखने लगी। जव उन्हें मालूम हुआ कि श्रीदाता वृन्दावन से पधार रहे हैं तो वे वड़ी वेचैन हुई। श्रीदाता ने उन्हें समझा वुझा कर वहाँ से विदा किया। इस माने में श्रीदाता वड़े खिलाड़ी हैं। उनकी लीला ही अद्‌भुत है। सेवानिकुञ्ज कुछ लोगों का अनदेखा रह गया था अतः प्रस्थान के पूर्व उसे देखने पधारना हुआ। वहाँ से चल कर मथुरा पहुँचे। मथुरा में अनेक दर्शनीय स्थान है किन्तु सभी को देखना संभव नहीं था। अतः सीधे कृष्ण-जन्म-स्थल पर पहुँचे। पास ही श्रीकृष्णदेव का विशाल मन्दिर निर्माणाधीन था। जिसका निर्माण जोरों पर चल रहा था। कृष्ण जन्म स्थान पर संगमरमर पर आकृतियाँ चित्र रूप में हैं। नीचे की ओर कारागृह है। कारागृह में काले पत्थर की दीवार है जो लोह की दीवार सी दिखाई देती है। लगभग आधा घण्टे तक कारागृह को ही देखते रहे। उस स्थान को देख कर सभी लोग उस कल्पना लोक में पहुँच गये जहाँ कंस की ज्यादतियों से प्रजा त्रस्त थी। देवकी और वसुदेव किस प्रकार कैद किये गये थे। किन परिस्थितियों में भगवान ने कृष्ण रूप में अवतार लेकर सव के दुःखों का नाश कर सभी को आनन्दित किया। सभी ने नत-मस्तक होकर उस पावन स्थान को प्रणाम किया।

मथुरा से चलकर घाना के पक्षी-विहार स्थल पर पहुँचे। शाम के छः वज गये थे। अन्धेरा होने में केवल एक ही घण्टा शेष था। एक घण्टा उस पक्षी-विहार स्थल को जिसमें विश्व के कोने कोने से पक्षी आते हैं, देखना संभव नहीं था। अतः जो कुछ थोड़े समय में देखा जा सका उसीने अमिट छाप छोड़ दी। पक्षी-विहार स्थल वड़ा ही सुन्दर, रम्य, सुव्यवस्थित एवं आकर्षक था। वहाँ पक्षियों के अतिरिक्त जंगली पशु, अजगर आदि भी रहते है। उसे देखने में नौ वज गये। वहाँ से प्रस्थान की तैयारी ही थी कि वर्षा हो आयी और रात्रि को वहीं रुक जाना पड़ा। पारीक साहव ने प्रार्थना की, कि जव भगवान कृपा कर यहाँ ठहर ही गये हैं तो प्रातः

के भोजन की यही व्यवस्था का हुक्म हो जाय जिससे प्रात पक्षी-विहार भी ठीक प्रकार से देखा जा सके व पास ही स्थित फतहपुर सीकरी को भी देखा जा सके। कई लोगों की इच्छा इस ऐतिहासिक स्मारक को देखने की थी अत सभी की यही इच्छा जान पारीक साहब की प्रार्थना स्वीकार कर ली। वातावरण ठण्डा हो गया और कई रात्रियों का जागरण था अत सभी छक कर सोये।

प्रात उठ कर पक्षी-विहार को पुन देखा। अनेक प्रकार के पक्षी थे जिनकी विचित्रताओं का वर्णन करना सभव नही। पक्षी-विहार सचमुच ही देखने की वस्तु है। वहाँ से फतहपुर सीकरी के लिए रवाना हुए। फतहपुर सीकरी ऐतिहासिक स्थल है। सूफीसन्त चिश्ती मोईनुद्दीन शेख की आज्ञानुसार अकबर ने इसे हिन्दुस्तान की राजधानी बनाया था। यहाँ अलग अलग महल बने है। फतहपुर और सीकरी नाम के दो गाँवो को मिला कर एक कर दिया गया है। फतहपुर में राजधानी और सीकरी में चिश्ती का आश्रम था। चिश्ती की मृत्यु के बाद वहाँ दरगाह बना दी गई। यही बुलन्द दरवाजा बना हुआ है। भारत का यह सबसे बडा दरवाजा है। दरवाजा और दरगाह एक छोटी सी पहाडी पर है। दोनो दर्शनीय एव ऐतिहासिक महत्व के है। पहाडी के एक ओर विस्तृत मैदान है जहाँ अनेक युद्ध हो चुके है।

फतहपुर-सीकरी देख कर आगरा पहुँचे। ताज-महल, लाल किला आदि देखते हुए दयाल बाग में श्री राधास्वामी जी की समाधि देखने गये। यहाँ एक मन्दिर निर्माणाधीन है जो सगमरमर का बनाया जा रहा है। अभी इसकी एक मन्जिल भी नही बन पाई है। लगभग बीस वर्ष काम चलते हो गये और आगे इसके पूरा होने में कितने वर्ष लगेंगे, कहा नही जा सकता। अब तक जो कुछ बन गया है वह भी इतना सुन्दर है कि उसे देख कर यह कहा जा सकता है कि यह अपने नमूने का एक ही होगा। मन्दिर के बन जाने पर सभव है कि यह ताज-महल की कला-कृति को भुला दे। वहाँ से चलकर वापिस धाना आ गये व वहाँ से वापिस अपने स्थान पर पहुँच गये। इसके बाद कई बार श्रीदाना वृन्दावन हो आये है।

ooo

आनन्द का रसास्वादन

व्रजभूमि मे कृष्ण के प्रति जैसी अनन्यता कही गई है वैसी अन्यत्र कहीं देखने सुनने को नहीं मिलती। भागवत की गोपियाँ और सूर की गोपियाँ बिना भगवान कृष्ण के एक पल भी जिन्दा रहना नहीं चाहती। कृष्ण ही उनके सर्वेश्वर है। कृष्ण में उनका मन रमा हुआ है। 'मैं गिरधर रग राती।' वे तो कृष्ण के प्रेम मे मर ही चुकी हैं। उनका प्रेम कृष्ण के प्रति उत्कृष्ट कोटि का है। उन्हें तो खाते, पीते, उठते, बैठते, सोते और जागते कृष्ण ही कृष्ण दिखाई देता है। वे बेचने को तो दही ले जा रही है और मुँह मे 'दही लोरी' के बजाय 'श्याम लोरी' निकल रही है। कैसी उच्च कोटि की भावानुभूति है। राधा कृष्ण कृष्ण कहती स्वयं ही कृष्णमय बन गई। उधर कृष्ण राधा राधा कहते स्वयं राधामय हो गये। प्रेम में प्रेमी का अस्तित्व ही मिट गया। अद्भुत प्रेम लीला थी गोपियों की। ठीक इसी प्रकार का उदाहरण देखने को मिला जगपुरा, उम्मेदपुरा और बावड़ी जैसे स्थानों पर जब श्रीदाता वहाँ पहुँचे।

बचपन मे श्रीदाता वन में गायें चराने जाते थे। जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि नान्दशा में गायों के चरने को अच्छा चारागाह था और वहाँ आसपास के कई गाँवों की गायें चरने आती थी। गायें अधिकतर जगपुरा के मूनिया, परवती, उम्मेदपुरा आदि गांवों के गूजरों के बालक ही चराया करते थे। श्रीदाता का सम्पर्क उनसे होता ही रहता था। श्रीदाता के प्रभाव, उनके चमत्कार आदि से भी वे परिचित थे। श्रीदाता का मुरली बजाना उन्हें अच्छा लगता था। धीरे धीरे वे श्रीदाता के प्रति श्रद्धावान हो गये और उन्हें श्रीकृष्ण का अवतार ही मानने लगे। जगपुरा और परवती के गूजर तो इन्हें अपना आराध्य देव कृष्ण ही मानने लगे और उनमें सखा भाव जागृत हो गया। उनके व्यवहार को देख कर ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण के सभी सखाओं और गोपियों ने

इन्ही गाँवो में पुन जन्म धारण किया हो। इन गूजरो की औरते और बालिकाएँ भी इन्हे साँवरियाँ कहकर मानती है। उनके नाम के पीछे वे गाती, बजाती और उन्मत होकर नृत्य करती है। श्रीदाता के प्रेम के सम्मुख वे सब कुछ भूल जाती है। उनका दाता के प्रति अनन्य प्रेम देखने योग्य है। उनसे दाता के सेवकों को बहुत कुछ सीखने को मिला है।

जगपुरा में

जगपुरा रायपुर से दो मील दूर एक छोटा सा गूजरो का गाँव है। श्री छोगाजी गूजर वहाँ के सरपच है। वे ही नही उनका पूरा कुटुम्ब ही श्रीदाता के चरणो का अनन्य भक्त है। वे निरन्तर जगपुरा में श्रीदाता के पधारने की पुकार करते रहे है। अन्त में श्रीदाता ने पुकार सुनी और ७–६–७८ को कीर्तन का आयोजन रखा गया। दिनाक ६–६–७८ को रात्रि के लगभग दस बजे श्रीदाता का जगपुरा पधारना हुआ। दिन को ही भीलवाडा, करेडा, नान्दशा, बावडी, उम्मेदपुरा आदि स्थानो के कई प्रेमीजन आ गये थे। ज्योंही कार की रोशनी दिखाई दी, सभी गाँव के बाहर आ गये। 'दाता की जय', 'साँवरिया की जय' से आकाश गूँज उठा। महिलाएँ प्रेम और उलहना के गीत गा रही थी। बालक-बालिकाएँ प्रसन्नता से फुदक रहे थे। कृत्रिमता एव आडम्बर से रहित पूर्ण प्रेम से श्रीदाता का स्वागत किया गया। लोगो में श्रीदाता के दर्शन कर इतनी प्रसन्नता थी जिसका वर्णन सम्भव नही। एक अनोखा ही नजारा था। दाता के ठहरने की व्यवस्था एक पक्के मकान की छत पर की गई। श्रम निवारण हेतु श्रीदाता लेट गये। साथवाले भी लेट गये। कुछ गूजर बालिकाएँ श्रीदाता के पास ही बैठी रही। वे ध्यानस्थ हो गई और उन्होंने ध्यान में बहुत कुछ पाया जो सो गये सो खोने में ही रहे। कहा भी है –

जो सोवत है सो खोवत है, जो जागत है सो पावत है।

बाल्यकाल में गो-चारण के समय ग्वाल बालो के साथ ही साथ कुछ ग्वाल बालाएँ भी श्रीदाता के सम्पर्क में आयी थी। अन्य लोगों की तरह वे भी श्रीदाता की परम भक्त बन गई थी।

वे राधाजी और उनकी सखियों सी व्यवहार वाली हैं। उनकी निश्छल भक्ति की तुलना नहीं। वे दाता को साँवरिया के रूप में ही देखती हैं। उनका साँवरिया उनसे दूर नही। जब भी वे चाहती साँवरिया के दर्शन पाती। श्रीदाता के पास बैठकर ध्यानस्थ होने वाली महिलाओं में एक सरपंच की बहन थी। उसने ध्यान मे देखा कि दाता के स्थान पर कृष्ण रूप में एक श्याम-सलोना बालक खेल रहा रहा है। प्रेम से आकर्षित होकर उसने उसे गोद मे उठाने की चेष्टा की। वह ज्योंही आगे बढ़कर उठाने लगी कि बालक गायब हो गया और श्रीदाता लेटे हुए दिखाई दिये, वह ठगी सी रह गई। रात्रिभर कीर्तन के साथ साथ ऐसी बालिकाओं और महिलाओं का गान और नृत्य चलता रहा। जो प्रसन्नता, उल्लास और उमंग उन बालिकाओं और महिलाओं में देखने को मिला वह बहुत कम प्राणियों में देखने को मिलता है।

अगले दिन दैनिक कार्यों से निवृत होकर श्रीदाता कीर्तन स्थल पर पधारे। कीर्तन की ध्वनि दूर दूर तक थी। श्रीदाता कुछ समय ध्यानस्थ खड़े रहे फिर कीर्तन समाप्ति की आज्ञा दे दी। कीर्तन बड़े जोरों से चल रहा था। लोग उत्साहित और आनन्दित होकर भाव विभोर हो उठे। उस समय कई लोगों की विचित्र स्थिति थी। ऐसी स्थिति यदि कुछ मिनिट और बनी रहती तो कई लोग बेहोश होकर गिर पड़ते किन्तु आरती की थाली तैयार थी अतः कीर्तन बन्द कर आरती बोली जाने लगी। बड़ी भावमय वातावरण मे आरती बोली गई। बड़ा ही आनन्दमय वातावरण था।

इसके पश्चात् श्रीदाता बाहर चबूतरे पर आ विराजे। अन्य लोग चबूतरे के नीचे बैठ गये। माताएँ और बहनें भजन के साथ नृत्य करने लगी। उनका स्वर बड़ा ही मधुर और कर्णप्रिय था। ग्रीष्म ऋतु के कारण धूप मे तेजी थी। हवा बन्द थी। छाँह की पूरी व्यवस्था नहीं थी। तेज गर्मी थी व लोग पसीने से तर थे किन्तु आश्चर्य तो यह है कि गाने और नाचने वाली माताओं और बहनों के क्रियाकलाप में कुछ भी अन्तर नहीं, यह विचित्र ही बात थी। न तो उनकी बोली में ही अन्तर आया और न नृत्य की गति में ही।

रात्रिभर ही तो वे नाचती-गाती रही थी । फिर भी प्रत्येक भजन पर उनका उत्साह बढता जा रहा था और नृत्य की मस्ती भी बढ रही थी । गर्मी समय के साथ साथ बढती जा रही थी । चबूतरे पर भी धूप आ गई । लोग गर्मी से घबरा कर छाँह की तलाश में जाने लगे किन्तु वे तो नृत्य-प्रीत चलाती ही रही । भाग्यशालियो को ही ऐसा अनुपम दृश्य देखने को मिलता है । भजनो में बहनें कभी तो भगवान को माखन मिश्री खिलाती है, कभी कुँवर कन्हैया को होली खिलाती है, कभी उसके रेशमी वस्त्र उतारती है, कभी उसके रेशमी वस्त्रो पर रग छिडकती है, कभी उसके मुकुट को उतार लेती है, कभी राधा-कृष्ण की जोरी के वारणे लेती है, कभी साँवरिया के भोग लगाने को दही की जावनी अछूती रखती है, कभी कहती है कि मेरे द्वारे आओ सावरिया दूध पतासे पीवाने, कभी सावरिया को चुपचाप ऊपर वाडे में आने को कहती है और कभी कन्हैया को यमुना के किनारे आने को कहती है जब वह पानी भरने जावे । उस समय उन्होंने बडे गजब के भाव दर्शाये है । प्रेम के पिपासु श्रीदाता भी धूप और गर्मी की परवाह न कर ध्यानस्थ हो सब कुछ सुनते ही रहे । उस प्रकार तीन बज गये । एकाएक बादल घिर आये और पानी की बून्दे गिरने लगी तब जाकर भजन और नृत्य रुका । सम्भवत भगवान ने यह देख कि प्रेम की दीवानी तो हट मानने को नही, प्रकृति को रूप परिवर्तन का आदेश दिया हो । भजन और नृत्य के बन्द होते ही बूँदा बाँदी भी अपने आप बन्द हो गई ।

दस बजे से तीन बजे तक जो आनन्द की समा बँधी उसका वर्णन करना कठिन ही नही असभव है । जो उस समय उपस्थित थे वे निहाल हो गये । धन्य है ये गूजरियाँ जिन्होने विश्वपति को मोहित कर बन्धन में बाँध सा लिया । स्वय भगवान ने एक बार कहा है, "विश्वपति हो, पर गोपियन मध्य बन्धायो हो" भगवान तो प्रेम का भूखा है । वह माखन मिश्री का भूखा नही । नन्द बाबा के यहाँ तो लाखो गायें थी । वहाँ माखन मिश्री की क्या कमी ? गोपियो के प्रेम ने ही उनको माखन मिश्री खाने को बाध्य

किया था। श्रीदाता को इतनी भयंकर गर्मी मे इतनी देर बैठे कभी नही देखा गया। धन्य है ये जगपुरावासी जिन्होंने दाता को इस प्रकार प्रेम में बाँध रखा है।

भोजन हुआ। लगभग एक हजार आदमियों का भोजन था। जगपुरा वालों ने खूब सेवा की। ऐसा सेवाभाव और प्रेम आजकल देखने को कम ही मिलता है, भोजनोपरान्त श्रीदाता ने जाने की बात कही। सुनते ही वहाँ के लोगों की ऐसी दशा हो गई मानो साँप ने फूँकार मार दी हो या सैकड़ों घड़े पानी के पड़ गये हों। सभी ने मिल कर जोरदार शब्दों में वहीं ठहरने की प्रार्थना की किन्तु बेकार ही गई। श्रीदाता ने उन्हें पुचकारते हुए फरमाया, "अरे! जगपुरा कौनसा दूर है। आप लोग जब भी कहोगे तब आ जावेंगे। अभी जाना जरूरी है। लोग इन्तजार कर रहे हैं।" इस प्रकार कई बातें कहकर अन्त मे उन्हें फुसला कर राजी कर ही लिया। श्रीदाता आगे आगे चल दिये। पीछे गाँव के लोग एव अन्य भक्तजन थे। महिलाएँ गान गाती हुई पीछे पीछे थी। कुछ बहने दाता के आगे आगे मार्ग से हट कर चल रही थी। कुछ आगे चल कर श्रीदाता ठहर गये। श्रीदाता सभी को नमस्कार कर कार में जा विराजे। लोगों ने उन्हें प्रणाम कर लिया। कार के आगे छगुबाई, गंगाबाई आदि बहनें खड़ी हो गई। वे सब की सब रो रही थीं। उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी। हिचकियाँ लेती हुई वे बोली, "भगवन! आज हम किसी हालत मे आपको नहीं जाने देंगे। यदि आप जाना ही चाहते है तो हमारे शरीर पर गाड़ी निकाल कर ले जाँय।" उस समय ठीक वैसा ही दृश्य उपस्थित हो गया जैसा द्वापर में भगवान् श्रीकृष्ण का नन्द गाँव से मथुरा जाने के समय उपस्थित हुआ था। अक्रूर जी श्रीकृष्ण और बलदेव जी को रथ में बिठा कर मथुरा ले जा रहे थे उस समय गोपियाँ उनका मार्ग रोक कर मथुरा जाने को मना कर रही थी! जब कृष्ण उनकी बात न मान कर मथुरा जाने को उद्यत हुए तो किसी ने कृष्ण के पैर पकड़े, किसी ने रथ का पहिया पकड़ा, किसी ने घोड़ों को पकड़ा तो किसी ने घोड़ों की लगाम ही पकड़ी। सभी फूट फूट कर

रो रही थी। राधा तो वियोग की आशका से बेहोश ही हो गई थी। उस समय का अद्भुत दृश्य था। इस दृश्य के अनेक चित्र बने हैं। चित्रकारो ने इस दृश्य का सुन्दर चित्रण अपनी कल्पना के आधार पर किया है। शिवसदन (भीलवाडा) में इसी प्रकार का एक चित्र है। श्रीदाता जब शिवसदन में पधारते हैं तो इस चित्र को विशेष रूप से देखते हैं। एक बार जब वे इस चित्र को देख रहे थे तब हम लोगो ने निवेदन किया, "भगवन्! यह तो बडा अनोखा दृश्य रहा होगा।" हमारे प्रश्न को सुन कर वे हँस दिये। उस दिन ऐसा ही दृश्य उपस्थित कर हमारी इच्छा को पूरा कर दिया। केवल अन्तर था तो इतना ही कि रथ के बजाय कार थी और श्रीदाता अन्यत्र कही न जाकर दाता-निवास ही पधार रहे थे। किसी ने कार का पहिया पकडा तो किसी ने कार का हुड ही पकड लिया। बडा ही कारुणिक दृश्य था। प्रेम की पराकाष्ठा थी। अद्भुत प्रेम था। चूंकि श्रीदाता को जाना आवश्यक था अत श्रीदाता ने बडी कठिनाई स उन्हे समझा-बुझा और शीघ्र आने का आश्वासन देकर विदा ली। इस सारी घटना में करीब एक घण्टे से अधिक ही समय लगा होगा। बडी कठिनाई से श्रीदाता वहाँ से छुटकारा पा सके।

प्रभु प्राप्ति का कितना सरल मार्ग है यह श्रीदाता ने प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत कर बता दिया। धन्य हैं वे बहने, माताएँ एव जगपुरा के लोग जिन्होने अपना सब कुछ श्रीदाता के चरणो में निछावर कर दिया है। इसके पूर्व व बाद में भी कई बार श्रीदाता का पधारना जगपुरा हुआ है। जब भी वे पधारते हैं वहाँ के नर-नारी की ऐसी ही स्थिति बनती है। इतनी प्रसन्नता होती है जिसका वर्णन करना कठिन ह।

भीलवाडा में

'भावे हि विद्यते देवो न काष्ठे न च प्रस्तरे'

आशय है कि लकडी और पत्थर में देव नही है। मन्दिर में स्थापित देव मूर्तियाँ मनुष्यो द्वारा निर्मित और स्थापित होती हैं जो पत्थर की ही है अत वह देव नही हैं। उन्हे तो देव मनुष्य के भाव ही

बनाते हैं। भाव ही उस प्रस्तर की मूर्ति को राम, कृष्ण, शिव, जगदीश, चतुर्भुज, एकलिंग आदि रूप देते है। भाव ही से सब का मूल्य है। भाव न होने पर सभी वस्तुएँ मूल्यहीन है, निस्सार है। एक अनमोल हीरा है किन्तु यदि उसका भाव नही तो वह दो कौड़ी का भी नहीं है। इसके विपरीत एक कांच के टुकड़े के भाव चढ़ जाते है तो मनुष्य उसके लिये बहुत कुछ देने को उद्यत हो जाता है। यह सब भावों की बातें हैं। भावों से ही इष्ट का मूल्य होता है। अपने इष्ट की जो व्यक्ति जिस भाव से उपासना करेगा वैसा ही उसे फल मिलेगा।

भौतिक वस्तुएँ दुःख का मूल हैं यदि प्राणी उसके लिए लालायित होता है। जब कि इच्छाओं का अन्त नहीं है। आवश्यकता की पूर्ति न होने पर दुःख ही दुःख है। परम शांति तो अपने इष्ट की कृपा पर ही निर्भर है अतः निःस्वार्थ भाव से उसकी उपासना करना ही आनन्ददायक है। श्रीदाता सदैव ही अपने बन्दों को सत्संग द्वारा आत्म-ज्ञान का बोध कराते हैं। मनुष्य के लिए शास्त्र बोझे के समान है। राग, द्वेष से युक्त पुरुष के लिए ज्ञान बोझरूप ही है। जो व्यक्ति अशान्त है, उसका मन ही उसके लिये बोझरूप है और जो आत्म-ज्ञान से हीन है उसके लिए यह देह भी भाररूप है। अहंकार ही सब दुःखों का कारण है। अहंकार से विपत्ति आती है, दुष्ट मनोवृत्ति में वृद्धि होती है और विभिन्न कामनाएं जागृत होती है। अहंकार से वशीभूत होकर मनुष्य जिन जिन भोगों का उपभोग करता है वे सब मिथ्या हैं। अतः अहंकार शून्यता ही जीवन की यथार्थता है। व्यग्रता के वशीभूत हुआ यह मन व्यर्थ ही इधर उधर भटकता है। इसको नियंत्रित कर दाता के चरणों में लगाने से ही काम बनता है। शम, विचार, सतोष और सत्संग यह चारों ही करणीय हैं। इनमें से एक को भी अपना लिया जाय तो शेष तीनों स्वतः आ जाते हैं। इनमें सत्संग सब से सरल है। सत्संग से आत्म चिन्तन की प्रवृति होती है और सत्संग बिना गुरु-कृपा के सम्भव नहीं। अनन्य भावों से की गई गुरु-चरणों की भक्ति कभी निरर्थक नहीं जाती। हमारे भाव ही गुरु के मूल्य को बढ़ाते हैं। यह अनन्य भाव ही थे कि धन्नाजाट की लड़की के सम्मुख प्रगट होकर भगवान को 'खीचड़' खाना पड़ा और जगपुरा की गूजरियों के सम्मुख पूरे

दिन धूप में मिकना पडा । होने चाहिये अनन्य भाव अन्य वाते सव झूठी है ।

श्रीदाता बडे दयालु हैं । वे अपने बन्दो के जीवन को हर समय उज्ज्वल करते ही रहते है । आवश्यकता पडने पर भक्तो की भावनाओं के आधार पर भिन्न भिन्न गावो मे भी जाते हैं । एक वार अर्थात् दिनाक २४-६-७८ को भीलवाडा पधारना हो गया । कार्यक्रम पहले ही वन चुका था अत नान्दशा, जगपुरा, बावडी, करेडा आदि स्थानो के भक्त-जन भी वहाँ उपस्थित हो गये । शिवसदन में ही विराजना हुआ । बडा ही आनन्दप्रद नजारा था । रात्रि को मत्सग हुआ । वडे प्यार और प्रेम मे श्रीदाता ने कई वाते वताई । मत्सग के मध्य एक बन्दे ने पूछ लिया, "भगवन् ! लोग आत्मा आत्मा करते है । इसका स्वरूप क्या है ? उसका निवास स्थान कौनसा है ?" श्रीदाता हँस पडे । कुछ समय बाद बोले, "आत्मा का कोई स्वरूप नही है । वह तो स्वरूप रहित है, न उसका कोई आकार ही है । आत्मा मभी प्राणियो के हृदय-रूपी गुहा मे रहती हैं । इसे ही हरि, परमात्मा, परमपिता, ब्रह्म, ईश्वर आदि नामो मे पुकारा जाता है । वह सव में व्याप्त है । रोम-रोम में समायी है । आपने जल को देखा होगा । जल का कोई स्वरूप नही । जिम वर्तन में उसे रखा जाता है वही उमका स्वरूप हो जाता ह । जलविन्दु मे भी छोटा व समुद्र सा विशाल है । आपने पेड को देखा होगा । पानी उसके रोम-रोम में विद्यमान है । इसी तरह आत्मा अर्थात् हरि सभी में समाया हुआ है । प्राणी उसी को देखता है और उसी का प्राप्त करने की कोशिश करता है । उस हरि को शोकरहित प्राणी गुरुकृपा से देख सकता है और प्राप्त कर सकता है। वसिष्ठ, शुकदेव, नामदव जैसे ऋषि, ब्रह्मा, विष्णु, महेश जैसे देवता और सनत्, मनन्दन और सनातन जैसे महापुरुष उमकी निरन्तर स्तुति करते है, ऐसा वह एक ही दाता है, सद्गुरु है, आदि पुरुष है। वह सद्गुरु नित्य, मत्य, मर्वव्यापी, आनन्दरूप, निर्विकल्प और अकथनीय है । केवल उसकी महर से ही पार पाया जा सकता है ।"

शिवसिह जी श्रीदाता के अनन्य भक्तो मे से एक है । उन्होंने श्रीदाता से निवेदन किया, "प्रभु ! आपकी आज्ञा से ध्यान करने का

प्रयत्न करते हैं किन्तु ध्यान लगता ही नहीं। शास्त्रों में लिखा है और भगवान भी फरमाते हैं कि गुरु-कृपा विना ध्यान का लगना संभव नहीं। आपकी कृपा तो अनन्त है किन्तु गुरु-कृपा इस मनवा की समझ में नहीं आयी। इसलिये मन को स्थिर किया जाय तो किस पर किया जाय। माला जपै तो किस नाम की?" श्रीदाता ने इस वात को टालते हुए राजा मोरध्वज और राजा हरिश्चन्द्र के दृष्टान्त देते हुए उनकी त्याग और तपस्या की बात बताई। इसपर शिवसिंह जी बोले, "अन्नदाता! हम तो साधारण जीव हैं। थोड़ा सा जीवन शेष है। क्या भगवान के चरणों में आकर भी कोरे ही रहना पड़ेगा।" श्रीदाता ने फरमाया, "तुम तो सहदेव हो। तुम्हें तो पता चल ही गया कि थोड़ा ही जीवन शेष है।" उस दिन प्रभु कृपा से वे मूड़ में थे अतः बोले, "भगवन्! शरीर के जाने के आसार तो दिख ही रहे हैं। घुटने दर्द करते हैं, उठना-बैठना भी कठिन है और शरीर के अंग-अंग शिथिल होते जा रहे हैं। परीक्षा देने की शक्ति नहीं है। तो क्या आपके होते हुए हमें योंही मरना पड़ेगा।" श्रीदाता ने फरमाया, "परीक्षा तो होती ही है। साधारण कार्य में भी परीक्षा होती है, फिर यह कार्य तो साधारण है नहीं। इसमें तो परीक्षा होती ही है। यदि तुम परीक्षा देना नहीं चाहते तो अपने निश्चय में दृढ़ता ला दो।"

अगले दिन भी पूरे दिन सत्संग चलता रहा। सन्ध्या समय माला फेरने श्रीदाता छत पर पधार गये। उन्होंने हम सव को अपने पंचभूत शरीर पर ध्यान रखने को कहा। शिवसिंह जी ने देखा कि श्रीदाता का शरीर प्रकाशपुञ्ज हो रहा है। हरेहर के वाद उन्होंने शिवसिंह जी से पूछा, "शिवसिंह जी तुम्हारा मन अभी कहाँ था? व्यर्थ की शिकायत करते हो?" शिवसिंह जी ने स्वीकार करते हुए कहा कि दाता की महर है। अन्य लोगों को भी ध्यान में आनन्द की अनुभूति हुई।

रात्रि को श्रीदाता सत्संग भवन में विराज गये। कुछ समय तक कीर्तन चला फिर बात चल पड़ी। श्रीदाता ने फरमाया, "संसार में वासना ही अनन्त दुःखों को पैदा करने वाली है।

वासना के सूत्र बन्धन में बँधा प्राणी पुन पुन प्रकट होता है। वासना केवल दु खदायिनी ही नही वरन सभी सुखों को समूल नष्ट करने वाली है। वासना के बन्धन में धीर, वीर और महान् व्यक्ति उसी प्रकार बँध जाता है जैसे जजीरो में सिंह। विश्वामित्र जैसे महापुरुष भी वासना के फेर मे पड कर मैनका से प्रेम कर वर्षों की तपस्या से हाथ धो बैठे। अत मनुष्य को वासनाशून्य होने की चेष्टा करनी चाहिये।" श्रीदाता ने आगे फरमाया, "अहकार तीन प्रकार का है। 'मैं बाल के अग्रभाग मे भी सूक्ष्म हूँ और सम्पूर्ण प्रपच से परे हूँ' यह अहम् भाव मुक्ति देने वाला है। इससे बन्धन प्राप्त नही होता। 'मैं हाथ पाँव आदि अङ्गो सहित शरीर वाला हूँ' यह लौकिक अहकार तुच्छ श्रेणी का है। इस प्रकार के अहकार से मुक्त प्राणी गर्त की ओर ही जाता है। सर्वश्रेष्ठ अहकार है 'मैं सम्पूर्ण विश्वस्वरूप हूँ, अच्युत परमात्मा हूँ, मुझमे भिन्न कुछ भी नहीं है।' इस प्रकार का अहकार प्राणी को ऊपर उठाकर सत्स्वरूप की ओर ले जाता है, वस्तुत यह निरहकार वृत्ति ही है और उच्च पद की प्राप्ति कराने वाली है।"

"किसी भी प्रकार की भोगेच्छा बन्धन मूलक ही है। इसके नाश से ही आत्मोन्नति सभव है। भोगेच्छा का नाश मन का नाश है। मन का नाश भाग्यवान पुरुष को ही मिलता है। गोपियो के मन का नाश हो गया था। उद्धव जी उन्हे समझाने गये थे तब उन्होने कहा था, "उधौ मन नाही दस बीस, एक हुतो सो गयो श्याम सग, को अवराधै ईश'। ज्ञानी मनुष्यो का मन नष्ट हो जाता है। ज्ञानी पुरुष न तो मन को आनन्द मानते हैं और न आनन्द रहित। वे उसे चल, अचल, स्थिर, सत्, असत् अथवा उसके मध्य की अवस्था वाला भी नहीं मानते। मन के नष्ट होने पर जीवात्मा शुद्ध चेतन स्वरूप हो जाती है। उसका स्वरूप निर्मल हो जाता है। शिष्यो को मन रहित करना सद्गुरु का काम है। गुरु कृपा श्रद्धावान शिष्य पर उसकी भोगेच्छा समाप्त होने पर ही होती है। जैसे सूर्योदय होने पर ही दिन की स्थिति है और पुष्प से सुगन्ध निकल सकती है, वैसे ही चित-चेतन से ससार स्थिर है।

यथार्थ में इस विश्व का कोई अस्तित्व ही नहीं है, यह तो केवल आभा मात्र है। जब आप लोगों की दृष्टि आवरण रहित हो जावेगी और उसमें गुरु कृपा से ज्ञान का प्रकाश भर जावेगा तब आप स्वयं ही अपने रूप में स्थित हो जावेगे। माया अपने आप ही नष्ट हो जावेगी।"

इस प्रकार वचनामृत की वर्षा होती रही और हम सब उस वर्षा में अवगाहन कर आनन्दित होते रहे। रेखा और रजना आदि बच्चियाँ भी बैठी थी। श्रीदाता ने उन्हें भजन बोलने को कहा। उन्होंने भजन बोला :– 'यशोदा तेरे लाला ने दीनो है रंग डाल।' सभी साथ ही बोलने लगे। बड़ा ही आनन्द आया। श्रीदाता तो भाव भूमि में प्रवेश कर गये। उनकी अवस्था ही विचित्र हो गई। रामसिंह, सुशील और गोपाल जैसे नवयुवकों को भी मस्ती ने आ घेरा। उन्होंने पैरों में घुँघरु बाँध लिये और नृत्य करने लगे। ऐसी समा बन्धी कि वहाँ उपस्थित सभी लोग मस्ती में झूमने लगे। बड़ी देर तक यही भजन चलता रहा। जब भजन समाप्त हुआ तो श्रीदाता ने इतना ही फरमाया, "हरि का रंग चढ़ जाय तो निहाल हो जाय।"

इसके पश्चात् 'मैं तो गिरधर के आगे नाचूंगी' भजन बोला गया। भजन लगभग आधे घण्टे चला होगा। श्रीदाता ने इस बार करताल हाथ में ले ली और पूर्व भजन की तरह इस भजन में भी सभी मस्त हो गये। शिवसिंह जी आदि कई लोगों की आँखों में अश्रु ढलन पड़े। एक समा बँध गई। सब अपने आप को भूल गये। उस समय सब का मन दाता के चरणों में ही था। श्रीदाता ने फरमाया कि मन का नाश कैसे होता है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण दे दिया। इसके बाद एक के बाद एक भजन चलते रहे। मीरा, सूरदास, कबीर आदि के भजन थे। रात्रिभर आनन्द की वर्षा होती ही रही।

अगले दिन भी चार बजे तक सत्संग चलता ही रहा। भीलवाड़ा वालों पर भगवान की विशेष ही कृपा हुई। श्रीदाता ने अत्यधिक आनन्द की अनुभूति कराई। जो आनन्द श्रीदाता ने दिया उसकी खुमारी कई दिनों तक बनी रही। श्रीदाता की भीलवाड़े

वालो पर विशेष कृपा ही रही है। जब जब वे इच्छा करते हैं श्रीदाता भीलवाडा पधार जाते है और भक्तिगंगा में सभी को निमग्न कर देते है।

करेडा में

करेडा में श्री मथुरालाल जी के मकान का प्रवेश था अत उसी दिन शाम को श्रीदाता का भीलवाडा मे पधारना हो गया। करेडा में कुछ काल तक रहकर श्रीदाता ने विद्याध्ययन किया था। कई सहपाठी, अध्यापक और अन्य लोग श्रीदाता के प्रति स्नेह रखते आये है। श्री नारायणसिंह जी, श्री समुद्रसिंह जी, श्री गिरवरसिंह जी आदि तो इनके अनन्य भक्तो में से थे। इसी हेतु बहुधा श्रीदाता करेडा पधारते रहे हैं। वैसे भी नान्दशा से जयपुर जाने में करेडा मार्ग में भी पडता है। शाम को छ बजे के लगभग जब श्रीदाता करेडा पहुँचे उस समय काफी लोग गाँव के बाहर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। इनके पधारते ही 'दाता की जय' से आकाश गूँज उठा। सभी के साथ श्रीदाता का रेन्जर साहब के मकान पर पधारना हुआ किन्तु लोगो के अधिक होने और जगह के सीमित होने से वहाँ से लौट कर विद्यालय भवन में पधारना हो गया। वहाँ भजन बोले गये किन्तु जम नही पाये। कोई आनन्द नही आया अत लोग एक एक कर उठने लगे। कार्यक्रम को सरस बनाने की चेष्टा की गई किन्तु सब व्यर्थ। बिना दाता की महर के मन लगना और आनन्द आना कहाँ सभव। कुछ देर बाद भजन बोलना बन्द किया। लोग दो रात्रि से जाग रहे थे अत उस दिन सभी सो गये।

प्रात काल दैनिक कार्यो से निवृत होने के बाद श्रीदाता का पधारना कीर्तन स्थल पर हुआ। वहाँ भारी भीड थी। मकान छोटा था और कीर्तन एक छोटे से कमरे में था अत कुछ आनन्द नही आया। आरती के साथ कीर्तन की समाप्ति हुई व श्रीदाता सहित सभी लोग विद्यालय भवन में आ गये। सभी एक प्रकार से उदास ही थे किन्तु वहा श्रीदाता का मूट अच्छा था अत धीरे धीरे सभी के मन में प्रसन्नता की लहर दौडने लगी। कुछ ही देर मे सारी उदासी जाती रही। श्रीदाता बरामदे में विराज रहे थे और विनोद

की बातें हो रही थीं कि एकाएक श्रीदाता को भावावेश हो आया। फिर क्या था। कुछ लोग पास ही बैठे थे, उन्होंने भजन बोलना शुरू किया। अन्य साथी भी उनके पास आकर उनका साथ देने लगे। नवयुवक मण्डली मस्ती से बोलने लगी। श्रीदाता स्वयं सखीभाव में 'सब सखियन के साथ, तकूँ मैं तेरी बाट, साँवरिया जमुना पै आजा' बोलने लगे। उन्होंने करताल हाथ में ले ली और गद्गद् स्वर में बोलने लगे। उनके नेत्रों से अश्रुबिन्दु निकल आये और रोमांच हो आया। उन्हें अपने शरीर की सुध-बुध नहीं रही। कई बाल भक्त मस्ती से नृत्य करने लगे। वे भी भावावेश में आ गये। सभी का भावावेश देखने की वस्तु ही थी। ध्वनि सुन कर और भी दर्शक लोग आ गये। लगभग आधा घण्टे तक यही भजन चलता रहा। नृत्यकारों और कुछ प्रेमी भक्तों के नेत्रों से अविरल जलधारा बह रही थी। लोग भजन में इतने तन्मय हो गये कि उन्हें भी शरीर की सुध-बुध नहीं रही। ज्योंही भजन समाप्त हुआ लोग सामान्य स्थिति में आये। श्रीदाता ने गुलाल लाने को कहा। तत्काल हरे व गुलाबी गुलाल की व्यवस्था कर दी गई।

दूसरा भजन बोला गया जिसके बोल हैं :-

रास कुँजन में ठहरायो
सखियाँ जोवें बाट सांवरो अब तक नहीं आयो,
राधा सोच करे मन माहि कुण सोतन बिलमायो,
कुण जाने कित गयो रे सांवरो अब तक नहीं आयो,
कोई बजावे ताल मृदंग, कोई झाझर ठप्लायो,
तारा गण बिच उग्यो रे चन्द्रमा वो भी सरमायो,
इतने में बज उठी रे बांसुरी मधुवन घरणायो,
डाल डाल व पात पात में श्याम नजर आयो,
गढ़ गोकुल से आयो रे सांवरो, मथुरा में जावे,
दास आपको शरण तिहारी बरसाने आवे।

इस भजन मे पूर्व भजन से भी ज्यादा आकर्षक स्थिति पैदा हो गई। श्रीदाता ने स्वय अपने हाथो से भक्त लोगो पर जो नृत्य कर रहे थे या भजन बोल रहे थे गुलाल डाली। एक दूसरे भी एक दूसरे पर गुलाल डालने लगे। विशेषता यह रही कि उन सभी के मुँह, शरीर और कपडे हरे और गुलाबी हो गये। वहाँ इतनी गुलाल डाली गई कि वहाँ का आगन और वातावरण ही रगीला हो गया। धीरे धीरे इस वातावरण ने रास-नृत्य का रूप ले लिया। सभी प्रेम से आँसू बहाते हुए भजन बोलते जाते थे और नृत्य करते जाते थे। जिसने जीवन में कभी नृत्य नही किया होगा वह भी नृत्य करते देखा गया। कोई भावो से उत्तेजित होकर नृत्य कर रहा था तो कोई देख-देखी योंही हाथ-पाँव फेर रहा था। कोई कोई अपने स्थान पर खडे खडे ही फुदक रहा था। सभी की पागलो की सी स्थिति हो गई थी। सब के मध्य श्रीदाता करताल हाथ मे लेकर भजन बोलते हुए नृत्य कर रहे थे। वे पूर्ण भावावेश में थे। उस समय की भावमुद्रा अनोखी ही थी। बडा अनोखा एव विचित्र दृश्य था। ऐसा दृश्य देखने का यह पहला ही अवसर था। भागवत मे वर्णित रास-लीला की तुलना इस रास से करते हुए यह कल्पना करने लगे कि वह रास भी इसी प्रकार का रहा होगा। अन्तर केवल मात्र यह है कि इस रास में पुरुष ही पुरुष थे जब कि उस रास में भगवान कृष्ण पुरुष रूप मे व अन्य सखियाँ स्त्री रूप मे थी। यह अन्तर भी भौतिक दृष्टि का ही हो सकता है क्योंकि वास्तव मे देखा जाय तो विश्व में पुरुष तो एकमात्र दाता ही है बाकी सभी माया रूप स्त्री ही है। उस समय रास नृत्य करने वालो के भाव भी गोपी भाव ही थे।

कुछ समय बाद श्रीदाता खडे हो गये और नृत्य करने वाले उन्हे बीच में लेकर या सम्मुख लेकर नृत्य करने लगे। उस दिन अनेको ने श्रीदाता को कृष्ण रूप में देखा ऐसा लोगो के मुँह से सुनने को मिला। भाव ही मुख्य है। भावो की तीव्रता पर इष्ट के दर्शन सभव है। जो भी हो उस दिन वहा का वातावरण पूर्ण रूप मे गोपीमय हो था। स्वय श्रीदाता ने बाद में फरमाया था कि उस दिन उन पर भी गोपीभाव का आवरण था और वे साँवरिया के दर्शन

हेतु लालायित थे। वह भजन लगभग एक घण्टे चला। इसके वाद 'आज ब्रज में होरी रे रसिया' बोला गया। सूर्य पश्चिम की ओर ढ़लने लगा था जिससे वरामदे में धूप हो गई थी किन्तु उसकी किसी ने परवाह नहीं की। वही वातावरण, वही समा, वही ताल मृदंग, वही भाव, अजीव ही दृश्य था। दर्शक भी मंत्रमुग्ध से देखते रह गये। उनके भाग्य में भी यह आनन्ददायी दृश्य देखना लिखा था। वे भी अपने स्थान पर ही खड़े खड़े फुदक रहे थे जिससे उनके आनन्द की अनुभूति का अन्दाजा लगाया जा सकता है। वह दृश्य देखते ही वनता है। लेखनी उस आनन्द को व्यक्त करने में असमर्थ है।

चौथा भजन 'होली खेलन आयो श्याम आज वाने रंग में वोरो री' गाया गया। इस प्रकार लगभग चार घण्टे तक एक सी स्थिति वनी रही। ऐसा दृश्य जीवन में पहली बार देखा था। जीवन की साध पूरी हुई। उस समय 'मैं' और 'मेरा' भाव पूर्ण रूप से तिरोहित हो गया था। मन रहा ही नहीं था। चाह यह थी कि ऐसी स्थिति सदैव ही बनी रहे किन्तु जव दाता को मंजूर हो तव ही तो ऐसा हो सकता है। चौथा भजन चल रहा था और श्रीदाता पूर्ण भावावेश में थे तभी किसी ने उनके शरीर पर गुलाल फेंक दी। जिसका अजीव सा प्रभाव हुआ। श्रीदाता एकदम रुक गये। कुछ देर चुपचाप खड़े रहे फिर कमरे में पधार गये। इस तरह चार घण्टों से चल रहा नृत्य-संगीत समाप्त हुआ। श्रीदाता व नृत्यकारों के शरीर पसीने से तर थे। उनके शरीरों को विश्राम और हवा की आवश्यकता थी। श्रीदाता के कमरे में पधारते ही भजन व नृत्य ठण्डा पड़ गया। रहा सहा मजा पुकारें लेकर आने वाले व्यक्तियों ने किरकिरा कर दिया। आनन्द के उस उच्च धरातल से एकदम नीचे धरातल पर आ जाने से लोगों को वेचैनी तो वहुत हुई किन्तु वन्दों के हाथ में क्या है यह सोच कर शान्त होना पड़ा। उस दिन दया कर श्रीदाता ने जो कुछ दिया वह कम नहीं था। वे लोग धन्य हैं जिन्होंने इस अद्भुत और अलौकिक दृश्य को देखा।

देखो दाता कितने दयालु है! वन्दे के थोडे से भावो के परिवर्तन मात्र से ही सब कुछ लुटाने को तैयार हो जाते हैं किन्तु वन्दे के भाव ही यदि जागृत न हो तो इसमें दाता क्या करे। ऐसी स्थिति में दाता को दोष देना निरी मूर्खता है। भाव ही पत्थर की मूर्ति को भगवान बनाते है, भाव ही है जो पशुवत् मनुष्य को देवत्व की अनुभूति एव प्राप्ति कराते है।

मैनाल का सत्संग

मैनाल माडलगढ से दक्षिण में बारह मील पर स्थित एक ऐतिहासिक स्थान है। मैनाली नदी वही से निकलती है। पहाडियो के मध्य होकर वहने से इसकी गति में वेग है। मैनाल के पास पत्थरो को काट कर नदी लगभग एक सौ पाच फुट नीचे गिरती है। जिससे अनोखा झरना वन गया है। इसके किनारे दोनों ओर मन्दिर है तथा प्राचीन भवनो के खण्डहर है। प्राचीन काल में यह स्थान गुरु-कुल के रूप में विद्या का केन्द्र रहा हो, ऐसा लगता है। यह सातवी सदी का बना प्रतीत होता है। प्रकृति की गोद में होने से यह स्थान अतीव सुन्दर है। वर्षाऋतु में अनेक दर्शक इस स्थान के सौन्दर्य को देखने आते है। वातावरण वहाँ का वडा ही शान्त और मधुर है। भीलवाडा वाले वन्दो की सदैव यह इच्छा रहती है कि कम से कम वर्ष में एक वार वहाँ श्रीदाता का पधारना अपने भक्तो के साथ हो। श्रीदाता तो भाव के भूखे है। ४-८-७८ से ५-८-७८ तक का मैनाल का कार्यक्रम रख दिया गया। वाहर से आने वाले २-८-७८ को ही भीलवाडा आ गये। श्रीदाता भी उसी दिन भीलवाडा पधार गये थे। शिवसदन के सत्सग हॉल में रात्रि पर्यन्त सत्सग, भजन एव कीर्तन होता रहा। युवा मण्डली ने छक कर भजन-कीर्तन का आनन्द लिया।

दिनाक ३-८-७८ को हरियाली अमावस्या थी। युवा मण्डली के आग्रह पर भजन और भोजन समय के अनुकूल ही हुआ। वाहर के भी कई भक्त लोग आ गये। दिन भर व रात्रि के दो वजे तक खूब सत्सग हुआ। युवा मण्डली ने रात्रि को भजनों में वडा ही आनन्द लिया।

मांडलगढ़ में श्री दाता
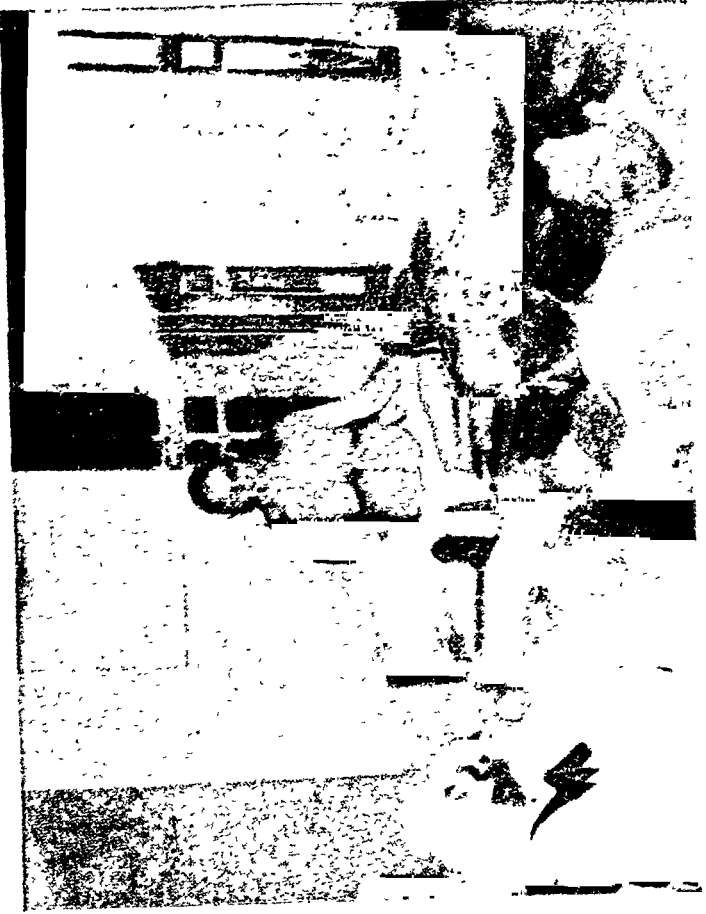
श्रावण शुक्ला प्रतिपदा को प्रातः जब मैनाल जाने की तैयारी हो रही थी ठीक उस समय हरणा (बून्दी) निवासी भागवतसिंह जी चारण दाता के दर्शनार्थ आ गये। ये भागवत-पुरुष हैं। उन्होंने श्रीदाता से जीव और ब्रह्म विषय को लेकर अनेक प्रश्न किये। श्रीदाता ने उन्हें जो उत्तर दिये उन्हें सुन कर वे अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने श्रीदाता की सरलता, सादगी, सत्यनिष्ठा देखी और उससे प्रभावित होकर बोले, "जैसा सुना वैसा पाया।" एक घण्टे तक सत्संग चलता रहा फिर वहाँ से उठ खड़े हुए।

बस द्वारा मैनाल के लिए रवाना हुए। युवावर्ग श्रीदाता के पास ही बैठे। ज्योंही बस शहर के बाहर निकली वे ढ़ोलक लेकर भजन बोलने लगे। एक दो भजन बोले होंगे कि बीगोद आ गया। सत्यनारायण जी ओझा अपने परिवार के सदस्यों सहित सड़क पर खड़े थे। उनकी प्रार्थना पर श्रीदाता का पधारना उनके घर हुआ। घर पर लोगों की अपार भीड़ थी। आरती के बाद सत्यनारायण जी की बहन ने भजन गाया 'आज सद्गुरु माका आँगन आया...' भजन बड़े ही प्रेम व करुण स्वर में बोला गया। नवयुवक दल ने भी साथ दिया। समा बँध गई। भक्ति धारा की गंगा इस तरह बही कि सभी प्रमोन्मत्त होकर नाचने लगे। वहाँ उपस्थित सभी लोगों के नेत्रों में बरबस ही आँसू आ गये। सत्यनारायण जी, उनकी बहन एवं उनकी पत्नी का प्रेम देखने योग्य था। उनकी भक्ति और उनका प्रेम देखकर धन्ना जी जाट की याद हो आयी। कर्माबाई की तरह ही सत्यनारायण जी की बहन ने श्रीदाता के सामने खीचड़ प्रस्तुत किया। यद्यपि समय अधिक हो गया था फिर भी उन लोगों के प्रेम के कारण श्रीदाता को कुछ देर वहाँ विराजना ही पड़ा।

वहां से चलकर त्रिवेणी पर बस रुकी। त्रिवेणी पर बनास, बेड़च और मैनाली नदियों का संगम है। नदी के बीचोबीच संगम पर शिव मन्दिर बना हुआ है। इस स्थान को पुष्कर की तरह ही पवित्र मानते हैं और यहाँ अस्थि विसर्जन करते हैं। मन्दिर काफी ऊँचा है किन्तु जब नदियों में भरपूर पानी आता है तो पूरा मन्दिर पानी में डूब जाता है। मन्दिर के पास ही पक्का घाट है और घाट तथा किनारे पर मन्दिर बने हैं।

श्रीदाता का स्नान वहीं हुआ। अन्य लोग भी स्नान को उतर पडे। जलक्रीडा होने लगी। श्रीदाता भी बहाव के विपरीत तैरने लगे और अन्य लोग भी साथ ही साथ तैरने लगे। लोग साथ ही साथ एक दूसरे के चरण पकडने के प्रयत्न में थे। जो लोग तैरना नहीं जानते थे वे किनारे खडे खडे श्रीदाता और उनके भक्तों द्वारा की जाने वाली जलक्रीडा को देखते रहे। यह जलक्रीडा भागवत में वर्णित कृष्ण की जलक्रीडा की याद दिला देती है। ऐसा कहते हैं कि जमुना में अपने गोप साथियों सहित कृष्ण घण्टों स्नान किया करते थे। वे एक दूसरे को पकडने, प्रवाह में बहने, एक दूसरे पर पानी छिडकने, एक दूसरे की टाँग पकड कर खींचने आदि अनेक प्रकार की क्रीडाएँ करते थे। ठीक उसी प्रकार की क्रीडाएँ श्रीदाता और उनके भक्त सेवकों द्वारा की जा रही थीं। सभी इस जलक्रीडा को देखकर आत्म-विभोर हो उठे। इस दृश्य को देखते ही बनता था। लेखनी इसका विवरण देने में असमर्थ है।

क्रीडा करते करते ही सब धारा के परले किनारे पर जा बैठे और भजन बोलने लगे। श्रीदाता भी दोनों हाथों से ताली बजाते हुए साथ देने लगे। लोग वहीं पानी में फुदकने लगे, कुछ नाचने लगे व कुछ एक दूसरे पर पानी मिश्रित रेत उछालने लगे। इधर किनारे खडे लोगों में भी जोश आया किन्तु वे कुछ दूर थे। धारा की चौडाई लगभग अस्सी फीट से कम नहीं थी तथा वह गहरी भी थी। कुछ लोग किनारे पर खडे खडे ही नाचने लगे। गोपाल तैरना नहीं जानता था। वह किनारे पर ही खडा था। उससे नहीं रहा गया। वह पानी में कूद गया। पानी गहरा था व बहाव तेज था। वह धारा के साथ ही बहने लगा। साथ ही हाथ पैर हिलाने के बावजूद पानी में डुबकियाँ लगाने लगा। श्रीदाता की व अन्य लोगों की दृष्टि उस पर गई। श्रीदाता का वह लाडला गोपाल जो ठहरा। तत्काल महर की। वह पानी के ऊपर आ गया। इधर दो-तीन व्यक्ति पानी में कूदकर उसके पास जा पहुँचे और उसे हाथों पर उठाकर श्रीदाता की ओर ले गये। गोपाल हाथों ही हाथों में होता श्रीदाता के पास पहुँच गया। श्रीदाता ने उसे पुचकार

लिया। वह भी मस्ती में भजन बोलने लगा। बड़ा ही प्रसन्नता मिश्रित कारुणिक दृश्य उपस्थित हो गया। इस प्रकार आनन्द और उल्लास के साथ बड़ी देर तक स्नान होता रहा।

त्रिवेणी से प्रस्थान कर बस मांडलगढ़ होती हुई सीधी मैनाल पहुँची। बस मन्दिर के बाहर ठहरी। सभी लोग उतर कर मन्दिर में होते हुए मैनाली के किनरे पहुँचे जहाँ झरना है। उस समय पानी कम था। नदी को पार कर दूसरे ओर बने मन्दिर में गये। वही ठहरने के लिए उपयुक्त स्थान था। श्रीदाता मन्दिर में व अन्य लोग मन्दिर के चारों ओर ठहर गये। मन्दिर के चारों ओर पत्थर के चौके जड़े हैं।

भोजनोपरान्त श्रीदाता मन्दिर के एक ओर एक चट्टान पर विराज गये। अन्य लोग पास ही बैठ गये। सभी प्रकृति का निरीक्षण करने लगे। वातावरण बड़ा ही शान्त, सुन्दर और आकर्षक था। वृक्ष की डालियों और चट्टानों पर बन्दर बैठे थे। उनके छोटे छोटे बच्चे अपनी माताओं के पास उछल कूद कर रहे थे। पक्षीगण अपने निविड़ों में जाने को उतावली कर रहे थे। चारों ओर हरियाली ही हरियाली थी। संध्या मधुर झनकार के साथ गान कर रही थी। साथ ही झरने के पानी गिरने की आवाज कर्णों को प्रिय लग रही थी। ऐसे सौन्दर्य युक्त वातावरण ने श्रीदाता सहित सभी को मुग्ध कर दिया। ऐसे ही सुन्दर वातावरण मे श्रीदाता ने माला फेरी। माला फेरने के पूर्व उन्होंने सभी को उनके शरीर पर खुले नेत्रों से देखने को कहा। उन्होंने कहा, "दो बातें कर लोगे तो काम बन जावेगा। एक तो निद्रा को न आने देना और दूसरा मन को कहीं न जाने देना। यदि दोनों बातें कर लोगे तो काम बन जावेगा।" श्रीदाता ने माला फेरी। लोगों को ध्यान में विचित्र विचित्र अनुभव हुए। इसके पश्चात् उदयपुर वाले सत्संगी हारमोनियम लेकर भजन बोलने लगे। कुछ लोगों ने उनका साथ दिया। लगभग दस बजे श्रीदाता लेट गये। योजना तो थी कि रात्रिभर भजन बोले जावें किन्तु मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ है। धीरे धीरे एक एक व्यक्ति उठने लगा और सोता गया।

बारह बजे तक तो भजन बोलने वाले दो व्यक्ति ही रह गये। वे भी बारह बजे उठ गये व सोने की तैयारी करने लगे। अकेले व्यक्ति के लिए भजन बोलना और वह भी रात्रि में कठिन ही होता है। एक बन्दे को यह बात अच्छी नही लगी। बडी मुश्किल मे तो मैनाल का कार्यक्रम बना। बिना आनन्द प्राप्ति के केवल खाने पीने में ही समय निकल जावे, यह ठीक नही। एक दूसरे बन्दे ने चाय बनाई। लोगो को उठाते गये व चाय पिलाते गये। साथ में यह भी कहते गये कि वे ही चाय पियेंगे जो रात्रिभर भजन बोलेंगे। लोग चाय पीते गये और मन्दिर के अन्दर इकट्ठे होते गये। श्रीदाता झरोखे में आराम कर रहे थे। झरोखे के नीचे लोग बैठते गये। जब लगभग पन्द्रह व्यक्ति एकत्रित हो गये तो एक ने भजन बोलना प्रारभ किया। पहला भजन था 'कान्हा कान्हा मै पुकारू मधुवन में'। भजन बोलने में युवको ने साथ दिया। भजन इतनी तन्मयता व इतने प्रेमभाव से बोला गया कि उसे सुनकर श्रीदाता बैठे हो गये। जो लोग आसपास सोए थे वे भी उठ गये। कुछ समय बाद ही कुछ लोगो के पैर उठ गये। वे भावमुद्रा में नृत्य करने लगे। श्रीदाता को भी भावावेश हो आया। फिर क्या था। उन्होने दोनो हाथो में करतालें ले ली और नृत्य करने लगे। एक समा सी बँध गई। सोने वाले सब ही उठ गये और एक ओर खडे होकर इस रास-नृत्य को देखने लगे। श्रीदाता ने आनन्द रस की वर्षा प्रारभ कर दी। उन्होने आनन्द रूपी भण्डार के ताले ही खोल दिये। जो जहाँ खडा था वह उसी स्थिति में खडा रह गया। कुछ लोग खडे खडे ही अपने स्थान पर ही हाथ से ताली बजाते हुए फुदकने लगे। भजन और नृत्य की ऐसी समा बँधी जिसका वर्णन करना सभव नही। भजन के लय पर ऐसी तन्मयता हो गई कि देखते ही बनता था। एक के बाद दूसरा व दूसरे के बाद तीसरा भजन बोला गया। श्रीदाता भावमग्न होकर नृत्य कर रहे थे। उन्हे अपने शरीर की सुध-बुध भी नहीं थी। उनकी आँखो से अविरल अश्रुधारा बह रही थी। अन्य लोग जो श्रीदाता के साथ ही नृत्य कर रहे थे उनकी भी यही दशा थी। साढे चार बजे तक यही एक सी स्थिति बनी रही। श्रीदाता और उनके बाल-भक्त मस्ती से रास-नृत्य

करते रहे। श्रीदाता को वाल-गोप साँवरिया के रूप में ही देख रहे थे। चार घण्टों का समय ऐसा निकला मानो कुछ ही क्षण निकले हों। वहाँ उपस्थित अनेक भक्तों को भी ऐसा ही लगा कि भगवान कृष्ण अपने गोप-गोपियों के मध्य रास-नृत्य कर रहे हों। ऐसा आनन्ददायक दृश्य करेड़ा में देखने को मिला अन्यत्र नहीं। श्रीदाता के प्रिय शिष्य कृष्ण गोपाल जी ने दूसरे दिन वताया कि रात्रि को मन्दिर में भगवान कृष्ण और उनके गोप ही नृत्य कर रहे थे। कई देवता भी अपने अपने विमानों में वैठकर इस लीला को देखने उपस्थित थे। सव ही वड़े प्रसन्न थे। सुनने वालों को उनकी इस वात का विश्वास हुआ हो या नहीं किन्तु जिन्होंने इन चर्म चक्षुओं से उस लीला को देखी है उन्हें इस वात के लिए भ्रम होने का प्रश्न ही नहीं उठता। वहाँ उपस्थित सभी लोगों को आनन्द की अनुभूति हुई। जो उस समय सोते रहे उन्होंने वहुत कुछ खोया। जागने पर जव उन्होंने सुना तो अपने आप को कोसने लगे किन्तु—

'जव चिड़ियन खेत चुग लिया, फिर पछताये क्या होवत है'

वाद में तो पछताना ही हाथ लगता है। यही वह आनन्द है जिसके कारण भक्तलोग मैनाल कार्यक्रम रखवाने को सदैव ही आग्रह करते रहते हैं। श्रीदाता तो दयालु है ही। भक्तों के भाव के वशीभूत होकर प्रतिवर्ष मैनाल का कार्यक्रम रख कर इस अपूर्व आनन्द की वर्षा कर ही देते हैं। धन्य हैं ऐसे भगवान।

अगले दिन शौचादि से निवृत होकर श्रीदाता ने नदी में स्नान किया। झरने के नीचे स्नान की मनाई कर दी गई। सभी पर रात्रि का नशा छाया हुआ था। वही धुन सभी के मस्तिष्क में थी। प्रत्येक कार्य के करने में वही मस्ती थी। रात्रि के आनन्द की वातें ही दिन भर चलती रही। भोजनोपरान्त श्रीदाता ने वहां से चलने को कहा। कुछ लोगों की इच्छा थी कि रात्रि में विश्राम यहीं हो। उन्होंने श्रीदाता से निवेदन किया, "भगवन्! आज यहीं विराजना हो। रात्रि का आनन्द फिर से मिलना चाहिए। भीलवाड़ा चल कर भी तो विश्राम करना ही है, फिर यही क्यों न विराजना हो जाय?" श्रीदाता ने फरमाया, "आनन्द देना न देना तो दाता के

हाथ में है। उसके लिए स्थान विशेष की आवश्यकता नहीं होती। वह चाहे तो आनन्द मोटरों में या शहर की चहल पहल के बीच ही दे देता है। यह तो दाता के हाथ की बात है, माका राम के हाथ में कुछ भी नहीं है।" श्रीदाता रात्रि विश्राम भीलवाड़ा करना चाहते थे किन्तु लोगों की हठ के कारण रात्रि विश्राम वहीं करने की आज्ञा दे दी।

रात्रि को पुनः मण्डली भजन करने को बैठी। श्रीदाता लेट गये। भजन रात्रि वाले स्थान पर बैठ कर ही बोले जा रहे थे। भजन बोलने वालों ने खूब जोर लगाया, जोर जोर से भजन बोले लेकिन श्रीदाता तो लेटे ही रहे, उठ कर बैठे तक नहीं। लोग उछले-कूदे भी, नृत्य करने का प्रयास भी किया लेकिन कृत्रिमता कृत्रिमता ही होती है। भाव हीन नृत्य या उछल कूद का अर्थ ही क्या है? न भजन बोलने वालों को ही आनन्द आया और न नृत्य करने वालों को ही। देखने-सुनने वालों को भी किसी प्रकार के आनन्द की अनुभूति नहीं हुई। भजन बोलने वालों ने 'कान्हा कान्हा' की खूब रट लगायी। 'होली खेलन आयो' भी बोला गया। और भी कई आकर्षक भजन बोले गये। किन्तु सब ही व्यर्थ गया। करीब चार बजे तक प्रयास जारी रहा कि कुछ तो आनन्द आवे किन्तु सब व्यर्थ। एक दो बार श्रीदाता उठ कर बैठ भी गये, एक बार नृत्य करने वालों के बीच पहुँच भी गये किन्तु कुछ ही देर में वापिस जाकर लेट गये। अन्य लोग भी जो पूर्व रात्रि को सो गये थे वे सभी इस रात्रि को आनन्द प्राप्ति की आशा में जागते रहे। हजार प्रयास करने पर भी किसी को आनन्द का एक कण भी नहीं मिला। हताश होकर भजन बोलने वालों ने भजन बोलना बन्द कर दिया। सभी दुःखी थे। पूर्व दिन की मस्ती गायब हो गयी। ऐसा लगा मानो दाता ने आनन्द रूपी भण्डार को ताला ही नहीं लगाया वरन् चारों ओर से सील बन्द ही कर दिया हो। कुछ बालक भक्त श्रीदाता से लड़े भी, उलाहना भी दिया किन्तु सब व्यर्थ। कुछ भी सुनवायी न होने पर निराश होकर रह जाना पड़ा।

वातावरण में उदासी थी। प्रात ही चलने की तैयारी की गयी। बस चल पड़ी। श्रीदाता को प्रसन्न मुद्रा में देखकर युवक

त्रिवेणी के घाट पर श्री दाता
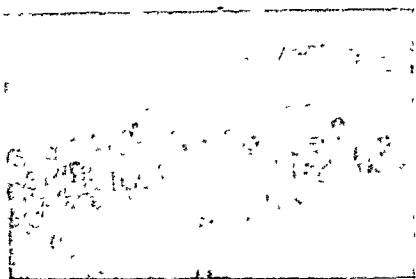
त्रिवेणी में स्नान

त्रिवेणीपर श्री दाता

भक्तों ने रात्रि वाले भजन बोलना प्रारंभ किया। बंमाली वाले एक भक्त ढोलक बजा रहा था। पहले तो भजन नीरस ही चला किन्तु मांडलगढ़ पहुँचते पहुँचते भजनों में रस आने लगा। श्रीदाता भी भजन बोलने में साथ देने लगे। धीरे धीरे उनकी तन्मयता बढ़ने लगी। श्रीदाता ने अपने भण्डार की सील मोहर हटाकर ताले पुनः खोल दिये। लोगों को रस आने लगा। इसी बीच त्रिवेणी आ गयी। लोग बस से उतरते हुए भी भजन बोलते रहे। सभी श्रीदाता को बीच में लेकर भजन बोलने लगे। धीरे धीरे नृत्य भी शुरू हो गया। लोग मस्ती में आकर नाचने-कूदने लगे। सड़क से त्रिवेणी पहुँचने में एक घण्टा लगा। घाट केवल एक फर्लांग दूर है। अन्य दर्शक गण भी इकट्ठे हो गये। इतना आनन्द आया कि देखने वाले अपरिचित लोग भी विचित्र मुद्राओं में नाचने लगे। श्री रामसिंह जी भी अपनी बैशाखियों को डाल शाव मुद्रा में नाचने लगे। उन्हें ऐसा करते देखकर श्रीदाता मुस्करा दिये।

घाट पर जाकर श्रीदाता सीढ़ियों पर विराज गये और लोग उन्हें चारों ओर से घेरकर भजन बोलने लगे। बड़ा ही रोचक दृश्य हो गया। दीनदयाल श्रीदाता ने रात की कसर व्याज सहित निकाल दी। भजन समाप्त होने पर स्नान की बारी आयी। दो दिन पूर्व जैसी जल-क्रीड़ा हुई थी वैसीही जल-क्रीड़ा उस दिन भी हुई। जल में ही खड़े होकर, तैरते हुए, खड़े हुए लोग भजन बोलते रहे। वहाँ दो कैमरामेन भी थे। एक ने बिना आज्ञा चित्र लिये। उसका एक भी चित्र सफल नहीं हुआ। दूसरे ने आज्ञा ली। उसके सभी चित्र सफल हो गये।

श्रीकृष्ण गोपाल जी खड़े खड़े यह तमाशा देख रहे थे। वे स्नान करना नहीं चाहते थे। श्रीदाता का चैनसिंह जी और शिवसिंह जी को संकेत हुआ। वे दोनों गये और उन्हें कपड़ों सहित उठा लाये और पानी मे डाल दिया। सभी हँसने लगे। इस प्रकार जल-क्रीड़ा लगभग डेढ़ घण्टे तक होती रही। उस जल-क्रीड़ा का वर्णन करना संभव नहीं। गूँगा गुड़ के स्वाद को क्या बतावे? लोगों के जन्म जन्म के पाप धुल गये।

नाश्ते के बाद

श्रीदाता घाट से रवाना हुए। कुछ लोग पीछे रह गये थे अतः मार्ग में स्थित वट वृक्ष की छाँह में श्रीदाता ठहर गये। लोगो की मस्ती तो थी ही। लगे गाने 'म्हारा वृन्दावन की कुन्ज गलिन में बाजी रे बासुरिया'। वे वटवृक्ष के तने को जहाँ श्रीदाता खडे थे बीच में लेकर नृत्य करने लगे। लगभग आधे घण्टे तक भजन चलता रहा। धूप व गर्मी की परवाह न कर मस्ती से भजन बोला जाता रहा। चारो ओर आनन्द ही आनन्द था। इसी वातावरण में वहाँ से चलकर भीलवाडा आ गये।

इस कार्यक्रम के बाद आज तक कई कार्यक्रम हो गये हैं। एक से एक अपूर्व किन्तु जो आनन्द रस इस कार्यक्रम में मिला वैसा बाद में नही मिला। अब तो भीड भी अधिक होने लगी व वैसा आनन्द भी नहीं। आनन्द का देना, न देना श्रीदाता के हाथ में है और लेना, न लेना बन्दों के भावो पर निर्भर है।

बावडी का सत्सग

बावडी में कुमावत लोग रहते है। जगपुरा और परवती के गूजरो की तरह यहाँ के लोग भी प्रारम से ही श्रीदाता को साँवरिया के रूप में देखते आये है। कोशीथल वाले सूजाभाई से तो आप परिचित है ही। वे श्रीदाता के अनन्य भक्त थे। उनका साथी उम्मेदपुरा का भजाभाई गाडरी था वह भी श्रीदाता का उच्च कोटि का भक्त था। इस तरह हम देखते है कि केवल गूजर ही नही वरन् कुमावत, गाडरी आदि वर्गो के लोग भी बाल्य काल से ही श्रीदाता के प्रति श्रद्धावान रहे है। बावडी में सवाई रामजी एव नारूभाई तथा उनके साथी श्रीदाता को कृष्ण रूप में ही देखते आये है। वैसे तो श्रीदाता की उन पर विशेष कृपा रहती ही है। वे जल्दी जल्दी इन्हे दर्शन देते ही है। नान्दशा, उम्मेदपुरा, जगपुरा आदि स्थानो पर पधारना होता है तो इन्हे बुला लिया जाता है फिर भी बावडी के लोगो की विशेषकर सवाईराम जी, नारूभाई एव उनके परिवार के लोगो की तीव्र इच्छा रहती है कि श्रीदाता बावडी पधारे। प्रति वर्ष भादव माह में जब मक्का आदि फसलें

त्रिवेणीपर स्नान करते हुए श्री दाता

त्रिवेणीपर स्नान करते हुए श्री दाता
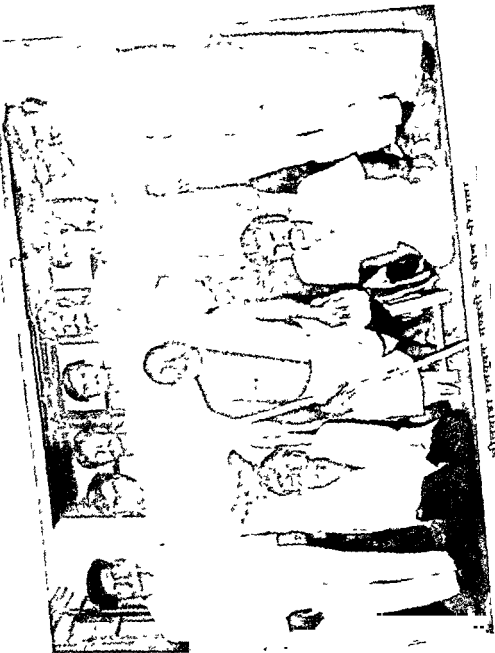
पकती हैं तब वे लोग श्रीदाता को पधारने का अर्ज कर ही देते हैं। सितम्बर सन् ७८ में सवाईराम जी को पाँच दिन के कीर्तन का हुक्म हुआ। श्री ख्यालीलाल जी सर्वा तथा बावड़ी वालों ने श्रीदाता के पधारने हेतु प्रार्थना की। श्रीदाता की स्वीकृति मिलने पर उन्होंने सभी स्थानों के भक्त-जनों को निमंत्रण दे दिया।

श्रीदाता दिनांक ७-९-७८ को करेड़ा पशु मेले में बैल देखने के उद्देश्य से पधारे। वहाँ से नान्दशा पधारना हो गया। बात की बात में चारों ओर सूचना मिल गई और आसपास के लोग वहाँ आ गये। बावड़ी से गहरीबाई, मोहनीबाई और अन्य बहनें भी आ गयीं। छगुबाई और गंगाबाई की तरह ये कुमावत बहनें भी प्रेम का स्वरूप ही हैं। उनके भजन भी गूजरियों के भजनों की तरह मार्मिक और उलाहना युक्त ही हैं। वे श्रीदाता को रिझाने हेतु भजन बोलने लगी। कुछ वृद्ध साथी जो गायों के चराने के समय श्रीदाता के संगी रहे हैं तानपूरा लेकर एक ओर बैठकर बोलने लगे। नवयुवकों का दल सत्संग भवन में कीर्तन बोल रहा था। सगुण और निर्गुण दोनों ही प्रकार की भक्ति के नमूने उस समय वहाँ थे। उस समय लगभग दो सौ प्राणी तीन दलों में विभक्त होकर प्रभु नाम का आनन्द ले रहे थे। श्रीदाता सभी दलों को मस्ती देने पधारते रहे। वे बीच बीच में आर्त लोगों की पुकार भी सुन लेते थे। श्री हरदेव जी की अच्छी भैंस एकाएक बीमार होकर मरणासन्न हो गई। उसने दाना-पानी ही नहीं छोड़ा वरना बछिया को दूध पिलाना भी छोड़ दिया। श्री हरदेवसिंह जी ने दुःखी होकर पुकार की। पहले तो उन्होंने डाक्टर को बताने को कह दिया किन्तु जब हरदेवसिंह जी का मुँह लटका हुआ देखा तो महर हो गई। पुकार सुन ली गई और भैंस तत्काल उठ बैठी। श्रीदाता ने उसे मृत्युमुख से बचा लिया।

रात्रिभर भजन-कीर्तन होता रहा। श्रीदाता का ८-९-७८ को पुनः करेड़ा पधारना हुआ। आनन्द कुटीर में विराजना हुआ। नान्दशा में उपस्थित लोगों में से अधिकतर लोग करेड़ा पहुँच गये। बैमाली से राव साहब, जयपुर से ललित कृष्ण जी का परिवार

आदि लोग भी आ गये। खूब सत्संग, भजन-कीर्तन हुआ। अगले दिन शाम तक वही विराज कर फिर दाता-निवास पधार गये।

जो कार्यक्रम निश्चित हुआ उसके अनुसार जीप १५-९-७८ को दाता-निवास पहुँच गई और वे गिरधरसिंह जी को साथ लेकर देवगढ, करेडा, नान्दशा होते हुए उम्मेदपुरा पहुँचे। वहाँ भी कालूभाई के यहाँ कीर्तन चल रहा था। बावडी में भी कीर्तन चल रहा था। वहाँ जयपुर, भीलवाडा, जामोना, अजमेर, उदयपुर आदि स्थानों के भक्त एव प्रेमीजन आ गये थे व प्रात से ही श्रीदाता की प्रतीक्षा थी। कुछ देर बाद श्रीदाता कालूभाई के यहाँ कीर्तन में आकर बैठे। श्री ख्यालीलाल जी सर्वा वही थे। श्रीदाता ने उन्हे पूछा, "शेखर व शिवजी दिखायी नही दे रहे है।" ख्याली जी ने उत्तर दिया, "भगवन्! भाईसाहब की बहन का निधन हो गया है अत वे नही आ सके। शिवजी काका साहब को छुट्टी नही मिल सकी।" श्रीदाता ने फरमाया, "रात्रि को क्या काम है, रात्रि को तो आ सकते है। जीप भेज दो जो जाकर ले आवे। प्रात वापिस चले जावेगे।" ड्राईवर को कहने पर उसने रात्रि को भीलवाडा चलने से मना कर दिया। उसको रात्रि में चलने पर आपत्ति थी। इस पर श्रीदाता को जीप ड्राईवर पर कुछ रोष हो आया। उन्होने फरमाया, "जीप का हिसाब कर जीप को छुट्टी दे दो।" यह कहकर वे अन्य लोगो को साथ लेकर पैदल ही चल दिये। बावडी के बाहर लगभग तीन सौ व्यक्ति कीर्तन करते हुए खडे थे। अचानक श्रीदाता को पैदल आते देख वे दौड पडे और प्रणाम कर जय जयकार कर उठे। माताएँ और बहनें 'आज तो साँवरिया आया मोरे आँगनिया' गाने लगी। श्रीदाता आगे चल पडे। सारे लोग कीर्तन करते हुए उनके पीछे पीछे चलने लगे। सभी वहाँ पहुँचे जहाँ कीर्तन हो रहा था। वहाँ जगपुरा की सभी बालिकाएँ भी थी। अन्य कई लोग थे। सभी श्रीदाता को देखकर आनन्दित हो गये। जय जयकार के नारे लगने लगे। इधर माताओ और बहनो के दो दल हो गये। एक का नेतृत्व छगुबाई कर रही थी तो दूसरे दल का गहरीबाई। भजनो की होड लग गई।

वड़े रसमय भजन वोले जाने लगे। भजन वोलने में किसी दल के थकने का तो नाम ही नहीं था। भजन वड़े मार्मिक, भावात्मक और हृदयस्पर्शी थे। वे इतने मधुर और प्रेम से ओतप्रोत थे कि सुनने वाले सभी भाव-विभोर हो गये। जयपुर, अजमेर एवं उदयपुर वालों का तो ऐसे भजन सुनने का पहला ही अवसर था। वे तो इनका भक्तिभाव देखकर ही दंग रह गये। अच्छे से अच्छा नास्तिक भी एक वार तो उन्हें देखकर व इनका भजन सुनकर अपने घुटने टेके विना नहीं रहता। श्रीदाता को तो वे वहनें नट की तरह ही नचा रही थी।

इधर गूजर व कुमावत युवक भी कम नहीं। वे कीर्तन कर रहे थे। कीर्तन की भी वही समा थी जो भजनों की थी। श्रीदाता के कीर्तन स्थल पर पधारते ही वड़ा अद्भुत दृश्य उपस्थित हो गया। कोई नृत्य कर रहा है। कोई उछलकूद कर रहा है तो कोई विचित्र मुद्रा लिये खड़ा है तो कोई वेहोश पड़ा है। कीर्तन की ध्वनि शान्त वातावरण में कोसों दूर तक पहुँच रही थी। प्रत्येक व्यक्ति मस्ती में झूम रहा था। देखते ही वनता है, वेचारी लेखनी की क्या सामर्थ्य कि उस दिव्य दृश्य का वर्णन कर सके। वड़ा ही उल्लासमय वातावरण था। वाहर के भक्त लोग वहाँ के लोगों के प्रेम एवं भक्ति भाव की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। कइयों को अव तक यह गर्व था कि उनके समान श्रीदाता के चरणों मे अन्य लोगों का प्रेम नहीं हैं। किन्तु उनका सारा गर्व इस दृश्य को देख कर चूर चूर हो गया और वे अनुभव करने लगे कि इन स्त्री-पुरुषों के चरणों की धूलि का भी मुकावला वे नहीं कर सकते हैं। वड़ा अनोखा उनका प्रेम और अद्भुत उनकी भक्ति लोगों को देखने को मिली।

इस प्रकार का वातावरण लगभग एक घण्टे तक चला। इसके वाद श्रीदाता एक कमरे के वाहर जाकर विराजे। वहनों और भाइयों ने उन्हें वहाँ भी जाकर घेरा। इस पर श्रीदाता ने फरमाया, "इन लोगों को हरेहर (भोजन) भी करने दोगे या इन्हें भूखे ही रखोगे।" यह सुनकर सव हँस पड़े। भोजन कराया गया। प्रेम की

पुट लगे हुए भोजन के स्वाद का क्या कहना ? लोगो ने छक कर प्रसाद पाया। बावडी वालो की सेवा वर्णनातीत थी।

जीप को श्रीदाता ने उम्मेदपुरा में ही छोड दी थी और हिसाब कर देने की आज्ञा दे दी थी। करेडा वाले गोकुलसिंह जी ने ड्राईवर को खूब समझाया। करीब नौ बजे वह भीलवाडा जाने को तैयार हुआ। भीलवाडा से हम लोगो को लेकर जीप बावडी साढे बारह बजे पहुँची। हमें देखकर सभी बडे प्रसन्न हुए। उन लोगो के प्रेम को देखकर गद्‌गद् होकर हम उस कमरे के बाहर पहुँचे जहाँ श्रीदाता विश्राम कर रहे थे और पहरे पर बहनो का जमघट था। प्रणाम कर हम भी पास ही बैठ गये। सभी चुप थे। उन्हे चुप देखकर मूर्खतावश हमारे मुँह से शब्द निकल गये, "सभी चुप क्यो ?" इस पर एक बहन ने धीरे से कहा, "आप ठहरे, श्रीदाता के दर्शन अभी होने है।" उन्होने तत्काल एक गीत गाया, "भगवान् अब तो उठो, भीलवाडा से आये है आपके भक्त, इन्हे जरा दर्श तो देओ।" बडे ही प्रेम मिश्रित मधुर वाणी मे भजन बोला गया। भजन के समाप्त होते ही कमरे के किवाड खुले और श्रीदाता ने हम लोगो को अन्दर बुला लिया। जब हमने दर्शन कर प्रणाम कर लिया तो फरमाया, "बाहर बैठो।" अर्थ स्पष्ट था किन्तु जो मूर्खता हमसे हुई वह तो हो ही गई।

श्रीदाता पाँच मिनिट बाद बाहर पधारे। हम लोग भोजन तो कर ही चुके थे। श्रीदाता के पूछने पर हमने मना भी कर दिया किन्तु उन्होने आदेश दे ही दिया, "इन्हे भोजन कराओ।" भोजन परोसा गया। श्रीदाता वहीं खडे रहे। उनकी उपस्थिति में ही भूख न होते हुए भी जम कर प्रसाद पाया। भोजनोपरान्त श्रीदाता ने पुन कमरा बन्द कर दिया। बहनें भजन बोलने लगी जो रात भर चलते रहे।

श्रीदाता प्रात ही जल्दी उठ कर नदी की ओर पधार गये। शौचादि से निपट कर ऐनीकट के पास स्थित एक कुँए पर स्नान करने हेतु पधारे। जो लोग रात्रि को जीप में आये थे वे भीलवाडा जाने हेतु आज्ञा मागने वही पहुँच गये। वहाँ सत्सग चल रहा था अत

उन्हें लगभग एक-डेढ़ घण्टे तक खड़ा ही रह जाना पड़ा। अवसर मिलते ही आज्ञा माँगी तो फरमाया, "किस तरह जाओगे?" हमने उत्तर दिया, "देर हो गई। अब तो जीप द्वारा ही जाया जा सकता है।" श्रीदाता ने फरमाया, "जीप के अतिरिक्त क्या अन्य कोई साधन नहीं है? जीप से जाना तो ठीक नहीं है।" अन्य कोई साधन था ही नहीं अतः अर्ज करनी पड़ी, "अन्नदाता! जीप के सिवा कोई अन्य साधन नहीं है। जीप ही ले जानी पड़ेगी।" इस पर फरमाया, "जैसी तुम्हारी मौज।"

हम लोग विदा हो ही रहे थे कि प्रसंग चल पड़ा जिस कारण ठहर जाना पड़ा। प्रसंग समाप्ति पर श्रीदाता उम्मेदपुरा पधार गये। कुछ समय तक वहाँ कीर्तन में विराजना हुआ। गर्मी पड़ने लगी अतः कुछ देर ठहर कर वापिस बावड़ी पधारना हो गया। बावड़ी वालों ने नाश्ते की अच्छी व्यवस्था की। सभी को पेट भर दूध पिलाया। बाद में गुलाबजामुन, कण की पकोड़ी तथा बाद में सिके हुए मक्की के भुट्टे। नाश्ता क्या था पूरा भोजन ही था। श्रीदाता ने कुछ भी नाश्ता नहीं किया। कुछ देर बाहर बैठ कर कमरे में पधार गये और अन्दर से किवाड़ बन्द कर लिये।

भीलवाड़ा वाले युवकों ने जब देखा कि श्रीदाता कमरे के बाहर नहीं निकल रहे हैं तो उन्होंने भजन बोलना शुरू किया। वे चाहते थे कि श्रीदाता बाहर पधारें जिससे वातावरण में मस्ती छा जाय। उनका प्रयास निरर्थक ही रहा। बहनों ने भी खूब प्रयास किया। उनका प्रयास भी विफल ही हुआ। सभी के बोल श्रीदाता ने सुने-अनसुने कर दिये। कभी ऐसा नहीं हुआ था। बहनों के भजन सुनकर तो वे चुप बैठते ही नहीं किन्तु उस दिन उन्हें क्या हो गया? कीर्तन समाप्ति का आदेश पूर्व में ही दे दिया था अतः समय पर कीर्तन समाप्त कर दिया गया। कीर्तन की समाप्ति के समय लोगों को आशा थी कि श्रीदाता पधारेंगे किन्तु यह आशा भी निराशा में ही बदली। इससे वातावरण में कुछ उदासी छा गई। अढ़ाई बजे श्रीदाता बाहर पधारे। आते ही हरेहर का हुक्म दे दिया। हरेहर

शुरू हुई। जैसे प्रात दूध की नदी वहा दी थी उसी प्रकार भोजन के समय दही की नदी ही वहा दी। भोजन में नाना प्रकार के व्यन्जन थे। उस भोजन के स्वाद का क्या कहना जो भगवान के लिए बनाया गया हो। सभी ने रूच रूच कर भोग लगाया। श्रीदाता ने भी भोजन किया। लगमग डेढ घण्टे तक भोजन होता रहा।

भोजनोपरान्त दरवाजे में वने चवूतरे पर बिराजना हो गया। श्रीदाता उस समय तक भी गम्भीर थे अत सभी लोग चुपचाप बैठ गये। सभी लोग भीलवाडा से आनेवाली जीप की प्रतीक्षा में थे। जीप को एक वजे तक ही पहुँच जाना था। चार वज गये इसलिए सब का चिन्तित होना स्वाभाविक ही था।

हम लोग श्रीदाता से आज्ञा लेकर वादडी आये और जीप के ड्राईवर को चलने को कहा। उसका माथा ठनका। उसने कहा, "अभी तो उठा हूँ। अभी चाय पीऊँगा व शौच जाऊँगा।" हमने उसे समझाया कि हम में से कुछ को नौकरी पर जाना है किन्तु वह अपनी ही जिद पर अडा रहा। हम लोगो को बुरा तो वहुत लगा किन्तु कर भी क्या सकते थे? ड्राईवर नौ वजे निपटा। क्रोध में वह था ही अत प्रारम्भ से ही जीप असतुलित होने लगी। गति में भी असमानता थी। उसको कहने से भी कुछ लाभ नहीं हुआ। ज्यो त्यो कर गगापुर पहुँचे। दो व्यक्तियो को वहाँ उतार दिया गया। अव ड्राईवर के अतिरिक्त यह लेखक, शिवसिह जी, चैनसिह जी, वशीधर जी और चन्द्रप्रकाश जी रह गये। गगापुर के वाद जीप की गति ७० कि मि से अधिक हो गई। गुरला के पास पहुँचते पहुँचते स्टेयरिंग का निचला डण्डा निकल गया। भाग्य से उस समय गति कुछ कम ही थी व सडक सीधी थी अत वाल-वाल वच गये। ड्राईवर ने डण्डे को फिर से कस दिया। दस वही वज गये। उसने जीप की गति वढा दी। कुछ ही दूर गये होंगे कि स्टेयरिंग ने काम करना वन्द कर दिया। जीप ड्राईवर के नियत्रण से परे हो गई। सडक पर मोड था और सामने नहर की पुलिया थी। जीप का एक पहिया सडक के नीचे की नहर में अधर में और दूसरा पहिया पुलिया की दीवार पर चढ कर उछला। नहर चार-

पाँच मीटर चौड़ी थी। स्वाभाविक था कि जीप उलट कर नहर में गिरती। जीप के डाँवाडोल होते ही चन्द्रप्रकाश जी के मुँह से 'जय दाता की' निकला। जीप हवा में उछली और देखते ही देखते आगे स्थित थूहर की बाड़ पर जा गिरी। बाड़ लगभग आठ-दस फीट ऊँची थी। ऐसा अनुभव हुआ जैसे किसी ने जीप को उठा कर फेंक दिया हो। जीप का इन्जिन चलता रहा और थूहर को तोड़ती हुई वह नीचे को बैठती रही। ड्राईवर को होश आया और उसने इंजिन बन्द किया। यह एक अद्भुत और अनोखी ही बात थी। चार-पाँच मीटर चौड़ी नहर को लाँघ जाना असंभव बात ही थी। 'जीप का नहर में गिरना, उलटना और हम सबका मृत्यु के मुँह में चले जाना' यही सोचा जा सकता था। जीप का एक पहिया अधर में था। दूसरा दीवार पर होकर अधर में हो गया। ऐसी अवस्था में जीप का उलट कर नहर में गिरने के सिवा चारा ही क्या था किन्तु प्रभु की महर जो ठहरी। यह उसकी अनन्त कृपा ही थी कि उसने जीप को उठाकर थूहर में जा फेंकी। थूहर की बाड़ सड़क और नहर से काफी दूर थी। थूहर में न पड़कर भूमि पर पड़ती तो भी हालत तो खराब होती ही किन्तु प्रभु ने तो उसे सभी खतरों से परे कर दिया। जीप में वंशीधर जी और चैनसिंह जी निद्रा ले रहे थे अतः जीप की उछाल से चैनसिंह जी की पसली में व वंशीधर जी के सिर में चोट लगी। प्रभु कृपा से हम सब लोग बाल-बाल बच गये। जीप से उतर कर वंशीधर जी और चैनसिंह जी को उतार ही रहे थे कि पीछे से गुजरात की एक यात्रा बस आ गई। हमें दुर्घटनाग्रस्त देखकर, उन्होंने हम सभी को बस में ले लिया।

भीलवाड़ा पहुँच कर दोनों व्यक्तियों को अस्पताल में पहुँचाया गया। भगवान पर भरोसा तो था ही। जीप गिर गई तब भी सब प्रसन्नचित्त थे व हँस ही रहे थे। अस्पताल में गये फिर भी निश्चिन्त ही थे। वंशीधर जी के सिर में पट्टी बाँध कर कन्धे पर आयोडिन लगा दिया गया। चैनसिंह जी की पसली में जोरदार लगी थी और अन्देशा था कि पसलियाँ टूट गयी होंगी किन्तु जाँच से पता चला कि ऐसा कुछ भी नहीं हुआ है। केवल साधारण चोट ही है।

दवा लेकर शिवसदन लौट आये और दोनो को दाता के आसन के सामने लिटा दिया।

दूसरी जीप किराये से लेकर मैं और चन्द्रप्रकाश बावडी पहुँचे। श्रीदाता चबूतरे पर विराजे ही थे कि हम लोग पहुँच गये। दूसरी जीप देखकर सभी को आश्चर्य तो हुआ ही। हम लोग प्रणाम कर उठे ही थे कि श्रीदाता ने मुस्कराते हुए फरमाया, "कहो! क्या बात हुई।" इस सेवक ने हँसते हँसते सभी बात बता दी। श्रीदाता ने कहा, "जीप उलटी तो नहीं और कोई खाण्डा पाचरा तो नहीं हुआ। माका राम ने तो उस जीप को कल ही छुट्टी कर देने को कह दिया था। आज प्रात भी मना किया था। तुम लोग नहीं मानो तो माका राम कई करे। तुम लोगो को तो म्हारे दाता को कष्ट देने में मजा आता है।" इस विवरण को सुनकर पहले तो सभी आश्चर्यचकित हुए और फिर प्रसन्नता से खिल उठे। वे सब एक साथ ही बोल उठे, "अब मालूम हुआ कि इसी कारण दाता चुपचाप बन्द कमरे में विराजे रहे। हमारे चिल्लाने से क्या? वे वहाँ होने तो आते। इसी कारण उदास और गम्भीर होकर बैठे हैं। अब मुस्करा रहे हैं। वाह रे भगवान! तुझे अपने भक्तो की कितनी चिन्ता है। तेरी बलिहारी है। अब जाना कि मूड क्यों खराब है? आपको तो अपने भक्तो के कारण दौडना था।" यह निर्विवाद सत्य है कि भगवान ने हमारी रक्षा न की होती तो हमारी सब की मृत्यु निश्चित थी। दुर्घटना स्थल को देख कर कोई यह नहीं कह सकता कि जीप नहर में न गिर कर थूहर में जा गिरेगी। यह तो दीनबन्धु की अपार कृपा ही थी कि जीप को थूहर में फेंक कर हमारी जान बचा दी गई।

हमारे वहाँ जाने के बाद वातावरण में एकदम परिवर्तन हो गया। सब ही प्रसन्नचित्त हो गये। श्रीदाता ने स्वय दाता दयाल की महर का बखान किया। सभी आनन्द रूपी सागर में गोते लगाने लगे। आनन्दातिरेक से कोई उछलने लगा, कोई नाचने लगा, कोई गुनगुनाने लगा व कोई रोने लगा। उस समय का दृश्य ही अनोखा हो गया। अन्त में श्रीदाता ने फरमाया, "अरे! इन्हे

भोजन तो कराओ। ये लोग तो सुबह से ही भूखे हैं। इन्हें खूब हरेहर कराओ।" श्रीदाता ने स्वयं खड़े होकर भोजन कराया। हमारा तो भाग्य ही खुल गया। प्रभु की अपार कृपा को देख कर आनन्दाश्रु वह चले।

श्रीदाता का भीलवाड़ा को पधारने का पूर्व से ही कार्यक्रम था किन्तु कारण नहीं वना था। अव कारण वन गया अतः उन्होंने जीप को तैयार करने की आज्ञा दी। वहनें वोल उठी, "श्रीदाता को आज कहीं मत जाने दो। आज उन्हें यहीं रहना है।" वड़ी कारुणिक प्रार्थना थी उनकी। एक भक्त ने कहा, "वहनों! तुम तो समर्थ हो। तुममें भगवान को बांध रखने की शक्ति है, इन्हें आज कहीं मत जाने दो।" इस पर सभी वहनें रो पड़ी और रोते रोते ही कहने लगी, "आज दाता को आप लोग यहीं रोक लो। इन्हें कहीं न जाने दो। हमारी विनती सुन लो।" श्रीदाता तो घटघटवासी हैं। वे उनके हृदय के मर्म को समझ गये। उन्होंने उन्हें अनेक प्रकार से समझाया। जब वे किसी प्रकार मानने को तैयार नहीं हुई तो वोले, "आप लोग चिन्ता न करो। भीलवाड़ा में रम कर कल ही माका राम वावड़ी या नान्दशा वापिस आ जावेगा" इसपर सव को सन्तोप हो गया।

श्रीदाता चौक में बैठ गये और लोग भजन वोलने लगे। प्रह्लाद ने अपना प्रिय भजन 'कान्हा कान्हा मैं पुकारूं मधुवन में' वोला। वड़ा सरस भजन था। सभी मस्त हो गये। कुछ समय वाद श्रीदाता को भावाद्रेक हो गया। कई लोग भावावेश में नृत्य करने लगे। इसके वाद 'मैया तेरे कान्हा को समझा ले' वोला गया। इसके वाद 'मैं तो मेरे कान्हा की वनी रे दुल्हनिया' वोला गया। एक समा वँध गई। सभी मंत्रमुग्ध हो गये और शरीर की सुधवुद ही विसर गई। सभी आनन्द विभोर होकर दाता की मस्ती में मस्त हो गये। सारे दिन की उदासी जाती रही। दो घण्टों का समय वात की वात में ही निकल गया।

छः वजे श्रीदाता भीलवाड़े के लिए रवाना हुए। प्रस्थान के समय सभी के नेत्रों में आँसू थे। वहनों के आँसू तो रोके ही नहीं

रुकने थे। आठ बजे भीलवाडा पधारना हो गया। जो लोग बावडी न आ सके वे सब शिवसदन में विद्यमान थे। श्रीदाता के दर्शन कर सभी कृतार्थ हुए।

रात्रि को नवयुवक मण्डली के सभी सदस्य सत्संग भवन में आ गये। बावडी जाने वाले भी आ गये थे। श्रीदाता सत्संग भवन में पधारे। चैनसिंह जी और बंशीधरजी भी वहीं लेटे थे। श्रीदाता ने उनके कुशलक्षेम के बारे में पूछताछ की। चैनसिंह जी की पसली में दर्द था। उनकी पुकार सुनी। तत्काल उनका दर्द दूर हो गया। वे बैठे हो गये। भजन चल पडे। कुछ देर बाद श्रीदाता विश्राम करने पधार गये। लोग भजन बोलने लगे। भजन था –

> कुछ लेना न देना मगन रहना,
> पाँच तत्व का बना है पींजरा, उसमें बोले है मोरी बैना।
> गहरी है नदिया, नाव पुरानी, केवटिया से मिले रहना।
> कहत कबीरा सुनो भाई साधौ, गुरु के चरणो में लिपटे रहना।

इस भजन को सुन श्रीदाता वापिस सत्संग भवन में आ गये। आते ही कहा, "यह क्या गजब कर रहे हो। कुछ लेना न देना ठीक नहीं। यह बोलो 'कुछ लेना है और अपने को देना है।' दाता से तो बहुत कुछ लेना है तथा अपने आप को समर्पण करना है। सब से उदास होकर उस एक की ही आशा में रहने को मगन रहना कहते हैं। जब तक 'मैं' और 'मेरे' को प्रधानता देते रहोगे तब तक दुःख ही दुःख है। जब 'तू' और 'तेरी' प्रधानता हो जावेगी तो टन्टा (झगडा) ही मिट जावेगा। दाता तो सब ही करता है किन्तु लोग भूल जाते हैं इसका क्या किया जाय। भोपाल वाले भोपाल जा रहे थे कि अचानक खून की उल्टियाँ होने लगी। अस्पताल में भर्ती कराया गया। डाक्टर निराश हो गये। उन्हे दाता की याद आयी। पुकार की और सब कुछ ठीक हो गया। इतना करने पर भी वापिस भूल जांय तो फिर दाता क्या करे ?"

उस दिन चन्द्रग्रहण था। बडी देर तक श्रीदाता का प्रवचन होता रहा। श्रीदाता ने बताया कि दाता की तो बडी महर है।

आप लोग कुंडे (छोटा सा मिट्टी का वर्तन) की वात कर रहे हैं वहाँ तो सागर भरे पड़े हैं। उसमें अवगाहन (स्नान) करने वाला चाहिये। इस तरह रात्रि भर श्रीदाता की महर वनी रही।

दूसरे दिन नान्दशा पधारना हो गया। वावड़ी वाले लोग वहीं आ गये। वहाँ भी आनन्द की रस धारा वहती रही। वहाँ से शाम को सभी से विदा लेकर चल दिये। मार्ग में कुछ देर तक जगपुरा ठहरे फिर सीधे ही दाता-निवास पधार गये। वाद में भी जगपुरा पधारना हुआ और ऐसा ही आनन्द रहा।

जरगा जी में रस धारा

अरावली के आँचल में अनेक पवित्र एवं दर्शनीय पर्वतश्रेणियाँ हैं जिनमें जरगा जी भी एक है, जो कुंभलगढ़ से २३ कि. मी. दक्षिण में स्थित है तथा जिसकी ऊँचाई समुद्र सतह से ४३१५ फीट है। अरावली की ऊँची चोटियों में जरगा जी की पहाड़ी का स्थान दूसरा है। इस पहाड़ी का नाम जरगा जी कैसे पड़ा इसके लिए एक किवदन्ती प्रचलित है। एक वार श्री रामदेव जी घोड़े पर वैठ कर जा रहे थे। जरगा नाम का व्यक्ति घोड़े का सईस (चरवादार) था। जाति से वह वलाई था। किसी कारणवश वे यहाँ आते आते अपना घोड़ा जरगा को पकड़ा कर तथा "तू घोड़े को लेकर यहीं खड़ा रह, मैं शीघ्र ही आता हूँ" यह कह कर चले गये। दैवयोग से वे इस वात को भूल गये। जरगा आज्ञाकारी एवं स्वामीभक्त था। खड़े खड़े वहीं मृत्यु को प्राप्त हुआ और उसका शरीर सूख गया। वारह वर्ष वाद श्री रामदेव जी उधर से निकले। वहाँ पहुँचते ही उन्हें जरगा की याद हो आयी। उन्होंने घोड़े और जरगा का कंकाल देखा। आवाज दी तो उन कंकालों में प्राण का संचार हो आया। वह श्री रामदेव जी के चरणों में जा पड़ा। प्रसन्न होकर श्री रामदेव जी ने उन्हें वर देने को कहा, इस पर जरगा ने अपना नाम अमर कर देने को कहा। श्री रामदेव जी ने इस पहाड़ का नाम जरगा रख कर उस आज्ञाकारी सेवक का नाम अमर कर दिया। पहाड़ के पूर्वी आँचल में क्रमशः वैष्णव, वलाई और भील समाज द्वारा निर्मित श्री रामदेव जी के तीन मन्दिर तथा जरगा की एक छतरी

बनी हुई है। स्थान बडा रम्य और तपस्या करने योग्य है। सन् १९५७ से ही इस स्थान पर एक सन्त श्री कैलाश गिरि जी विराज रहे हैं। जरगा जी के पूर्व में सडक पर कुचौली नामक स्थान है जहाँ पटवारी के पद पर श्री रामचन्द्र जी ने काम किया था। वे कैलाशगिरि जी के सम्पर्क में आये और उन्होंने उन्हें श्रीदाता का परिचय दिया। उन्होने श्रीदाता के दर्शन कराने के लिए कहा, इसपर श्रीदाता १९७० में जरगा जी पधारे थे। खूब सत्सग हुआ था। वर्षा भी अच्छी हो गई जिससे वहाँ के सौन्दर्य में वृद्धि हो गई थी। जिससे खूब आनन्द रहा।

प्रथम दर्शन के बाद श्री कैलाशगिरि जी का प्रेम श्रीदाता के प्रति उत्तरोत्तर बढता ही गया। क्यो न बढता श्रीदाता के अपूर्व सत्सग का आनन्द जो उन्हें मिला। तुलसीदास जी ने कहा है –

तात स्वर्ग अपवर्ग मुख, धरिय तुला इक अग।

तुले न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्सग ।।

उनके आग्रह पर सन् १९७३ में फिर से श्रीदाता का अपने सेवको सहित जरगा जी पधारना हुआ। जरगा जी के पश्चिमी आँचल में भी एक पवित्र एव सुन्दर स्थान है जिसे 'दत्तात्रेय का आश्रम' कहते हैं। वह स्थान भी कम सुन्दर नही है। श्रीदाता के कुछ सेवक भी वहाँ गये।

सन् १९७७ में श्रीदाता को बुलाने का श्री गिरि जी ने बडा आग्रह किया। उन्होंने इस बार श्री नाथूलाल जी को भेजा किन्तु पधारना नही हुआ। सन् १९७८ के जून में श्री नाथूलाल जी पुन गये किन्तु श्रीदाता ने कोई उत्तर ही नही दिया। सितम्बर में अर्ज करायी, "आप पधार कर दर्शन दो, अन्यथा मैं वहाँ आकर सत्याग्रह करूँगा।" इसपर श्रीदाता ने आसोज सुदी त्रयोदशी और चतुर्दशी निश्चित की। कार्यक्रम की सूचना जयपुर, अजमेर, कोटा आदि सभी स्थानो पर पहुँची। इसी बीच सत्सग के अन्य अवसर भी मिले। ३० सितम्बर व अक्टूबर को क्रमश देलास व करेडा में सत्सग हुआ। जयपुर वालो के आग्रह पर दिनाक ८–१०–७८ से १०–१०–७८ तक जयपुर विराजना हुआ। वहाँ वैद्य श्री दुर्गाप्रसाद जी

का जन्मोत्सव और डाक्टर श्री वृजकिशोर जी के सगाई का दस्तूर था। जयपुर से लौटते वक्त श्रीदाता, श्री सीताराम जी, श्री श्रीराम जी, श्री हरलाल जी और श्री दिनेश जी को साथ में लेकर आये। श्री दिनेश जी कार चला रहे थे। वे भीम और देवगढ़ के बीच एक भैंस को कार की टक्कर दे बैठे। भैंस एक ओर जाकर गिर पड़ी जिससे दिनेश के हाथ पाँव फूल गये। पास ही कुछ लोग खड़े थे। वे भयभीत हो गये। श्रीदाता ने उन्हें संकेत से शान्त किया। एक हाथ का इशारा भैंस की तरफ किया। भैंस एकदम खड़ी हो गई। पास वाले लोग निकट आने लगे। श्रीदाता ने दिनेश को गाड़ी आगे बढ़ाने को कह दिया। श्री दिनेश जी श्रीदाता की कृपा से एक बड़ी परेशानी से बचे।

जरगा जी को जाने के लिये भीलवाड़ा से बस किराये से की गयी जो भीलवाड़ा, करेड़ा, नान्दशा, कोशीथल और रायपुर के भक्त-जनों को लेती हुई दाता-निवास पहुँची। जयपुर से भी लोग आ गये। दिनांक १४–१०–७८ को प्रातः ८ बजे बस दाता-निवास से रवाना हुई। भजन प्रारंभ हो गये। बात की बात में कुचोली पहुँच गये। कुचोली से सभी को पैदल चलना था। श्रीदाता आगे हो गये और अन्य लोग पीछे। श्री दुर्गाप्रसाद जी वैद्य हृदय रोग से पीड़ित थे तो श्री रामसिंह जी की जाँघ की हड्डी फाल्गुन माह में ही टूटी थी। दोनों के लिये चलने की समस्या थी किन्तु श्रीदाता की कृपा से धीरे धीरे वे पार हो गये।

वहाँ की सारी व्यवस्था उदयपुर वाले भक्त-जनों ने की थी। एक दिन पूर्व ही वे पहुँच चुके थे व प्रतीक्षा में थे। पहुँचने में देरी होने से वे चिन्तित भी थे। सोच रहे थे कि कहीं श्रीदाता ने कार्यक्रम स्थगित तो नहीं कर दिया। ठीक ऐसे समय जिस प्रकार सूर्य बादलों से अचानक प्रकट होता है उसी प्रकार आशा-निराशा के थपेड़ों में पड़े उन लोगों के समक्ष श्रीदाता जा पहुँचे। उपस्थित लोगों में प्रसन्नता की लहर आ गयी और सब लोग दौड़ पड़े। वे ज्यों त्यों कर आरती संजोने लगे। श्री कैलाशगिरि जी पुष्प हाथ में लेकर खड़े थे। आरती के पश्चात् प्रणाम् करने हेतु सभी

धरती पर लेट गये। श्री कैलाशगिरि जी ने श्रीदाता पर पुष्पों की वृष्टि करते हुए कहा, "आप ने पधार कर इस दास पर बडा अनुग्रह किया। बहुत दिनो से दर्शनो की इच्छा थी।" स्वामी जी के दोनो शिष्यो श्री प्रेम पुरी जी और मोहन पुरी जी ने भी श्रीदाता को प्रणाम किया।

वैष्णवो द्वारा निर्मित रामदेवजी के मन्दिर में श्रीदाता का विराजना हुआ। मन्दिर के बाहर लम्बा चौडा आँगन है जिसमें चौके जडे है। लोग वहाँ ठहर गये। वकील श्री माँगीलाल जी की पत्नी गर्भवती थी। एकाएक खून आने लगा और हालत खराब हो गयी। उन्हे अस्पताल ले जाया गया फिर भी हालत गिरती ही गई। डाक्टर निराश होने लगे। श्री माँगीलाल जी पर श्रीदाता की बडी महर है किन्तु उन्हे ऐसे दुख मे भी दाता की याद नही आयी। जब हालत बहुत बिगड गयी तब एकाएक श्रीदाता की याद हो आयी। वही से उन्होने दाता की पुकार की और देखते ही देखते उनकी पत्नी स्वस्थ होकर उठ बैठी। इसी बात की ओर सकेत कर श्रीदाता ने फरमाया, "लोग रुपयो के चक्कर में आकर दाता को ही भूल जाते हैं। जब ऊपर आकर पडती है और चारो ओर के मार्ग समाप्त हो जाते हैं व हाथ ऊपर हो जाते हैं तब कही जाकर मालिक याद आता है। लोग कहते हैं कि दाता सब कुछ जानता है। ठीक है वह तो सर्वज्ञ है और सर्वशक्तिमान भी, किन्तु बन्दे के भाव तो होना चाहिए। यह सही है कि दाता के भरोसे रहने वाला प्राणी कभी दुखी नही होता है।

श्री कैलाश गिरि जी अपनी धूनी पर चले गये। श्रीदाता मन्दिर के पास बैठ कर प्राकृतिक सौन्दर्य का निरीक्षण करने लगे। श्री सीताराम जी को सम्बोधित कर उन्होने कहा, "देखो सीताराम जी! दाता की कुदरत को तो देखो, इस नट नागर की रचना को देखो। कही कटहल है तो कही अमरफल। कही आम लग रहे हैं तो कही जामुन। अनेक प्रकार के पेड हैं जिनकी पहचान करना भी कठिन है। दाता की दया से यो ही लग रहे हैं। कौन यहाँ इन्हे लगाने आया था। कैसा सुन्दर वन है। तुलसीदास जी ने फरमाया है —

"तुलसी विरवा बाग का, सींचत ही कुम्हलाय।
हरा रहत है राम भरोसे, परवत पर वनराय।"

वहाँ के सौन्दर्य को देखकर सभी आनन्द से अविभूत हो गये। सभी मार्ग की थकावट दूर हो गई। ऊपर से दूध, चाय, नाश्ता मिल गया। स्वच्छ, निर्मल और शीतल जल के हौज भरे हुए थे। वातावरण शान्त था। चारों ओर आनन्द ही आनन्द था। ऐसे सुखद समय में श्री रामावतार जी के लड़के के शरीर में एक प्रेतात्मा का आविर्भाव हो गया। वह विहारी भाषा में बोलने लगा। कभी दाता की स्तुति बोलता तो कभी अपशब्द। लोगों के इकट्ठे होनेपर कृष्णगोपाल सिंह जी वहाँ आ गये। उन्होंने एक गोल रेखा खींच दी जिसमें वह बैठ गया और कुछ समय बाद स्वस्थ हो गया।

स्नानोपरान्त श्रीदाता अपने भक्तों के सम्मुख जा विराजे। श्री कैलाश गिरि जी ने उन्हें अमरफल भेंट किया जिसे उन्होंने सभी को वितरित कर दिया। श्री राधेश्याम जी विनोदी जीव ठहरे। उन्होंने कहा, "हम तो पहले ही अमर हैं अब इस फल को खा कर क्या करेंगे। जो अमर नहीं हैं उन्हें यह फल खिलाओ।" इस प्रकार की बातें होती रही। वास्तव में खाने की बात दूर रही, कई लोगों ने अमरफल देखा भी नहीं था। श्रीदाता की कृपा से उन्हें अमरफल देखने और खाने का अवसर मिला।

कुछ देर बाद ही भवानी सिंह जी राणावत की पत्नी आकर बैठी। उनका शरीर बड़ा भारी है और एक फर्लांग भी चलना उनके लिए भारी है। पहाड़ी मार्ग से पाँच मील चलना उनके लिए कठिन क्या असंभव बात ही है। श्रीदाता की कृपा से असंभव कार्य भी संभव हुआ। श्रीदाता ने केवल इतना ही कहा, "जै इच्छा होत मन माँहीं, राम कृपा दुर्लभ कछु नाहीं।" श्रीदाता के चरणों में राणावत जी की पत्नी की श्रद्धा अटूट है। आज भी प्रति सोमवार इनके बंगले पर सत्संग होता है जिनमें कई महिलाएँ भाग लेती है। सत्संग हेतु इन्होंने अपने प्रयास से एक सत्संग भवन का निर्माण भी कराया है।

श्रीदाता ने फरमाया, "माता जी जैसे भारी भरकम शरीर वाले और वृद्ध प्राणी तो दाता के दर्शन हेतु दौड़े चले आते हैं किन्तु स्वस्थ शरीर वाले भले चंगे लोग इधर उधर झाँकने लग जाते हैं। उनके दर्शनों की हर प्राणी को इच्छा होनी चाहिए। उनकी कृपा से "मूक होय वाचाल, पंगु चढ़हि गिरिवर गहन" अर्थात् असंभव बातें संभव होती देखी गई हैं।" बातों ही बातों में श्रीदाता ने आबू की एक घटना का वर्णन किया। एक बार श्री रघुराज नारायण जी माथुर, उपसचिव राजस्थान राज्यपाल एक संत के यहाँ गये। वे दर्शन कर बैठ गये। सन्त ने उन्हें धूनी से निकाल कर प्रसाद दिया जिसको उन्होंने खा लिया। खाते ही उन्हें दुर्गन्ध का भास हुआ। कुछ देर बाद में दुर्गन्ध इतनी बढ़ गई कि परेशान हो गये। भागे भागे वे श्रीदाता के पास आये और सारी घटना कह कर सुनाई। श्रीदाता ने मेहर कर उन्हें स्वस्थ किया। उन्होंने कहा, "जब एक को देख लिया तब बाकी क्या रह गया। एक स्थान पर स्थिर रहने पर काम चलता है।" लोगों ने एक भजन बोला, इसपर श्रीदाता ने फरमाया, "इन भक्तों ने तो मेरे दाता को बहुत ही नाच नचाया है। कोई कहता है कि शिवरूप बनो। कोई चतुर्भुज रूप के लिए कहता है तो कोई कृष्ण रूप के लिए। दाता को तो भक्त की इच्छानुसार ही रूप धारण करना पड़ता है। यह सब होता है किन्तु यदि भक्त थोड़ी सी भी अहं की भावना ले आता है तो फिर गिरने के सिवा कोई चारा नहीं।"

रात्रि को भजन बोले गये। पहले भीलवाड़ा वालों ने फिर जयपुर वालों ने भजन बोले। बड़ा ही आनन्द आया। प्रातः शौचादि से निवृत्त होकर 'उधर जिसको चलना हो चलो', यह कह कर श्रीदाता दत्तात्रेय के स्थान को देखने हेतु रवाना हो गये। दो रात्रि का जागरण व एक दिन पूर्व की थकावट तो थी ही किन्तु श्रीदाता चल दिये इसलिए अनेक लोग भी चल पड़े। श्री रामसिंह जी व वैद्यराज श्री दुर्गाप्रसाद जी से नहीं रहा गया। वे भी चल दिये। दोनों के लिए चढ़ाई चढ़ना, उतरना व पुनः लौटना बहुत ही कठिन था किन्तु श्रीदाता तो आगे पधार गये अतः उन्हें रोके

तो कौन रोके। वैद्यजी तो हृदय रोग से पीड़ित थे। उनके लिए मन्दिर की सीढ़ियाँ भी चढ़ना मना था। उनको पीछे रहने वालों ने मना भी किया किन्तु वे तो चल ही दिये। चढ़ाई एक मील के लगभग थी और वह भी सीधी। पूरे पहाड़ को लाँघ कर जाना था। उतराई भी इतनी ही थी। अनेकों के लिए चढ़ना और उतरना कठिन ही था, किन्तु श्रीदाता का नाम लेकर जा रहे थे। पौने सात बजे श्रीदाता रवाना हुए और आठ बज कर पचीस मिनिट पर उधर पहुँच गये। श्री रामसिंह जी और वैद्यराज जी जिनकी कतई आशा नहीं थी कछुए की चाल चलते हुए पहुँच ही गये।

उस स्थान की सुन्दरता का वर्णन नहीं। चारों ओर हरे-भरे और घने वृक्षों से आच्छादित वह स्थान शान्ति का घर ही था। पुष्कर में स्वामी नरसिंह मण्डलेश्वर जी का अखाड़ा है जो ब्रह्माजी के मन्दिर के पास ही है। वहाँ के मण्डलेश्वर जी के शिष्य मैनापुरी जी ने इस स्थान पर आकर तपस्या की थी। उन्हीं के शिष्य मोहिनीदास जी उस समय वहीं थे। लगभग बीस वर्ष से वे इसी स्थान पर हैं। पहले बारह वर्ष इन्होंने मौनवृत्ति रखी। दो माह पूर्व से ही इन्होंने पुनः मौनवृत्ति ली है। वे खड़े रहते हैं। जो कुछ पूछा जाता है तो उसका उत्तर स्लेट पर लिख देते हैं। उन्होंने श्रीदाता एवं सभी भक्त-जनों की चाय नाश्ते की मनुहार की किन्तु श्रीदाता ने मना कर दिया।

दत्तात्रेय आश्रम प्राचीन है। पास ही एक शिव मन्दिर है। रामदेव जी का मन्दिर भी बना है। किंवदन्ती है कि मारवाड़ का सेठ रामदेव जी के दर्शन करने जरगाजी गया, वृद्ध होने से चलना भारी हो गया। रामदेव जी ने कृपा कर उसे वहीं दर्शन दे दिया। उसी सेठ ने वहाँ यह रामदेव जी का मन्दिर बनवा दिया। वहीं पर पहाड़ी बाबा की धूनी भी है। पहाड़ी बाबा औघड़नाथ जी के शिष्यों में से थे। उनके शिष्य बाबा शंकरनाथ वहाँ छब्बीस वर्षों से रह रहे हैं। वे बावनिया हैं। सन् १९६७ में एक सेठ ने वहाँ पहाड़ी बाबा, हींगलाज माता और गंगाबाई का मन्दिर बनवाया है। यह आश्रम जरगा जी के आश्रम की तुलना में अधिक बड़ा और अधिक सुन्दर है।

लगभग एक घण्टा वहाँ ठहर कर सभी वापिस लौट पडे। पहाडी पर गणपति का मन्दिर है जहाँ सभी ने कुछ विश्राम किया। कुछ मनोविनोद की बाते हुई। फिर श्रीदाता चल पडे व ठीक साढे दस वजे जरगा जी पहुँच गये। अन्य लोग भी एक-एक कर आते गये। श्री रामसिंह जी, वैद्य जी एव डाक्टर बी के. शर्मा जी ने तो कमाल ही कर दिया। इस दुर्गम घाटी को दो वार पार कर लेना दाता की कृपा विना सभव नही। यह तो 'पगुम् लघयते गिरिम्' वाली बात ही हुई। वाह रे दाता! तुम्हारी भी अद्‌भुत लीला है। सभी के लिये तीनो का दत्तात्रेय आश्रम में जाकर आना कम आश्चर्य की बात नही। तीस-तीस वर्ष के नवयुवक तो जरगाजी आकर चित हो गये किन्तु वे तीनो ही व्यक्ति श्रीदाता के पास आकर बैठ गये। चेहरे पर तनिक भी थकान नही।

भोजनोपरान्त सत्सग होता रहा। बीच बीच में हास्यरस का पुट भी लग ही जाता था। श्रीदाता ने मजाक ही मजाक में जयपुर वालो के पैर दबवा दिये। इसी प्रकार मजाक ही मजाक में अनेकों के शारीरिक और मानसिक रोग दूर कर देते हैं। मजाक ही मजाक में कई नि सन्तान व्यक्तियो को सन्तानें दे दी है। वे हँसी हँसी में बहुत कुछ देते हैं।

तीन वजे वहाँ से श्रीदाता रवाना हो गये। श्री कैलाशगिरि जी ने हाथ जोड कर वापिस जल्दी ही सम्भालने की अर्ज कर उन्हे विदा किया। सभी लोग अपना अपना सामान लेकर विदा हो गये। उदयपुर वाले वही ठहर गये। सडक पर आकर बस में बैठे। बस में भजन बोलना शुरू किया। प्रह्लाद ने गाया —

> रास रचै वृन्दावन में, नाचे सखियाँ सारी,
> राधेजी के सग नाचें बाँके विहारी,
> ब्रह्मा जी ब्रह्म लोक में नाचे, शिवजी कैलाश में,
> बाँसा में दाता नाचें, समदर जी के साथ में
> तारे और चन्द्रमा नाचें नीले आकाश में।

श्रीदाता ने बीच ही में टोक दिया। लोग हँस पडे। कुछ तो हँसते हँसते लोटपोट हो गये। कुछ देर बाद भजन बन्द हो गया और हँसी की

बातें ही होती रही। वहीं उदयपुर वालों ने बताया कि दत्तात्रेय आश्रम वाले मोहिनी गिरि जी ने अपने गुरु मंशागिरि जी को पीट-पाट कर निकाल दिया और स्वयं ने आश्रम पर अधिकार कर लिया। मंशागिरि जी अभी 'बेरा के मठ' में रह रहे हैं। यह जान कर सभी को दुःख हुआ। बातों ही बातों में दाता-निवास आ गया।

अगला दिन शरद्-पूर्णिमा का दिन था। श्रीदाता बाहर ओटे पर विराज रहे थे। लोग बैठे थे। श्रीदाता ने एक किस्सा कहा। उन्होंने फरमाया, "एक बार एक साधु आये। उनके हाथ में ग्यारह रुपये और नारियल था। आते ही उन्होंने बताया कि उन्हें एक ब्रह्मवेत्ता साधु मिले जिन्होंने बताया कि वे दाता-निवास चले जायें। वहाँ उन्हें दाता मिलेंगे। उन्हें गुरु रूप में मान लेना। इसीलिये वे यहाँ आये हैं और दाता को गुरु बनाना चाहते हैं। उनको शिष्यत्व दिया जाय, यही उनकी प्रार्थना थी। माका राम ने उन्हें ठहरने को कहा किन्तु उन्हें चैन कहाँ। वे बार बार उठने लगे और अपनी प्रार्थना को दुहराने लगे। अन्त में उन्हें पूछा गया कि यह भेष उनको कब और किसने दिया? पहले तो गोलमाल करने की चेष्टा की किन्तु अन्त में बताना ही पड़ा। उन्होंने बताया कि यह भेष तो पुराना है। उन्हें पूछा गया कि इस वेष का गुरु कौन है? उन्होंने बताया कि गुरु के उनके आपस में न बनने से उन्होंने गुरु को त्याग दिया है। इसपर उन्हें कहा गया कि यहाँ तो गृहस्थी हैं। यहाँ तो मन के साथ चलने वालों से कोई सम्बन्ध नहीं है। गुरु के चरणों में आपे (अहं) को समाप्त करना पड़ता है। मन को मारना पड़ता है। जो मनुष्य मन के अनुसार चलता है उसके लिए कोई स्थान नहीं है। उन्होंने बड़ी अनुनय विनय की किन्तु उन्हें सीधा ही मार्ग बता दिया।" हमें दत्तात्रेय जी के आश्रम के महन्त जी मोहिनीगिरि जी का स्मरण हो आया। जो अपने गुरु का द्रोही है उन्हें कहीं चैन नहीं मिल सकता। उसका तो पतन ही निश्चित है। रात्रि को खूब भजन चले। वहाँ के आनन्द का कोई पारावार नहीं।

जरगा जी की यात्रा अविस्मरणीय घटना है। श्री कैलाशगिरि जी का विश्वास दाता के प्रति इतना बढ़ा कि वे यह चाहने लगे

कि श्रीदाता प्रति वर्ष कम से कम एक बार अवश्य आश्रम पर पधारें किन्तु यह सभव नही है। श्रीदाता के अनेक भक्त हैं और सभी चाहते हैं कि उनके घर श्रीदाता के पावन चरण पडें। दाता एक है और भक्त अनेक हैं किन्तु दाता तो दयालु है अत सदैव ही अपने भक्तो की बात रखते आये हैं। दिसम्बर सन् १९८२ में अपने अनेक भक्तो के साथ कैलाशगिरि जी के आश्रम पर पधार कर उन्हें कृतार्थ किया। दो दिन और एक रात्रि वही विश्राम हुआ। सारी व्यवस्था उदयपुर वाले भक्तजनो ने की थी। एक बस तो केवल जयपुर वालो की ही थी। कारें अलग। दूर दूर के व्यक्ति सम्मिलित हुए। लोग वहाँ की शान्ति एव प्राकृतिक सौन्दर्य से इतने लट्टू हुए कि जिसका वर्णन करना असम्भव है। श्रीदाता का सान्निध्य एव सत्सग मिला वह अलग से। उन्हे ऐसे आनन्द की अनुभूति हुई जैसे मूल्यवान खजाना ही मिल गया हो। अत्यधिक स्वादिष्ट प्रसाद तो मिला ही साथ ही साथ भजन-कीर्तन एव श्रीदाता के प्रवचन ने उनमें एक ऐसी प्रकाश की किरण सचारित की जिससे उनका जीवन ही सफल हो गया। लोग हजार प्रयास करे व लाखो रुपये पानी की तरह बहा दें तो भी ऐसा आनन्द नही मिल सकता जैसा जरगा जी में उन्हें मिला। ऐसे है श्रीदाता जो अपने प्रेमीजनो को पकड पकड कर अमृत रस का पान कराते रहते हैं। ऐसे दीनदयाल, आनन्ददायी श्रीदाता की जय हो।

○ ○ ○

कतिपय निजजनों का संकट मोचन

श्रीदाता निरन्तर निजजनों की आत्मोन्नति में किस तरह अपने जीवन को अर्पित कर रहे हैं यह हमने पूर्व के प्रकरणों में देखा है। सत्संग-कीर्तन और भजन तो उनकी मुख्य देन ही है। जहाँ भी पधारते हैं वहाँ भजन, कीर्तन और प्रवचन तो मुख्य ही है। साथ ही सामाजिक और पारिवारिक विकास हेतु भी कम प्रयास नहीं किया जाता। गरीबों की तो श्रीदाता पूरी तरह सेवा करते हैं। कोई भी गरीब वहाँ पहुँचने के बाद निराश नहीं होता। आर्त लोगों की पुकारें भी निरन्तर सुनते ही हैं। ऐसे लोगों की भी भीड़ लगी रहती है। कोई दिन ऐसा नहीं जाता जब ५–१० दुःखी लोग प्रार्थना लेकर न आते हों। कभी कभी तो दूसरों की बीमारियों को स्वयं पर ले लेते हैं और फिर इधर उधर इलाज के लिए पधारते हैं। यह पधारना भी अकारण नहीं होता है। कोई न कोई रहस्य अवश्य होता है। कहाँ व कब किस पर कृपा कर रहे हैं, यह कोई जान नहीं सकता। अद्‌भुत लीला है श्रीदाता की।

दिनांक ३०–६–७८ की जयपुर की एक घटना है। स्टेशन मास्टर श्री राधाकृष्ण जी के दूसरे नम्बर के लड़के श्री महेशचन्द्र जी अपने पूरे परिवार के साथ अपनी ससुराल से भोजन कर टैम्पू में अपने घर लौट रहे थे। वे माधोसिंह रोड पर पहुँचे ही थे कि सामने से एक ट्रक बड़ी तेजी से आता दिखायी दिया। उसने टेम्पू को टक्कर लगा दी। फिर क्या था? टेम्पू उलट कर दूर जा गिरा। टेम्पू का ड्राईवर बेहोश होकर एक ओर पड़ गया। महेश जी और उनके परिवार के लोग उछल कर अलग अलग गिर पड़े। महेश जी के जबड़े की हड्डी टूट गई और कान की पपड़ी फट गई। महेश जी की पत्नी के घुटने का टखना टूट गया। उनके बड़े लड़के के गाल की हड्डी टूट कर नीचे बैठ गई। छोटे बच्चे के सिर में भारी चोट लगी। कुछ लोगों ने सहायता कर उन्हें अस्पताल पहुँचाया। घर

वालो को मालूम होने पर सभी दुखी हुए और चिन्तित हुए। दुख के समय दाता याद आते है। तत्काल श्रीदाता के पास पुकार करायी गई। दिनेश जी कार लेकर दाता-निवास पहुँच और श्रीदाता को अर्ज किया। प्रभु कृपा से स्थिति सामान्य हुई।

दिनेश जी ने श्रीदाता को जयपुर पधारने की अर्ज की। वे दयालु जो ठहरे। तत्काल तैयार हो गये। दिनाक २-७-७८ को जयपुर पधारना हुआ। वहाँ माजी साहब के मन्दिर में विराजना हुआ। वहाँ चारो ओर उल्लास का वातावरण छा गया। सत्सग का लाभ मिला और सत्संग में लोग इतने तन्मय हो गये कि कब दिन बीता और कब रात्रि हुई, कुछ पता ही नही लगा।

दिनाक ३-७-७८ को हरिश्चन्द्र जी और उनकी पत्नी मनमोहिनी देवी अपने स्कूटर पर सत्सग से घर लौट रहे थे। रात्रि के ग्यारह बजे का समय था। दीनानाथ की गली के पास उनका स्कूटर पहुँचा ही होगा कि सामने से तेज आती हुई बस से टकरा गया। हरिश्चन्द्र जी ने स्कूटर को बचाने की खूब कोशिश की किन्तु बसवाले की असावधानी से टक्कर लग ही गई। वे उछल कर स्कूटर से गिर पडे। मनमोहिनी देवी भी गिर गई किन्तु प्रभु कृपा से उनके शरीर पर कही चोट नही आयी। हरिश्चन्द्र जी की जाँघ में चोट लगी। उनके जाँघ की चमडी फट गई और खून बहने लगा। वे अर्ध चेतन अवस्था में हो गये। मनमोहिनी देवी घबरा गई। उसने उन्हें बैठा करने की चेष्टा की किन्तु उनके कमर और जँघा में इतना भयकर दर्द था कि पैर हिलाना भी भारी था। असहाय होकर वह रो पडी। उसका घबराना था कि सौभाग्य से एव दाता की महर से विधायक महोदय श्री गिरधारीलाल जी भार्गव उधर से आकर निकले। उन्होने उन्हें अस्पताल पहुँचा दिया। सूचना मिलते ही डाक्टर गर्ग एव डाक्टर योगेश जी पहुँच गये। हरिश्चन्द्र जी दर्द से जोर जोर से चिल्ला रहे थे। दिनेश जी से देखा नही गया। उन्होने कार उठायी और मन्दिर में पहुँच कर श्रीदाता से पुकार की। वे बुरी तरह घबराये हुये थे। श्रीदाता ने हँसकर कहा, "घबराते क्यो हो, दाता की कृपा से सब ठीक हो

जायेगा।" उधर पुकार हुई और इधर दर्द गायव। रात्रिभर आराम से लेटे रहे। डाक्टरों का अनुमान था कि जँघा की हड्डी टूट गई है किन्तु प्रातः ही एक्स रे की रिपोर्ट आयी उसमें सव कुछ ठीक था। यह श्रीदाता की दया ही थी कि दो दिन में उन्हें अस्पताल से छुट्टी मिल गई। अस्पताल से तो छुट्टी मिली लेकिन पैर पर जोर देकर खड़ा होना और चलना नहीं हो पा रहा था। पुनः श्रीदाता को अर्ज किया गया। श्रीदाता स्वयं हरिश्चन्द्र जी के वंगले पर पधारे। दोनों पति-पत्नी ने मिल कर पुकार की व उनकी कृपा से वे चलने फिरने लगे।

मन्दिर में आठों मास भजन, कीर्तन, प्रवचन आदि चलते ही रहते थे। डाक्टर साहव मधोक जी के भाई श्री मंगल सेन जी पुलिस विभाग में डी. आई. जी. के पद पर कार्य कर रहे थे, वे दाता के दर्शन हेतु आये। उनकी रीढ़ की हड्डी में कुछ दिनों से दर्द रहने लगा था। डाक्टरों ने वताया कि हड्डी की टी. वी. के साथ ही साथ यह वीमारी केन्सर के रूप में परिवर्तित हो रही है, ऐसा लगता है। डाक्टरों की इस वात से वे चिन्तातुर हो गये। उनको वैठने में भी कठिनाई होने लगी थी। फोन के उठाने में भी कष्ट होता था। उनकी पदोन्नति का अवसर भी निकट था। चिन्ताओं पर चिन्ता। वे दर्शनार्थ मन्दिर में जव आये उस समय अनेक लोग सत्संग में वैठे थे। वे एक ओर खड़े हो गये। उन्हें खड़े देखकर श्रीदाता ने संकेत से अपने पास वुलाया और वैठने के लिये कहा। उन्होंने अपनी वात वतायी तथा वीमारी को दूर कर देने की प्रार्थना की। दाता ने उनकी सव कुछ सुन ली। उन्हें वैठने को कहा गया। वे वैठ गये। उनके वैठने में तनिक भी दर्द नहीं हुआ। वे पुनः खड़े हुए, फिर वैठे। उठने वैठने में तनिक भी दर्द नही हुआ। वे प्रसन्न हो गये। उनकी चिन्ता दूर हुई और वे श्रीदाता के चरणों में लोट गये। वलिहारी है दाता की कि उन्होंने उनके सारे कष्ट का वात की वात में निवारण कर दिया।

उसी दिन रीढ़ की हड्डी की टी. वी. की एक पुकार और हुई। हरिश्चन्द्र जी की दुकान पर श्री सोहनलाल नाम के व्यक्ति काम करते हैं। उनकी पत्नी इसी वीमारी से पीड़ित थी। छः माह

से प्लास्टर बंधा था। सारा कार्य बिस्तर पर पडे पडे ही होता था। जब श्रीदाता का पधारना हरिश्चन्द्र जी के बगले पर हुआ, उस समय उसकी भी पुकार हो गई। श्रीदाता ने फरमाया, "मिट्टी लेकर सात बार रीढ की हड्डी पर से फेर दो। यदि इससे फर्क मालूम हुआ तो गुरु पूर्णिमा पर पुकार का नारियल भिजवा देना" प्रभु कृपा से वह ठीक हो गई। गुरु पूर्णिमा पर उसकी पुकार हो गई और वह बिल्कुल ठीक हो गई।

इस प्रकार श्रीदाता ने कृपा कर हरिश्चन्द्र जी के यहा के कई लोगो को रोगमुक्त किया। इस परिवार में तो छोटी से छोटी बात के लिए भी दाता को पुकार की जाती है। सन् १९७० की एक अनोखी घटना है। हरिश्चन्द्र जी की लडकी राजकुमारी का विवाह लेफ्टीनेन्ट श्री मिठ्ठूलाल जी के साथ हुआ है। घटना के वर्ष वे ताम्बब्रह्म (मद्रास) में थे। राजकुमारी के पेट में दर्द शुरू हो गया। उपचार कराया गया किन्तु व्यर्थ। छोटासा आपरेशन भी किया गया। दर्द बढता ही गया। वह गर्भवती भी थी। इससे सभी चिन्तातुर हो गये। जाँच कराने पर डाक्टरो ने गाँठ का होना बताया। दिल्ली और मद्रास के डाक्टरो को बताने पर भी यही राय रही। ऑपरेशन मात्र इसका उपचार था। मद्रास की एक लेडी डाक्टर से ऑपरेशन कराना निश्चित किया गया। लेडी डाक्टर ने विधिवत जाँच की और अगला दिन ऑपरेशन के लिये निश्चित किया।

उधर श्रीदाता का जयपुर पधारना हुआ तब मनमोहिनी देवी ने श्रीदाता को राजकुमारी की बीमारी को ठीक करने की प्रार्थना कर दी। ऑपरेशन के एक दिन पूर्व राजकुमारी अपनी कुर्सी पर बैठी थी कि उसे तन्द्रा हो आयी। उसी तन्द्रा में उसने देखा कि दाता आये है। उसने उन्हें प्रणाम किया और कहा, "भगवान! आप यहाँ कैसे पधारे।" श्रीदाता ने उत्तर दिया, "रामेश्वर जाना हो रहा है। तुम्हारी जीजी के तार और पत्र आये थे अत सोचा, राजू से मिलता चलूं।" राजकुमारी ने भोजन के लिए अर्ज किया तो वे बोले, "तुम लोग सेवा में रहते हो,

इसलिए अण्डा व मांस चलता होगा।" राजकुमारी ने मना करते हुए कहा कि वे लोग इन चीजों का प्रयोग नहीं करते हैं। उसने दाता को अपने ही पलंग पर आराम करने को कह दिया व स्वयं रसोईघर में गई। वहाँ जाकर देखा तो खाना नहीं था। वह दौड़ी दौड़ी अपने पड़ोसी के यहाँ से आटा ले आयी। उसने रोटी वनाकर दाता को खिलायी। रोटी खाने के बाद वे वहाँ से अन्तर्धान हो गये। वह हड़वड़ा कर उठ खड़ी हुई। उसने आश्चर्य से देखा कि उसके पेट का दर्द मिट गया है।

अगले दिन योजनानुसार उसे अस्पताल में ले जाया गया। डाक्टर ने ऑपरेशन की सारी तैयारी कर रखी थी। राजकुमारी ने वताया कि उसके पेट में दर्द नहीं है। डाक्टर ने पेट को देखा। गांठ-वांठ कुछ दिखायी नहीं दी। उसे परम आश्चर्य हुआ। उसने वारवार देखा। उसके सहयोगियों ने देखा। पेट से गाँठ ही गायव थी। कैसी अद्भुत वात थी। कुछ ही दिनों वाद उसने एक पुत्र-रत्न को जन्म दिया। अद्भुत है प्रभु लीला। जो दाता के चरणों में दृढ़ विश्वास और पूरी निष्ठा रखते हैं उनका संकट अवश्य दूर होता है। आज भी श्री मिठ्ठूलाल जी और राजकुमारी श्रीदाता के चरणों सें अनन्य प्रेम रखते है।

दिनांक २५-११-७८ को श्रीदाता दाता-निवास के वाहर विराजे हुए थे। डाक्टर शर्मा और दिनेश जी वैठे थे। उस समय एक गैस से भरा ट्रक वहाँ आकर रुका। ट्रक से एक पंजावी ड्राइवर जिसका नाम उत्तमसिंह वताया गया, वह उतरा। वह 'सेठी गुड्स ट्रान्सपोर्ट कम्पनी' के अन्तर्गत सेवाएँ देता हुआ वड़ोदा से गैस भर कर आगरा ले जा रहा था। उसके लड़के के विवाह में उसके भानजे पर हवा का प्रकोप हुआ जिससे उसका मुँह टेढ़ा हो गया। मुँह का हिलना भी वन्द हो गया। कई उपचार कराये गये किन्तु सव व्यर्थ गये। इस वात को लगभग छः माह हो गये। आज उसकी ट्रक में आसपास के कुछ लोग आ वैठे। उन्होंने दाता का परिचय देते हुए अपनी करुण कथा दाता को निवेदन करने को कहा अतः वह सीधा ही यहाँ चला आया। श्रीदाता ने उसे पुचकार कर पास

बैठाया, चाय मगवा कर पिलायी और फिर उसकी प्रार्थना सुनी । पुकार के बाद वह ट्रक लेकर चला गया । कुछ ही दिनो बाद वह वापिस लौटा और दाता के चरणो में लोटते हुए बोला कि जिस दिन पुकार हुई थी उसी दिन मे उसका भानजा ठीक हो गया है ।

श्रीदाता ने डाक्टर साहब और दिनेश जी को बताया कि यहाँ लोग बडी आशा लेकर आते है । यदि वे यहाँ नही होते हैं तो उन्हें निराश होकर लौटना पडता है । श्रीदाता के इन भावो से ही जाना जा सकता है कि श्रीदाता का हृदय कितना कोमल है । वे किसी के दु ख को तनिक भी सहन नही कर सकते है । अपना सब कुछ देकर भी वे दु खी प्राणी को सुखी करना चाहते हैं, कितनी महानता है उनकी !

इस प्रकार की बाते हो ही रही थी कि गाँव का नाई कराहता हुआ आया । उसके पेट में बडा दर्द था । वह बुरी तरह तडप रहा था । उसने आते ही पुकार की । श्रीदाता चिढ गये । उन्होंने एक डाट पिलायी । श्रीदाता का डाट पिलाना ही था कि उसके पेट का दर्द मिट गया । वह प्रसन्न होकर हँसता हुआ अपने घर चला गया । डाक्टर साहब और दिनेश जी देखते ही रह गये । उन्हें भी यह अच्छी तरह अनुभव हो गया कि जब दाता यहाँ नही विराजते हैं तब कितने दु खी प्राणियों को निराश होकर जाना पडता है । वे श्रीदाता की दयालुता पर गद्गद् हो गये । ऐसे है श्रीदाता दयालु जो स्वय की परवाह न कर दु खी प्राणियो की निरन्तर सेवा करते हैं ।

सन् १९७७ की कार्तिक पूर्णिमा की एक घटना है । श्री गिरधर सिह जी पुष्कर सत्सग व्यवस्था में प्रमुख हाथ बँटाते रहे हैं । व्यवस्था हेतु वे साइकिल पर अजमेर में कुछ सामान लेने गये । अचानक पीछे से आती हुई मोटर साइकिल ने उनकी साइकिल से टक्कर लगा दी । वे उछल कर दूर जा गिरे । साइकिल एक ओर को उछल गयी । गिरते वक्त उनको ऐसा लगा जैसे किसी ने उन्हें हाथो पर उठाकर धरती पर लिटा दिया हो । उन्होंने सावधान होकर देखा तो उठाने वाले स्वय श्रीदाता ही हैं । वे इतने आनन्दमय हो गये कि तन-मन की सुधबुध ही बिसार दी । उधर मोटर साइकिल

वाला घबरा गया। उसने उन्हें उठाने की कोशिश की। उन्होंने हाथ के संकेत से उसे मना कर दिया। उसने समझा कि वे बेहोश हो गये हैं अतः अस्पताल ले जाने को ओटो रिक्शा किराये पर किया। इस बीच वे उठकर बैठ गए और उसे बताया कि वे भले चंगे हैं। वह आश्चर्यचकित था किन्तु उन्हें स्वस्थ देखकर प्रसन्न होकर अपने रास्ते चला गया।

इस प्रकार श्रीदाता ने गिरधरसिंह जी की जान बचायी। गिरधरसिंह जी की यह पहली दुर्घटना न होकर तीसरी दुर्घटना थी। दो बार पहले भी उनके जीवन की श्रीदाता ने रक्षा की है। गिरधरसिंह जी श्रीदाता के अनन्य सेवकों में से एक हैं। जब भी मौका मिलता है वे निरन्तर श्रीदाता की सेवा में रहते आये हैं। वे साधारण घर के राठोड़ परिवार में से हैं। अजमेर जिले में बावड़ी नामक ग्राम में श्री सांवतसिंह जी के यहाँ वे पैदा हुए हैं। युवा होने पर उन्होंने वन-विभाग में नौकरी कर ली। अजमेर रहते हुए श्री चाँदमल जी जोशी के सम्पर्क में आये, जहाँ उन्होंने श्रीदाता के प्रथम दर्शन किये। प्रथम दर्शन से ही वे इतने प्रभावित हुए कि उनके चरणों में सब कुछ निछावर कर देने का संकल्प कर बैठे · वे अधिक से अधिक श्रीदाता के सम्पर्क में आने लगे। श्रीदाता का उपदेश ही उनके जीवन का सम्बल बना और वे उन्हीं के सहारे निश्चिन्त रहने लगे। श्रीदाता और मातेश्वरी जी भी इनके निष्कपट व्यवहार और सच्चे प्रेम से प्रभावित होकर पुत्रवत स्नेह रखने लगे। इनकी सेवाएँ अनुकरणीय हैं।

सन् १९५७ में इनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया। साधारण व्यक्ति तो पत्नी की मृत्यु पर दुःखी होता है किन्तु ये तो प्रसन्न हुए। वे सोचने लगे :—

"भला भया मिटी जंजाल, सुख सूँ भजस्या श्रीगोपाल"

(श्री नरसी मेहता)

जिसकी वस्तु थी उसने ले ली, छुट्टी हुई और चिन्ता मिट गयी। इनकी पत्नी की मृत्यु के कुछ ही दिनों बाद इनको क्षय रोग ने

आ घेरा । अजमेर अस्पताल में इलाज कराया गया । फिर ये मदार अस्पताल में भरती हुए । लोगो ने श्रीदाता से पुकार हेतु कहा किन्तु यह कहकर मना कर दिया, "पुकार की आवश्यकता नही है जैसी प्रभु की मरजी है वैसा ही होगा । उसकी इच्छा के विपरीत करने वाले हम कौन होते हैं ।" फिर भी श्री जोशी जी से नही रहा गया । उन्होंने श्रीदाता से उनके लिए प्रार्थना की । श्रीदाता ने फरमाया, "मदार अस्पताल में तुम लोगो की इच्छा है तो भरती करा दो । कुछ दिनो के लिए वहाँ की हवा भी खा लेने दो । दाता की दया हुई तो थोडे ही दिनो में ठीक हो जावेगे ।" मदार अस्पताल में एक माह रहे होगे कि वे घबरा गये और पुन. अजमेर आ गये । दोनो फेफडे बुरी तरह सड गये थे और सभी उनके जीवन से निराश हो गये । श्रीदाता की महर पर ही अब सब कुछ निर्भर था । कुछ दिन यो ही निकल गये ।

सन् १९५९ की गुरु पूर्णिमा का सत्सग भीलवाडा मुरली विलास में हुआ । श्री चादमल जी ने रुदन करते हुए इनकी पुकार की, "भगवन्! आपके सिवा इन्हें बचाने वाला कोई नही है । डाक्टरो ने उत्तर दे दिया । आप ही रक्षक हैं । त्राहिमाम्! त्राहिमाम् ।" यह कहते हुए और आँखो से आँसू बहाते हुए वे श्रीचरणो में गिर पडे । श्रीदाता ने मुस्कराते हुए कहा, करने धरने वाला तो दाता है । कल तुम उन्हें गो-मूत्र पिला देना और फिर एक्स-रे पर फोटू ले लेना ।" श्री चाँदमल जी तत्काल अजमेर पहुँचे । उन्होंने दूसरे ही दिन उन्हें गो-मूत्र पिला दिया । एक्स-रे कराया गया । सभी ने आश्चर्य से देखा कि दोनो फेफडे ठीक हैं और क्षय का कोई चिह्न तक नही है । ऐसी है श्रीदाता की लीला । जिसको वह बचाना चाहते है उसे कौन मार सकता है? "जाको राखे साँइयाँ, मार सके नहीं कोय ।" उनके जीवन रक्षा की यह पहली घटना है ।

दूसरी घटना सन् १९६४ की है । ६ मार्च को गिरधर सिंह जी काला बाग में श्री जोशी जी के घर कमरे के बाहर बरामदे में खडे थे । आँगन पत्थरो का था । पास ही जोशी जी की पत्नी व उनके बच्चे खडे थे । अचानक उन्हें चक्कर आया और वे सिर के

बल सीधे गिर पड़े। गिरते ही बेहोश हो गये। उनको उठाकर होश में लाने का प्रयास किया किन्तु सब व्यर्थ। शीघ्र ही श्री जोशी जी आ गये और उन्हें अस्पताल में पहुँचाया गया। डाक्टरों ने बहुत प्रयास किया किन्तु वे उन्हें होश में नहीं ला सके। तीसरे दिन कुछ समय के लिए होश आया किन्तु वे किसी को पहचान नहीं सके। वे बेहोशी के अवस्था में ही कभी कभी चिल्लाते और तड़पते थे जिससे पता चलता था कि इनके सिर में भारी पीड़ा है। श्री जोशी जी घबरा गये। डाक्टरों ने भी निराशा व्यक्त कर दी। अब दाता के सिवा कोई चारा नहीं था। पुकार करने का निश्चय किया। श्रीदाता उस समय रामनवमी का सत्संग होने से मांडल में थे। वे नारियल लेकर मांडल गये और जाते ही आर्त स्वर में बोले, "नाथ! गिरधर बना के सिर में चोट लगी है, अस्पताल में हैं, हेमरेज हो गया है, पाँच दिन हो गये हैं। उनके सिर में भारी पीड़ा है। डाक्टर लोगों ने तो हाथ ऊँचे कर दिये हैं। हम उनके प्राणों की भीख माँगते हैं। प्रभु! उनके प्राणों की रक्षा कीजिये।" श्रीदाता ने उन्हें आश्वासन देकर पास में बिठा लिया। कुछ देर बाद बोले, "दाता पर भरोसा रक्खो। वह सब कुछ करने वाला है। वह अच्छा ही करेगा। चिन्ता से क्या होता है। वही बचाने वाला है।"

पुकार कर श्री जोशी जी उसी वक्त अजमेर लौट गये। वहाँ जाकर गिरधरसिंह जी को देखा तब सन्तोष हुआ। उन्हें होश आ गया था और सिर में दर्द नहीं था और वे बातें कर रहे थे। वे गद्गद् हो गये। नेत्रों में पानी आ गया। वहीं से उन्होंने श्रीदाता को साष्टांग प्रणाम किया। डाक्टरों को भी आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता हुई। २५ दिन बाद डाक्टरों का बोर्ड बैठा जिसका मुखिया डाक्टर सरीन था। उन्होंने ब्रेन ट्यूमर निश्चय किया जिसका इलाज भारत में दिल्ली या वैलूर में ही होता है। जोशी जी पुनः श्रीदाता के पास पहुँचे। श्रीदाता ने कहा, "तुम लोग मेरे दाता को सताते हो। वह तो ठीक ही लगता है। तुम एक बार और जाँच करा लो।" पुनः जाँच के लिये डाक्टर लोग बड़ी कठिनता से तैयार हुए। जांच

पर उन डाक्टरो को विश्वास नही हुआ। उन्होने बार बार देखा। कही कुछ नही था। वे एक साथ ही बोल उठे, "ऐसा केस हमने हमारे जीवन में नही देखा। ऐसा तो कभी हुआ ही नही। यहाँ हमारा ज्ञान और अनुभव दोनो उत्तर देने में असफल हो गये। मानना पडता है कि परमात्मा नाम की कोई शक्ति है। ये अब बिलकुल ठीक हैं। इन्हें ले जा सकते हो।"

इस प्रकार श्रीदाता ने दूसरी बार उन्हे मृत्युमुख से बचाया। कितनी महर है श्रीदाता की निज-जनो पर। ये तो छोटे से ही उदाहरण हे। श्रीदाता के यहा तो ऐसे कई मामले प्रति दिन आते हें जिनका विवरण लिया जाय तो अनन्त पृष्ठों की पुस्तक हो जाय।

जगपुरा का एक गूजर अत्यधिक बीमार हो गया। मरने में कोई कसर नही रही। उसका भाई भागा हुआ श्रीदाता के पास पुकार लेकर आया। श्रीदाता ने उसे वही रोक लिया। उसका मन बडा दु खी हुआ किन्तु श्रीदाता की आज्ञा बिना वह जा भी नही सकता था। उधर उसकी हालत बिगडती गयी। रात्रि को उसकी बहन उसके पास सोयी हुई थी। उसको अचेत देख आवाज लगाई किन्तु वह नही बोला। बहन ने देखा कि कही भाई मर तो नही गया है अत उसे हिलाकर पूछा, "भाई कैसे हो?" उसने अँगुली से चुप रहने को कहा। जब वह ज्यादा पूछने लगी, तो वह बोला, चुप रहो इस वक्त मेरा इलाज चल रहा है। प्रात बताऊँगा।

प्रात उसने बताया कि एक बाबा रात्रि को आया। उसके हाथ में चाकू था। उसने ऑपरेशन कर उसकी सब बीमारी को दूर कर दिया। उसने अपने पेट में लगे हुए चीरे को बताया। यह इसी वर्ष की घटना है। इसी तरह सागर बाबू की पत्नी ने बताया कि बम्बई में जब उनका ऑपरेशन हो रहा था तब श्रीदाता सशरीर वहाँ विद्यमान थे। दिनांक १७-७-८६ की घटना है। श्रीदाता दाता-निवास में बैठे हुए थे उस वक्त नान्दशा से दो युवक मोटर साइकिल पर आये। एक के भाई की पत्नी मृत्युशैय्या पर थी। परेशान से आये। श्रीदाता ने उनकी पुकार सुनी। उन्हे

सांत्वना देकर भोजन करा कर विदा किया। वे वापिस गये तब तक उनका मरीज स्वस्थ हो गया था। यह हैं वास्तविकताएँ जो देखने सुनने को मिलती हैं। धन्य है श्रीदाता की संकट हरण, मंगल करण, करुणा करण दिव्य विभूति।

○○○

दक्षिण-भारत की यात्रा

यात्रा का महत्व

भारत देश ऋषियो, योगियो, महापुरुषो, भगवदवतारो तथा देवताओ से सेवित देश है। इस देश में लोकोत्तर महापुरुषो द्वारा स्थापित आराधित सहस्रश देव विग्रह है जिनके दर्शनो की इच्छा प्रत्येक भक्त-हृदय एव सत्सग प्रेमी को होती है। महात्माओ की चरण-धूलि से पुनीत हुए ये स्थान ही तीर्थ है जहा जाने पर मानव मन शुद्ध होता है एव उनमें सात्विक गुणो का प्रवेश होता है।

प्रीतम के पग परसिये मुझ देखन का चाव।
तहँ ले सीस नवाइये, जहाँ धरे थे पाँव ॥

'तीर्थ' का शाब्दिक अर्थ ही—पवित्र करने वाला—है। जो तन, मन, चिन्तन को पवित्र कर भगवद् चरणो में प्रेम उत्पन्न करे, वही तीर्थ है। महापुरुष अपने आप में महान् तीर्थ है, कारण वहा निरन्तर भगवद्-कथा, भजन, कीर्तन, प्रवचन, सत्सग आदि प्रभुप्राप्ति के कार्य होते ही रहते है। कहा है –

तत्रैव गङ्गा यमुना च वेणी गोदावरी सिन्धु सरस्वती च।
सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र यत्राच्युतोदारकथाप्रसङ्ग ॥

वैसे तो साधुओ का दर्शन ही पवित्र होता है।

साधूना दर्शन पुण्य तीर्थभूता हि साधवः।
तीर्थ फलति कालेन सद्य. साधुसमागम ॥

श्रीदाता स्वय में तीर्थ

श्रीदाता गृहस्थी अवश्य है किन्तु हमने देखा है कि वीतरागी महापुरुषो से कम नही है। वे अपने आप में महान् तीर्थ है। नान्दशा एव दाता-निवास एक वडे तीर्थ से कम नही है। वहाँ पहुँच कर और श्रीदाता के दर्शन कर अनेक लोगो ने अपने कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है। ऐसी अवस्था में श्रीदाता तीर्थयात्रा करे,

हँसी ही नहीं आश्चर्य की बात ही है । फिर भी श्रीदाता ने यात्रा की हैं । यह सब उन्होंने अपने बन्दों के हित के लिए एवं जनकल्याण के लिए ही की होगी । श्री हरिराम जी नाथानी के आग्रह पर गंगा संगम और जगदीश पधारना हुआ । किस पर क्या कृपा करनी थी, इसका रहस्य तो वे ही जानें । बदरीधाम भी पधारना हुआ । इसके लिए श्री रघुराज नारायण जी माथुर और उनके साथी कारण बने । यह सब तो उनकी लहर महर का सौदा है । इनकी लीला तो अद्‌भुत ही है । अमरनाथ के दर्शन हेतु पधारना हुआ । पहलगाँव तक पधार कर वापिस पधार गये । यह सब अपने एक प्रिय भक्त की प्राण रक्षा हेतु किया । जो स्वयं तीर्थ है उसे तीर्थों से क्या लेना ? किन्तु लेना देना तो अवश्य होगा ही इसीलिए तो पधारते हैं और कष्ट व असुविधाओं को झेलते हैं । कारण कोई रहा हो, श्रीदाता यात्रा हेतु गमन करते ही हैं ।

योजना

शरीर से द्वारिका एवं रामेश्वर पधारना नहीं हुआ था । योजनाएँ कई बार बनीं किन्तु बन कर रह गयी । सन् १९७८ की कार्तिक पूर्णिमा पर एक योजना बनी । डाक्टर श्री योगेश जी दक्षिण के तीर्थों में होकर आये थे । उन्होंने उधर के मन्दिरों की और उनकी विशालताओं की रोचक एवं आकर्षक शब्दों में प्रशंसा की थी व श्रीदाता से आग्रह किया कि वे अवश्य दक्षिण यात्रा हेतु पधारें । किन्तु उस समय श्रीदाता ने सुना-अनसुना कर दिया । कुछ दिनों बाद डाक्टर शर्मा, डाक्टर योगेश जी एवं महेशचन्द्र जी दाता-निवास पधारे । उन्होंने पुनः निवेदन किया । अन्य कुछ भक्तों ने भी प्रार्थना की जिस पर योजना बनाने की आज्ञा दे दी ।

डाक्टर श्री योगेश जी राष्ट्रगुरु अनन्त श्री स्वामी जी महाराज पीताम्बरापीठ दतिया के प्रिय शिष्यों में से एक हैं । उनकी इच्छा थी कि श्रीदाता दतिया आश्रम में पधार कर फिर दक्षिण यात्रा में पधारें अतः योजना ही ऐसी बनायी कि यात्रा का श्रीगणेश जयपुर से हो । श्री महेश जी एवं श्री योगेश जी प्रमुख योजक थे । दिनांक २४-१२-७८ को दस बजे प्रातः प्रस्थान का समय निश्चित

किया गया। श्री गर्ग साहब के आग्रह पर रात्रि विश्राम ग्वालियर में करने की व प्रात दतिया के लिए प्रस्थान करने की योजना थी।

क्रियान्विति

श्रीदाता का प्रस्थान दिनाक २२-१२-७८ को दाता-निवास मे हुआ। नान्दशा, गगापुर, भीलवाडा होते हुए रात्रि को अजमेर पधारना हुआ। रात्रि को वही विश्राम कर अनेक भक्तो एव प्रेमीजनो को आनद की गगा में स्नान करा दि २३-१२-७८ को जयपुर पहुँचे। यात्रा में सीमित लोगो को ही ले जाने की योजना थी। महिलाओ के लिए पूर्णतया मनाही थी किन्तु जिन्होने सुना वही जयपुर के माजी साहिबा के मन्दिर में जा पहुँचा। दिनाक २४-१२-७८ को प्रात तक यात्रा में जानेवालो की इतनी सख्या हो गई कि एक बार तो ऐसा लगा कि यात्रा ही स्थगित न हो जाय। दो बसे किराये पर ली गई थी जिममें तीस व्यक्तियो की बैठने योग्य एक टूरिस्ट बस थी। कई लोगो को समझा-बुझा कर कम किया गया फिर भी ८० लोग तो रह ही गये। सात बसवाले और एक श्रीदाता, इस तरह कुल ८८ की सख्या हो गयी जिनमें महिलाएँ भी थी। श्री जोशी जी भोपाल से व श्री ओमप्रकाश जी उज्जैन से साथ हुए। कुल सख्या ९० हो गई। नामावली परिशिष्ट ख (।) में देखी जा सकती है।

दिनाक २३-१२-७८ को दतिया से फोन आने से डाक्टर योगेश जी को दतिया जाना पडा। महेश जी का कुछ काम हो गया। इस प्रकार दोनो यात्रा-योजक साथ नही चल सके।

यात्रा ठीक ११-३० बजे 'श्रीदाता सद्गुरु की जय' के घोष के साथ प्रारभ हुई। जयपुर के अनेक भक्त जन उपस्थित थे। उस दिन शाम तक ग्वालियर पहुँचना था किन्तु वर्षा के कारण ग्वालियर जाने वाला सीधा मार्ग अवरुद्ध हो गया था, इसलिए भरतपुर, आगरा और धौलपुर होकर जाना पडा। आगरा पहुँचते पहुँचते शाम हो गई। धौलपुर जाने के लिए आगरा के बाहर से ही मार्ग था किन्तु ड्राईवरो की असावधानी से बसे आगरा शहर में जा फँसी, जिनके निकलने में ही दो घण्टे लग गये। समय अधिक हो जाने से बसो की गति में तीव्रता आयी।

धौलपुर से आगे चम्बल नदी पर बना पुल भारी वर्षा के कारण टूट चुका था और गैस के ढोलों पर अस्थायी पुल बना था जिसको रात्रि के दस बजे के बाद बन्द कर दिया जाता था। यदि पुल समय पर पार नहीं किया गया तो रात्रि का विश्राम धौलपुर ही करना पड़ेगा, इस भय से बसें दौड़ पड़ी। चम्बल की पुलिया समय पर पार कर ली गई। पुलिया के पास चम्बल नदी के किनारों का दृश्य बड़ा सुहावना बताया जाता है किन्तु अन्धेरे के कारण कुछ देखा नहीं जा सका।

ग्वालियर में

मध्यप्रदेश की भूमि में प्रवेश करते ही चेक पोस्ट पर औपचारिकताओं को पूरी करने में लगभग एक घण्टा लग गया। सब लोग प्यासे, वहाँ का पानी खारा, बैठने की कोई सुविधा नहीं, सब मिलाकर वहाँ का अनुभव कुछ योंही रहा। ज्यों त्यों कर ग्यारह बजे वहाँ से छुट्टी मिली। साढ़े ग्यारह बजे ग्वालियर पहुँचे। सड़कें बिल्कुल सुनसान, मार्ग से कोई परिचित नहीं, श्रीदाता की महर से ही रेल्वे स्टेशन के पास बनी धर्मशाला के बाहर पहुँचे। सौभाग्य से गर्ग साहब के भाई वहीं प्रतीक्षा करते हुए मिल गये। वे तो निराश होकर लौटना ही चाहते थे कि बसों की आवाज सुन कर ठहर गये। फिर क्या था, शीघ्र ही गर्ग साहब के मकान पर पहुँच गये। बड़े प्रेम से गर्ग परिवार ने श्रीदाता और यात्रियों का स्वागत किया। सभी को व्यवस्थित रूप से ठहराया और ठण्डे एवं मधुर जल से सभी की प्यास बुझायी। उनके प्रेम और आतिथ्य को देखकर मार्ग का सारा श्रम और थकावट मिट गई। भोजन करते करते रात्रि के तीन बज गये।

रात्रि के दो बजे के लगभग भोपाल से गर्ग साहब के भाई श्री ओमप्रकाश जी गर्ग और उनकी पत्नी, श्री जोशी जी, और श्री श्रीनाथ जी आ गये। अगले दिन दतिया जाने का कार्यक्रम था किन्तु दिनांक २३-१२-७८ संध्या को श्री स्वामी जी को गंभीर रूप से बीमार हो जाने से श्रीदाता ने इतने लोगों के साथ दतिया जाकर स्वामी जी को कष्ट देना उचित नहीं समझा।

डाक्टर साहब श्री योगेश जी भी नहीं आये थे अत दतिया का कार्यक्रम स्थगित किया गया। अवसर मिल गया अत श्री नाथ जी ने श्रीदाता को भोपाल पधारने की अर्ज की। उज्जैन होकर जाने की योजना थी ही। भोपाल जाने में थोडा सा ही चक्कर पडता था अत डाक्टर शर्मा, ओमप्रकाश जी, दिनेश जी आदि से परामर्श लेकर भोपाल चलने की स्वीकृति दे दी गयी। श्री नाथ जी ने फोन द्वारा व्यवस्था हेतु सूचना भेज दी।

चार से पाँच बजे तक विश्राम कर सभी आगे चलने की तैयारी करने लगे। चाय-नाश्ते के बाद सभी श्रीदाता के पास आ बैठे। गर्ग साहब के पुत्र ने भावुकता में आकर बिना आज्ञा के श्रीदाता के कुछ चित्र लिए किन्तु एक भी चित्र नहीं आया। ऐसा देखा गया है कि श्रीदाता की बिना आज्ञा से कोई उनका चित्र ले लेता है तो वह चित्र नहीं आता। यह अनहोनी बात ही है किन्तु यह सत्य ही है। श्रीदाता के सामने उपस्थित लोगों में से अनेकों ने कई प्रश्न किये जिनका उत्तर श्रीदाता ने मुस्कराते हुए दिया। लगभग एक घण्टे तक भगवद्‌विषयक वातचीत होती रही। श्रीदाता का किसी बात को समझाने का तरीका इतना सरल, इतना मधुर और इतना स्पष्ट होता है कि सुनने वाले पर सीधा प्रभाव पडता है। जैसे उस समय एक बन्दे ने पूछा, "ईश्वर है इसकी क्या पहिचान है?" श्रीदाता ने उत्तर दिया, "आप पिता हैं। आप के पिता होने की क्या पहचान है? पिता होकर कोई पिता का आनन्द नहीं ले सकता। पिता को पिता का आनन्द लेने के लिए पुत्र होना पडता है। पुत्र के होने से ही पिता की पहिचान है? जीव के होने से ही ब्रह्म की पहिचान है। " वटवृक्ष का और अन्य उदाहरणों द्वारा श्रीदाता ने बताया कि ईश्वर की पहिचान की जा सकती है। इसी तरह श्रीदाता का प्रवचन हुआ। लोगों के आनन्द की सीमा नहीं रही। अन्त में श्रीदाता प्रस्थान हेतु उठ खडे हुए। सभी ने गद्‌गद् हृदय से श्रीदाता व यात्रियों को विदा किया। शिवपुरी होकर जाना था। शिवपुरी ग्वालियर से १०५ कि मी दूर है। ग्वालियर से चल कर पारवती नदी पर श्रीदाता ने स्नान किया

और यहीं सभी का नाश्ता हुआ। जयपुर वाले ट्यूरिस्ट कोच नं. ८५३ में थे व अन्य लोग वस नं. ४९६९ में थे। श्रीदाता का विराजना जयपुर से जयपुर वालों के साथ ही था। दोनों गाड़ियों में भजन-कीर्तन निरन्तर चलते ही थे लेकिन जिस वस में श्रीदाता का विराजना होता उस वस में कीर्तन-भजन का आनन्द निराला ही रहता। स्नानोपरान्त श्रीदाता वडी वस में आ विराजे तो उस वस में वैठने वालों के उल्लास का क्या कहना? वे अत्यधिक प्रसन्न हुए और मस्ती से भजन वोलने लगे। श्रीदाता भी करताल वजाते हुए वोल में साथ दे रहे थे। लोग अपनी अपनी सीटें छोड़ कर श्रीदाता के पास आ गये। भजन वोलने में एक समा सी वँध गई। लोग शरीर की सुधवुध तक खो वैठे। वड़ा ही आनन्ददायक वातावरण हो गया। शिवपुरी तक यही वातावरण वना रहा। शिवपुरी पहुँचते पहुँचते तीन वज गये।

जनश्रुति है कि शिवपुरी में भीष्म पितामह का अन्तिम संस्कार हुआ था। यहीं विष्णुपद है। डिजल की शॉर्टेज् चल रही थी अत: डिजल लेने में लगभग एक घण्टा लग गया। शिवपुरी के अमरूद प्रसिद्ध हैं, लोगों ने खूव खाये। वहाँ से 'माधव राष्ट्रीय उद्यान' पहुँचे। वहाँ एक- ओर सुन्दर सरोवर है तो दूसरी ओर विस्तृत राष्ट्रीय उद्यान है जिसमें कई प्रकार के जंगली पशु-पक्षी हैं।

भोपाल में

भोपाल पहुँचते पहुँचते रात्रि के एक वज गये। वहाँ के भक्त जन सन्ध्या से ही प्रतीक्षा में थे। श्री जोशी जी के वंगले के आँगन में पण्डाल लगा दिया गया था। वसों की आवाज सुन कर सभी सड़क पर आ गये और वड़े प्रेम और श्रद्धा के साथ श्रीदाता का अभिनन्दन किया। श्री जोशी जी की पुत्रियाँ भी भजन वोलने लगी। अन्य लोग भी आ वैठे और भजन वोलने में साथ देने लगे। वहाँ वाले भक्त-जन भजन वोलने में इतने लीन हो गये कि उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा कि आने वाले भूखे और थके होंगे। जव लगभग दो घण्टे का समय निकल गया तो किसी ने कह ही दिया, "कोरे

भजनो मे तो पेट भरेगा नही, कुछ खिलाओगे पिलाओगे भी।"
तब जाकर भोजन कराने की याद आयी।

अगले दिन प्रात ही उज्जैन का कार्यक्रम था अत भोपाल के लोग प्रात ६ बजे ही बगले पर आ गये थे। इधर लोग पाँच बजे सोये ही थे, उन्हे ६ बजे उठ जाना पडा। पूर्व रात्रि का जागरण अलग था। श्रीदाता के कमरे के बाहर आते ही श्री जोशी जी ने 'हरेहर भोपाल में ही हो' इसकी पुकार की। लोगो के श्रम और थकावट को देखते हुए श्रीदाता ने उनकी पुकार स्वीकार कर ली।

स्नान और शौचादि कार्य हेतु तालाब पर जाना निश्चय हुआ किन्तु मार्गदर्शक की नासमझी मे तालाब के ऐसे किनारे पर बसो को ले जाकर खडी की जहाँ दोनो प्रकार की सुविधाएँ नही मिल सकी। पास ही मछली पालन गृह था। श्रीदाता उसमें पधार गये। वहाँ शौचालय, स्नानागृह आदि थे जिससे काम चल गया। स्नानोपरान्त श्रीदाता वहाँ की वाटिका में जा बैठे जहाँ गुलाब व कनेर की अधिकता थी। श्रीदाता ने एक बन्दे से पूछा, "गुलाब का फूल सुमधुर सुगन्ध मे युक्त है और कनेर के फूल में सुगन्ध नही इसका क्या कारण है। दोनो को एक सी धरती व एकसा वातावरण मिला हुआ है फिर भी यह अन्तर क्यो?" बन्दा कोई उत्तर नही दे सका। श्रीदाता ने इस अन्तर को दोनो पौधो की बातचीत में बताया –

कनेर "क्या कहूँ कर्त्तार ने, उन पर ऐसी भूल।
कटक पेड गुलाब को, ता पर ऐसा फूल॥"

गुलाब शीश काट धरती गडा, ता पर टाली धूल।
ता पर ऐसे दुख सहे, जिससे ऐसा फूल॥

श्रीदाता का ऐसा कहने का उद्देश्य एकमात्र यही था कि दुख देखे ही सुख मिलता है। श्रीदाता की प्राप्ति के लिए तो सीस कटाना पडता है। अपना सब कुछ निछावर करना पडता है। श्रीदाता ने बातचीत के माध्यम से अपने बन्दो को बताया कि मनुष्य जीवन का सार ही दाता सतगुरु की प्राप्ति है। आनन्द-परमानन्द की

प्राप्ति है जो सद्गुरु की महर पर निर्भर है। इस हेतु सत्संग निरन्तर होते रहना चाहिये।

> विना सत्संग ना कथा हरिनाम की,
> विना हरिनाम ना मोह भागै।
> मोह भागे विना मुक्ति ना मिलेगी,
> मुक्ति विनु नाहिं अनुराग लागै॥
> विना अनुराग के भक्ति न होयेगी,
> भक्ति विनु प्रेम उर नाहि जागै।
> प्रेम विनु राम ना राम विनु संत ना,
> पलटू सत्संग वरदान माँगै॥

स्नानोपरान्त शहर देखते हुए विरला मन्दिर पहुँचे। यह मन्दिर नये और पुराने भोपाल के मध्य एक टेकड़ी पर निर्मित किया गया है। वहाँ से पूरा ही भोपाल जो एक ताल के चारों ओर वसा है, दिखाई देता है। मन्दिर तीन ओर वाटिकाओं से घिरा हुआ वड़ा ही सुन्दर है। वीच वीच में लगे हुए फव्वारें और अन्य कलाकृतियाँ मन्दिर की और उद्यानों की शोभा को वढ़ाती है। मन्दिर में विचरण करते हुए श्रीदाता ने हिन्दू संस्कृति पर प्रकाश डाला। उन्होंने इसे राजनीति, दमन और सम्पत्ति के प्रभाव से रहित वताया और इसके स्थायी और अविनाशी होने का कारण भी यही वताया। श्रीदाता के विचार से अत्याचारियों का नाश होता है, टिकते वे ही हैं जो स्थायित्व को, चिरंतनता को और शाश्वतता को प्राप्त किये हुए होते हैं।

वहाँ से चलकर सचिवालय, विधान सभा भवन आदि देखते हुए श्री श्रीनाथ जी के वंगले पर पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही श्री चाँदमल जी के मुख से निकल पड़ा 'घर आ गया'। इस पर श्रीदाता मुस्करा कर वोले, "आप लोग कितने भोले हैं। एक रात्रि के विश्राम से ही आपने अपना आधिपत्य जमा लिया। जो अपना नहीं है उसे अपना कहते हो और जो अपना है उसे भूले जा रहे हो। इसी भूल के कारण तो वास्तविकता से परे होते जा रहे हो।" यह सुन कर सभी स्तव्ध रह गये।

वहां जाकर देखा कि पाण्डाल पूरा लोगो से खचाखच भरा है। सभी लोग श्रीदाता का प्रवचन सुनने को एकत्रित हुए थे व उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे। अत जाते ही श्रीदाता को उनके सामने बैठकर प्रवचन देना पडा। लोग अनेक प्रश्न अपने मन में लेकर आये थे किन्तु श्रीदाता ने उन्हे पूछने का मौका ही नही दिया। विषय प्रतिपादन में उनके प्रश्नों के उत्तर अपने आप मिल गये। लोगो को आश्चर्य तो हुआ किन्तु उनके सिर श्रद्धा मे झुक गये। लोग दाता के वचनामृत के प्यासे थे। सुधा-रस पान की तीव्र इच्छा लेकर आये थे सो पूरी हुई। लगभग दो घण्टो तक प्रवचन होता रहा। प्रवचन के अन्तर्गत श्रीदाता ने बताया कि जीवन का मुख्य लक्ष्य परमानन्द की प्राप्ति ही है जो गुरुकृपा से ही सभव है। दाता सभी की प्रत्येक इच्छा को पूरी करता है, पूरी श्रद्धा एव विश्वास होना चाहिए। किन्तु प्राणी को इन इच्छाओ से परे होकर एकमात्र दाता की इच्छा रखनी चाहिये। हर समय उसी का स्मरण रखना चाहिये। किसे पता कि स्वास आया नही आया। आपके पास जीवन का प्रमाण-पत्र तो है नही। यह तो रास्ता ही ऐसा है –

कोई काल गया, कोई आज गया,
कोई जावन काज तैयार खडा।
नही कायम कोई मुकाम रहा,
चिरकाल से यही रिवाज रहा॥
अत जाग मुसाफिर भोर भई, यह कूच की नौबत बाज रही।
अरे मनवा चेत रे चेत, जब चिडियन खेत चुग लिया
फिर पछताये क्या, होवत है॥

अत समय रहते सावधान हो जाना चाहिये।

मनुष्य मार्ग पर नही चलता है तो ठोकरे खाता ही है और ठोकरे खाने के बाद तो अक्ल आनी ही चाहिए। कहा है –

मुर्खरू होता है इन्सा ठोकरे खाने के बाद।
रग लाती है हीना पत्थर पर घिसे जाने के बाद॥

कुटुम्ब परिवार प्राणी को उलझाये रखता है किन्तु जब चारों ओर से फाँसी लगती है तब ही वह ऊपर उठता है और अपने प्यारे से मिलता है। कहा है :-

मरे जो मरने के पहले उसे दीदार होता है।
दाना खाक में मिल कर गुले गुलजार होता है॥

दाता का दरबार ही महान् है और उसकी रीति-नीति भी महान् है। यहाँ कोई नहीं कह सकता कि मैं कर्ता हूँ। वहाँ तो केवल तूँ ही तूँ है। दाता ही निर्माता है। ये रंग-विरंगे फूल हैं, इनमें जो रंग है वह पिया का है। सब में उसी को देखो। अलग अलग फूलों को देखो तो देखने में ही समय बरबाद कर दोगे। यह तो कठपुतली का नाच है। नचाने वाला तो परदे में है और वह परदे में रह कर ही सब कुछ करता है। यही प्रवचन की सार मूल बातें थी। लोग प्रवचन से बड़े प्रभावित हुए। लोगों को वहाँ से उठने की इच्छा ही नहीं थी किन्तु भोजन की तैयारी ने उन्हें उठने को बाध्य किया।

उज्जैन में

शाम को चार बजे भोपाल से प्रस्थान हुआ। वहाँ से श्री श्रीनाथ जी एवं उनकी पत्नी साथ हो गई। रात्रि के दस बजे उज्जैन पहुँचे। शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालय के छात्रावास में पहले से ही ठहरने की व्यवस्था थी। दो रात्रियों के जागरण के कारण जाते ही सभी निद्रादेवी की गोद में पहुँच गये।

उज्जैन देश का सर्वाधिक प्राचीन नगर है। इसका नाम प्रति कलपा रहा है। इसके अनेक अन्य भी नाम हैं, जैसे :- उज्जयनि, विशाला, कुमुदवती, कनकश्रृंगा, अवन्ती, अवन्तिका, पद्मावती, कुशस्थली, हिरण्यवती आदि। देश के धार्मिक और पौराणिक नगरों में उज्जैन का विशिष्ट स्थान है। पावन नदी क्षिप्रा के तट पर स्थित यह नगर देश के बारह ज्योतिर्लिङ्गों में से प्रमुख एवं विशिष्ट ज्योतिर्लिङ्ग महांकालेश्वर का नगर है। राक्षसमर्दिनी हरसिद्धि का पीठ तथा पितृ-मोक्षदायक चमत्कारी सिद्धवट का स्थान है। सोलह कला के अवतार भगवान कृष्ण की यह शिक्षा-

लीला स्थली रही है। भगवान राम ने वनवास के अन्तर्गत यहाँ विश्राम किया था। महान् न्यायविद एव प्रजापालक सम्राट विक्रमादित्य की राजधानी के रूप में इसका ऐतिहासिक महत्व सर्वविदित है। महान् सम्राट अशोक यहाँ के सूबेदार रहे और उनके द्वारा निर्मित नरकागार आज भी विद्यमान है। यह नगर ज्ञान-विज्ञान का केन्द्र रहा है। कालीदास और राजा भोज की साधना स्थली यह नगरी विश्ववद्य है। क्षिप्रा तट अनेक ऋषि-महर्षियो की तपोभूमि रहा है। आज भी वहाँ जाने पर अनुपम शान्ति का अनुभव होता है।

ऐसी पावन नगरी के दर्शन करने का अवसर श्री दाता दयाल की महती कृपा से हम सब को मिला, यह हमारे लिए कम सौभाग्य की बात नही थी। दिनाक २७–१२–७८ को प्रात ही श्रीदाता छात्रावास से निकल कर सीधे ही क्षिप्रा तट पर पहुँचे। उस समय शीत का प्रकोप था और ठण्डी बयार चल रही थी। धूप नही निकली थी व क्षिप्रा का पानी अत्यधिक ठण्डा था। फिर भी अनेक यात्री तट पर हाथो में पूजा की थालियाँ लिए खडे थे। पानी में फूल ही फूल थे। कुछ देर खडे रहकर श्री दाता क्षिप्रा में स्नान करने हेतु उतर पडे। सदैव की भाँति श्रीदाता का स्नान मस्ती से हुआ। श्रीदाता को स्नान करते हुए देखकर अन्य लोगो को भी साहस हुआ और वे दाता की जय बोलते हुए स्नान करने लगे। श्रीदाता की कृपा से ठण्ड न मालूम कहाँ चली गई और सभी ने बडे आनन्द से स्नान किया। स्नानोपरान्त महाकालेश्वर के मन्दिर में पधारना हुआ। विभिन्न झाँकियो के दर्शन करते हुए श्रीदाता ने महाकालेश्वर के दर्शन किये। जिस समय श्रीदाता का पधारना हुआ उस समय भगवान का शृङ्गार हो रहा था। बडे भव्य दर्शन थे। वेदो की ऋचाओ की मधुर ध्वनि, वहाँ का सुगन्धित वातावरण एव भगवान के भव्य दर्शनो ने हम सब में एक अनोखी मस्ती पैदा कर दी। श्रीदाता की कृपा से महाकालेश्वर के दर्शन कर सभी अत्यधिक प्रसन्न हुए। हरसिद्धि के दर्शन कर वहा चलने वाली एक सस्कृत पाठशाला देखी जो वहाँ की परम्परागत सस्कृति की द्योतक थी।

सन्तोषी माता के दर्शन कर सान्दीपनि आश्रम में पहुँचे। श्रीदाता ने श्रीमुख से फरमाया, "यह स्थान प्राचीन काल मे ज्ञान–विज्ञान एवं संस्कृति का केन्द्र स्थान रहा है। यहां भगवान श्रीकृष्ण, वलराम जी और सुदामा जी ने शिक्षा प्राप्त की थी।" इस आश्रम में जाने पर सभी को शान्ति एवं एक प्रकार के अपूर्व आनन्द का अनुभव हुआ। यह आश्रम क्षिप्रा तट पर स्थित रमणीय एवं प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण है। जो भी व्यक्ति वहाँ पहुँचता है उसे भारत के प्राचीन गौरव के प्रति अनुराग उत्पन्न हुए विना नहीं रहता है।

वहाँ से श्रीदाता नवनाथों में प्रसिद्ध नाथ भर्तृहरि जी के आश्रम पर पधारे। वह स्थान श्री भर्तृहरि जी का उपासना स्थल रहा है। यह आश्रम भी क्षिप्रा के तट पर एकान्त और परम मनोहर स्थान पर स्थित है। वहाँ अपार शान्ति थी। श्रीदाता में वहाँ विचित्र सा भाव जागृत हुआ। अन्य लोगों की भी यही अवस्था रही। वहाँ जाने पर ऐसा लगा जैसे कोई प्राणी वड़े परिश्रम और अनेकों प्रयत्नों के वाद अपने घर आ गया हो। स्थान इतना रम्य और आकर्षक है कि वहाँ से हटने का विचार ही हृदय को पीड़ा पहुँचाने वाला था। श्रीदाता और साथ ही साथ अन्य लोग भी गुफा में होकर भर्तृहरि जी की धूनीपर पहुँचे। धूनी के दर्शन कर अपार आनन्द की अनुभूति हुई। विचित्र स्थान था वह, जहाँ मन की स्थिरता अनायास ही हो गई। श्रीदाता ने धूनी से हटकर गुफा के वाहर आने पर फरमाया, "यहाँ के लिए दो प्रकार के मत प्रचलित हैं। एक मत वाले दाता को शिव का अवतार मानते हैं। दूसरे मत वाले दाता को कृष्ण रूप में मानते हैं। क्या सही है यह तो प्रभु ही जाने। सभी लीला उसी की है। जानने से हद हो जाती हैं और दाता तो वेहद हैं। सुनने में तो यह आया है कि जो शिव हैं वही कृष्ण हैं और जो कृष्ण हैं वही शिव हैं। दोनों एक ही हैं, अभिन्न हैं। रामप्रकाश जी महाराज को देखो। दाता की उनपर कृपा हो गई। उनको दाता ने कृष्ण रूप में ही दर्शन दिये। प्रभु कृपा में तो देरी होती ही नहीं। न जाने कव कृपा हो जाय।"

श्रीदाता बोलते बोलते गद्‌गद् हो गये और उनके नेत्रो से अश्रु छलक आये। उनके चेहरे पर विचित्र भाव थे और उस समय उनके चेहरे पर दिव्य प्रकाश था। श्रीदाता का ऐसा रूप बहुत ही कम देखने को मिलता है। जो आनन्द भक्त लोगो को वहाँ मिला वह अपूर्व था जिसका वर्णन करना सभव नही।

भर्तृहरि जी के आश्रम के पास ही जालन्धर नाथ जी की धूनी है। और भी देखने योग्य मन्दिर है लेकिन समय अधिक होने से श्रीदाता विश्राम स्थल के लिये चल दिये। भोजन और विश्राम के समय भी उज्जैन की ही चर्चा चलती रही। शाम को वहाँ से चलकर इन्दौर पहुँचे। एक घण्टा वहाँ ठहर कर आगे बढ गये व रात्रि के एक बजे ओकारेश्वर पहुँचे। रात्रि थी किन्तु प्रभु कृपा से एक सराय में ठहरने की समुचित व्यवस्था हो गई।

ओकारेश्वर

श्री ओकारेश्वर भारत के प्रसिद्ध द्वादश ज्योतिर्लिङ्गो में से एक है जो मान्धाता के पास कावेरी-नर्मदा के सगम पर स्थित है। इस स्थान की प्राकृतिक रचना 'ॐ' आकार की होने से ही इस स्थान का नाम ओकारेश्वर पडा और यहाँ स्थित शिव-लिङ्ग को ओकारेश्वर-ज्योतिर्लिङ्ग कहा जाने लगा। कथा प्रचलित है कि विन्ध्याचल पर्वत ने भगवान शिव के दर्शन हेतु कठोर तपस्या की। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने उसे अपने उस स्वरूप के दर्शन कराये जो देवर्षि और योगियो के लिए भी दुर्लभ है। आत्म-विभोर विन्ध्य ने प्रार्थना की कि आप भक्तवत्सल है अत ऐसा वर प्रदान करे जिससे मनोवाछित फल प्राप्त करने में सफल हो सकूं। भगवान् के एवमस्तु कहते ही समस्त देवता और ऋषि-मुनि वहाँ पधार गये और उन्होने प्राणीमात्र के कल्याणार्थ विन्ध्य पर स्थायी रूप से निवास की प्रार्थना जिसको 'एवमस्तु' कह कर स्वीकार की।

इस क्षेत्र के लोग नर्मदा को गगा के समान ही मानते है। नर्मदा, ऊँचे आकार की प्राकृतिक रचना, ओकारेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग

और पर्वतराज मान्धाता इस स्थान के महत्व और आकर्षण को बढ़ाने में सहायक हुए हैं। नर्मदा के कंकर सब शंकर होते हैं। नर्मदा के दक्षिण तट पर ब्रह्मपुरी और विष्णुपुरी तथा उत्तरी तट पर शिवपुरी है। नदी के विशाल प्रवाह को नाव से पार करने का एक विशेष ही आनन्द है। नर्मदा के पानी में चने डालने पर विविध रंग की मछलियाँ दौड़ भाग करती नजर आती है। गुर्जर धर्मशाला जिसमें ठहरना हुआ था वह ब्रह्मपुरी में स्थित है। वहाँ से निवृत्त होकर हम सब लोग नदी के किनारे पहुँचे। श्रीदाता व कुछ लोग एक नाँव में व अन्य लोग दूसरी नाँव मे बैठ कर शिवपुरी में जाने हेतु रवाना हुए। उस समय शिवपुरी में जाने का एकमात्र साधन नाँव ही थी। अब तो नदी पर पुलिया बन गई है जिससे अच्छी सुविधा हो गई है। नर्मदा का पानी नीले रंग का था और उसके प्रवाह में गति थी। रंग-बिरंगी मछलियाँ हम लोगों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन रही थी। मछलियों की किलोलों से उछला हुआ पानी और बूंदें जब हमारे शरीर पर पड़ती तो बड़े ही आनन्द का अनुभव होता था। उस पानी का प्रवाह हमारे मन में उत्पन्न हुए श्रद्धा के प्रवाह को बढ़ा रहा था। कुछ ही देर में नांव ने हमें शिवपुरी के घाट पर पहुँचा दिया और नाँव का जो आनन्द था वह समाप्त हुआ। वहाँ से चलकर एक अन्य घाट पर पहुँचे जहाँ श्रीदाता और साथ के लोगों ने स्नान किया। कुछ लोग नर्मदा के पानी में तैरने लगे और कुछ लोग पानी में खड़े खड़े ही कीर्तन करने लगे। वहाँ के अन्य यात्री कीर्तन की ध्वनि सुनकर देखने आ गये। वे बड़ी श्रद्धा से श्रीदाता और हम लोगों को देखने लगे। बड़ा ही आह्लादकारी दृश्य था। स्नानोपरान्त आगे आगे श्रीदाता और पीछे पीछे सब मन्दिर की ओर चल पड़े। सर्वप्रथम पंचमुखी गणेश जी के दर्शन हुए, फिर नान्दी के। मन्दिर में अनेक प्रकार की अनेक घण्टियाँ हैं जिनकी ध्वनि भटकते हुए और चंचल मन को स्थिर करने में सहायक होती है। मन्दिर में घृत की अखण्ड ज्योति प्रज्ज्वलित थी। शिवलिङ्ग के पास ही सामने चाँदी के पतरे पर उत्कृष्ट कलाकृति के मध्य में माँ पार्वती की मूर्ति है। दाहिनी ओर नवनिर्मित द्वार है। पाँचमंजिले इस विशाल मन्दिर के स्तम्भों

पर देवी-देवताओ के चित्र अंकित है। मन्दिर के ऊपरी भाग मे महाकालेश्वर और वैद्यनाथ महादेव के ज्योतिलिङ्ग है। ओंकारेश्वर की यह विशेषता है कि यहाँ प्रतीक के रूप में शेष ग्यारह ज्योतिर्लिङ्ग विद्यमान है। मन्दिर के चारो ओर अनेक देवी-देवताओ के दर्शन है। सभी दर्शनो मे निपट कर वापिस उसी घाट पर आ गये जहा नाँव से उतरे थे। नाँवे तैयार थी अत उनमें बैठकर पुन धर्मशाला में चले आये। ओंकारेश्वर में श्री शिवसिंह जी एव कु. हरदयाल सिंह जी को श्रीदाता की महर से दिव्य दर्शन हुए ऐसा अनुभव किया गया।

जलगाँव में

भोजनोपरान्त २-३० बजे वहाँ से प्रस्थान कर खण्डवा की ओर बढे। मार्ग में छोटे छोटे सागवान के पेडो से ढकी छोटी छोटी पहाडियाँ मिली। इस क्षेत्र में गरीबी अधिक देखी गयी। गाँवो के मकान साधारण थे। मार्ग के दोनो ओर यत्र-तत्र फूस की बनी हुई झोपडियाँ नजर आ रही थी। खण्डवा को एक ओर छोड कर एक सीधी सडक द्वारा सीधे जलगाँव को निकल गये। वहाँ पहुचते पहुँचते रात्रि के दस बज गये। ठहरने की व्यवस्था पूर्व मे नही की जा सकी अत एक समस्या हो गई। हनुमान जी के मन्दिर में ठहरने की अच्छी व्यवस्था बनाई गई किन्तु वहाँ भी यात्रियो की अधिक भीड थी और किराया भी छोटे कमरे का २००/– दो सौ रुपये प्रति कमरा प्रति रात्रि था। जहाँ बसे ठहरी थी वही महाराष्ट्रीय ब्राह्मण मण्डल का मांगलिक भवन है। श्रीदाता की महर से वहाँ व्यवस्था हो गई। मांगलिक भवन साफ-सुथरा और सुन्दर सा भवन है जिसकी दीवारो पर भगवान और उनके भक्तो के चित्र लगे है। प्रात ही श्रीदाता ने इन चित्रों को ध्यान से देखा। श्रीदाता एकनाथ जी, नामदेव जी के चित्र तो बडी देर तक देखते रहे। जलगाँव में देखने योग्य कुछ नही था अत वहाँ से जल्दी ही निकल चलने की योजना थी। लोग बसो मे बैठे श्रीदाता के पधारने की प्रतीक्षा कर रहे थे और उधर श्रीदाता चित्रो को देखने में निमग्न थे। अन्त में उन्हे पधारने हेतु निवेदन करना पडा तब वहाँ

जाकर उन चित्रों मे श्रीदाता का ध्यान हटा। व्यवस्थापक को धन्यवाद देकर वहाँ से प्रस्थान किया।

अजन्ता

जलगाँव से साठ कि. मी. चलने पर विश्वविख्यात अजन्ता की गुफाएँ आयीं। यह स्थान प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण है। यहाँ ३० गुफायें हैं। विशेषज्ञों का अनुमान है कि गुफाओं के खोदने का काम ई. सन् पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर ई. सन् की सातवीं शताब्दी तक चला होगा। जिस पहाड़ में इन गुफाओं को खोदा गया है उसका आकार घोड़े की नाल के समान है। इस पहाड़ के पास जो नदी है उसे 'वाघोरा नदी' कहते हैं। सभी गुफाओं में बौद्ध धर्मीय चित्र हैं। इतिहास से यही पता चलता है कि ई. सन् १८१९ में मद्रास से ब्रिटिश सेना के कुछ सैनिकों ने अपना शिविर यहाँ लगाया था। एक अफसर शिविर से शिकार हेतु इधर आ निकला। उसने एक जंगली जानवर को यहां छिपते देखा। उसे खोजते खोजते वह इन गुफाओं में आ गया। इस प्रकार ये गुफायें भारत और विश्व के लोगों के सामने आयीं। तीस गुफाओं में पाँच चैत्यगृह और पच्चीस विहार गृह हैं। चैत्यगृहों का प्रयोग पूजागृह के रूप में व विहार गृहों का उपयोग भिक्षुओं के रहने के लिये किया जाता था। गुफा की संख्या १, २ और १६ में अँधेरा अधिक रहता है। किन्तु बिजली की व्यवस्था होने से देखने मे कोई कठिनाई नहीं हुई। गुफाओं की दीवारों पर अनेक रंगों में चित्र चित्रित हैं। इन चित्रों की कला की कोई जोड़ नहीं। चित्र बिल्कुल सजीव से लगते हैं। उनकी भाव मुद्राएँ देखते ही बनती है। इतनी अद्भुत और उच्च कोटि की कला है कि उसकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही कम है।

बौद्ध और जैन कृतियाँ

वहाँ देखते देखते थके से हो गये। दोपहर को वहाँ से रवाना हुए। औरंगाबाद में भी बौद्ध धर्मीय गुफाएँ हैं जो संख्या में बारह हैं। औरंगाबाद से पन्द्रह कि. मी. दूर दौलताबाद (देवगिरी) है और वहाँ से बारह किलो मीटर खुल्दाबाद है जहाँ राजामहाराजाओं

और सन्तो की समाधियाँ हैं। वहाँ से बारह कि. मी दूर पहाड पर 'म्हैसमाल' नाम का छोटा सा गाँव है जहाँ माँ पार्वती का मन्दिर है। पास ही 'एलोरा' गाव है जहाँ घृष्णेश्वर का मन्दिर है जो द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से एक है। एलोरा में लगभग ६५ गुफायें हैं किन्तु ३४ तक ही क्रमाक है। १ से १२ बौद्ध धर्मीय, १३ से २९ हिन्दू धर्मीय और ३० से ३४ तक जैन धर्मीय हैं। ये गुफायें अजन्ता के सदृश ही सुन्दर एव कलाकृतियो से सुन्दर हैं। पूर्व में देखी होने से व समय के अधिक हो जाने से श्रीदाता ने वहाँ जाने के कार्यक्रम को रद्द कर दिया। वहाँ से अमरावती का मार्ग पकडा। 'काला' नाम की नदी पर ठहरकर स्नान व अन्य आवश्यक कार्य कर रात्रि के आठ बजे अमरावती पहुँचे।

अमरावती में

श्री राधाकृष्ण जी के लडके श्री जगदीशचन्द्र जी अमरावती में ही मेजर के पद पर नियुक्त थे। व्यवस्था हेतु उन्हे जयपुर से फोन द्वारा कह दिया गया था। उन्होने एक धर्मशाला के मैनेजर को कह दिया था। श्री जगदीश जी उस दिन अमरावती से बाहर गये थे। एक स्थान पर बसें खडी कर दिनेश जी ने श्री जगदीश जी को फोन किया तो उत्तर मिला, 'बाहर गये हैं।' वे परेशान हुए और डर गये कि अब श्रीदाता को क्या उत्तर दें? अमरावती जैसे शहर में तत्काल व्यवस्था करना बहुत ही कठिन है। किन्तु श्रीदाता तो खिलाडी हैं। वे समस्या भी बन्दे के सामने पैदा कर देते हैं और उस समस्या के हल में यदि वह परेशान होता है तो हल भी सुझा देते हैं। ऐसा ही वहाँ हुआ। श्री दिनेश जी ने अपने चाचा को फोन लालसोट (राजस्थान) निवासी श्री रामेश्वर जी पाण्डे की दुकान से किया था। उन्हे परेशान देखकर उसने कहा, "ऐसा लगता है कि आप राजस्थानी हैं। यदि अनुचित न हो तो आपकी परेशानी का कारण बताओ।" दिनेश जी ने अपनी समस्या कह सुनायी। श्री पाण्डे ने सब काम छोडकर उनके साथ हो लिए। उन्होने अग्रसेन भवन के सचालक के मकान पर जाकर नि शुल्क ठहरने की व्यवस्था कर दी। प्रवास काल में नि स्वार्थ भाव से ऐसी

सहानुभूतिजन्य सहयोग अत्यन्त सराहनीय है। यह सब दीनदयाल श्रीदाता की कृपा से ही संभव हुआ।

अगले दिन प्रातः ही श्री जगदीशचन्द्र जी के परिवार के सदस्य, उनके पड़ोसी और प्रेमी सन्त श्रीदाता के दर्शनार्थ उपस्थित हुए व एक दूसरे से मिलकर आनन्दित हुए। साथ में आयी हुई बहनें हारमोनियम लेकर भजन गाने बैठ गयी। श्रीदाता ने भी करताल हाथ में ले ली। फिर क्या था। भजनों के स्वर, ताल और लय ने सभी को भावलोक में पहुँचा दिया। सभी भावविभोर होकर परमानन्दानुभूति का अनुभव करने लगे। बहुतों को अनेक प्रकार के अनुभव भी हुए। इसी बीच श्री पाण्डे व अग्रसेन भवन के मुख्य व्यवस्थापक सेठ भी दर्शनार्थ उपस्थित हो गये। वे भी उस आनन्द रूपी गंगा में स्नान कर आनन्दित हो गये और अपने आपको ही भूल गये। भजन की समाप्ति पर सेठ जी का हम सब ने अभिनन्दन किया। वे श्रीदाता को प्रणाम करके सामने बैठ गये। श्रीदाता ने उन्हें सब काम करते हुए भी दाता को याद रखने को कहा। उन्होंने बताया कि प्राणी को जल कमलवत् रहना चाहिये। संसार के सभी प्रपंचों में रहते हुए भी उसमें लिप्त रहना उचित नहीं। संसार तो काजल की कोठरी है। प्रभु कृपा से ही बचत हो सकती है

काजल केरी कोठरी, काजल का ही कोट।
बलिहारी उस दास की, जो रहे राम की ओट॥

श्रीदाता ने उन्हें कहा, "आप लोग घर-बार छोड़ कर पेट के लिए जैसे यहाँ आकर बसे हैं वैसे ही हम भी राम नाम के लिए दर दर भटक रहे हैं। उसकी महर हो जाय और राम नाम का दाना मिल जाय तो यह जीवन ही सार्थक हो जाय।"

श्रीदाता ने उन्हें नाम-स्मरण पर मंत्र देते हुए श्रीदाता के आसरे रहने का संकेत किया। नाम भक्ति का भी बड़ा महत्व है। स्वामी श्री चरणदास जी महाराज ने भी इसी प्रकार फरमाया है—

चार वेद किये व्यास ने, अर्थ विचार विचार।
तो में निकसी भक्ति ही, राम नाम ततसार॥

नार्माहि ले जल पीजिये, नार्माहि लेकर खाह ।
नार्माहि लेकर बैठिये, नार्माहि ले चल राह ।।
जीवत ही स्वारथ लगे, मूए देह जराय ।
हे मन सुमिरो राम कूं, धोखे काहि पराय ।।
हाथी घोडे धन घना, चन्द्रमुखी वहु नार ।
नाम बिना जम लोक में, पावै दु ख अपार ।।
दसो दुवारे मैल है, सब गदम गदा ।
उत्तम तेरा नाम है, बिसरै सो अधा ।।

सेठ जी और श्री पाण्डे श्रीदाता की अमृत-वाणी से बड़े प्रभावित हुए । श्रीदाता ने उन्हे बडे आग्रह से भोजन कराया । वे परम भाग्यशाली थे कि उन्हे सत्सग भी मिला और प्रभु प्रसाद भी । पाण्डे ने ढेर सारे फल मगवा कर श्रीदाता को भेंट किये ।

वृद्धा धोबिन का प्रेम

एक बजे अमरावती से रवाना हुए । जलू नामक गाँव जो अमरावती से तेरह किलोमीटर दूर है, वहाँ पहुँचे ही होगे कि छोटी बस का पत्ता टूट गया । पत्ते को वापिस लगाना आवश्यक था अत वह बस वापिस अमरावती गई । जहाँ बस खडी हुई वही सडक के किनारे श्री मधुकर टीकडे का खेत है, जिसको उत्तमचन्द धोबी जोतता है । उसके तीन लडके है । बडा लडका खेत पर था । उससे स्वीकृति लेकर खेत पर बने कच्चे मकान के चबूतरे पर श्रीदाता और मातेश्वरी जी विराज गये । अन्य लोग श्रीदाता के सामने ही इधर उधर बैठ गये । श्री उत्तमचन्द के दोनो लडके भी आ गये और सेवा में जुट गये । अनजान व्यक्तियो की बिना किसी स्वार्थ के सेवा करना, महानता का द्योतक है । अच्छे सस्कार और भगवत् कृपा से ही यह गुण आता है ।

श्री सत्यनारायण जी ने भजन बोलना प्रारभ किया । अन्य लोगो ने भी साथ दिया । भजनोपरान्त कीर्तन बोला गया । श्रीदाता भी कभी हाथ की ताली बजा कर, कभी करताल लेकर कीर्तन बोलने वालों का साथ दे रहे थे, बडा ही आनन्ददायक अवसर था ।

बोलने वाले व सुनने वाले सभी भावविभोर हो गये । इस यात्रा का यह सब से बड़ा तीर्थ था जहाँ बैठ कर सभी आनन्दरूपी सागर में मज्जन ही नहीं करने लगे वरन् गोते ही लगाने लगे । भजनों की ध्वनि सुनकर पास के गाँव के लोग आ गये । कुछ देर बाद उत्तमचन्द जी का एक लड़का अपनी बुड्ढ़ी माँ को बुला लाया । ज्यों ही उस बुढ़िया को मालुम हुआ कि उसके खेत पर एक सन्त आये है और वे राम नाम का वितरण कर रहे है, वह दौड़ी दौड़ी आयी । श्रीदाता को देखते ही उसके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे । दूर से ही उसने श्रीदाता को प्रणाम किया । उसे देखकर श्रीदाता खड़े हो गये । उन्होंने उस बुढ़िया को झुककर नमस्कार किया और बोले, "माँ ! तुम अब तक कहाँ थी । मैं तो तेरे दर्शन के लिए ही आया हूँ ।" बुढ़िया यह सुन कर गद्‌गद् हो गई । नेत्रों से आँसू बह चले और उसकी वाणी अवरुद्ध हो गई । कुछ देर बाद वह संभली और अपने लड़कों को बेर लाने को कहा । वे दौड़े और थोड़ी ही देर में दो थैले बेरों के भर लाये ।

यह वही तो क्षेत्र है जहाँ भगवान राम ने माँ शबरी के आश्रम में बेर खाये थे । वह अवसर भी ऐसा ही रहा होगा ।

कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि ।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि ॥

उस समय राम रूप में आकर शबरी के खट्टे मीठे बेर चखे थे –

इकठ्ठे किये शबरी ने खट्टे मीठे बोर ।
अजब स्वाद उनका रहा जिनकी खाँडी कोर ॥

इस बार दाता रूप धर एक भक्तिन को दर्शन देने आये हैं । बड़ा ही सरस और अद्‌भुत दृश्य था । सभी लोग उस बुढ़िया के अनोखे प्रेम को देखकर गद्‌गद् हो गये । वे अपने आप को कोसने लगे । सभी ने नतमस्तक होकर मन ही मन में उस माँ को प्रणाम किया और उसके भाग्य की प्रशंसा करने लगे । बस तैयार होकर आ गयी थी और सूर्यास्त का समय हो गया था, अतः श्रीदाता ने सभी को बस में बैठने की आज्ञा दे दी । सभी बसों में बैठे । श्रीदाता भी उस

माँ को व गाँव वालो को नमस्कार कर वस में विराज गये। वुढिया, उसके तीनो लडके और गाँव वाले हाथ जोडे वस के पास खडे थे। मुँह पर हवाइया उडी हुई और उदास। कई के आंखो में आँसू थे मानो अपने प्रिय-जनो को विदाई देने आये हो। वडा ही कारुणिक दृश्य था। सभी ने भावभीनी विदाई दी। यह था नि स्वार्थ व सच्चा प्रेम जिसे दाता ने अपने वन्दो को वताया। ऐसा नि स्वार्थ व सच्चा प्रेम ही जीवात्मा को दाता के पास ले जाता है। वस चल पडी। वडी देर तक हम लोगों के सामने पूरे दिन भर का दृश्य चित्रपट के समान नाचता रहा। वहाँ के लोग कितने भोले, सरलचित्त, भले, सेवाभावी और प्रभु भक्त थे, इसका वर्णन करना समव नही। उस वुढिया के लडकों ने तो हृदय विछा दिया था। श्रीदाता की लीला ही अपरपार है। जव उनकी कृपा होती है तो ऐसे भक्तो के दर्शन होते है।

दत्त-शिखर

वहाँ से चलकर माहुर डाक वगले में ठहरे। अगले दिन अर्थात् ३१-१२-७८ को दत्त शिखर के लिए रवाना हुए। दत्तात्रेय जी का मन्दिर एक ऊँची पहाडी पर है जिसे दत्त शिखर कहते है। डाक वगले से वह स्थान सात कि मी दूर है। ऊँचाई होने से एक वस चढाई पर रुक गई, इस पर दोनो वसो के यात्री वसो से उतर पडे और 'भज गोविन्द, वाल मुकुन्द, परमानन्द हरे हरे' कीर्तन वोलते हुए आगे वढे। खाली वस आसानी से चढाई चढ गयी। वाद्य यत्र साथ थे। साज-वाज के साथ वोला जाने वाला कीर्तन भावोत्पादक था। कीर्तन की समा वन्ध गई। लोग नाचते, कूदते और गाते हुए मस्ती से आगे वढे। पूरी चढाई इसी स्थिति में पार की और देवी के मन्दिर से ही उतार प्रारभ हुआ। दत्त शिखर दूर था अत पुन सभी यात्री वसो में वैठ गये। दत्त शिखर के पास पहुँचते पहुँचते वडी वस के गियर में खरावी हो गई और वस वही खडी हो गई। लोग वस से उतर पडे और पैदल ही दत्त शिखर पर पहुँचे।

महर्षि अत्रि एव अनुसूया जी का आश्रम दत्त शिखर से डेढ कि मी. दूर पहाडी के दूसरे शिखर पर स्थित है। कहा जाता है

कि उसी आश्रम में भगवान दत्तात्रेय जी का जन्म हुआ था। दत्त शिखर भगवान दत्तात्रेय जी का ध्यान स्थल बताया जाता है। यहीं से वे भिन्न भिन्न स्थानों पर पधारे और अलग अलग स्थानों पर आश्रमों की स्थापना हुई। कहा जाता है कि आदि शंकराचार्य जी ने इसी स्थान पर गुरु-दीक्षा ली। बाद में उनके द्वारा यहाँ मुक्ति पीठ की स्थापना हुई। यहाँ दस-नामी साधुओं में से भारती साधुओं की गद्दी है। इस समय इस गद्दीपर आचार्य मधुसुदन जी विराज रहे हैं। बातचीत से लगा कि वे सरलचित्त, मधुर भाषी एवं उच्च कोटि के ईश्वर भक्त सन्त हैं। दर्शकों और यात्रियों के साथ अच्छा सम्बन्ध है। मन्दिर बड़ा है व आश्रम सरीखा है। ऐसा लगता है कि प्राचीन काल में यह एक बड़ा आश्रम और संस्कृति का बड़ा केन्द्र रहा होगा। अनेक गज, अश्व आदि पशु वहाँ रहे होंगे। यह मन्दिर पहाड़ की सबसे ऊँची चोटी पर स्थित है। यह प्राकृतिक दृश्य का पुञ्ज है। चारों ओर ऊँचे ऊँचे हरे भरे पहाड़ हैं। छटा ऐसी निराली है कि नेत्रों की प्यास बुझती ही नहीं है। भगवान दत्तात्रेय की बड़ी और भव्य मूर्ति है। गर्भ गृह में शिवलिङ्ग है। आचार्य महोदय के अनेक शिष्य हैं और सरकार की ओर से पूजा की अच्छी व्यवस्था है हजारों व्यक्ति प्रति दिन दर्शनों के लिए आते हैं।

दत्त के दर्शन कर श्रीदाता निज मन्दिर के पीछे आँगन में विराज गये। मेवाड़ राज्य की बातें चल पड़ी इसपर श्रीदाता ने बापा रावल से लेकर महाराणा भगवत सिंह जी तक के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए बताया कि मेवाड़ के महाराजाओं के भगवान एकलिंग का इष्ट है। वे मेवाड़ के शासक उन्हीं को मानते हैं और स्वयं को दीवान। उन्हीं के नाम पर उन्हीं के लिए राज्य करते हैं। हमें भी जो कुछ करना है सब उसका काम समझ कर करना चाहिये। श्रीदाता ने अपनी युवाकाल की घटनाओं का भी वर्णन किया। एक बार की घटना बताई। श्रीदाता उस स्थान पर सिगनल से सन्देश ले रहे थे जो चाँदमारी का स्थान था। अफसर को ध्यान नहीं रहा

और उसने फायरिंग की आज्ञा दे दी। दनादन गोलिया चलने लगी। श्रीदाता बिना किसी भय के दाता का स्मरण करते हुए सन्देश लेते रहे। गोलियाँ दायें, बायें, ऊपर निकलती रही। दाता की महर ही थी कि वे बाल-बाल बच गये। अचानक अफसर की निगाह उधर चली गई। एकदम फायरिंग रोक दिया गया। वे सदेश लेकर सकुशल लौट आये। इस प्रकार के सस्मरण चलते रहे।

बस का गियर ठीक नही हो सका, कारण उसकी गिरी टूट गई थी। मिस्त्री आने पर ही ठीक होना बताया गया। नान्देड से ही समस्या हल होगी। सध्या समय हो गया। हवा तेज चलने लगी व शीत बढ गई। रात्रि को वहाँ रहना सभव नही था अत यह निश्चय हुआ कि छोटी बस कुछ सवारियो को पहले माहुर छोड आवे जहाँ से बस द्वारा वे नान्देड पहुँच जावे। ऐसा ही किया गया। श्रीदाता एव मातेश्वरी जी भी पहली बस में माहुर पधार गये व बस स्टेण्ड पर ही ठहर गये। बस वापिस दत्त शिखर पहुँची। मार्ग विकट तो था ही। मार्ग में एक जीप दत्त-शिखर पर जाती हुई सडक से नीचे उतर गई। वृक्षो की रोक के कारण वह नीचे गिरने व उलटने से बच गई। प्रभु कृपा से ही उसकी सवारियो के प्राण बचे। दत्त-शिखर से बचाया व्यक्तियो को लेकर बस रवाना हुई। माहुर आकर श्रीदाता व मातेश्वरी जी को लिया और बस सीधी नान्देड पहुँची। नान्देड पहुँचते पहुँचते रात्रि के साढे ग्यारह बज गये थे। पूर्व में जाने वाले भी बस स्टेण्ड पर खडे थे।

नान्देड सिक्खों का धार्मिक स्थान

नान्देड में ठहरने की व्यवस्था में कठिनाई हुई। समुचित व्यवस्था न होने से श्रीदाता को तो टाक बगले पर ठहराया गया। नान्देड गुरुद्वारा में ठहरने की अच्छी व्यवस्था है। वहाँ के मैनेजर को पूर्व में ही तार दे दिया गया था जिस पर उसने चार कमरे आरक्षित कर रखे थे किन्तु रात्रि के कारण ठीक प्रकार से पता नही चल सका। रात्रि में तीन बजे तक ज्यो त्यो कर सब के सब गुरुद्वारे में व्यवस्थित हो गये। प्रात उठते ही आरक्षित कमरो का पता चला। उस दिन सन् १९७९ का प्रथम दिवस था। नान्देड

गोदावरी के तट पर स्थित है अतः गुरुद्वारे में शौचादि की अच्छी व्यवस्था होने पर भी अधिकतर लोग गोदावरी के तट पर पहुँचे। वहाँ से स्नान कर वापिस लौटे। श्रीदाता डाक बंगले में थे अतः सभी को सूना सूना लग रहा था। श्री जोशी जी, श्री पारीख साहब आदि डाक बंगले पर पधारे और श्रीदाता को गुरुद्वारे पधारने की अर्ज की। श्रीदाता भी यही चाहते थे अतः फौरन तैयार हो गये। उठने ही वाले थे कि किसीने क्षत्रिय जाति का प्रसंग छेड़ दिया। श्रीदाता को सुन कर कुछ दुःख हुआ। उन्होंने कहा, "राजपूत जाति अत्याचार, दमन, गृह क्लेश और शराब से ही बर्बाद हुई है। आपस की फूट से पृथ्वीराज को पराजित होना पड़ा। इसी प्रकार भाई शक्तिसिंह के विरोध के कारण महाराणा प्रताप को दुर्दिन देखना पड़ा। ब्राह्मण जो ब्रह्म विद्या और आध्यात्म के ज्ञाता थे, जिन्होंने समाज को अस्त्र-शस्त्र, शास्त्र और दर्शन का ज्ञान दिया वे ही ब्राह्मण पारम्पारिक रागद्वेष, ईर्ष्या और अहंकार के कारण समाज को संगठित करने में असमर्थ रहे हैं। बारह ब्राह्मण और तेरह अंगीठी वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। ब्राह्मण सर्व समर्थ होते हुए भी एक दूसरे की उन्नति और यश से जलते हैं और कुढ़ते हैं। द्रौणाचार्य जैसे महापुरुष भी इस दोप से वंचित नहीं रह सके। विश्वामित्र को ही देख लें, वशिष्ठ से तपोनिष्ठ ब्रह्मर्षि को समूल नष्ट करने की कोशिश में कमी नहीं रखी। महर्षि गौतम ने ब्राह्मणों का क्या बिगाडा था किन्तु उन्होंने उन्हें सताने में कसर नहीं रखी। पहले ब्राह्मण वंश परम्परा से ब्राह्मण नहीं होता था किन्तु ज्ञान की प्राप्ति से ही ब्राह्मण कहलाता था। दधीचि, सान्दीपन आदि सभी ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति से ही ब्राह्मण कहलाये थे। जाति, प्रथा और संकीर्णता तो बाद की वस्तु है। जब ब्राह्मण ब्रह्म विद्या को छोड़ तन्त्र-वाद में फँस गये और स्वार्थ में लिप्त होकर हिन्दू-जाति के ह्रास का मुख्य कारण बने। राजपूत और ब्राह्मण जाति के कारण ही हिन्दू समाज रसातल को पहुँचा है। इनकी संकीर्णता, अहंभाव और ईर्ष्या से ही इसकी हालत बिगड़ी है। आर्य संस्कृति साधारण संस्कृति नहीं है। यह महान् है। इसकी यही विशेपता रही है कि इससे जो भी संस्कृति आकर टकराई उसे इसने आत्मसात कर

लिया। प्रत्येक हिन्दुस्तानी का प्रमुख कर्तव्य होना चाहिये कि वह कलह से ऊपर उठ कर देश की उन्नति में हाथ बँटावे। इस उद्देश्य को लेकर ही अजगर दल का निर्माण हुआ है। अजगर दल से तात्पर्य अहीर, जाट, गूजर और राजपूत का सम्मिलित दल से है। यदि सभी हिन्दू जातियाँ सगठित हो जायँ। इनका खान-पान, विवाह आदि कार्य एक हो जाँय तो विजातीय लोगो को इस ओर आँख उठा कर देखने का साहस भी न हो। किन्तु ऐसा होने कहाँ दिया जा रहा है। लोग और राजनेता अपने मान अपमान और स्वार्थ को लेकर, खास तौर से वोट प्राप्त करने हेतु फूट डालो और राज करो की नीति को अपनाते हुए जातियो को सगठित होने से रोक रहे है। एकीकरण की प्रक्रिया प्रारभ तो हुई है किन्तु एक दूसरे को आत्मसात करने में प्रोत्साहन नही मिल पा रहा है। पिछडे हुओ को गले लगा लेना और अपने में दूसरी जातियो को आत्मसात कर लेने में ही भारत का भला है।"

विश्राम गृह मे लगभग ग्यारह बजे श्रीदाता का पदार्पण गुरुद्वारे की जोगेन्द्र धर्मशाला में हुआ। यह धर्मशाला इतनी वडी है कि इस में हजारो यात्री एकसाथ सुविधापूर्वक ठहर सकते है। नान्देड गुरु गोविन्द सिह का निर्वाण स्थल है जिनकी स्मृति में वहुत वडा गुरुद्वारा है जहाँ भारत भर के सिख ही नही अपितु अन्य हिन्दू भी आने में अपना गौरव मानते है और वडी श्रद्धा से माथा टेकते है। गुरुद्वारे में लगर चलता है जहाँ भोजन के समय जो भी पहुँच जाता है उसे नि शुल्क भोजन मिलता है, चाहे लोग हजारो की सख्या में क्यो न हो। ठहरने की व्यवस्था भी नि शुल्क ही है।

श्रीदाता दोपहर के समय गुरुद्वारे में पधारे। द्वार उस समय वन्द थे। द्वार में ताडियो के किवाड है अत भीतर की सारी वस्तुएँ वाहर से देखी जा सकती थी। वहा से ही ग्रन्थ साहिव को नमन कर लगर देखने पधार गये। एक वृद्ध सिख आगे वढा। उसने श्रीदाता का स्वागत किया और वडे प्रेम से वहा की व्यवस्था वताने लगा। उसने श्रीदाता व साथ वाले भक्तो को भोजन का वडा

आग्रह किया। श्रीदाता ने हाथ जोड़ और यह कह कर कि सब आपकी कृपा है मना कर दिया। व्यवस्थापक जी ने भोजन बनाने की विधि से लेकर भोजन करने की विधि तक सारी व्यवस्था का विवरण विशुद्ध तरीके से दिया। व्यवस्थापक जी को धन्यवाद देकर श्रीदाता पुनः गुरुद्वारे पर आ गये। फिर संध्या के समय आने का विचार कर धर्मशाला में पधार गये।

सन्ध्या समय पुनः श्रीदाता का मातेश्वरी जी सहित गुरुद्वारे में पधारना हुआ। जोशी जी, पारीख साहब और हम लोग साथ मे थे। उस समय भारी भीड़ थी अतः दूर से ही दर्शन कर लिये। किन्तु प्रभु की लीला ही विचित्र है। एकदम भीड़ छट गई और भीतर जाने का मार्ग साफ हो गया। श्रीदाता उस स्थान पर पधारे जहाँ गुरु गोविन्द सिंह जी का मुकुट रखा हुआ था। वहाँ के अधिकारी जी ने श्रीदाता का अभिवादन किया और बड़ी श्रद्धा से माला अर्पित की। थोड़ी देर तक अधिकारी जी से बातचीत होती रही। कुछ समय वहाँ ठहर कर पुनः धर्मशाला में पधारना हो गया। नान्देड़ में गुरुद्वारा क्षेत्र शान्ति का और आनन्द का क्षेत्र है। वहाँ का सभी कार्य उत्तम विधि से होता है। लाखों रुपये लोग यहाँ की व्यवस्था हेतु चुपचाप जमा करा देते हैं। व्यय भी कम नहीं होता। केवल लंगर में ही प्रतिदिन दस हजार रुपयों के लगभग खर्च होते हैं। कोई किसी से एक पैसा भी नहीं मांगता है। जो कुछ किसी को देना होता है वह बन्द सन्दूक में डाल देता है।

पूरा दिन आनन्द से बीता। गोदावरी का किनारा और गुरुद्वारा इन दोनों के अतिरिक्त अन्य दर्शनीय स्थल तो है ही नहीं अतः पूरा दिन ही उसी वातावरण में बिताया। रात्रि को भजन-कीर्तन हुआ। सरस, सुन्दर और आनन्ददायक वातावरण से प्रभावित होकर धर्मशाला में ठहरे हुए अनेक लोग वहाँ आ बैठे। रात्रि के दो बजे तक यही क्रम चलता रहा। ऐसा लग रहा था मानो प्रशान्त सुधा-सागर छलक कर पिपासातुर लोगों के पास उमड़ पड़ा हो।

हैदराबाद में

प्रातः ही नान्देड़ से प्रस्थान हो गया। मार्ग में एक फार्म पर विश्राम कर सायं ५-३० बजे हैदराबाद पहुँच गये। वन विभाग के

विश्राम गृह में पहुँचना था जो हैदराबाद से तीस कि मी दूर है। शहर की सडकों में बसो के फँस जाने से विश्राम गृह में पहुँचते पहुँचते रात्रि के बारह बज गये। इस यात्रा में सबसे बडी विशेषता यह रही कि चाहे किसी स्थान पर जल्दी भी पहुँच जाते किन्तु ठहरने के स्थान पर पहुँचते पहुँचते तो रात्रि के दस से कम नहीं बजते। फिर भी श्रीदाता की महर ही थी कि कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार की असुविधा का अनुभव नही करता था। भोजन आदि की सभी व्यवस्था सुन्दर व शीघ्र ही हो जाती थी।

अगले दिन अर्थात् ३-१-७९ को प्रात उठ कर पास की नदी के स्वच्छ जल में स्नान कर तथा भोजन से निवृत्त होकर वहाँ से प्रस्थान किया। हैदराबाद आंध्र प्रदेश की राजधानी है। इसकी स्थापना सन् १५९० ई में गोलकुण्डा के सुल्तान मुहम्मद कुली कुतुबशाह द्वारा हुई थी। सुल्तान की प्यारी पत्नी भाग्यवती के नाम से पहले इस नगर का नाम भाग्य नगर रखा गया था। बाद में दक्षिण हैदराबाद के नाम से प्रसिद्ध हो गया। भारत के नगरो में इसका स्थान पाँचवाँ है। सिकन्दराबाद और हैदराबाद मिल कर बडा शहर हैदराबाद हो गया। इसकी जनसख्या सतरह लाख के लगभग है। मूसी नदी इसके चरण पखारती है। अनेक विशाल भवनो से यह शहर भरा पडा है। यहाँ कई दर्शनीय स्थान है जिनमें नेहरू जियोलोजिकल गार्डन, सालारजग म्यूजियम, चारमीनार आदि मुख्य है। सर्वप्रथम नेहरू जियोलोजिकल गार्डन के बाहर पहुँचे। वह प्रात ८-३० बजे से साय ५-३० बजे तक खुला रहता है। इसमें अनेक प्रकार के पशु और पक्षी है। उनके लिए उनकी प्रकृति के अनुसार ही अलग अलग घर बनाये गये है। बाग का घेरा मीलो तक है। इसे देखते देखते काफी समय लग गया। इस गार्डन और यहाँ की व्यवस्था को देखकर लोग प्रभावित हुए बिना नही रह सके। श्रीदाता ने स्वय अपने श्रीमुख से इसकी व्यवस्था की प्रशसा की।

वहाँ से चार-मीनार देखने गये। सचमुच ही वह देखनेलायक है। सुन्दर है तथा लोगो की भारी भीड से युक्त। वहाँ से सालारजग

म्युजियम में पहुँचे। श्रीदाता तो वाहर ही विराजे रहे। अन्य लोग देखने गये। म्युजियम देखने योग्य है। यह भारत का ही नहीं एशिया का सर्वश्रेष्ठ म्युजियम वताया जाता है। इसका भवन विशाल है जिसमें ३५ वड़े वड़े कक्ष हैं। इसमें देश-विदेश की विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का सुन्दर संग्रह है। इसमें चित्रकला, मूर्तिकला, काच की चित्रकारी आदि अनेक कलाओं का संग्रह है। प्राचीन और अर्वाचीन दोनों प्रकार की कलाओं के नमूने इसमें देखे जा सकते हैं। वड़ा ही सुन्दर संग्रह है। इसको भली प्रकार से देखने में तो कई दिन चाहिये। हम लोग तो शीघ्रता में थे फिर भी कुछ समय तो लगा ही।

श्री शैलम

वहाँ से ठीक पाँच वजे श्री शैलम् के लिए रवाना हुए। वसों की गति सामान्य होने से रात्रि के १२-३० वजे वहाँ पहुँचे। मार्ग में कृष्णा नदी पर वन रही वृहद योजना को देखी। नदी के दोनों ओर ऊँची ऊँची पहाड़ी घाटियाँ हैं। जिनकी उतराई एवं चढ़ाई वड़ी ही विकट है। निर्माण का कार्य प्रगति पर था व रोशनी की इतनी सुन्दर व्यवस्था थी कि वहाँ चल रहे कार्य को भली प्रकार से देखा जा सकता था। वहां के कार्य को देखकर दिमाग ही चक्कर खाने लगा। किस प्रकार विज्ञान की सहायता से मनुष्य ने प्रकृति पर विजय पाना प्रारंभ किया है, इसका वह निर्माण कार्य, प्रमाण है। कहते हैं कि इस योजना के पूर्ण होने पर भारत में इसका दूसरा नम्वर होगा। इस निर्माण कार्य को देखकर इतनी प्रसन्नता हुई कि दिनभर की थकावट दूर हो गई। नदी गहरी है और उसके पानी में वल्वों का प्रकाश प्रतिविम्वित हो रहा था, जो ऐसा लग रहा था मानो एक विस्तृत चमकदार हीरे-पन्ने से जड़ी हुई जरीदार जाजम डाल दी गई हो। इसे देखकर मनमयूर नाच उठा। हँसी-मजाक के वातावरण में श्री शैलम पहुँचे। पारीख साहव ने फोन द्वारा कमरों का आरक्षण करा लिया था अतः आवास सम्वन्धी किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हुई। रात्रि को खा-पीकर सो गये।

प्रात श्रीदाता शिखरेश्वर के दर्शन करने मन्दिर में पधारे। अन्य कुछ लोग साथ थे। कुछ लोग पहले ही दर्शन कर आये थे जो भोजन आदि की व्यवस्था में लग गये। श्री शैल पर मल्लिकेश्वर नामक द्वितीय ज्योतिर्लिङ्ग है। स्कन्द-पुराण में कहा गया है कि विवाह की बात को लेकर कुमार (स्कन्द) रुष्ट होकर श्री शैल पर आकर रहने लगे किन्तु उनसे पिता का वियोग सहन नही हुआ। अन्त में विह्वल होकर उन्होने पिता का स्मरण किया, तब कैलाश छोडकर लिङ्ग रूप में पुत्र से मिलने की इच्छा से वहाँ आये थे। अन्य स्थानो और यहाँ में अन्तर यह है कि दर्शन करने वाला साष्टाग प्रणाम करते वक्त अपना सिर लिङ्ग पर टेकता है। यह लिङ्ग द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से एक है। यह स्थान शकराचार्य जी द्वारा स्थापित ५१ शक्ति पीठो में से एक है। मातेश्वरी जी ने एव श्रीदाता ने बडे प्रेम से भगवान शकर के दर्शन किये। वहाँ से माँ पार्वती के मन्दिर में पधारे। वहाँ की पवित्रता और शान्ति अनुभव करने की वस्तु थी।

श्री शैलम् घोर जगल में है, जिसमें कहा गया है कि कई जगली हिंसक पशु रहते हैं। पास ही नीचे कृष्णा नदी है जिसे यहाँ के लोग पाताल गगा कहते हैं। यहाँ का मन्दिर दक्षिण के मन्दिरो के ढग का प्राचीन मन्दिर है। मन्दिर के चारो ओर एक विशाल कोट है जिसमें चारो दिशाओ में चार द्वार हैं जिन्हें यहाँ की बोली में गोपुर कहते हैं। गोपुर भी मन्दिर की तरह ही कला-पूर्ण हैं। भीतर की ओर एक प्राकार और है जिसमें श्री मल्लिकार्जुन का निज मन्दिर है। शिवलिङ्ग आठ अँगुल की ऊँचाई का है जो पत्थर के अनघड अरघे में विराजमान है। मुख्य द्वार के सम्मुख सभा द्वार है जिसमें नदी की विशाल मूर्ति है। द्वार के भीतर नन्दी की एक छोटी मूर्ति और है। श्रीदाता कुछ देर वहाँ विराजे रहे फिर बाहर पधार गये। कुछ देर बाद पुन पधारना हुआ। श्री पारीख साहब आदि ने बताया कि शिवलिंग के पास कान लगाने से पानी बहने की सी आवाज आती है। कहा जाता है कि वहाँ भ्रामरी शक्ति का निवास है।

विश्राम स्थल पर आकर श्रीदाता विराज गये। भोजन तैयार नहीं हुआ था अतः प्रवचन चल पड़ा। श्रीदाता ने द्वैत और अद्वैत की व्याख्या करते हुए बताया कि द्वैत में जो आनन्द है वह अद्वैत में नहीं है। द्वैत में विरह है, वेदना है और कठोरता है। विना तड़पन के आनन्द नहीं। कठोरता में शक्ति निहित है जिसने शक्ति सहन कर ली उसको शक्ति प्राप्त हो जाती है। उपस्थित व्यक्तियों में से एक ने जानना चाहा, "वन्दे के सभी कार्य गुरु करता है तव वन्दे के पीछे लगन का प्रतिवन्ध क्यों?" इस पर श्रीदाता ने हँस कर कहा, "दाता सामने आकर कुछ नहीं करता है। वह तो परदे के पीछे रहता है। सभी कार्यों का कर्ता वही है किन्तु परदा आवश्यक है। हमें तो मुरली वजाने वाला ही चाहिए। इस चराचर में जितने जीव हैं उनमें उसकी शक्ति ही की मुरली वज रही है। तेरे घर का तूं ठाकर, मेरे घर की मैं ठाकरड़ी। द्वैत आवश्यक है। द्वैत विना आनन्द कौन ले।"

"मीरा को राणा ने सताया।" राणा में कौन था? वही तो था और मीरा में भी वही था। यह तो दाता की ही लीला थी। वह मीरा के 'मैं' को मारना चाहता था इसीलिये राणा के रूप में सामने आया। जव तक 'मैं' नहीं मरेगा तव तक उसकी प्राप्ति नहीं होगी। अतः गुरु तो गुरु है।" इस तरह प्रवचन होता रहा। प्रसंगवश नरसी, चैतन्य, गोपियों आदि के उदाहरण देकर अपनी वात की पुष्टि की। लोग वड़े प्रभावित हुए।

श्री शैलम् से २ वजे प्रस्थान किया गया। पश्चिम की ओर दो मील चले होंगे कि भ्रमरा देवी का मन्दिर आया। वहाँ अम्वाजी की भव्य मूर्ति है। वहाँ से आगे चले। मार्ग विकट था और उतार था। चारों ओर का दृश्य वड़ा ही मनमोहक था। प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द लेते हुए डोरवाला गाँव में पहुँचे। छोटी वस में पंक्चर हो जाने से वहाँ रुकना पड़ा। श्रीदाता हाईस्कूल के आँगन में स्थित एक नीम के नीचे जा विराजे। कुछ लोगों को छोड़ अन्य सभी श्रीदाता के पास जा वैठे। सम्प्रदायवाद सम्वन्धी वातें चल पड़ी। श्रीदाता का फरमाना था कि यह सम्प्रदायवाद अनुयायियों को

मूल से हटा कर पतन के गर्त में डाल देता है। बस के तैयार होने पर वहाँ से चल पडे। विडली गाँव के वाहर दालमील में ठहर कर भोजन किया व आगे वढ गये। रात्रिभर चलते रहे। भोर होते होते जगल मे एक स्थान पर शौचादि कार्यो के लिए ठहर गये। वर्षा की वजह से सडक के दोनो ओर पानी ही पानी था अत निपटने में किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं हुई। वस में वैठते वैठते श्रीदाता ने फरमाया, "आदमी कितना हरामी है। वह अपने लाभ के लिए दूसरो को सताता है। वैसे तो जीव, जीव का भोजन है किन्तु अन्य जीव तो भूख लगने पर खाते है किन्तु यह मानव तो विना भूख के ही खाता है। अर्थात् दूसरो को सताता है।"

श्री बालाजी

वहाँ से रवाना होकर तिरुपति की ओर चल पडे। आठ वजे वहाँ पहुँच कर धर्मशाला में जा ठहरे। तिरुपति वाला जी के लिए टिकिटो की व्यवस्था हो गई अत वहाँ जाने हेतु वसो में जा वैठे। वेंकटाचल पर्वत पूरा का पूरा भगवत् रूप माना जाता है। इसी पर्वत पर वाला जी का विशाल और सुन्दर मन्दिर है। पर्वत पर वाला जी तक पैदल जाने का मार्ग सात मील लम्वा है जिसमें पाँच मील की कठिन चढाई है। दूसरा मार्ग वस का है। जिसपर देवस्थान ट्रस्ट की वसे चलती हैं। वस स्टेण्ड पर भारी भीड रहती है। हम लोग ठीक एक वजे वस में रवाना हुए। धर्मशाला से दो मील चलने पर चढाई शुरू हुई। जहाँ चढाई प्रारभ होती है वहा कपिल तीर्थ है। यहाँ एक छोटा सा सरोवर हे जिसकी पूर्व दिशा की पाल पर कपिलेश्वर का मन्दिर वना है। वेंकटाचल को तिरुपलै भी कहते हैं। कहते हैं कि भगवान शेष जी यहाँ पर्वत रूप में स्थित हैं। इसीलिए इसे शेषाचल भी कहते हैं। कथा प्रचलित है कि प्रह्लाद और राजा अम्वरीष इस पर्वत को नीचे से ही प्रणाम कर चले गये और इसको भगवान का स्वरूप जान कर ऊपर नहीं चढे। श्री रामानुजाचार्य पर्वत पर दण्डवत करते हुए गये थे। पर्वत के नीचे पहला गोपुर वना है जहाँ वालाजी की पादुका के चिह्न हैं। मार्ग के दोनो ओर घोर जगल है किन्तु भय की कोई वात नहीं।

तिरु का अर्थ है श्रीमान और मलै का अर्थ है पर्वत। अर्थात् श्रीयुत पर्वत और वैंकट का अर्थ पापनाशक है। बस का मार्ग १५ मील लम्बा जो घुमावदार पहाड़ी पर होकर जाता है। पहाड़ी की चढ़ाई विकट किन्तु सुन्दर है। घनी पहाड़ियाँ, हरे जंगल, बिखरे हुए ताल आदि दृश्य यात्रियों के मन को मोहित किये बिना नहीं रहते। बसें बड़ी तेज गति से चलायी जा रही थी, विकट चढ़ाई का ड्राईवरों पर कोई प्रभाव नहीं था। बस को मन्दिर तक पहुँचने में आधा घण्टा लगा।

तिरुमलै पर अच्छा बाजार है। वहाँ धर्मशालाएँ भी अनेक हैं। पुष्कर की तरह वहाँ भी मुण्डन संस्कार प्रधान कृत्य माना जाता है। यहाँ केस मुण्डन का इतना महात्म्य है कि सौभाग्यवती स्त्रियाँ भी मुण्डन करवाती हैं। यहाँ केसों की अच्छी आय है। श्रीदाता वहाँ के वातावरण को देखते हुए धीरे धीरे चलकर बालाजी के मन्दिर के पास पहुँचे। अपार भीड़ थी। बालाजी के मुख्य दर्शन तीन बार होते हैं। पहला दर्शन विश्वरूप कहलाता है। जो प्रातःकाल होता है। दूसरा मध्याह्न में व तीसरा रात्रि को होता है। इनके अतिरिक्त भी अन्य दर्शन हैं जिनके लिए विभिन्न शुल्क निश्चित है। वहाँ इतनी भीड़ होती है कि पंक्ति में खड़े होने वाले दर्शक को घण्टों प्रतीक्षा करनी पड़ती है। कभी कभी तो दर्शन करने में दो-दो दिन लग जाते हैं। पंक्ति के लिए स्थान लम्बा है और हर प्रकार की सुविधाओं से युक्त है।

श्री बालाजी का मन्दिर तीन परकोटों से घिरा हुआ है जिन पर स्वर्ण कलश सहित गोपुर बने हैं। स्वर्गद्वार के सामने तिरुमहामण्डपम् नामक मण्डप है। एक सहस्र स्तम्भ मण्डप भी है। मन्दिर के सिंह द्वार को 'पड़िकावलि' कहते हैं। इस द्वार के भीतर बालाजी के भक्त नरेशों और रानियों की मूर्तियाँ बनी हैं। प्रथम द्वार और द्वितीय द्वार के मध्य की प्रदक्षिणा में एक 'विरज' नामक कुआँ है। कहते हैं कि विरजा नदी की धारा इस कूप में आती है। इसी प्रदक्षिणा में पुष्प कूप है जिसमें बालाजी पर चढ़े हुए पुष्प आदि डाले जाते हैं। द्वितीय द्वार को पार करने पर जो प्रदक्षिणा है

उसे 'विमान' प्रदक्षिणा कहते हैं। उसमें योग नृसिंह, वरदराज स्वामी, रामानुजाचार्य, सेवापति निलय, गरुड और बहुल मालिका के मन्दिर हैं। तीसरे द्वार के भीतर बालाजी के निज मन्दिर के चारों ओर प्रदक्षिणा है। यह मार्ग वर्ष में एक बार ही खुलता है। बालाजी के मन्दिर के सामने स्वर्ण मण्डित स्तम्भ है। जिसके आगे सभामण्डप है। द्वार पर जय-विजय की मूर्तियाँ हैं। एक ओर बन्द हौज है जहाँ भेंट चढाई जाती है। जगमोहन मे मन्दिर के भीतर चार द्वार पार करने पर पाँचवे द्वार के भीतर बालाजी की पूर्वाभिमुख श्याम मूर्ति है जिसके हाथो में शख, चक्र, गदा और पद्म है। मूर्ति की ऊँचाई लगभग सात फीट है। बालाजी के दोनो ओर भूदेवी और श्रीदेवी की मूर्तियाँ है। नाथद्वारे की तरह यहाँ भी प्रसाद बिकता है।

भीड में प्रवेश कर मन्दिर में जाना असभव सा था अत पारीख साहब ने वहाँ के व्यवस्थापको से मिल कर टोली में जाने की व्यवस्था कर दी। श्रीदाता का नम्बर बाद की टोली में रखा गया। अत इसी बीच श्रीदाता वराह मन्दिर की ओर पधार गये। बालाजी के पास ही स्वामी पुष्करणी नामक सरोवर है जो बडा पवित्र माना जाता है। कथा प्रचलित है कि इसे गरुड जी वैकुण्ठ से बालाजी के स्नानार्थ ले आये थे। श्रीदाता ने पुष्करणी में हाथ पैरो का प्रक्षालन किया। श्रीदाता की देखादेखी अन्य लोगो ने भी ऐसा ही किया। सब लोग पुष्करणी के जल को मस्तक पर चढा कर वराह मन्दिर में गये। वहा ऐसा नियम प्रचलित है कि बालाजी के दर्शन करने के पहले भगवान वराह के दर्शन करना चाहिये। शायद इसीलिए श्रीदाता का यहाँ पधारना हुआ। वराह भगवान के पास ही नवीन श्रीकृष्ण मन्दिर है जिसमें श्री राधा और कृष्ण की सुन्दर मूर्तियाँ है।

वहाँ से लौट कर श्रीदाता बालाजी के दर्शन हेतु पधारे। भीड के कारण श्रीदाता शीघ्र ही वापिस पधार गये। प्रात भोजन नही हुआ अत अनेको ने वहीं दाल भात खा लिया। मन्दिर में ही दाल भात की सुन्दर व्यवस्था थी। श्रीदाता एक बस में कुछ व्यक्तियो

को साथ लेकर धर्मशाला के लिए लौट पड़े। लौटने का मार्ग अलग था।

वालाजी के तिरुपति में आने की विचित्र कथा है। आकाश-राज के नाम से यहाँ एक वड़ा धर्मात्मा राजा हुआ था जिसके पद्मावती नामक कन्या थी जो लक्ष्मी का अवतार थी। उस कन्या के वरण हेतु भगवान विष्णु को यहाँ पधारना पड़ा। पधारना ही नहीं पड़ा वरन् सभी की प्रार्थना पर स्थायी रूप से यहीं निवास करना पड़ा। इस क्षेत्र के परम प्रिय देव होने से ही इनका नाम वालाजी पड़ा। देवी पद्मावती का मन्दिर पहाड़ी के नीचे मैदान में है।

दिनांक ६-१-७९ को प्रातः वहां से प्रस्थान कर सीधे ही पद्मावती जी के मन्दिर में पहुँचे। प्रातःकाल होने से मन्दिर यात्रियों रहित था। इसलिए वहाँ के दर्शन ठीक प्रकार से हो सके। पद्मावती की मूर्ति वालाजी की मूर्ति की तरह ही विशाल है। अन्तर है तो केवल रंग का। वालाजी श्याम वर्ण हैं तो पद्मावती जी गौर वर्ण में हैं। उसी आहाते में एक छोटा सा मन्दिर है जिसमें वालाजी की प्रतिमा है। प्रतिमा छोटी किन्तु सुन्दर व वड़ी आकर्पक है। वालाजी के पास ही कृष्ण का मन्दिर है। इस मन्दिर में जितनी भी प्रतिमाएँ हैं वे वड़ी भव्य व चित्ताकर्पक हैं। दर्शनोपरान्त श्रीदाता द्वार के पास आँगन में वैठ गये। पूरे आँगन में पत्थर के चौके जड़े हुए हैं। वहाँ का वातावरण स्वच्छ व शान्त था। यहाँ भी चावल का ही प्रसाद दिया जाता है। श्रीदाता अपने श्रीमुख से वहाँ की मनोहरता का वर्णन करते रहे।

कांचीपुरम

वहाँ से कांचीपुरम की ओर वसों का रुख हो गया। तूफान के कारण सड़कें क्षत-विक्षत थी, अतः गति धीमी ही रही। एक स्थान पर भोजन की व्यवस्था कर तथा भोजन कर सायं पाँच वजे कांचीपुरम पहुँचे। मार्ग इतना खराव था कि सभी वुरी तरह थक गये। कांचीपुरम सात पुरियों में से एक है। ये सात पुरियें हैं- कांचीपुरम, अयोध्या, मथुरा, द्वारावती, माया, काशी और अवन्तिका। काञ्ची हरि-हर की पुरी है। इसके दो भाग हैं। एक भाग शिव काञ्ची

और दूसरा भाग विष्णु काञ्ची के नाम मे विख्यात है। काञ्ची भी ५१ शक्तिपीठो में से एक है।

एकाम्रेश्वर का मन्दिर ही शिव काञ्ची का मुख्य मन्दिर है। मन्दिर वडा विशाल है। मन्दिर के दक्षिण द्वार वाले गोपुर के सम्मुख एक मण्डप है जिसके स्तम्भो में मुन्दर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। मन्दिर के दो बडे बडे घेरे हैं। पूर्व के घेरे में दो भाग हैं। प्रथम भाग में प्रधान गोपुर है जो दस मजिल ऊँचा है। यहाँ द्वार के दोनो ओर क्रमश सुब्रह्मण्यम तथा गणेश जी के मन्दिर हैं। दूसरे भाग में शिव गगा सरोवर है जिसके दक्षिण के एक मण्डप में श्मशानेश्वर शिव-लिग है। मुख्य मन्दिर में तीन द्वारो के भीतर एकाम्रेश्वर शिवलिग स्थित है। लिग श्यामवर्ण है। कहा गया कि यह वालुका निर्मित है। लिग के पीछे श्री गौरीशकर की युगल मूर्ति है। यहाँ शिव-लिग पर जल नही चढता है। चमेली के सुगन्धित तेल मे अभिषेक किया जाता है।

मुख्य मन्दिर की दो परिक्रमाएँ हैं। पहली परिक्रमा में गणेश जी, एक सौ आठ शिव-लिग, नदीश्वर लिग, चण्डिकेश्वर लिग तथा चन्द्र-कण्ठ वालाजी की मूर्तिया हैं। दूसरी परिक्रमा में कालिका देवी, कोटि-लिग और कैलाश मन्दिर हैं। कैलाश मन्दिर छोटा सा है जिसमें शिव पार्वती की सोने की मूर्ति है। जगमोहन में ६४ योगिनियो की मूर्तियाँ हैं। एक अलग मन्दिर में पार्वती जी का श्री विग्रह है। एक मन्दिर स्वर्ण कामाक्षी देवी का है। एक मन्दिर में अपनी दोनो पत्नियो सहित सुब्रह्मण्यम् स्वामी की मूर्ति है।

एकाम्रेश्वर मन्दिर के आँगन में एक बहुत पुराना आम्र वृक्ष है जिसकी वजह से ही इसका नाम एकाम्रेश्वर पडा। इस आम के नीचे चबूतरे पर एक छोटे से मन्दिर में तपस्या में लीन कामाक्षी पारवती की मूर्ति है। एक कथा प्रचलित है कि एक बार पारवती जी ने महान् अन्धकार उत्पन्न कर विश्व को भयभीत कर दिया जिससे नाराज होकर भगवान शकर ने उन्हें शाप दे दिया। इसी आम्र वृक्ष के नीचे पार्वती जी ने तपस्या कर भगवान शकर को प्रसन्न कर शाप से मुक्त हुई थी।

दूसरी परिक्रमा में पूर्व वाले गोपुर के पास श्री नटराज और नन्दी की सुनहरी मूर्तियाँ हैं। उस घेरे में नवग्रहादि अनेक देव-विग्रह हैं। मन्दिर इतना विशाल है कि लाखों व्यक्ति इसमें समा सकते हैं। इतना विशाल मन्दिर तो हम लोगों ने पूर्व में नहीं देखा था। अतः इसे देख आश्चर्यचकित हुए विना न रहे। साथ ही कलाकारों की प्रशंसा कर बैठे। मालवाज, चोलों और विजयनगर के राजाओं ने इस मन्दिर का समय समय पर विस्तार किया था। १९२ फीट ऊँचा गोपुर ई. सन् १५०९ में श्री कृष्णदेव राय ने बनाया था। यह मन्दिर तेईस एकड़ भूमि में बना हुआ है। इस मन्दिर, गोपुरम् और मन्दिर के भीतरी भाग में बड़ी कलात्मक मूर्तियाँ हैं जो भिन्न भिन्न कथानकों से युक्त, आकर्षक, प्राचीन संस्कृति की द्योतक, दर्शनीय और यात्रियों के मन को मोहित करने वाली हैं। नन्दी की मूर्ति भी विशाल और नयनाभिराम है।

काञ्ची में कामाक्षी मन्दिर, वामन मन्दिर और सुब्रह्मण्यम मन्दिर भी देखने योग्य है। शिवकाञ्ची से लगभग दो मील दूर विष्णुकाञ्ची है जहाँ अठारह विष्णु मन्दिर हैं जिनमें श्री देवराज स्वामी का मन्दिर मुख्य है। यह मन्दिर भी विशाल है। निज मन्दिर तीन घेरों के भीतर है। इस मन्दिर के पूर्व का गोपुर ग्यारह मंजिल ऊँचा है। गोपुर में प्रवेश करने पर शत स्तम्भ मण्डप है जिसकी निर्माण कला उत्तम है। मण्डप के पास ही सरोवर है। पश्चिम गोपुर के भीतर स्वर्ण मण्डित गरुड़ स्तम्भ है। उसके दक्षिण मे एक मन्दिर में श्री रामानुजाचार्य का श्री विग्रह है। दूसरे घेरे में लक्ष्मी जी का मन्दिर है। इस घेरे के पश्चिमी भाग में भगवान के विविध वाहन हैं। तीसरे घेरे में भगवान देवराज का मन्दिर है। यह मन्दिर एक ऊँचे चबूतरे पर बना हुआ है।

भगवान के निज मन्दिर को विमान कहते हैं। तीन द्वारों के भीतर चार हाथ ऊँची श्री वरदराज की श्यामवर्ण चतुर्भुज मूर्ति है। गले में शालिग्रामों की माला है। परिक्रमा में अनेक देवमूर्तियाँ हैं, मन्दिर की शोभा देखते ही बनती है।

अरुणाचलेश्वर

श्रीदाता ने मन्दिरो एव उनकी कलाओ की भूरि-भूरि प्रशसा की। वहाँ से चल कर तिरुवण्णमलै पहुँचे। समय अधिक हो गया था फिर भी एक मन्दिर में अच्छी व्यवस्था हो गई। वहाँ का वातावरण बडा शान्त था। भोजन तो करना था नही किन्तु भजन की इच्छा हो आयी। श्रीदाता विराज गये और भजन बोले जाने लगे। एक भजन था, 'हमें दाता के चरणो में ले लिया जाय' श्रीदाता ने फरमाया, "आप लोगो के भाव ऊँचे है। जिन पर भगवान की कृपा होती है उनके ही भाव ऐसे जागृत होते है। जिनके भाव ऐसे है मै तो उनका दास हूँ। भाव विना सब बेकार है, बकवास है। अन्दर और वाहर जहाँ देखो वहाँ वही वह है। तिलमात्र भी स्थान खाली नही है। वह सब में लबालब भरा है।" इस प्रकार सत्सग चलता रहा। सत्सग रूपी चाय के मिल जाने से पूरे दिन की थकावट दूर हो गई और तन, मन तरोताजा हो गया।

दिनाक ७-१-७९ ई को प्रात ही अरुणाचलेश्वर के विशाल मन्दिर को देखने का अवसर मिला। यह तो श्रीदाता की महती कृपा थी कि ऐसी ऐसी दिव्य भूमियो के दर्शन करने का सौभाग्य मिला। बडे भाग्यशाली है हम लोग। अरुणाचल (तिरुवण्णमलै) पर्वत के नीचे पर्वत से लगा हुआ यह मन्दिर है। कहा जाता है कि इस मन्दिर का गोपुर दक्षिण भारत का सब से चौडा गोपुर है। यह मन्दिर लगभग २६ एकड भूमि में बना है। इस विशाल मन्दिर में नौ गोपुर है जिनमें चार दस मजिल ऊँचे मन्दिर के चारो ओर है। प्रधान गोपुर की ऊँचाई दो सौ सत्ताईस फीट है। मन्दिर के सात परकोट है। बृहत गोपुर में प्रवेश करते ही गणपति के दर्शन होते हैं। निज मन्दिर तक पहुँचने के पूर्व तीन आगन मिलते है। पहले आगन के दक्षिण भाग में एक सरोवर है। सरोवर के घाट पर सुब्रह्मण्यम स्वामी का मन्दिर है। आगे छोटा गोपुर पार करने पर दूसरा आगन है जिसके दक्षिण भाग में पीने के पानी का सरोवर है। सरोवर के अतिरिक्त इस आँगन में कई मण्डप हैं जिनमें देवताओ की मूर्तियाँ है। एक गोपुर और पार करने पर तीसरा आँगन आता है

जिसमें अरुणाचलेश्वर का निज मन्दिर है। निज मन्दिर में पाँच द्वारों के भीतर शिवलिंग प्रतिष्ठित है। मन्दिर की परिक्रमा में पार्वती, गणपति, नवग्रह, दक्षिणामूर्ति, शिव भक्तगण, नटराज आदि देवतागण विराजमान हैं। निज मन्दिर के उत्तर में उसी घेरे में श्री पार्वती जी का बहुत बड़ा मन्दिर है। इस मन्दिर में कई द्वारों के भीतर पार्वती जी की भव्य मूर्ति है। मन्दिर के उत्तर-पूर्व कोने में सहस्त्र स्तंभ मण्डप है। उसके अन्दर पाताल-लिंगेश्वर सन्निधियाँ हैं। कहा जाता है कि महर्षि रमण ने अज्ञात रूप से आठ वर्ष तक यहीं तपस्या की थी। मन्दिर की विशालता एवं वहाँ की शान्ति और कलाकृति को देख कर सभी के मन मयूर नाच उठे।

पास ही अरुणाचल पर्वत है जो बड़ा पवित्र माना जाता है। कैलाश के तीन स्थापित शिखरों में एक अरुणाचल भी है, जिसे नन्दीश्वर ने स्थापित किया था। पर्वत के ऊपर एक शिला में चरण चिन्ह बने हुए हैं। ऊपर सुब्रह्मण्यम स्वामी और देवी की मूर्तियाँ हैं। ऐसा विश्वास है कि लोकहित की दृष्टि से साक्षात् भगवान शंकर ही पर्वत रूप में प्रकट होकर निवास कर रहे हैं।

अरुणाचलेश्वर के दर्शन कर अरुणाचलम की परिक्रमा में ही बने महर्षि रमण के आश्रम में पहुँचे। महर्षि रमण बड़े प्रसिद्ध सन्त हुए हैं ऐसा श्रीदाता बहुधा फरमाया करते हैं। इन्होंने अरुणाचलम् में ही भिन्न भिन्न स्थानों पर कठोर तप तथा योगसाधना की थी। जहाँ जहाँ उन्होंने तप किया, वहाँ वहाँ आज भी उनके चित्र विद्यमान हैं। आश्रम सड़क से लगा हुआ है। आश्रम में महर्षि रमण द्वारा पूजित देवी की भव्य मूर्ति मुख्य मन्दिर में प्रतिष्ठित है। वहीं महर्षि जी की मूर्ति भी है। मुख्य मन्दिर के पास ही आश्रम के घेरे में एक स्थान पर उनके निर्वाण का स्थान तथा दूसरे कमरे में उनकी समाधि है। पास ही एक कमरे में उनके माताजी की समाधि है। आश्रम के एक अधिकारी ने श्रीदाता के साथ होकर पूर्ण विवरण सहित आश्रम का परिचय कराया। कुछ पुस्तकें भी भेंट की जिनको मूल्य देकर खरीद ली गयी। आश्रम में

एक ध्यान कक्ष भी है जहाँ साधक बैठ कर ध्यान का अभ्यास करते हैं। वहाँ का वातावरण सुखद, शान्त व आनन्ददायक है।

श्री रगम्

वहाँ से चल कर 'उल उन्दर पीठ' के विश्राम गृह में विश्राम किया एव भोजन कार्य मे निवृत्त हुए। शाम होते होते श्री रगम् पहुँचे। बागड धर्मशाला में ठहरने की व्यवस्था हुई। धर्मशाला मन्दिर के पास ही है और दर्शन का समय था अत श्रीदाता दर्शनार्थ चल पडे।

श्री रगम् मन्दिर प्राचीन मन्दिर है जो कावेरी नदी के किनारे स्थित है। कहते हैं कि एक समय कावेरी में बाढ आयी जिससे श्री रगम् मन्दिर बालू से ढँक गया। किलिकण्ड चौलन् नामक राजा ने बालू को हटा कर इस मन्दिर को पुन स्थापित किया। अन्य चौलवशी राजाओ ने भी इसके विस्तार में योग दिया। एक धनी व्यक्ति की सेवाएँ भी श्री रगजी ने उसकी अनन्य भक्ति को देख कर स्वीकार की जिसके प्रमाण स्वरूप परिक्रमा का मुख्य द्वार 'आर्य वट्टाल' के नाम से जाना जाता है। मुसलमान शासन काल में इस मन्दिर को काफी क्षति पहुँचाई गयी। श्री रगजी की मूर्ति को वे दिल्ली तक ले गये। वैष्णव आचार्यों के परिश्रम से पुन मूर्ति की स्थापना की गई।

विजयनगर के राजाओ ने भी इस मन्दिर का बडा विस्तार किया। इस मन्दिर का विस्तार लगभग तीन मील की परिधि में है। नगर का सारा का सारा प्रदेश मन्दिर के घेरे के भीतर आता है। इतना विशाल मन्दिर भारत में अन्यत्र नही है। श्री रगम् जी का मन्दिर कावेरी की दो धाराओं के मध्य स्थित है। ये धाराएँ मन्दिर से पाँच मील ऊपर से पृथक होकर मन्दिर से बारह मील आगे जाकर मिल जाती है। श्री रग मन्दिर का विस्तार दो सौ छासठ बीघे का बताया जाता है। इसके सात प्राकार और अठारह गोपुर हैं।

मन्दिर के प्रथम घेरे में बाजार, दूसरे घेरे में पण्डो के मकान, तीसरे घेरे में ब्राह्मणो के घर, चौथे घेरे में मण्डप, पाँचवे घेरे में

गरुड़ मण्डप, स्वर्ण मण्डित गरुड़ स्तम्भ, सरोवर, त्रिशाल लक्ष्मी मन्दिर, कल्पवृक्ष, श्रीराम मूर्ति, श्री वैकुण्ठनाथ भगवान का प्राचीन मन्दिर और कम्व-मण्डल आदि, छठे घेरे में द्वार और मण्डप और सातवें घेरे में निज मन्दिर है। मण्डपों में एक सहस्र स्तम्भ मण्डप भी है जिसके ९६० स्तम्भ हैं। मण्डप वड़े सुन्दर और अनेक चित्रों एवं मूर्तियों से युक्त हैं। मन्दिर का शिखर स्वर्ण-मण्डित है। मन्दिर के पीछे की छत में अनेक देव मूर्तियाँ हैं। निज मन्दिर के पीछे एक मन्दिर और एक कूप है। इस मन्दिर में आचार्य श्री रामानुज, विभीषण और हनुमान जी के श्री विग्रह हैं। इसके पीछे भूमि में एक पीपल का टुकड़ा जड़ा हुआ है। सातों प्रकार सातों लोकों के परिचायक हैं। श्री रंगजी के निज मन्दिर में शेष शैय्यापर शयन किये हुए श्याम वर्ण की श्री रंगनाथ भगवान की विशाल चतुर्भुजी मूर्ति दक्षिणाभिमुख स्थित है। भगवान के मस्तक पर शेष जी के पाँच फणों का छत्र है। वहुमूल्य वस्त्रों से सुसज्जित यह मूर्ति वड़ी भव्य है। भगवान के समीप श्री लक्ष्मी जी तथा विभीषण जी वैठे हैं। श्रीदेवी, भूदेवी आदि की उत्सव मूर्तियों का स्थान भी वहीं है। मन्दिर का विमान स्वर्ण मण्डित है और ॐ के आकार का है। मन्दिर के चार कलश चार वेदों के परिचायक हैं। स्वर्ण विमान में भगवान श्री वासुदेव जी की भव्य मूर्ति है।

मन्दिर के वाहर केरल की एक भक्त मण्डली लोक-नृत्य कर रही थी। सभी नृतक समवय के हृष्टपुष्ट व्यक्ति थे। उनका भजन के साथ नृत्य श्रीदाता को वड़ा पसन्द आया। वोली तो समझ में नहीं आयी। उनके हाव-भावों से अवश्य उनके वोल का अर्थ निकाला जा सकता था। कुछ देर उनका नृत्य देखकर श्रीदाता मन्दिर में पधार गये। उस समय ठीक सात वजे थे। मन्दिर में शोभा-यात्रा का आयोजन होने से भीड़ थी। अन्य मन्दिरों की तरह यहाँ भी दर्शन हेतु टिकिट लेने पड़ते हैं। टिकिटों की दरें भिन्न भिन्न थी। शोभा-यात्रा के कारण निज मन्दिर में भीड़ नहीं थी इसलिए दर्शनों में कठिनाई नहीं हुई। वहाँ का वातावरण शान्त, मधुर और हृदयहारी था। दर्शन करते समय आनन्द का अनुभव हुआ। दर्शन

कर श्रीदाता का पधारना परिक्रमा में हो गया जहाँ शोभा-यात्रा निकल रही थी। शोभा-यात्रा में भीड ज्यादा थी किन्तु दृश्य मनमोहक था। कुछ देर बाद श्रीदाता धर्मशाला में पधार गये। अन्य लोग भी एक एक कर आते रहे।

अगले दिन मन्दिर में उत्सव था अत पुलिस का कडा प्रबन्ध हो गया। बसें हटाने लगे इस पर श्रीदाता ने वहाँ से प्रस्थान की आज्ञा दे दी। पाँचवे घेरे से निकलते निकलते बसें अलग अलग हो गई। बडी बस कावेरी की पुलिया पर जाकर छोटी बस की प्रतीक्षा करने लगी। कावेरी का विस्तृत पाट है और वह बडे वेग से बह रही थी। दृश्य बडा ही मनोरम और आकर्षक था। लोग कुछ देर बस से निकल कर पुलिया पर खडे खडे कावेरी के बहाव का आनन्द लेने लगे। कुछ समय बाद यह सोचकर कि वह कही आगे न चली गई हो, त्रिचनापली तक पहुँच गये। वहाँ इधर उधर चक्कर लगाने पर जब उस बस का पता नही चल पाया तो वापिस लौट पडे। वहाँ वह बस हमारी प्रतीक्षा करती हुई मिल गई।

जम्बुकेश्वर

श्री रगजी के मन्दिर से लगभग एक मील पूर्व की ओर जम्बुकेश्वर का मन्दिर है जो श्री रगजी के मन्दिर से भी पुराना है। श्री रगजी के पूर्व इस द्वीप में जम्बुकेश्वर जी ही थे। इस मन्दिर का विस्तार भी एक सौ बीघे से अधिक ही है। इस मन्दिर में तीन आँगन हैं। पहले घेरे में जो मण्डप है उसमें चार सौ स्तम्भ हैं। आँगन में दाहिनी ओर 'तेप्पाकुलम' नामक सरोवर है जिसमें झरने का पानी आता है। आँगन के बाम भाग में एक मण्डप है। मन्दिर के दूसरे आँगन में सहस्र स्तम्भ मण्डप ओर पास ही छोटा सा सरोवर भी है।

श्रीजम्बुकेश्वर जी का मन्दिर पाँचवे घेरे में है जिसमें लिङ्ग जलप्रवाह के ऊपर स्थित है। जम्बुकेश्वर मन्दिर के पीछे एक चबूतरे पर जामुन का एक प्राचीन वृक्ष है। शायद इसी के कारण इसका नाम जम्बुकेश्वर पडा हो। दक्षिण के मन्दिरो की परम्परा के अनुसार इस मन्दिर के मण्डपो, स्तम्भो आदि पर विभिन्न देवी–

देवताओं की सुन्दर मूर्तियाँ हैं। मन्दिर की परिक्रमा में पाँचमुखी शिव राज-राजेश्वर का मन्दिर है। यहाँ भगवती अम्वा का मन्दिर भी है जिसे वहाँ के लोग अखिलाण्डेश्वरी कहते हैं। गणेश जी आदि के मन्दिर भी हैं। वृषभारूढ़ एक पाद त्रिमूर्ति महेश्वर की एक प्रतिमा स्तम्भ में अंकित है जो वडी भव्य और मनोहारी है। श्रीदाता को वह मूर्ति वड़ी पसन्द आयी। वहाँ से हटने की किसी की इच्छा नहीं थी किन्तु श्रीदाता की आज्ञा से वहाँ से हटना ही पड़ा।

तंजोर का विशाल मन्दिर

वहाँ से तंजोर के लिये चल पड़े। वहाँ पहुँचते पहुँचते ग्यारह वज गये। तंजोर चोल राजाओं द्वारा निर्मित वहुत प्राचीन शहर है। यह स्थान विद्या, धर्म, कला, संगीत, राजनीति और खोज का प्रमुख केन्द्र रहा है। पूर्व में इसका नाम अलका था जहाँ कुवेर ने शिवजी को प्रसन्न करने हेतु तपस्या की थी। यहीं पाराशर मुनि ने भी तपस्या की थी। पाराशर मुनि को तंजा नामक राक्षस ने सताया था। उन्होंने उससे त्रस्त होकर भगवान विष्णु और देवी दुर्गा से रक्षा हेतु प्रार्थना की थी। भगवान विष्णु ने तंजा को और देवी दुर्गा ने अन्य राक्षसों को मार दिया। मरते वक्त तंजा ने प्रार्थना की कि इस शहर का नाम उसीके नाम पर रखा जावे। तभी से इसका नाम तंजोर पड़ गया। चोल राजाओं के शासन काल में इसकी वड़ी उन्नति हुई। उन्होंने अनेक मन्दिर वनवाये। भगवान वृहदेश्वर का मन्दिर राज-राजेश्वर राजाराज प्रथम चोल का ही वनाया हुआ है, इसका निर्माण काल वि. सं. १००३ से वि. सं. १००९ रहा है। यह मन्दिर भी वड़ा विशाल, सुन्दर और आकर्षक है। पूरा मन्दिर ग्रेनेट पत्थर का है। भारत का एकमात्र यही मन्दिर है जो पूरा का पूरा ग्रेनेट पत्थर का वनाया हुआ है। इसका द्वार वड़ा विशाल है जिसमें एक ओर विनायक और दूसरी ओर कार्तिकेय स्वामी की मूर्तियाँ हैं। द्वार धनुषाकार है व मूर्तिकला का सुन्दर व सजीव नमूना है। इस द्वार से प्रवेश कर आगे जाने पर दूसरा द्वार आता है जो १० फीट ऊँचा है। चौड़ा भी वहुत है। इस द्वार को 'कलन्धि कल' द्वार कहते हैं। पास ही 'गज गजाव' द्वार है। वह द्वार तो छोटा है किन्तु स्तम्भों का स्थान देवमूर्तियों ने ले लिया है, जो अत्यन्त

कलापूर्ण है। अन्दर का प्राकार ५०० फीट लम्बा व २५० फीट चौडा है। पूर्व और दक्षिण में यज्ञ-शालाएँ, भण्डार कक्ष और रसोईघर है। पश्चिम और उत्तर की ओर लिंग के रूप में नवग्रहों की मूर्तियाँ हैं और एक सौ आठ शिवलिंग हे। दीवारों पर शिव की ६४ मूर्तियाँ खुदी हुई है। मुख्य द्वार के दोनों ओर गणेश और भैरव के साथ ही साथ दुर्गा की मूर्तियाँ है। उनके सामने सन्तरियों की मूर्तियाँ है, उनमें से प्रत्येक सोलह फीट ऊँची और आठ फीट चौडी एक ही पत्थर की बनी हुई है। द्वार के भीतर संगीत और नृत्य कक्ष तथा अन्य मण्डप है। एक ऊँचे चबूतरे पर विशाल वृहदेश्वर का मन्दिर है जिसमें भगवान शिव की विशाल, बहुत मोटी और भव्य लिंग-मूर्ति है जो नर्मदा से लायी गयी है। शिव-लिंग अति सुन्दर और आकर्षक है। हजार आँखें हो तो भी इसकी सुन्दरता देखना संभव नही। मुनि 'करूर' इसकी तुलना द्वितीय सूर्य से की है जिसकी किरणें हजारो व्यक्तियो से पूजित है। लिंग के नीचे का घेरा चौपन फीट तथा ऊँचाई ६ फीट है। ऊपर का पत्थर २३½ फीट घेराव का नौ फीट ऊँचा है। इस लिंग के समान विश्व में दूसरा लिंग नही है। निज मन्दिर के सम्मुख एक चौकोर मण्डप में एक विशाल नन्दी है जो १६ फीट लम्बा, १३ फीट ऊँचा और ७ फीट चौडा है तथा एक ही पत्थर का है जिसका वजन ७०० मन बताया गया। मन्दिर के आंगन में अन्य देवी-देवताओं के मन्दिर, गो-शाला, सरोवर आदि है। इस मन्दिर में पण्डा-पुजारियों का झगडा नही था न किसी प्रकार का प्रतिबन्ध ही। स्वतंत्र रूप से विचरण करते हुए इस मन्दिर की भव्यता एवं यहाँ की कलाकृतियो को देखते रहे। समय तो अधिक लगा ही।

तंजोर में ही 'अमृत-वापिका सरसी' है जिसमें महर्षि पाराशर ने अमृत की कुछ बून्दे डाल दी थी। वह बडा पवित्र माना जाता है।

मीनाक्षी देवी

तंजोर से मदुराई पहुँचे। मदुरे पुरानी तामिल संस्कृति का महान् स्थान और दक्षिण पाण्ड्य देश की राजधानी रहा है। यहाँ

श्री मीनाक्षी देवी और सुन्दरेश्वर का विश्व विख्यात मन्दिर है। कहा जाता है कि यहीं देव शक्ति ने पांड्य राजा की पुत्री होकर अवतार लिया था। कुछ समय राज्य करने के वाद उसने भगवान शिव से विवाह कर लिया। काव्य परिपाटल मे इस नगर की तुलना कमल से की है। मन्दिर की कमल के फूल के अण्डकोष से और चारों ओर की गलियों की कमल के फूल की पंखुरियों से तुलना की है।

मदुरा (मदुराई) नगर के मध्य भाग में मन्दिर स्थित है जो तेईस वीघा भूमि में वना हुआ वताया गया। इसमें चारों ओर चार मुख्य गोपुर हैं। छोटे वड़े मिला कर पूरे मन्दिर में सत्ताईस गोपुर हैं। सवसे ऊँचा दक्षिण का गोपुर है व सवसे सुन्दर पश्चिम का। वड़े गोपुर ग्यारह मंजिल ऊँचे हैं।

पूर्व दिशा का गोपुर सामान्यतया वन्द रहता है। इसके पीछे एक कथा है। कहते हैं कि जव इन्द्र को वृत्रासुर वध के कारण व्रह्म हत्या लगी तव इन्द्र इसी द्वार से आये थे। इन्द्र तो सरोवर के कमल नाल में स्थित हो गया और व्रह्म हत्या इसी गोपुर में स्थित होकर उसकी प्रतीक्षा करती रही। इसीलिए यह गोपुर अपवित्र माना जाने लगा और इस गोपुर के पास ही दूसरा गोपुर वना लिया गया।

मन्दिर में प्रवेश करते ही नगार मण्डप आता है, फिर अष्टशक्ति मण्डप हैं जिसमें स्तम्भों के स्थान पर लक्ष्मी की मूर्तियां हैं जो छत का आधार वनती है। यहाँ द्वार है जिसके दाहिने सुब्रह्मण्यम और वायें ओर गणेश जी की मूर्ति है। इसके आगे "श्रीनाक्षीनामकम्" मण्डप है। इस मण्डप के पीछे एक अन्धेरा मण्डप है जिसमें भगवान् विष्णु के मोहिनी रूप, शिव, व्रह्मा, विष्णु तथा अनुसूयाजी की कलापूर्ण मूर्तियाँ हैं। अन्धेरे मण्डप के आगे स्वर्ण पुष्करणी सरोवर है। सरोवर के चारों ओर मण्डप है। इन मण्डपों पर तीन ओर भित्तियों पर भगवान शंकर की चौसठ लीलाओं के चित्र हैं। मन्दिर के सम्मुख के मण्डप के स्तम्भों में

पाचों पाण्डवो की मूर्तियाँ और सिंह की मूर्तियाँ है । पश्चिम भाग के स्तम्भ में एक अद्भुत सिंह की मूर्ति है। सिंह के मुह में एक गोला बनाया गया है जो उँगली डालने पर घूमता है। पत्थर में यह उत्कृष्ट कोटि का शिल्प-नैपुण्य है। पाण्डव मूर्तियो वाले मण्डप में एक मूर्ति ऐसी भी है जिसमें आधा भाग पुरुष का व आधा भाग स्त्री का है। इस मण्डप के सामने ही मीनाक्षी देवी के निज-मन्दिर का द्वार है। द्वार के दक्षिण में एक छोटा सा मन्दिर है जिसमें स्वामी कार्तिकेय की उनकी दोनों पत्नियोसहित मूर्तियाँ हैं। मन्दिर के द्वार पर दोनो ओर पीतल की द्वारपालो की मूर्तियाँ हैं। देवी का विग्रह श्याम वर्ण का है। मन्दिर का शिखर और स्तम्भ स्वर्ण मण्डित हैं। परिक्रमा में देव मूर्तिया हैं। परिक्रमा में ज्ञान-शक्ति, क्रिया-शक्ति और बल-शक्ति की मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

सुन्दरेश्वर मन्दिर तक पहुँचने में मार्ग में गणेश जी का मन्दिर है। वहा प्रवेश द्वार पर मीनाक्षी के मन्दिर की तरह ही द्वारपालो की पीतल की मूर्तियाँ हैं। वहाँ से आगे चलने पर नटराज की ताण्डव करती मूर्ति है। और भी अनेक मूर्तियाँ हैं। यहाँ अनेक मण्डप हैं जहाँ जानवरो, पक्षियो एव अनेक देवो की मूर्तियाँ हैं। चारो ओर चार मीनारे बनी हैं। उत्तर की मीनार से लगे पाँच संगीतात्मक शिला स्तम्भ हैं। प्रत्येक स्तम्भ में बाईस छोटे छोटे स्तम्भ एक ही बड शिलाखण्ड को तराश कर बनाये गये हैं। इसके थपथपाने में बडी मधुर ध्वनि आती है। सुन्दरेश्वर जी का मन्दिर सातवीं सदी में, मीनाक्षी मन्दिर बारहवी सदी में और मीनारे सोलहवी सदी में बनी मालूम होती हैं। मन्दिर बडा विशाल एव शिल्प नैपुण्य से युक्त है। प्रत्येक दर्शन इतना आकर्षक है कि देखने ही बनता है। देखते ही देखते कई लोग श्रीदाता से अलग हो गये। मीनाक्षी मन्दिर क्या एक भूलभूलैया है, एक बार अन्दर जाने के बाद निकलना भारी पडता है। श्रीदाता का मन्दिर से बाहर पधारना हो गया लेकिन कई लोग मन्दिर में रह गये जिन्हें ढूंढ लाना भारी पड़ गया। काफी देर बाद लोग एकत्रित हो पाये। शिल्पकला की दृष्टि से यह मन्दिर भारत की श्रेष्ठतम कृतियो में एक है।

रात्रि विश्राम बांगड धर्मशाला में किया गया। अगले दिन प्रातः ही 'रामेश्वरम्' के लिये प्रस्थान हुआ। मार्ग में वड़ी देर तक मीनाक्षी मन्दिर के सौन्दर्य की वातचीत ही चलती रही। इस क्षेत्र के लोगों के भक्ति-भाव से श्रीदाता वड़े प्रसन्न हुए। कई वार श्रीदाता ने श्रीमुख से कह दिया, "इनके भक्ति-भाव को देखो। ये मेरे दाता को कितना चाहते हैं और प्यार करते हैं।" 'पीरुकुलर' तामिल साहित्य का अद्भुत ग्रन्थ है, मीनाक्षी मन्दिर में ही इसकी रचना की गई थी। दक्षिण भारत में इसकी वड़ी महत्ता है। ग्रन्थ को हम लोगों ने देखा किन्तु तामिल भाषा से अनभिज्ञ होने से वेकार ही रहा। देख कर ही सन्तोष करना पड़ा। मीनाक्षी मन्दिर की कलाकृति और वहाँ का सौन्दर्य हमारे दिमाग में इतना हावी हो गया कि हम लोग इसी सम्वन्ध में वातें करते रहे व भजन-कीर्तन भी भूल गये। १२-३० पर मण्डप कैम्प स्टेशन पर पहुँचे। वहाँ सड़क के दोनों ओर दूर दूर तक नारियल और ताड़ के पेड़ ही पेड़ हैं।

रामेश्वरम्

रामेश्वरम् जाने के लिए मण्डप स्टेशन से रेल में वैठना होता है। मण्डप कैम्प मण्डप से केवल दो मील दूर है। मण्डप में रेल केवल दो मिनिट ही ठहरती है अतः मण्डप कैम्प से ही वैठने का निश्चय किया गया। रेल लेट थी व भीड़ भी ज्यादा थी फिर भी ज्यों त्यों कर सभी गाड़ी में वैठ गये। तीनों माथुर वहनें रह गई अतः पारीख साहव को ठहरना पड़ा। वे उन्हें वस में लेकर मण्डप पहुँचे व वहीं से रेल में चढ़े। मण्डप समुद्र के किनारे है। रामेश्वरम् और मण्डप के वीच समुद्र है। भारत सरकार ने रेल की पुलिया वनाकर रामेश्वरम् को भारत से जोड़ दिया है। रामेश्वरम् और श्री लंका जाने वाले लोगों को मण्डप से ही रेल में वैठना पड़ता है। पुलिया हटने वाली है और जव जहाज आते जाते हैं तो पुलिया हटा दी जाती है। पुलिया पर रेल की चाल वहुत ही धीमी रहती है। हमारे वहुत से साथियों ने प्रत्यक्ष में कभी समुद्र देखा नहीं था अतः वे समुद्र को देख कर आश्चर्यचकित रह गये। समुद्र के विराट और विस्तृत स्वरूप को देख कर सभी वड़े प्रसन्न

हुए। रेल मे लगभग एक घण्टे तक बैठना पडा। रामेश्वरम् में एक दिन पूर्व ही वर्षा हुई थी अत चारो ओर पानी व कीचड ही कीचट था। चारो ओर से मरी हुई मछलियो की दुर्गन्ध ही दुर्गन्ध आ रही थी। मण्डप से ही दुर्गन्ध आनी शुरू हो गई थी। सभी के लिए मिर फटने मे लगे किन्तु देखने की जिज्ञासा से दुर्गन्ध को सहन करने का सभी प्रयास कर रहे थे। रामेश्वरम् स्टेशन पर सब उतर पडे।

स्टेशन से रामेश्वरम् मन्दिर एक किलोमीटर दूर है। सभी लोग पैदल ही मन्दिर की ओर चले। मन्दिर के पट बन्द थे। चार बजे पट खुलते है अत मन्दिर को देखते हुए समुद्र के किनारे पहुँच गये।

लोग कहते है कि पहले रामेश्वरम् भारत के भू भाग से मिला हुआ था। किसी आकस्मिक प्राकृतिक घटना से बीच का भाग दब गया और यह द्वीप बन गया। अब यह द्वीप ग्यारह मील लम्बा और सात मील चौडा है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गो में से रामेश्वरम् एक है। भगवान राम ने इसकी स्थापना की थी। मन्दिर विशाल है जो बीस बीघा भूमि के विस्तार में है। मन्दिर के चारो ओर ऊँचा परकोटा है। पूर्व और पश्चिम में गोपुर हैं जो क्रमश दस और सात मजिल ऊँचे है। दक्षिण के अन्य मन्दिरो की तरह से यह मन्दिर भी है जिसमें अनेक मन्दिर, मण्डप, स्तम्भ और सरोवर हैं। रामेश्वरम् मन्दिर में कुल बाईस तीर्थ है। कई कूप है जिन्हें तीर्थ कहा जाता है। अन्य मन्दिरो की तरह वही कला, शिल्प नैपुण्य और वही सौन्दर्य है। समय काफी मिल गया अत सब की कला-कृतियो को भली प्रकार देख कर समुद्र के किनारे जो पास ही है पहुँचे। समुद्र का पानी नीला किन्तु स्वच्छ एव निर्मल था। पानी इतना निर्मल था कि उसमें की भूमि दूर तक साफ दिखाई दे रही थी। एक बडा जहाज भी दूर से आता दिखायी दिया। सभी समुद्र के विशाल रूप को देख कर प्रसन्न हुए। श्रीदाता ने फरमाया, "दाता के स्वरूप को देखो। कैसे कैसे रूप बनाता है वह। भगवान को वेदो में बताया गया है और उसका रहस्य वेदो में है

किन्तु क्या वह वेदों में है। वेद उसको ढूंढ़ नहीं पाये हैं। वेदों में ही क्या वह तो सर्वत्र विद्यमान है। जल में, थल में, आकाश में सर्वत्र वही वह है। हमारे भाव अच्छे हैं तो वह सर्वत्र है किन्तु यदि भाव अच्छे नहीं हैं तो हम उसे कहीं नही देख सकते हैं।"

किनारे पर कई यात्री स्नान कर रहे थे। श्रीदाता किनारे पर स्थित एक छोटे से मन्दिर के वने चवूतरे पर खड़े हो गये। करेड़ा और भीलवाड़े के नवयुवक स्नान हेतु पानी में उतर पड़े। वे कमर तक की गहराई में पहुँचे। कुछ देर तो पानी से व पानी में चल रही लहरों से योंही किल्लोलें करते रहे। लहरों के साथ खेलते खेलते ही उनके भावों में उद्दीपन हो आया। वे भावनय हो गये और कीर्तन करने लगे। कीर्तन था, "भज गोविन्दं, वालमुकुन्दं, परमानन्दम् हरे हरे।" चूंकि कीर्तन वड़े प्रेम से व भावयुक्त वोला जा रहा था अतः वड़ा सरस और आनन्द देने वाला था। अनेक यात्री गद्‌गद् होकर अपने सभी कार्य छोड़ कर प्रेम से कीर्तन के रस का पान करने और भजन वोलने वालों को देखने लगे। कुछ समय तक तो श्रीदाता भी तन्मय होकर देखते-सुनते रहे। कुछ देर वाद स्वय ही पानी में उतर कर उस ओर गये जहाँ कीर्तन हो रहा था। अपने मालिक को अपनी ओर आते देख कर कीर्तन करने वालों का उत्साह कई गुना वढ़ गया। वे भावविभोर होकर पागलों की तरह उछल उछल कर कीर्तन वोलने लगे। श्रीदाता भी उन्हीं में सम्मिलित हो गये। श्रीदाता के पधारने के वाद लगभग आधा घण्टा और कीर्तन हुआ। किनारे के लोग मंत्र-मुग्ध होकर कीर्तन सुनते रहे। आनन्द की वर्षा होने लगी। शायद कोई भी उस कीर्तन को वन्द करने को नहीं कहता किन्तु मन्दिर के पट खुलने का समय हो गया अतः कीर्तन वन्द कर देना पड़ा। कीर्तन इतना शानदार हुआ कि आज भी जव कभी इस कीर्तन के वोल की ध्वनि कानों में पड़ती है तो रामेश्वरम् के समुद्रतट का दृश्य सामने हो आता है। सभी स्नान कर वाहर आ गये। श्रीदाता ने वाहर आते ही मातेश्वरी जी से कहा, "आपने तो पहले ही यहाँ स्नान कर लिया है, फिर अव स्नान करने की क्या आवश्यकता है?

यह सुन कर मातेश्वरी जी हँस पडी। इन रहस्यात्मक शब्दो के अर्थ का अनुमान लगाने वाले लोग भी हँसे बिना नही रह सके।

समुद्र के किनारे जहाँ स्नान हुए थे, शकर मठ है। श्रीदाता ने अन्य सभी को मन्दिर में पहुँचने को कह कर, धोती पहनने के बहाने मठ मे पधार गये। वहाँ लगभग पन्द्रह मिनिट ठहरना हुआ। मठ में अनेक चित्र लगे हुए थे जिन्हे श्रीदाता ने बडे प्रेम से देखे। वहाँ के आचार्य ने उन्हे वहाँ की विवरण पुस्तिका भेंट की। वहाँ से मन्दिर में पधारना हो गया।

मन्दिर में अधिक लोग तो थे नही किन्तु कुछ लोग दर्शन करने को अति आतुर थे। शायद यह आतुरता रेल पकडने के कारण हो सकती है। इसी आतुरता की वजह से कृत्रिम भीड हो गई। एक दल के लोग मन्दिर के सामने मण्डप में खडे यात्रियो के कन्धो पर होकर आगे बढने का प्रयत्न करने लगे। दर्शनो की आतुरता और शीघ्रता के कारण धीगामस्ती प्रारभ हो गई जिससे वहाँ का वातावरण दर्शनार्थियो के लिए भयप्रद हो गया। इधर उधर धक्के-मुक्के होने लगे। व्यवस्थापक उस समय लापरवाह थे जिससे उद्दण्ड लोगो को रोकने वाला कोई नही था। इधर पण्डे लोगो की बन आयी। यात्रियो मे मनचाही रकम लेकर वे उन्हे दर्शन कराने लगे। एक प्रकार से लूट सी मच गई। यात्रियो के मन में दर्शनो की जो उमग थी या स्थान के प्रति जो अपेक्षायें थी, उन सब पर तुषारापात हो गया। पण्डो के इस प्रकार के कृत्यो से कुछ विशिष्ट व्यक्तियो और पण्डो के बीच कहासुनी होकर हाथा-पाई तक हो गई। आवेश में पण्डो ने निज-मन्दिर के कपाट बन्द कर दिये जिन्हे कुछ लोगो की अनुनय-विनय पर वापिस खोला गया। ज्यो त्यो कर श्रीदाता ने और हम सब ने भगवान रामेश्वर के दर्शन किये और वहाँ से चल दिये।

वहाँ द्वीप पर रहने की अच्छी व्यवस्था है किन्तु उस दिन मछलियो के कारण वातावरण दुर्गन्ध-युक्त था। ठहरना सभव नही था। रेल के चलने का समय ५-३० बजे का था अत सीधे ही स्टेशन पहुँचे। मार्ग में श्रीदाता के मुखारविन्द से ये शब्द निकले,

"कितने स्वार्थी और अर्थलोलुप हैं ये पण्डे ! इनके पाखण्ड और आडम्बर से ही धर्म का ह्रास हो रहा है। ये ही लोग तीर्थों की पवित्रता को कलुषित करते हैं जिससे धर्म-प्रेमी लोगों में तीर्थों के प्रति निराशा की भावना जागृत होती है। यह बुरी बात है।"

कन्या कुमारी

रेल में अत्यधिक भीड थी अतः मण्डप स्टेशन पर ही उतर गये। वहाँ भी मछलियों की दुर्गन्ध ही दुर्गन्ध थी अतः बसों के आने तक सभी लोग परेशान हो गये। प्रातः से किसी ने कुछ खाया नहीं, भीड़ से और दुर्गन्ध से दुःखी, पण्डों के व्यवहार से निराश और पूरे दिन के थके हुए और प्यासे सभी लोगों की ऐसी हालत हो गई कि जिसका वर्णन नही किया जा सकता। एक प्रकार से सभी बीमार से लगने लगे। वहाँ से चल कर रामनाथपुरम् पहुँचे। वहां तक पहुँचते पहुॅचते हवा में शुद्धि आ गई जिससे सभी ने राहत की सांस ली। रात्रि विश्राम तथा भोजन-पानी कर वहाॅ से चल दिये। वर्षा के कारण सीधा मार्ग अवरुद्ध था अतः सीधे न जाकर मदुराई होकर कन्या-कुमारी पहुॅचे। वहाँ 'विवेकानन्द केन्द्र' पर व्यवस्था हुई। यह केन्द्र कन्या-कुमारी का आकर्षक स्थल है। यह विशाल है तथा यहाँ के भवन एवं आँगन आकर्षक हैं। एक छोटे कमरे में श्रीदाता व एक हॉल में अन्य सब लोग ठहर गये। बड़ा शान्त वातावरण था। श्रीदाता ने सभी को अपने पास बिठा कर ध्यान का अभ्यास कराया। सत्संग के अन्तर्गत श्रीदाता ने फरमाया कि संसार में जो कुछ है वह दाता ही है। वही सभी कामों का करने वाला है। वही सत्य हरिश्चन्द्र में बैठ कर कड़ी परीक्षा देता है और वही विश्वामित्र के रूप मे परीक्षा लेता है। श्री प्रह्लाद जी ने तो सब में भगवान को ही देखा है। यथा :—

> गजेऽपि विष्णुर्भुजगेऽपि विष्णु-
> जलेऽपि विष्णुर्ज्वलनेऽपि विष्णुः।
> त्वयि स्थितो दैत्य मयि स्थितश्च
> विष्णुं विना दैत्यगणोऽपि नास्ति ॥

(हाथी में भी विष्णु, सर्प में भी विष्णु, जल में भी विष्णु और अग्नि में भी भगवान विष्णु ही है। दैत्यपते! आप में भी विष्णु और मुझ में भी विष्णु हैं। विष्णु के बिना दैत्यगण की कोई भी सत्ता नहीं है।)

सब कुछ उसी का खेल है और यह खेल वह बन्दे के लाभ के लिए ही करता है। सुख और दुःख सब कुछ उसी का है अतः बन्दे को उसकी याद बनी रहे इसी में आनन्द है।

अगले दिन प्रातः ही श्रीदाता समुद्र के किनारे पहुँचे। कन्या-कुमारी सुदूर दक्षिण का एक किनारा है जहाँ से लोग सूर्य को उदय होते हुए देखते हैं। उदय होते हुए सूर्य की किरणें जब समुद्र की लहरों पर पड़ती हैं तब बड़ा मनोहारी और स्वर्णिम दृश्य उपस्थित होता है। किनारे पर पहले ही कई लोग थे। आधा घण्टे तक वहीं ठहर कर उदय होते हुए सूर्य को देखा। हवा चल रही थी और उससे प्रताडित होकर बड़ी बड़ी लहरें उठ रही थी और किनारे पर आठ-दस फीट ऊपर तक आ जाती थी। लहरों के वेग के समाप्त होते ही समुद्र का पानी वापिस यथा स्थान चला जाता और किनारे पर की रेत की सतह दरी के समान हो जाती थी। दृश्य बड़ा ही सुहावना था।

वहाँ से विवेकानन्द स्मारक की ओर बढ़े। यह स्मारक समुद्र में स्थित एक बड़ी सी चट्टान पर बनाया गया है। सन् १८९२ ई के दिसम्बर मास में परिव्राजक विवेकानन्द देवीकुमारी का आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु यहाँ आये थे। उन्होंने किनारे से इस चट्टान को देखा। इससे आकर्षित होकर २५ दिसम्बर को सोलह सौ फीट लम्बी समुद्री दूरी को तैर कर इस चट्टान पर पहुचे और पूरी रात्रिभर ध्यानमग्न रहे। उसी रात्रि को उनके मन में देशवासियों के प्रति सेवा के भाव जागृत हुए और पश्चिम में वेदान्त सन्देश देने की प्रेरणा मिली जिसने उन्हें आगे चल कर बहुत बड़े सुधारक, धर्मप्रचारक, दार्शनिक, राष्ट्रनिर्माता, प्रभु प्रेरक और देश का महान् सपूत बना दिया। इस चट्टान को जिसका पूर्व में नाम 'श्रीपदापराई' या 'श्रीपाद-शिला' था, अब 'विवेकानन्द शिला खण्ट' कहा जाने

लगा। यह चट्टान पाँच एकड़ भूमि पर स्थित है तथा समुद्र की सतह से पचपन फीट ऊँची है। कहते हैं कि किसी समय इस पर कन्या-कुमारी का मन्दिर था जिसके नष्ट हो जाने पर समुद्र के किनारे दूसरा मन्दिर वना दिया गया। जिस प्रकार वोधिवृक्ष की छाँह में वैठ कर भगवान बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त किया उसी प्रकार विवेकानन्द ने इस चट्टान पर बैठ कर गुरु कृपा से आत्म-तत्व प्राप्त किया। ऐसा लगता है कि परमहंस देव ने ताला वन्द कर कुञ्जी माँ को दे दी थी जिसने वहाँ आने पर कुञ्जी लगा कर उनके ज्ञान कपाट को खोल दिया। नवम्वर सन् १९६२ ई. में इस स्मृति को स्थायी रखने हेतु 'विवेकानन्द शिला स्मारक समिति' का निर्माण कर श्री एकनाथ रानडे को उसका प्रवन्ध संचालक वनाया गया। श्री रानडे ने अथक परिश्रम कर ग्रेनाइड पत्थर के एक भव्य स्मारक का निर्माण करवाया। निर्माण दो भागों में हैं। एक में सभामण्डप और ध्यान कक्ष तथा दूसरे में मण्डप है जिसमें विवेकानन्द जी की पीतल की मूर्ति है। मण्डप तक पहुँचने में चौबीस सीढ़ियों को पार करना होता है। मुख्य मण्डप का घेराव ८५×४० गज है। मन्दिर का द्वार अजन्ता की गुफा से मिलता हुआ है और विमान रामकृष्ण के मन्दिर के अनुरूप ६५ फीट ऊँचा है। विमान के नीचे ८ फीट ऊँची परिव्राजक के वेप में स्वामी विवेकानन्द की पीतल की मूर्ति है। सितम्वर सन् १९७० ई. में राष्ट्रपति श्री वी. वी. गिरि द्वारा इसका प्रतिष्ठापन किया गया था। इसी समिति द्वारा सन् १९७२ ई. में विवेकानन्द केन्द्र की स्थापना की गयी जिसका उद्देश्य मानवता की भलाई के लिए काम करना है।

विवेकानन्द केन्द्र समिति ने केन्द्र का अच्छा विस्तार कर लिया है। इसमें पुस्तकालय, चित्रालय, समिति कार्यालय एवं अन्य व्यवस्थाएं हैं। श्री रानडे उस समय इलाहावाद में होने वाले विश्व हिन्दू परिषद के सम्मेलन में भाग लेने गये थे। पाँडीचेरी के भूतपूर्व राज्यपाल श्री छेदीलाल जी जिन्होंने अपने जीवन का शेप भाग इस समिति को समर्पित कर दिया है, इसके उपाध्यक्ष हैं।

स्टीमर द्वारा हम लोग स्मारक में पहुँचे। श्रीदाता सवसे पहले श्रीपाद की मूर्ति के पास पहुँचे और वहाँ से मुख्य मण्डप में

पधारना हुआ। फिर ध्यान कक्ष में होते हुए रेलिंग के सहारे खडे होकर वडी देर तक समुद्र की लहरो को चट्टान से टकराते हुए देखते रहे। क्या ही सुन्दर दृश्य था।

वहाँ से लौट कर कुमारी के मन्दिर में पहुँचे। श्रीदाता ने फरमाया कि ऐसी मान्यता है कि ईश्वर और उसकी शक्ति, शिव और उसकी पराशक्ति में निहित है। शिव वाराणसी में और पराशक्ति कन्या-कुमारी के नाम से इस भूखण्ड में रहती है। विना पराशक्ति के शिव का कोई प्रादुर्भाव नही और विना शिव के शक्ति का कोई अस्तित्व नही। शिव पराशक्ति के माध्यम से ही विश्व का निर्माण, सचालन और सहार कर रहे हैं।

कन्या-कुमारी ही एक ऐसा स्थान है जहाँ से पूर्व चन्द्रोदय व सूर्यास्त एकसाथ देखा जा सकता है। मन्दिर प्राचीन है। आधुनिक मन्दिर चौकोर भूमि पर स्थित है जिसके चारो ओर दीवार बनी हुई है। बगाल की खाडी की ओर का पूर्व का फाटक वर्प में पाँच समय के अतिरिक्त सदैव बन्द रहता है। ऐसा विश्वास है कि भगवती के शरीर पर लगा हुआ हीरा इतना चमकदार है कि यदि उसकी किरणें समुद्र के मल्लाहो पर पडे तो वे अन्धे हो जांय। इस द्वार के बन्द होने का यही कारण बताया गया।

देवी के दर्शन वडे भव्य हैं। चेहरा हँसमुख और दिव्य है। दर्शन करते ही दर्शक भावविभोर हो जाता है और अपने आपको भूल जाता है। मन्दिर में दर्शन हेतु जाते वक्त सभी पुरुषो को धोती के अतिरिक्त सभी वस्त्र उतार देने होते हैं। केरल और तामिलनाडू के कुछ मन्दिरो में ऐसी ही परम्परा है।

मन्दिर में ही भद्रकाली का मन्दिर है जो देवी की सखी मानी जाती है। मन्दिर में और भी देव विग्रह हैं। मन्दिर के पास ही आदि शकराचार्य का मन्दिर और गाँधी स्मारक मन्दिर है। वे भी कन्या-कुमारी के आकर्पक विन्दु हैं। दर्शनोपरान्त सभी आवास स्थान पर पहुँच गये। कु हरदयाल जी और कुछ साथी माँ मयम्मा की तलाश करने निकले। माँ मयम्मा एक वृद्ध महिला है जो पागल की तरह रहती है। लोग उसे कन्या-कुमारी का अवतार बताते हैं। जानने

वाले लोग वहाँ आने पर उसका दर्शन कर उसका आशीर्वाद अवश्य प्राप्त करते हैं। उसकी कुटिया मन्दिर के पीछे है। वह मन्दिर के पास या समुद्र के किनारे घूमती रहती है। कुत्तों का समूह उसे हर समय घेरे रहता है। कुं. हरदयाल जी को वह कुटिया के बाहर बैठी मिल गई। जब उन्होंने लौट कर लोगों को बताया तो डाक्टर साहब, वैद्य जी आदि कई लोग बस लेकर गये। वहाँ भारी भीड़ थी। सभी ने उसके चरणों में प्रणाम किया लेकिन वह तो नीचे ही देखती रही। किसी को कुछ भी आशीर्वाद नहीं मिला। वे सभी निराश होकर लौट पड़े।

दोपहर को हम लोग श्रीदाता के कमरे में पहुँचे। उस समय श्रीदाता भावमग्न थे। हम लोग चुपचाप उनके सामने जा बैठे और श्रीदाता के शरीर को ध्यान से देखते रहे। सभी को परम शान्ति का अनुभव हुआ। कुछ समय बाद ऐसा लगा जैसे श्रीदाता के शरीर से तेज किरणें निकल कर पूरे कमरे को प्रकाशित कर रही हैं। हमारा मन स्थिर हो गया और अपार आनन्द की अनुभूति हुई। श्रीदाता की अपार महर हुई जिसका वर्णन करना असंभव है। श्रीदाता की महती कृपा का अनुभव कर बरबस ही हमारे नेत्रों से प्रेमाश्रु बह चले। उस समय हमें दीन दुनिया की सुधि नहीं रही किन्तु यह स्थिति अधिक समय तक न रह सकी। श्री छेदीलाल जी का सचिव अचानक यह कहते हुए कमरे में आ गया कि छेदीलाल जी श्रीदाता के दर्शन करना चाहते हैं। हमारा ध्यान उनकी ओर चला गया। श्रीदाता का ध्यान भी भङ्ग हुआ। आज्ञा मिलते ही श्री छेदीलाल जी कमरे में आ गये। साधारण बातचीत के बाद उन्होंने स्मारक और केन्द्र का संक्षिप्त परिचय दिया और श्रीदाता के वहाँ पधारने पर प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने श्रीदाता का आशीर्वाद मीठे पानी की व्यवस्था हेतु चाहा। वहाँ मीठे पानी की कमी है। पीने का पानी बड़ी दूर से लाया जाता है। तामिलनाडू सरकार वहाँ एक पाताल कूप लगा रही है जिसमें मीठा पानी ही निकले, ऐसी उन्होंने दाता से प्रार्थना की।

सध्या समय श्री छेदोलाल जी पुन उपस्थित हुए और हरेहर में सम्मिलित हुए। उस समय उनके मन को शान्ति मिली और वे श्रीदाता से वडे प्रभावित हुए। रात्रि को भजन व कीर्तन हुआ उसमें भी वे अपने व्यक्तियों सहित उपस्थित हुए। रात्रि को बारह बजे तक भजन चलते रहे फिर विश्राम किया गया।

कुछ लोगो की रात्रि में समुद्र को देखने की इच्छा हुई अत हम लोग समुद्र के किनारे पहुँचे। उस समय समुद्र का विकराल रूप था। बडी बडी लहरे थी जिसकी आवाज कानो को बहरा कर देने वाली थी। वहाँ लहरो के टकराव की आवाज के सिवा कुछ सुनायी ही नही दे रहा था। ऐसा दृश्य पूर्व में तो कभी देखा नही था अत बडी देर तक खडे खडे उस रूप को देखते रहे।

दिनाक १२-१-७९ को प्रात ही श्रीदाता का हम कुछ सेवको सहित मयम्मा के दर्शन हेतु पधारना हुआ। जिस समय श्रीदाता उसकी कुटिया के पास पहुँचे उस समय वह कुटिया में थी। कुछ समय तक श्रीदाता खडे रहे। मयम्मा एकाएक बाहर आई और दीवार की तरफ मुँह करके बैठ गई। उसके बैठते ही मातेश्वरी जी ने आगे बढ कर उसके चरण स्पर्श किये। इसके पश्चात् कैलाश बहन, कु हरदयालसिंह व अन्यो ने एक-एक कर चरण स्पर्श किये। श्रीदाता दूर ही खडे रहे। वही से उन्होने मयम्मा को नमस्कार किया। उसने श्रीदाता की ओर लज्जाशील नेत्रो से देखा। कुछ-कुछ देर बाद वह इसी प्रकार देखती रही।

उस समय मयम्मा को अच्छी तरह देखा जा सका। उम्र उसकी लगभग पिच्यानवे वर्ष होगी। शरीर और मुंह पर झुर्रियाँ पडी थीं। दो कुत्तो के बच्चो को उसने गोद में बिठा दिया जिन्हें वह अपने साथ कमरे मे लायी थी। कुछ समय बाद ही इधर उधर से आठ कुत्ते आकर उसके पास खडे हो गये। उसी समय दो भक्त दो थैलों में कुछ सामान लेकर उसके पास आये। एक भक्त ने कुंकुम की पुडिया निकाली और उसके ललाट पर तिलक कर दिया। इसके बाद पुष्पमाला गले में डाल कर हाथ जोड कर उन्होने मयम्मा को प्रणाम किया। माँ ने भी कुकुम लेकर दोनो के

भाल पर लगाया। एक भक्त ने एक एक कर थैले से भोजन निकालना प्रारंभ किया। एक दोने में कुछ भोजन लेकर उस भक्त ने मयम्मा के मुँह में दिया जिसको वह बड़े प्रेम से खा गई। माँ ने भी भोजन लेकर उन दोनों के मुँह में दिया। कुत्ते भी कब पीछे रहने लगे। आनन्द से सब भोजन करने लगे। एक साधु निकट आकर खड़ा हुआ। माँ ने उसे भी इडली व डोसा खाने को दिया। उस समय माँ की निगाह में मनुष्य और कुत्तों में कोई अन्तर नहीं था। वहाँ उस समय उपस्थित सभी प्राणी (मयम्मा, दोनों भक्त, कुत्ते, साधु) एक कुटुम्ब की तरह भोजन कर रहे थे। भोजन करने में लगभग आधा घण्टा लगा होगा। श्रीदाता इतने समय तक खड़े खड़े इस मनोहारी दृश्य को देखते रहे। श्रीदाता की नजर बचाकर बीच बीच मे उन्हे देख लिया करती थी। उसका चेहरा आकर्षक एवं तेजस्वी था यद्यपि चेहरे पर वृद्धावस्था झलकती थी। श्रीदाता ने वहाँ से ज्योंही पीठ फेरी मयम्मा कुटिया में चली गई।

श्रीदाता ज्योंही केन्द्र पर पहुँचे कि श्री छेदीलाल जी, वहाँ का मुख्य इन्जीनियर व उनके अन्य साथी आ गये। बातचीत चल पडी। श्रीदाता ने फरमाया कि लोग भगवान की आराधना तो करते हैं और भगवान भी उन पर कृपा करता है किन्तु वे भगवान से माँग बैठते हैं छोटी छोटी वस्तुएँ जैसे मुझे पुत्र चाहिये, मेरी शादी हो जाय, मैं अच्छा हो जाऊँ आदि। इन्हें न माँग वे भगवान को ही क्यों नहीं माँगते। उस शक्ति को ही प्राप्त कर लेना चाहिये जिससे सब टंटा ही मिट जाँय। जिसके घर पिया बसत है वह कहीं नहीं आती जाती। देखना है तो पिया को देखो। सब को देखोगे तो बँट जाओगे। आगे उन्होंने बताया कि मन तो काच की तरह है जिसका कोई रंग नहीं है। जैसा रंग गिलास में डालोगे वह उसी रंग का हो जावेगा। उसी तरह इस मन को जिस रंग में डालोगे उसी रंग का यह हो जावेगा। विश्व के कण कण में दाता विद्यमान है। उसका स्वरूप ही अद्भुत है। वह अरूप है, सरूप है। ड्रेस से ही वह पहचाना जा सकता है। उन्होंने आगे बताया कि विश्व की सम्पत्ति ही दुःख का मूल है। कोई समुद्र को उठाना चाहे तो वह उठा

नही सकता किन्तु यदि वह समुद्र में कूद जाय तो समुद्र ऊपर आ जावेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि भूख में ही स्वाद है। आपको आवश्यकता नही है तो फिर मन का ठहराव वहाँ क्यो होगा ? आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। स्थिर जल में ही कोई अपना चित्र देख सकता है। मन को स्थिर करो तो उसे पा जाओगे। इस प्रकार बडी देर तक सत्सग चलता रहा। सभी बडे प्रभावित हुए। वे लोग चाहते थे कि श्रीदाता वहा कुछ दिन विराजें किन्तु यह सभव नही था अत वे प्रणाम कर वहाँ से उठे।

२-३० बजे कन्या कुमारी को प्रणाम कर त्रिवेन्द्रम की ओर बढे। दोनो बसो में कीर्तन चल रहा था। सडक के दोनो ओर हरे-भरे खेत थे जिनमें नारियल, अखरोट, बादाम, काजू, काली मिर्च आदि के पेड प्रचुर मात्रा में थे। काश्मीर अपने सौन्दर्य के लिए विश्व में प्रसिद्ध है किन्तु हमें तो यह क्षेत्र भी कम सुन्दर नही लगा। खेतो में ही पक्के मकान बने थे जो स्वच्छ व सुन्दर थे। कब एक गाँव समाप्त हुआ और दूसरा आया इसका कुछ पता ही नही चल रहा था। सडक के दोनों ओर खेत व मकानो का क्रम समाप्त ही नहीं हो रहा था। इतने सौन्दर्य से परिपूर्ण वह क्षेत्र था कि नेत्र देखते ही नही अघाते थे। पश्चिमी घाट की ऊँची-नीची चोटियाँ आती थी किन्तु उनकी एक इञ्च भूमि भी बिना हरियाली और बिना प्रयोग के नही थी। उनपर भी नारियल, ताड, सुपारी आदि के घने पेड थे। खेतो में काम करने वाले स्त्री-पुरुष भी स्वच्छ और साफ परिधान में सभ्य और परिश्रमी से प्रतीत हो रहे थे। केरल में स्त्रियो की सख्या पुरुषो की सख्या से अधिक है तथा भारत का कोई भी राज्य ऐसा नहीं है जहाँ केरल की स्त्रियाँ काम न करती हो। आश्चर्य तो इस बात का है कि ऐसा हराभरा और शिक्षित क्षेत्र, जहाँ के व्यक्ति सभ्य व परिश्रमी है, फिर भी गरीब है। इस क्षेत्र के सौन्दर्य में भटकते हुए हम लोग कीर्तन-भजन करना भी भूल गये। सभी उत्सुक नेत्रो से सडक के दोनो ओर के दृश्यो को देखते रहे, देखते ही रहे।

शाम को पाँच बजे के लगभग 'कोवलम बीच' पर पहुँचे। वहाँ का समुद्री किनारा बडा ही आकर्षक है। 'कोवलम बीच'

निर्माणाधीन था। पहाड़ियों को काट कर उसे यात्रियों के लिए मनोरंजक स्थान वनाया जा रहा था। वसों के पार्किंग न हो पाने से पूरा किनारा तो नहीं देखा जा सका किन्तु कुछ झलक अवश्य देखने को मिल गई। उस झलक को देखकर ही एक धक्का सा लगा। भारतीय परम्परा से विपरीत वहाँ का दृश्य था जिसे देखकर भारतीय संस्कृति का प्रेमी उसे देखकर घृणा किये बिना नही रह सकता।

पद्मनाभ

वहाँ से चल कर त्रिवेन्द्रम जो केरल की राजधानी है वहाँ पहुँचे। मन्दिर के वाहर ही सरायें वनी हैं। एक सराय में स्थान कम होने से दोनों में ही व्यवस्था हुई। शहर छोटा किन्तु सुन्दर है और वाजार भी विस्तृत तथा आकर्षक है। वहाँ फल-फूलों मे ललाई देखी गई। लाल छिलकों के वड़े वड़े केले हम लोगों के आकर्षक के विन्दु वन गये। काले पत्थर की छोटी छोटी ऊँट, हाथी, घोड़े आदि की मूर्तियाँ सस्ती ओर सुन्दर थी।

शाम को पद्मनाभ के मन्दिर में श्रीदाता का पधारना हुआ। इस मन्दिर में भी धोती के अतिरिक्त अन्य कपड़े पहन कर जाना मना है। महिलाओं के लिए यह प्रतिवन्ध नहीं है। 'अनंत शयन–महात्म्य' नामक ग्रन्थ के अनुसार इसकी स्थापना कलियुग के ९५० वें दिन दिवाकर मुनि नामक एक तुलु देशवासी साधु के हाथों से हुई थी। दिवाकर मुनि को इसी स्थान पर भगवान विष्णु के दर्शन हुए थे अतः उन्होंने यह मन्दिर वनवा दिया।

एक कथा विल्व-मंगल स्वामी से सम्वन्धित है। एक दिन उन्हें शेषशायी के रूप में भगवान विष्णु के दर्शन हुए। उन्हें नैवेद्य के लिए कोई वस्तु नहीं मिली। पास ही एक आम का पेड़ था। दो चार कच्चे फल तोडकर, नारियल के छिलके मे रखकर निवेदन किया। तभी से भगवान यहीं विराजमान हैं। सत्य कुछ भी हो मन्दिर वड़ा विशाल है। पद्मनाभ भगवान के अतिरिक्त 'अनन्त शयन' के नाम से भी यह मन्दिर जाना जाता है। यह मन्दिर किले के भीतर है। दूसरे गोपुर के भीतर वहुत वड़ा आँगन है जिसके चारों

किनारो पर मण्डप बने हैं और बीच में पद्मनाभ भगवान का मन्दिर है। भगवान का निज मन्दिर काले कसोटी के पत्थर का है और विशाल है। निज मन्दिर में शेषशैय्या पर शयन किये भगवान पद्मनाभ की ऐसी विशाल प्रतिमा है वैसी अन्यत्र कही नही है। भगवान की नाभि से निकले कमल पर ब्रह्माजी विराजमान है। भगवान का दाहिना हाथ शिवलिंग पर स्थित है। इस प्रतिमा के श्रीमुख के दर्शन एक द्वार से, वक्षस्थल और नाभि के दर्शन दूसरे द्वार से और चरणो के दर्शन तीसरे द्वार से होते हैं। बाहर मन्दिर की पूरी प्रदक्षिणा है। पूर्व भाग में स्वर्ण मण्डित गरुड स्तम्भ है। उसके आगे एक बडा मण्डप है और पास ही एक कमरे में अनेको सुन्दर मूर्तियाँ हैं। मन्दिर के बाहर दक्षिण भाग में शास्ता का एक छोटा सा मन्दिर है। मन्दिर के पश्चिम भाग में कृष्ण मन्दिर है। मन्दिर के दक्षिण द्वार के पास एक शिशु मूर्ति है।

मन्दिर में उस समय भीड कुछ भी नही थी अत दर्शनो में कुछ भी कठिनाई नही हुई। भगवान अनत शयन के दर्शन कर श्रीदाता ने मातेश्वरी सहित परिक्रमा लगायी। वहाँ की कलाकृति को देख कर श्रीदाता वडे प्रसन्न हुए व निर्माण कर्ताओ की प्रशसा करने लगे। श्रीदाता किसी की प्रशसा करे तो निश्चय मानना चाहिए कि वे कलाकार उत्कृष्ट कोटि के रहे होगे। सभी ने वडे आराम से दर्शन किये व पूरे मन्दिर को रुचिपूर्वक अवलोकन किया।

रात्रि को लगभग एक बजे श्रीदाता ने हम कुछ लोगो को बुलाया व बडे प्यार से पुचकार कर भगवान की लीलाओ का वर्णन करने लगे। उन्होंने फरमाया, "भगवान की लीलाएँ अनोखी है। लोग तो मद मे अन्धे होकर ध्यान ही नही देते है। यदि हमारा एक भी स्वास खाली जाता है तो अच्छा नही है। स्वास का प्रत्येक तार उसी मे मिला होना चाहिये।" इस प्रकार श्रीदाता ने हमें बहुत कुछ समझाया। यह सत्य है कि दाता के सिवा हमारा कोई नहीं है। श्री नारायण स्वामी ने भी श्रीदाता की तरह ही डके की चोट कहा है –

कोउ नहीं अपनो सगो, विन राधा गोपाल ।
नारायण तू वृथा मति, परै जगत के जाल ।।
विद्यावंत स्वरूप गुन, सुत दारा सुख भोग ।
नारायण हरि भक्ति विन, यह सब ही है रोग ।।
धन जीवन यों जायगो, जा विधि उड़त कपूर ।
नारायण गोपाल भजि, क्यों चाटै जग धूर ।।

अतः सव कुछ छोड़ श्रीदाता के स्मरण में ही मन लगाना चाहिये । श्री भट्ट जी ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं :-

हरि-हरि सुमिरि न कोई हारचौ ।।
जिन सुमिरचौ तिनही गति पाई
राखि सरन अपनी निस्तारचौ ।।
कौरव सभा सकल नृप देखत
सती विपति पति नाहिं संभारचौ ।।
हाहा:कार सवद सुनि संकट
तिहि औसर प्रभु प्रगट पधारचौ ।।
हरि सौ समरथ और न कोई
महापतित को दुःख टारचौ ।।

श्रीदाता कितने महान् हैं । अपने वन्दों की कितनी चिन्ता रखते हैं । वे हर प्रकार के संकल्पों का पता रखते हैं और आवश्यकतानुसार मन को तरसाते रहते हैं ।

गुरु अयुर

अगले दिन अर्थात् १३-१-७९ ई. को प्रातः ७ वजे वहाँ से चल दिये । वहां से अलपी, कोचीन आदि स्थानों पर होते हुए शाम को गुरु अयुर पहुँचे । कोचीन एक अच्छा वन्दरगाह है जहाँ वड़े वड़े जहाज खड़े थे । कई लोग ऐसे थे जिन्होंने कभी जहाज नहीं देखे थे । श्रीदाता ने सभी को जहाज देखने का अवसर दिया । सभी उस वन्दरगाह को देखकर वड़े प्रसन्न हुए । गुरु अयुर ४-४५ वजे ही पहुँच गये थे किन्तु व्यवस्था में देरी हो गई । श्रीदाता को

डाक बगले में ठहराया गया व अन्य लोग बसो में ही बैठे रहे। शाम होते होते मन्दिर के पास की धर्मशाला में ऊपर की मजिल पर व्यवस्था हो पाई। श्रीदाता भी वही पधार गये।

भोजन की व्यवस्था के पूर्व ही श्रीदाता ने मन्दिर में जाकर दर्शन कर लेना उचित समझा। वे दर्शनार्थ चल पडे। मातेश्वरी जी व हम कुछ लोग साथ हो लिये। मन्दिर सराय के पास ही है। कहते है कि भगवान कृष्ण ने अपने परम प्रिय उद्धव को बृहस्पति के पास यह सदेश देकर भेजा था कि द्वारिका को समुद्र में डूबो दे और उस मूर्ति को जिसकी पूजा वसुदेव जी और देवकी जी करते थे उसे किसी सुरक्षित स्थान में प्रतिष्ठित कर दे। भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव जी को यह भी वताया कि वह मूर्ति साधारण नही है और वह कलियुग में भक्तो के लिये कल्याणप्रद सिद्ध होगी। सदेश पाकर बृहस्पति शीघ्र ही द्वारिका पहुँचे किन्तु उनके पहले ही द्वारिका को सम डूबा चुका था। उन्होने वायु की सहायता से उस मूर्ति को समुद्र से निकाला और उसे लेकर सुरक्षित स्थान की खोज में निकले। जिस स्थान पर वर्तमान में यह मूर्ति प्रतिष्ठित है वहाँ उस समय कमल पुष्पों से युक्त एक झील थी जिसके तट पर भगवान शिव और माता पार्वती जलक्रीडा करते हुए इस मूर्ति की प्रतीक्षा कर रहे थे। बृहस्पति जी ने शिव की आज्ञा से वायुदेव के सहयोग से वही भगवान कृष्ण की उस मूर्ति की प्रतिष्ठा की, तभी से इस स्थान का नाम गुरु अयूर हो गया। इस स्थान के पास ही मयीपुर नामक स्थान पर भगवान शिव का मन्दिर है। कहते है स्वय धर्मराज ने इस मन्दिर की प्रतिष्ठा की थी।

अनन्त शयन मन्दिर विश्वकर्मा द्वारा निर्मित बताया गया। इसकी कला उत्कृष्ट एव मानवेतर कौशल युक्त है। पाँच सौ वर्ष पूर्व पाण्डच देश के नृपति ने इसका पुन निर्माण कराया। मूर्ति प्राचीन है। कहा जाता है कि सृष्टि की रचना के समय इस मूर्ति को भगवान विष्णु ने ब्रह्मा को, ब्रह्मा ने बाद में धौम्य को और धौम्य ने वसुदेव को दी थी। मन्दिर की कला की श्रीदाता ने बडी सराहना की। मन्दिर में बने सैंकडो दीप स्तमों पर दीप जगमगा रहे थे

जिससे मन्दिर की शोभावृद्धि में चार चाँद लग रहे थे। मूर्ति के दर्शन करके तो श्रीदाता अपार हर्ष से अभिभूत होकर भावमग्न हो गये। बड़ी देर तक ध्यानस्थ होकर खड़े रहे। उस समय श्रीदाता के चेहरे पर दिव्य प्रकाश एवं अपूर्व तेज था। इस रूप में उनके दर्शन कर हम लोग निहाल हो गये। कुछ समय बाद श्रीदाता प्रकृतिस्थ हुए व धीरे धीरे चल कर मन्दिर की परिक्रमा में पधार गये। परिक्रमा के पश्चात् सराय में पधार गये। दूसरे लोग भी सुविधानुसार एक एक कर मन्दिर में जाकर दर्शन कर आये।

उस दिन पौष माह की पूर्णिमा थी। उत्तरी भारत मे इस दिन भारी ठण्ड रहती है किन्तु गुरु-अयूर मे उस दिन भारी गर्मी थी व गर्मी से बचने के लिये पंखों की शरण लेनी पड़ी। कैसी विचित्र लीला है प्रभु की।

भोजन बन रहा था, इसी बीच कुछ लोग जिज्ञासावश इधर उधर घूमने निकल गये। उनमें एक करेड़ा निवासी श्री ईश्वरलाल जी भी थे। वे बाजार में पान वाले से बात कर रहे थे कि एकाएक उनके शरीर पर वात का प्रकोप हो गया। उनका मुँह एकदम टेढ़ा हो गया। मुँह ने, एक आँख ने, एक हाथ ने और एक पैर ने काम करना बन्द कर दिया। उन्हें लकवा मार गया। वे खड़े खड़े वहीं गिर पड़े। साथी श्री गोवर्धनसिंह जी ने भाग्य से उन्हें देख लिया। वे दौड़ कर उनके पास पहुँचे। अन्य साथियों को बुला कर उनकी सहायता से उन्हें सराय में लिवा लाये किन्तु श्रीदाता के सम्मुख उपस्थित करने में वे डर गये। बात की बात में यह बात सर्वत्र फैल गई। हम लोगों ने श्रीदाता को अर्ज करना जरूरी समझ कर उनके समक्ष चले गये और सारी घटना कहकर सुनायी और साथ ही उन्हें स्वस्थ करने की प्रार्थना भी करने लगे। पहले तो श्रीदाता चिढ़ गये और बोले, "मारा राम इसमें क्या करे? मारा राम के हाथ में कुछ नहीं है। करने-धरने वाले तो मेरे दाता हैं। तुम लोग व्यर्थ ही मारा राम को सताते हो। ये लोग कहने में तो रहते नहीं। इधर उधर रोते फिरते हैं। जब कुछ हो जाता है तो दौड़े हुए यहाँ चले आते हैं।" इस प्रकार के शब्दों से सभी स्तब्ध तो हुए किन्तु

श्रीदाता का स्वभाव सभी अच्छी तरह जानते है कि किसी के दुख को देखकर उनका हृदय किस तरह पसीज जाता है। कुछ देर चुप रहने के बाद उन्होने ईश्वरलाल जी को वहाँ लाने को कहा। उन्हे तत्काल उठा लाये। श्रीदाता ने उन्हे देखा और पुकार सुनी। उनका मुंह काम करने लग गया। उन्होंने बोल कर क्षमा याचना की कुछ देर में आँख, हाथ और पैर भी काम करने लगे। देखते देखते पाँच ही मिनिट में वे ठीक हो गये। इससे सभी बडे प्रसन्न हुए और श्रीदाता की जय-जयकार करने लगे। चारो ओर अपार हर्ष का वातावरण फैल गया। एक बहुत बडे सकट और बदनामी से श्रीदाता ने बचा दिया। दाता तो दाता ही है।

लाख चूक सुत से परै, सो कछु तजि नही देह।
पोप चुचुक ने गोद में, दिन दिन दूनो देह॥ (वया बाई)

मैसूर

अगले दिन प्रात ही मैसूर के लिए रवाना हो गये। हरेभरे खेतो के बीच होते हुए आगे बढे। पश्चिमी घाट हराभरा तथा दुर्गम घाटियो से परिपूर्ण है। सीधे मार्ग नही है अत मैसूर जाने के लिए कोइन्टूर होकर जाना पडा। कोइन्टूर में श्री दिनेश जी के बहनोई श्री मिठ्ठूलाल जी ट्रेनिंग हेतु आये हुए थे। उन्हे बुलाया गया। श्रीदाता का दर्शन कर वे गद्गद् हो गये। उन्होने श्रीदाता को व हम सब को एक दिन रोकने का बडा प्रयास किया किन्तु श्रीदाता ने साफ मना कर दिया। वहाँ से उटकमण्ड जो प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए अपने आप में प्रसिद्ध है, नजदीक ही था किन्तु बडी बस की मशीन कमजोर होने से श्रीदाता ने वहाँ जाने से मना कर दिया अत मैसूर के लिए आगे बढे। सामने नीलगिरि पहाडियाँ थी। नीलगिरि की ऊँचाई भी कम नही है और मैसूर जाने के लिए उसे पार करना पडता है। बडी बस दत्त-शिखर पर भी बडी कठिनाई से चढ पायी थी। नीलगिरि की चढाई तो उससे ज्यादा विकट है अत श्रीदाता बडी बस में आ विराजे। बडी बस में बैठे लोग आनन्दित हो गये और मस्त होकर भजन बोलने लगे। श्रीदाता भी कभी खडे होकर, कभी हाथ से ताली

वजाकर तथा कभी भजन की पंक्ति वोलकर, उन लोगों का उत्साह वढ़ाने लगे। वड़ी ही आनन्दप्रद स्थिति हो गई। भजन-रस की वर्षा क्या थी मानो पियूष की नदी ही वह रही हो। वड़ा ही मस्तीभरा वातावरण था। ऐसे वातावरण में एकाएक वस ठहर गई। वताया गया कि इंजन व टायर गर्म हो गये हैं। ड्राईवर नीचे उतरा व मशीन को देखने लगा। पता चला कि फैन वेल्ट टूट गया है। जहाँ वस ठहरी थी वही से नीलगिरि की चढ़ाई प्रारंभ होती है। उस चढ़ाई की लम्वाई वारह मील है। उस चढ़ाई को चढ़ने की वड़ी वस के वश की वात नहीं थी कारण चढ़ाई विकट थी। श्रीदाता ने चलने का आदेश दिया। छोटी वस पीछे रही व वड़ी वस आगे। सभी कीर्तन करने लगे। वस चलती रही व सिरे पर जाकर ठहरी। वहाँ का दृश्य वड़ा सुन्दर था। एक ओर पठार था तो दूसरी ओर देखने पर पाताल सा लगता था। दृश्य इतना मनोहारी था कि लोग कीर्तन करना भूल गये। सभी वसों से उतर पड़े व उस दृश्य को निहारने लगे। वस का फैन वेल्ट तलेटी में न टूट कर चढ़ाई में टूटा होता तो वस की क्या गति हुई होती यह वात तो दाता ही जान सकते हैं। उस वस को सकुशल पार कराने को ही तो श्रीदाता उसमें वैठे थे। आगे वापिस श्रीदाता छोटी वस में जा वैठे। इसे कहते हैं दाता की कृपा। कितने महान् हैं श्रीदाता। ऐसे गुरुदेव को छोड़ कर जो लोग इधर उधर भटकते हैं वे कितने अभागे हैं। आँखें होते हुए भी अन्धे हैं। सत्य ही कहा है :–

> जिनके गुरुदेव से प्रेम नहीं धिक है यों ही सव जन्म गमायो।
>
> जाने नहीं गुरुदेव कहा भटकत भटकत यों ही दुख पायो।
>
> गुरु को कर मानुष जान लिये कहीं शव्द विचार नहीं
> उर लायो।
>
> शव्द विचार कियो नहीं है गुरु अर्थ कहा इनको नहीं पायो।
>
> नृपमान कहें धिक वार ही वार गुरु शव्द ही जाके
> नहीं समायो॥

शाम होते होते मैसूर पहुँच गये। मैसूर में वृन्दावन गार्डन देखने योग्य है जो रात्रि में दस बजे के पहले पहले ही देखा जा सकता है। अत सीधे वहाँ ही पहुँचे। वृन्दावन गार्डन विश्व का सब से सुन्दर गार्डन बताया जाता है। इसमें जल प्रवाह के भीतर और पौधो में रग-बिरगी रोशनी का प्रबन्ध है। कावेरी नदी के पानी को रोक कर उसके किनारे इसका निर्माण किया गया है जिससे पानी के बहाव की सुन्दर व्यवस्था हो गई। इस गार्डन मे पानी, पौधे और रोशनी तीनों ही मिलकर भाँति भाँति के दृश्य उपस्थित करते है जिसे देखकर दर्शक दाँतोतले अँगुली दबाये बिना नही रहते। इसको देखने हजारो देश-विदेश के लोग आते है। लगभग एक घण्टे तक घूम घूम कर इसके सुन्दर दृश्यो के सौन्दर्य का आनन्द लेते रहे। श्रीदाता तो बस में बैठ कर ही हँसी-मजाक की बाते करते रहे। वे विनोद प्रिय जो ठहरे। जो लोग बस में श्रीदाता के पास ठहरे थे वे हँसते हँसते लोट-पोट हो गये।

आठ बजे वहाँ की रोशनी बन्द हो गई अत वहाँ से लौट पडे। समय अधिक हो गया था अत उस दिन डाक बगले, सराय आदि किसी भी स्थान पर ठहरने की व्यवस्था नही हो सकी। बहुत प्रयास के बाद राम-मन्दिर में प्रात ६ बजे तक के लिए ठहरने की व्यवस्था हुई। ज्यो-त्यो कर रात्रि निकाली। प्रात उठ कर बसो में जाकर बैठे। मैसूर ठहरने का विचार छोडकर चामुण्डा माता के दर्शन करने को चल दिये। चामुण्डा माता का मन्दिर एक पहाडी पर स्थित है। पहाडी पर जाने वाली सडक नीचे से ऊपर तक साढे पाच मील लम्बी है। मन्दिर में पहुँचने के पहले एक खुले स्थान पर महिषासुर की एक ऊँची मूर्ति बनी है। चामुण्डा माता का मन्दिर विशाल है। मन्दिर का गोपुर ऊँचा है। गोपुर के भीतर कई द्वार पार करने पर देवी की भव्य मूर्ति के दर्शन होते हैं। इस मन्दिर के थोडी ही दूरी पर एक प्राचीन शिव मन्दिर है। यहीं पहाडी की ढाल पर सडक के किनारे ही पत्थर की विशाल नन्दी की मूर्ति है। यह मूर्ति अपनी विशालता, सुन्दरता एव कारीगरी के लिए प्रसिद्ध है। इस नन्दी की मूर्ति की ऊँचाई १६ फीट है।

बंगलोर में

यहाँ से चल कर मैसूर में जैन-मन्दिर और शंकराचार्य के मन्दिर को वाहर से ही देखते हुए बंगलोर की ओर वढ़ गये। दक्षिण कावेरी पर ठहर कर सभी ने स्नान किया। कावेरी वड़ी पवित्र नदी मानी जाती है। तीन स्थानों पर कावेरी दो धाराओं में वँट कर कुछ मील अलग अलग रहकर वापिस एक धारा में आ जाती है। इस तरह कावेरी के प्रवाह में तीन द्वीप वनते हैं। तीनों ही द्वीपों में श्री रंगजी के मन्दिर हैं। प्रथम द्वीप को आदि रंगम्, द्वितीय द्वीप को मध्य रंगम् और तृतीय द्वीप को अन्त रंगम् या श्रीरंगम् कहते हैं। आदि रंगम् का द्वीप तीन मील लम्वा व एक मील चौड़ा है। स्टेशन के पास ही श्री रंगम् का पवित्र मन्दिर है। यहाँ भी श्री रंगम् की तरह ही शेष-शैय्या पर भगवान विराज रहे हैं। कहते हैं कि यहाँ महर्षि गौतम ने तपस्या की थी। उन्होंने इस मन्दिर का निर्माण कराया था। कावेरी की इस धारा के पास ही हैदरअली का स्मारक है।

वहां से चलने पर सड़क के दोनों ओर शहतूत के खेतों को देखा। जिनपर रेशम के कीड़ों का पालन होता है। हम लोगों ने शहतूत के इक्के-दुक्के पेड़ अवश्य देखे हैं किन्तु इस प्रकार शहतूत की खेती होते नहीं देखी थी। शहतूत की खेती का भली प्रकार निरीक्षण कर बंगलोर की ओर वढ़ गये। वगलोर पहुँच कर शंकर-मठ में आसन लगाया।

दिनांक १६–१–७९ को प्रातः ही शिवप्रकाशन जी साहव पधार गये जो राजस्थान विद्युत-वोर्ड के चेयरमेन रह चुके हैं। वे वड़े कर्मठ कार्यकर्ता, विद्वान एवं उच्च कोटि के इंजिनियर हैं। राणा प्रताप-सागर, जवाहर सागर और कोटा वेराज आदि इन्हीं की देखरेख में निर्मित कराये गये थे। श्रीदाता के चरणों में इनकी अनन्त-अपार भक्ति है। जब वे राजस्थान मे थे तव उन्होंने श्रीदाता से बंगलोर पधारने की प्रार्थना की थी। श्रीदाता ने उस समय फरमाया था कि किसी समय आवेंगे। बंगलोर में आते ही उन्हें सूचित किया गया। वे किसी आवश्यक कार्यवश कहीं जा रहे थे कि उन्हें सूचना मिली। सभी कार्य छोड़कर वे तत्काल शंकर-मठ में आ गये।

आते ही वडे प्रेम से गद्गद् होकर श्रीदाता के चरणो में लोट गये। उनके नेत्रो में प्रेमाश्रु थे। श्रीदाता ने पुचकारते हुए कहा, "वगलोर में तो देखने योग्य कुछ नही है। आपके दर्शन करने व आपसे किये हुए वादे को पूरा करने को आना ही पडा।" शिवप्रकाशन जी बोले, "आपकी वडी कृपा है। पूजा के समय रोजाना आपके दर्शन कर लिया करते है।" इसपर श्रीदाता ने हँसते हुए कहा, "हमसे तो इतना भी नही होता है।"

श्री शिवप्रकाशन जी पर श्रीदाता की वडी कृपा है। उनका जीवन कई घटनाचक्रो के मध्य होकर व्यतीत हुआ है किन्तु वे तो दृष्टा मात्र रहे। प्रभु कृपा से सभी मगल हुआ। कुछ समय तक वातचीत होती रही। इसी वीच पन्द्रह मिनिट का ध्यान भी कराया गया। शिवप्रकाशन जी को एक मिटिंग में जाना था अत आज्ञा मागकर चले गये। कुछ समय वाद दिनेश जी की वहन आयी। उन दिनो वह वही थी। उसका भी श्रीदाता के चरणो में अटूट प्रेम है। श्रीदाता के दर्शन कर वह वडी प्रसन्न हुई।

वगलोर रेशमी साडयो के लिए प्रसिद्ध है अत कुछ वन्धु साडिया खरीदने व कुछ वगलोर देखने चले गये। रायपुर और करेडा क्षेत्र के कई लोग व्यवसाय हेतु बंगलोर में रहते है। उन्होंने वाजार में इन लोगो को देखा। वात की वात में सूचना फैल गई और वे शकर-मठ में आ गये। श्रीदाता के दर्शन कर वे वडे ही प्रसन्न हुए। सव ही ने मिलकर भोजन का आग्रह किया। साय का भोजन होना निश्चय हुआ।

दिनभर लोगो का आवागमन होता रहा। तीसरे प्रहर सत्सग चल पडा। कई जिज्ञासु लोगों ने अनेक प्रश्न किये। कुछ ने अपने तर्क भी प्रस्तुत किये। श्रीदाता ने प्रत्येक तर्क एव प्रश्न का उत्तर दिया तथा अनेक उदाहरण देकर उन्हें समझाया। श्रीदाता ने वताया कि गुरु वनने के पहले शिष्य होना होता है। अहरूपी सिर को गुरु के चरणो में रखना आवश्यक होता है। समर्पण के विना कुछ मिलता नही। वहां विधि विधान, नियम, कानून आदि कुछ भी नही है। वहां तो केवल सत्य का आधार चाहिये। एक दर्शन—

शास्त्री जो ब्रिगेडियर के पदपर थे उन्होंने कई प्रश्न किये। अन्त में वे श्रीदाता के चरणों में झुक ही गये। इस तरह बड़ी देर तक सत्संग चलता रहा।

संध्या समय से कुछ पूर्व श्री शिवप्रकाशन जी दो तीन कार लेकर आ गये। उनका कार्यक्रम श्रीदाता व मातेश्वरी जी को घर ले जाने का था। श्रीदाता तत्काल तैयार हो गये। उन्होंने श्री शिवसिंह जी और इस सेवक को भी साथ ले लिया। श्री चाँदमल जी जोशी भी साथ थे। श्री शिवप्रकाशन जी का बंगला ३३, सांई निलयम्, प्रथम ब्लॉक जयनगर में है। बंगले के बाहर पूरा कुटुम्ब उपस्थित था। श्रीदाता के पधारते ही सभी ने भूमिपर लौट कर प्रणाम किया। श्रीदाता बंगले में पधार कर सीधे पूजागृह में गये। वहाँ से फिर हॉल में आकर विराज गये। सभी घर वालों ने एक एक कर प्रणाम किया, पुष्पहार अर्पित किया और फल भेंट किये। आरती का समय हो गया था अतः उनकी पुत्रियों ने पूजागृह में जाकर आरती की। पूजागृह की आरती के बाद सभी ने एक-एक कर श्रीदाता और मातेश्वरी जी की आरती संजोई और उसके बाद पुनः पुष्पहार, फल, दूध आदि अर्पित किया। श्रीदाता और मातेश्वरी जी ने हथेली मे दूध लेकर प्रसाद लिया। अन्य लोगों ने भी प्रसाद लिया।

श्री शिवप्रकाशन जी का पुत्र वहीं श्रीदाता के सामने बैठा हुआ था। उसके सांई बाबा का इष्ट है। अचानक उसमें भावोद्रेक हुआ। उसको ऐसा लगा कि श्रीदाता के स्थान पर सांई बाबा बैठे हैं। वह गद्‌गद् होकर खड़ा हो गया और जोर जोर से चिल्लाने लगा, "सांई बाबा आ गया। सांई बाबा आ गया।" यह कहकर वह पृथ्वी पर लेट कर प्रणाम करने लगा। फिर हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। श्रीदाता ने हाथ का संकेत किया। संकेत करते ही वह पूर्व की स्थिति में आ गया। कुछ देर तक सभी भावविभोर होकर श्रीदाता को देखते ही रह गये। उस अनिर्वचनीय आनन्द का वर्णन करना संभव नहीं।

कुछ समय बाद श्रीदाता उठकर खडे हुए। सभी ने प्रणाम किया व कारो तक श्रीदाता को पहुँचाने आये। श्री शिवप्रकाशन जी का श्रीदाता के चरणो में कितना प्रेम है, इस सम्बन्ध में डाक्टर बृजकिशोर जी शर्मा ने उस समय बताया, " एक बार श्री शिवप्रकाशन जी ने जयपुर में अपने बगले पर श्रीदाता की पदरावणी की। पूजा के बाद दूध का प्रसाद भेंट किया गया। श्रीदाता ने कमरे का द्वार बन्द करवा दिया। कमरे के बन्द हो जाने पर सब ही ने देखा कि कमरा प्रकाश मे जगमगा रहा है। दाता स्वय प्रकाश के पुञ्ज हो गये। उस समय श्रीदाता ने स्वय अपने मुखारविन्द मे कहा कि दुनिया के सचालक वे ही है। उस दिन वे एक सन्त के यहाँ पधारे थे। श्रीदाता के साथ जाने वालों ने सन्त के चरणो में प्रणाम किया। श्रीदाता ने भी अपनी ओर मे सन्त के चरण स्पर्श करने को कहा। इसपर मुझको शका हो गई। शका यह हुई कि एक ओर तो दाता फरमाते है कि वे ही विश्व के सचालक है और दूसरी ओर एक साधारण से व्यक्ति की तरह व्यवहार कर रहे है। शका के उठते ही श्रीदाता ने फरमाया कि उन्होने जो कुछ कहा है वह सत्य है। दुनिया में बैठने की वजह मे दुनियादारी रखनी पडती है। श्री शिवप्रकाशन जी के निष्कपट प्रेम के कारण ही मुझे ऐसा अवसर मिला तथा मेरी शका मिट गई।" श्री शिवप्रकाशन जी का प्रेम श्रीदाता के प्रति निष्काम और सच्चा है। उन्ही के कारण ही तो दक्षिण की यात्रा का कार्यक्रम बना ऐसा लगता है। श्री शिवप्रकाशन जी और उनके परिवार वाले तो निहाल हुए ही किन्तु हम जैसे स्वार्थी व्यक्तियो को भी अपार आनन्द की अनुभूति हुई।

वहाँ मे विदा होकर श्रीदाता का पधारना दिनेश जी के बहनोई जी के बगले पर हुआ। बहनोई जी तो कोइमटूर में थे। केवल उनकी बहन थी। अत कुछ समय विराज कर शकर-मठ में पधार गये। शकर-मठ में कई लोग उपस्थित थे। अत पधारते ही सत्सग में बैठ गये। दस बजे तक सत्सग चलता रहा। बाद में भोजन हुआ।

दिनाक १७-१-७९ को प्रात ही वहाँ से प्रस्थान की योजना थी किन्तु प्रात ७ बजे श्री शिवप्रकाशन जी आ गये और खडे खडे ही

प्रसंग चल पड़ा। श्रीदाता ने अपने प्रवचन में प्रभु स्मरण पर विशेष जोर दिया तथा साथ ही साथ सत्संग में रुचि लेने को कहा। श्रीदाता ने यह भी कहा कि दाता तो सर्वत्र है फिर भी कोई मिले हमारा देशी, धणियाँ (मालिक) की वाता कहसी। उसके प्रेमियों को, उसके चाहने वालों को, उसके वन्दों को भाव-विभोर देखने के लिए और सभी में उसको देखने को ही यह यात्रा है। सत्संग के कण मिल जाय इसी हेतु इधर उधर जाना होता है। उस दाता को जल में, थल में, आकाश में, मन में, पुष्पों की सुगन्ध में और स्वयं में देखो। दोनों ही रूप पूर्णरूप से उसी के हैं अतः गुरु दोनों ही रूप धारण करता है। माया में जो अपनी झलक वता दे वही तो गुरु है। इसीलिए तो उसे कृष्णचन्द्र कहा है। कृष्ण अन्धकार और चन्द्र प्रकाश का सूचक है। इसी प्रकार वड़ी देर तक प्रवचन चलता रहा। श्रीदाता ने माया और ब्रह्म का अच्छा विवेचन किया। लोग मुग्ध होकर सुनते रहे। दो घण्टे इस प्रकार वीत गये जैसे कुछ मिनिट ही वीते हों।

समय नौ के ऊपर हो गया अतः श्रीदाता को पधारने हेतु निवेदन किया इसपर वे धन्यवाद देकर वस में जाकर विराजे। वहाँ उपस्थित लोगों के नेत्रों में वरवस ही आँसू ढ़लक पड़े। विदाई का दृश्य हृदयविदारक था।

होस्पेट

एक सौ अस्सी कि. मी. चल कर एक उपयुक्त स्थान पर ठहर कर भोजन की व्यवस्था की। रात्रि को सात वजे होस्पेट पहुँच गये। वन-विभाग के डाक वंगले पर पहुँचते पहुँचते दस वज गये। डाक वंगला तुंगभद्रा वाँध के किनारे एक पहाड़ी की तलहटी में वना है। प्रातः ही सभी ने उसी वाँध में स्नान किया। पानी इतना स्वच्छ और शीतल था कि स्नान का आनन्द आ गया। भोजन की व्यवस्था कर तथा नाश्ते के वाद वचे हुए भोजन को साथ लेकर लगभग प्रातः दस वजे वहाँ से रवाना हुए। होस्पेट होते हुए हम्पी पहुँचे। 'तुंग पान और गंगा स्नान' यह उक्ति

प्रसिद्ध है। यही तुग अपनी सहेली भद्रा मे मिलकर तुगभद्रा हो गई। इसी के किनारे हम्पी यानी विजयनगर वसा हुआ है। इस स्थान पर तुगभद्रा चक्करदार वह रही है। हम्पी वहुत प्राचीन नगर है। प्रारम्भ मे ही यह शक्ति का आगार रहा है। यह स्थान कामदेव का दहन स्थल, वसिष्ठ की तपोभूमि, हनुमान जी का जन्मस्थान, कृष्ण के कलक के छुटकारे का स्थान और जामवन्ती मे श्रीकृष्ण का विवाह स्थान रहा है ऐसा कहा जाता है। त्रेता में इसी हम्पी को किष्किन्धा कहा गया है। सुग्रीव की गुफा और वाली दहन का टीला आज भी हम्पी में देखा जा सकता है।

द्वापर के वाद हम्पी उजड गई। कलियुग में राजा विजयध्वज ने इस नगर का पुर्ननिमाण करा कर विजयनगर नाम रखा। सोलहवी सदी में कृष्णदेव राम ने इस नगर को अजेय, दर्शनीय और अनुपम वना दिया। विजयनगर किसी जमाने में बडा वैभवशाली नगर रहा है। ईरान के राजदूत अब्दुल रजाक ने लिखा है, "ऐसा सुन्दर शहर न आँखो मे देखा है न कानो से सुना है।" कुछ विदेशी यात्रियो ने इसके लिए लिखा है, "विजयनगर का विस्तार इतना विपुल है कि लगातार तीन माह तक चक्कर काटे तो भी इसका परिचय पाना कठिन है। यहाँ मोती और रत्नो को भी अनाज की तरह तोल कर बेचते है। यहाँ का राजा प्रजापालक और अपनी प्रजा मे लेना ही नही, देना भी जानता है। प्रतिवर्ष राजा लोग तुला दान किया करते है।" तुलाभार नाम के पत्थर का चौखट आज भी विद्यमान है।

भौतिक दृष्टि मे आज हम्पी उजड गया किन्तु आध्यात्मिक एव ऐतिहासिक दृष्टि से यह अनुपम है। 'क्या करेगी कजा, आत्मा हूँ वदल लूंगा चोला' की तरह हम्पी के हर खण्ड में सम्पत्ति लवालव भरी पडी है। कवि चन्द्रशेखर ने लिखा है, "सूखे पेड में भी कोपले उत्पन्न करने वाली, वांझ जानवरो को दुह कर दूध निकलने वाली और ऊसर भूमि को भी उपजाऊ वनाने वाली विजयनगर की प्रजा सचमुच विश्व की मानवता के पौरुष की खान है। श्री का वासस्थान, वाणी का समागृह, समस्त वस्तुओं का

भण्डार, उदारता का जन्म स्थान, सत्य का निवास, शिव-भक्तों का आश्रयदाता, इत्यादि महिमाओं से परिपूर्ण हम्पी का वर्णन करना असम्भव है।"

आज हम्पी वीरान है किन्तु वहाँ के पत्थर पत्थर में प्राचीन इतिहास और प्राचीन गौरव बोल रहा है। हम्पी में देखने योग्य स्थान हैं :- अनंत शयन देवालय, वैश्याओं का कुआ, मलप्पा का देवालय, राजमार्ग का महाद्वार, सागर गर्जन नहर, हेमकूट, राई की गजानन मूर्ति, चने के आकार का गणेश, विरूपाक्ष देवालय, रथ मार्ग, मातंग पर्वत, वैश्याओं का बाजार, अच्युतराय का मन्दिर, कोदण्डराम का मन्दिर, चक्रतीर्थ, मंत्रोद्वार, मारुति और सन्मुख-वसव मन्दिर, वराह देवालय, व्यासराव जी का मठ, सीता माता का स्मरण चिन्ह, राजाओं के तुलाभार का शिलास्तम्भ, विजय विट्ठल देवालय, आनेगुन्दी, वाली की चिता, श्रीकृष्ण देवालय, उग्रनरसिंह विग्रह, उत्थान वीरभद्र विग्रह, हजार राम देवालय, रानि निवास, गजशाला, कमलापुर बंगला, राजमहल प्रांगण, प्रसन्न विरूपाक्ष देवालय, टकसाल, विनायक मन्दिर, एक ही मसजिद, महानवमी का चबूतरा, रानियों के स्नानघर, पट्टाभिराम देवालय, तेलित देवालय, माल्यवन्त रघुनाथ देवालय और जम्बूनाथ देवालय है।

हम्पी की वीरान एवं खण्डित इमारतों को देख कर हमारे मन आनन्द और दुःख की लहरों में विचरण करने लगे। वहाँ का एक एक पत्थर कई विचित्र कथाएँ कहता प्रतीत होता है जिन्हें जानने की उत्सुकता होते हुए भी जान लेना सरल नहीं है। कई स्थानों पर बसों के जाने में रुकावट पैदा हुई। एक द्वार छोटा होने से कमलापुर जाकर भी कमलापुर नहीं देखा जा सका। इसी प्रकार ऋष्यमूक पर्वत पर भी जाने से वंचित रहे। जो हो उस क्षेत्र के दर्शन कर हमारी नस-नस में वीरता का संचार हो गया। ऐसा लगता है कि यहाँ आने पर एक बार तो कायर व्यक्ति में भी वीरता और पौरुष-पराक्रम का संचार हो जाता है। वहाँ की भूमि ने अपना प्रभाव दिखाया और हमारे दो साथी आपस में भिड ही गये। यदि श्रीदाता का भय साथ न होता तो वह भिड़ना क्या

गुन खिलाता, कुछ कहा नही जा सकता । श्रीदाता ने इस भूमि की वडी प्रशसा की तथा फरमाया कि यहाँ की समृद्धि को नष्ट करने का श्रेय हमारी आपसी फूट को जाता है ।

भक्तो के भगवान

बागलपुर पहुँचते पहुँचते रात्रि हो गई अत माहेश्वरी धर्मशाला में ही ठहरना पडा । धर्मशाला का व्यवस्थापक बडा भला व्यक्ति था । उसने न केवल सेवा ही की वरन् घृत आदि आवश्यक वस्तुओ की व्यवस्था भी कर दी । भोजनोपरान्त वही विश्राम किया गया । बागलपुर से प्रात ७ बजे रवाना हुए । बीजापुर पहुँचते पहुँचते आठ बज गये । बस के पहिये में हवा भरने हेतु बीजापुर के एक पेट्रोल पम्प पर एक घण्टे ठहरना पडा । बीजापुर मकबरो के लिए प्रसिद्ध है । इनमें ही एक तो विश्व का सबसे बडा मकबरा है । पास ही पशु मेला लगा था । बैल आ-जा रहे थे । श्रीदाता ने कई बैलो को देखा । बैलो के सीग लम्बे व तीखे थे । कई बैल बडे सुन्दर थे । एक बैल का मूल्य तीस हजार रुपये बताया गया । हम लोग तो आश्चर्य से देखते ही रह गये ।

वहाँ से रवाना होकर लगभग एक बजे पण्ढरपुर पहुँचे । पण्ढरपुर भगवान विट्ठल का पावन धाम है । कहते हैं कि इस क्षेत्र में पुण्डरीक नाम का एक भक्त हुआ था जो माता-पिता का परम सेवक था । मातृ-पितृ भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हे दर्शन दिये । जिस समय भगवान का पधारना हुआ उस समय पुण्डरीक जी माँ-बाप की सेवा में लीन थे । वहाँ एक ईंट रखी हुई थी जिसको भगवान के खडे होने के लिए सरका दी । भगवान उसी पर खडे हो गये । सेवा से निवृत्त होने पर उन्होने भगवान की विधिवत पूजा की । उनपर प्रसन्न होकर भगवान ने उनसे वर माँगने को कहा । पुण्डरीक जी ने कहा, "यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो आप सदा यहाँ इसी रूप में रहे ।" तभी से प्रभु वहाँ इसी रूप में विद्यमान हैं ।

पण्ढरपुर में ठहरने के लिये कई मठ और धर्मशालाएँ हैं । लक्ष्मण धर्मशाला में हम लोग ठहरे । धर्मशाला भवन विशाल, स्वच्छ व

साफ था। बीचोबीच भगवान श्रीकृष्ण का सुन्दर मन्दिर है। श्रीदाता दूसरी मंजिल के एक कमरे मे विराजे। अन्य लोग इधर उधर के कमरों में ठहर गये। थोड़े विश्राम के पश्चात श्रीदाता एक कमरे में आकर विराजे। उन्होंने इस क्षेत्र की प्रशंसा करते हुए गुरु की महत्ता का वखान किया। उन्होंने नामदेव जी का उदाहरण देते हुए वताया कि उनपर भगवान विठ्ठल की अपार कृपा थी फिर भी उन्हें विठोवा जी को गुरु वनाना पड़ा। गुरु के चरणों में जाने पर ही उनके अहंकार का नाश हुआ। कुछ देर इसी प्रकार की वातचीत होती रही।

इसके पश्चात् हम कुछ लोग मन्दिर में दर्शनार्थ पहुँच गये। उस समय विलकुल भीड़ नहीं थी। लौट कर जव श्रीदाता को वताया गया कि मन्दिर में दर्शन सुगमता से हो रहे हैं तो वे मातेश्वरी जी सहित दर्शनार्थ चल दिये। जिस समय श्रीदाता का पधारना मन्दिर में हुआ उस समय श्री विग्रह को स्नान कराया जा रहा था अत: द्वार वन्द था। शंकराचार्य जी की पीठ के मुख्याधिकारी जी भी आये हुए थे अतः भीड़ हो गई। श्रीदाता को कुछ देर प्रतीक्षा करनी पड़ी। द्वार खुलते ही श्रीदाता का पधारना हो गया। उन्होंने भगवान विठ्ठल के दर्शन वड़े भावविह्वल होकर किये। कुछ देर एक मुद्रा में वहीं खड़े रहे। कुछ यात्रियों के वहाँ आ जाने पर वे वहाँ से हट गये। मन्दिर के घेरे मे ही श्री रघुमाई, श्री वलराम जी, श्री सत्यभामा जी, श्री जामवन्ती जी और श्री राधाजी के मन्दिर हैं। इन मन्दिरों के दर्शन कर श्रीदाता वहां पधारे जहॉ चोखामेला और नामदेव जी की समाधि है। श्रीदाता ने दोनों सन्तों की समाधियों को वड़े प्रेम और श्रद्धा के साथ नमस्कार किया। वहाँ से मन्दिर के दूसरे भाग में पधारना हुआ। वहाँ सांवता जी माली, नामदेव जी, ज्ञानदेव जी, तुकाराम जी, एकनाथ जी और पुण्डरीक जी की वड़ी वड़ी तस्वीरें लगी हुई थी। वड़ी देर तक श्रीदाता इन्हें देखते रहे व मातेश्वरी जी को संकेतों द्वारा वताते रहे। साथ के लोग श्रीदाता की इस तन्मयता और भक्तों के प्रति श्रद्धा को देखकर अपनी मस्ती में मस्त हो गये। वहॉ से चल कर चन्द्रभागा

नदी पर पहुँचे। चन्द्रभागा नदी के मध्य नारद जी का, पुण्डरीक जी का और दस-शिवलिंग मन्दिर है। एक चबूतरे पर भगवान के चरण चिह्न भी हैं जिन्हें विष्णुपाद कहते हैं। वहाँ गोपाल जी, जनाबाई, एकनाथ, नामदेव, ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि के मन्दिर भी है। वहीं व्यंकटेश्वर का मन्दिर भी है। किनारे पर ग्वालियर सरकार द्वारा निर्मित राधाकृष्ण का सुन्दर मन्दिर है। इन सब के दर्शन करने में कुछ समय लगा ही।

कुछ साथी चन्द्रभागा नदी के उस पार श्री वल्लभाचार्य जी की बैठक में गये। वहाँ से तीन मील दूर स्थित जनाबाई के घर जाकर उस चक्की को देखी जिसे भगवान ने चलाई थी। वहाँ छाछ बिलोने की हण्डियाँ को भी देखी। वे नामदेव जी और गोरा जी के मकानों पर भी गये। काकोड जी के मन्दिर को भी देखा जहा प्राचीन और अर्वाचीन सन्तों के चित्र व्यवस्थित रूप मे सजा कर रखे गये है व प्रभु की लीलाओ की झाँकियाँ प्रदर्शित की गई है।

रात्रि को भजन-कीर्तन हुआ। बीच बीच में श्रीदाता का प्रवचन भी प्रसगानुसार हो जाता था। अधिकतर प्रवचन भगवान विठ्ठल और उनके अनन्य भक्तो की लीलाओ तक ही सीमित रहा। भक्तो की लीलाओ के वर्णन के समय श्रीदाता इतने भावमग्न हो जाते थे कि देखते ही बनता था। रात्रि के चार बजे तक सत्सग चलता रहा।

दिनाक २०-१-७९ को साथी लोग जल्दी ही उठकर भगवान विठ्ठल के दर्शन कर आये। श्रीदाता का पधारना नहीं हो सका। सूर्योदय का समय था। सभी लोग चलने की तैयारी में थे कि श्रीदाता ने कमरे से बाहर पधार कर पूछा, "क्या इस समय भगवान विठ्ठल के दर्शन हो सकेंगे?" वहाँ उपस्थित लोगों ने एक स्वर में कहा, "अब तो दर्शन बन्द हो चुके हैं।" यह सुन कर श्रीदाता कुछ उदास से हो गये। वे आधे मिनिट तक मन्दिर की ओर देखते रहे। अचानक उनका चेहरा दिव्य प्रकाश से चमक उठा और चेहरे पर मुस्कराहट छा गई। वे दो मिनिट बिल्कुल

स्थिर हो गये। ऐसा लगा मानो भगवान विठ्ठल के उन्हें दर्शन हो गये हों। इसके बाद उन्होंने गद्‌गद् होकर बड़ी श्रद्धा से नमस्कार किया। कुछ देर बाद जब वे सामान्य स्थिति में आये तब फरमाया, "मन्दिर में जाकर क्या करना जब मन्दिर वाला स्वयं यहाँ आकर दर्शन दे दे।" इन शब्दों को सुन कर सभी उपस्थित लोग भावमग्न हो गये। उन्होंने श्रीदाता को साष्टांग प्रणाम किया।

बस में बैठने के पूर्व श्रीदाता राधाकृष्ण के मन्दिर मे गये। वहाँ उन्होंने पुजारी से बातचीत की तथा श्री जोशी को भेंट करने का संकेत किया। श्री जोशी ने भेंट की सन्दूक में रुपये डाले। श्रीदाता पूरे ही गाँव को नमस्कार कर बस में जा विराजे। विराजते विराजते यह स्वर सुनने को मिला :-

"जुगल किशोर हमारे ठाकुर।
सदा सर्वदा हम जिनके हैं,
जनम जनम घर जाये चाकर॥
चूक परैं परिहरै न कबहूँ,
सब ही भाँति दया के आकर।
जै श्रीभट्ट प्रगट त्रिभुवन में,
प्रनतनि पोषत परम सुधाकर॥"

आलिन्दी में

पंढरपुर से सतारा की ओर चले। सतारा वीर शिवाजी की राजधानी रहा है। आसपास का क्षेत्र सूखी पहाड़ियों से घिरा हुआ है। अधिकतर पहाड़ शिवलिंग के आकार के हैं। श्रीदाता ने फरमाया, "ये पहाड़ियाँ हमे वीरवर शिवाजी की याद दिलाती हैं जो स्वामी गुरु रामदास जी के प्रिय शिष्य थे। उन्होंने किस प्रकार हिन्दू राज्य, हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति की रक्षा की यह किसी से छिपा हुआ नहीं है। उस महान् गुरु और उस वीर पुरुष को हमारा बारं बार नमस्कार है।" ये शब्द सुनकर हमारा सिर उस महान् गुरु और उसके महान् शिष्य के चरणों में श्रद्धा से झुक गया। जीजाबाई, शिवाजी, तानाजी, सम्भाजी आदि अनेक वीरों के

चित्र और उनके त्याग और वीरतापूर्ण कार्य हमारे नेत्रो के सामने चलचित्रो के समान आने लगे। मन ही मन उन सब वीरो का स्मरण करते हुए ठीक बारह बजे सतारा पहुँचे। निकट ही सज्जनगढ की पहाडी पर श्री गुरु रामदास जी की समाधि है जिसको सभी ने बडी श्रद्धा से प्रणाम किया। फिर पूना की ओर चल दिये। पठार को पार करते समय पहाडियो का दृश्य बडा ही सुन्दर एव आकर्षक लगा। मार्ग के सौन्दर्य का पान करते हुए ६ बजे के लगभग पूना पहुँच कर बाहर ही एक पेट्रोल पम्प पर ठहर गये। श्री पारीख साहब और श्री जोशी जी बिना ही दाता की आज्ञा लिये शहर में व्यवस्था हेतु चले गये जो बडी देर तक नही लौटे। तीन घण्टे बाद लौटे भी तो निराश होकर। ठहरने की व्यवस्था कही भी न हो सकी। श्रीदाता ने उन्हे आलिन्दी चलने को कहा। आलिन्दी पहुँचने में आधा घण्टा लगा। वहा माहेश्वरी धर्मशाला में ठहरने की व्यवस्था हो गई।

आलिन्दी पहुँच कर भोजन बनाया। वहा श्रीदाता का मूड् बहुत ही बढिया हो गया। श्रीदाता की विनोदी प्रवृत्ति तो है ही, वहाँ वे विनोद पर उतर पडे, प्रत्येक व्यक्ति को अलग अलग कमरो में पधार कर खूब हँसाया। श्री बशीधर जी और श्री कल्याणप्रसाद जी हँसी के माध्यम बने। दो तीन घण्टे तक हँसी का वातावरण बना रहा। उस समय के आनन्द का क्या कहना। पूरे दिनभर की थकावट दूर हो गई।

अगले दिन प्रात: ही इन्द्रायणी नदी में स्नान किया। आलिन्दी सन्तो की लीलास्थली रही है। यहाँ गोराजी, ज्ञानदेव जी आदि सन्तो की समाधियाँ है। स्नानोपरान्त श्रीदाता ज्ञानदेव जी की समाधि पर पहुँचे। यहाँ एक आश्चर्य की बात हुई। जब श्रीदाता समाधि के द्वार पर पहुचे तब द्वार पर स्थापित गणेश जी के मूर्ति पर चढाये हुए पुष्प उनके सिर पर आ पडे। देखने वालो को भी आश्चर्य हुआ। यह सयोग की बात भी नही हो सकती, कारण कभी ऐसा सुनने में नही आया। हवा भी उस समय नहीं चल रही थी जिससे फूलो के गिरने की सभावना हो। इस प्रकार

गणपति जी ने द्वार पर ही उनका स्वागत किया। वे जिस समय भक्त ज्ञानेश्वर जी की समाधि के सम्मुख जाकर खड़े हुए उस समय उनका चेहरा देखने ही योग्य था। कुछ समय बाद उस स्थान पर पधारना हुआ जहाँ चरण-पादुका थी। डाक्टर शर्मा ने बताया कि प्रातः ही इस स्थान पर पादुका रख दी जाती है। इसपर श्रीदाता ने फरमाया, "यह पृथ्वी ही उसकी पादुका है।" समाधि पर अनेक भक्तों के चित्र देखकर वे भावविभोर हो गये। उनकी स्थिति विचित्र सी हो गई। कुछ समय बाद जब वे सामान्य स्थिति में आये तब मन्दिर के बाहर निकले। उस समय कुछ लोग कीर्तन करते हुए आ रहे थे। कीर्तन था :–

झूँठी काया झूँठी माया, झूँठा सब संसार।

सब के पीछे एक वृद्ध महिला थी। उसने श्रीदाता को प्रणाम किया। श्रीदाता ने भी उसे नमस्कार किया। इस पर उसने झुक कर नमस्कार किया। श्रीदाता ने पुनः नमस्कार किया और बोले, "माई ! माको राम तो थारो (तेरा) दर्शन करवाने ही आया है।" उस वृद्धा के आंखों में आँसू आ गये। उसने बड़ी श्रद्धा से नमन किया व फिर अन्य लोगों के पीछे पीछे समाधि मन्दिर में चली गई।

वहाँ से चल कर गौरा जी के मन्दिर में पधारे। वहाँ जाकर श्रीदाता ने भावमय शब्दों में फरमाया, "धन्य हैं गौरा जी, जिन्होंने कीर्तन के आनन्द में अपना भान ही भुला दिया। कीर्तन के नृत्य में अपने पुत्र को ही कुचल दिया। जब उनकी पत्नी रोने लगी तो वे इतना सा ही बोले कि जिसका था उसने ले लिया यदि वह उसका है तो वही जाने। कैसी भाव तल्लीनता, अनन्यता और समरसता थी। उनमें सब से बड़ी विशेषता यही थी कि वे सभी प्राणियों में भगवान विठ्ठल को ही देखते थे" श्रीदाता के शब्दों को सुनकर मन ही मन सभी ने उन्हें प्रणाम किया।

वहाँ से चलकर उस दीवार को देखने पधारे जिसपर बैठकर वे चाँगदेव से मिलने गये थे। किवदन्ती है कि वृद्ध सन्त चाँगदेव ज्ञानेश्वर जी से मिलने पधारे। अपना महत्व बताने के लिए उन्होंने वाहन के रूप में सिंह का प्रयोग किया। जिस समय उनके आगमन

की सूचना मिली उस समय चारो भाई बहिन एक दीवार पर बैठकर धूप सेवन कर रहे थे। उन्होने उस दीवार को ही चलने का आदेश दे दिया। दीवार उनको लेकर सन्त के पास पहुँची। सन्त को अपनी भूल पर पश्चाताप हुआ। उन्होने उनसे क्षमा माँगी। दीवार साधारण सी है और उसमें देखने योग्य कुछ नही है।

वहाँ से धर्मशाला मे गये। भोजनोपरान्त चलने की तैयारी करने लगे। श्रीदाता बरामदे में विराज गये। धर्मशाला के मैनेजर श्रीरग वहाँ आ बैठे। उनके साथ एक जिज्ञासु भक्त श्री रामचन्द्र मण्डोवरा भी था। श्रीदाता ने मैनेजर साहब का साधारण परिचय पूछा जिसपर उसने बताया कि वह स्वय श्रीरग हैं। ज्ञानदेव, पाण्डुरग और सोपानदेव उनके पुत्र है। इसपर श्रीदाता मुस्करा दिये और फरमाया, "आपने तो सभी को अपने घर में रख लिया है, अब आपको क्या कहा जाय?" कुछ देर बाद पूछा, "आप अपने बच्चो की बात जानते हो?' उसके इनकार करने पर श्रीदाता ने कहा, "जब आप अपनी या अपने बच्चो की बात नही जानते, तो हम हमारे पिया की बात कैसे जान सकते है? वह तो हद-बेहद है। यदि कोई दाता को जान जाय तो जानने वाला ही नही रहता है। जिस सीप में स्वाति नक्षत्र की बूँन्द आ गई फिर वह सीपी नहीं रहती। वह तो मोती हो जाती है। कहा है –

अहि मुख गिरचो तो विष भयो, कदली भयो कपूर।
सीप गिरचो मुक्ता भयो, यह तो सगत के फल मूर॥

इस जीवरूप सीपी में प्रेम रूपी स्वाति नक्षत्र का जलबिन्दु गिर पडे तो यह जीव रूपी सीपी ब्रह्म रूप मोती हो जाय। "सीप में मोती है किन्तु चाह के बिना काम नही चलता। बिजली चमकती है, उसकी चमक में मोती पिरो सको तो पिरो लो।" इस प्रकार की बाते चलती रही। दोनों ही बडे प्रभावित हुए। श्रीदाता के दर्शन कर वे अपने भाग्य की सराहना करने लगे।

सभी के तैयार हो जाने पर श्रीदाता उठे और बस में जा विराजे। श्रीरामचन्द्र जी श्रीदाता के प्रवचन से एव दर्शन से इतने

प्रभावित हुए कि वस के पास आ खड़े हुए व वस की परिक्रमा लगाने लगे। परिक्रमा के वाद वे वस में चढ़ कर बोले,"जिस ध्येय से मैं आलिन्दी में आया था, आपके दर्शनों से वह पूरा हो गया। आपकी कृपा से मुझे सब कुछ प्राप्त हो गया है। आपकी अपार कृपा है।" यह कहकर उन्होंने श्रीदाता को प्रणाम किया व वस से उतर गये। फिर हाथ जोड़ कर एक ओर खड़े हो गये। बड़ी करुणार्द्र स्थिति थी उनकी उस समय। उनके नेत्र तरल थे और चेहरा भावमुद्रा में। उनको देखकर ऐसा लगा जैसे उन्होंने सब कुछ पा लिया था।

वसें चल पड़ी। श्रीदाता ने पूछा, "आप लोगों ने चक्की देखी है।" अनेक बोल उठे "देखी है।" श्रीदाता मुस्करा दिये। वे बोले, "मारा राम तो उस चक्की की बात कर रहा है जिसको दाता चला रहे हैं। कवीर नें उस चक्की के लिए कहा है :–

चलती चक्की देख कर दिया कवीरा रोय।
दो पाटन के बीच में सावित वचा न कोय॥

आकाश और पृथ्वी के वीच केवल वही वच सकता है जो सद्गुरु का आधार लेकर चलता है।" इस प्रकार की वातें हो ही रही थी कि देहू नामक गाँव आ गया जहाँ तुकाराम जी की समाधि है। यह समाधि इन्द्रायणी नदी के किनारे है। वहाँ आश्रम भी है। सन्त तुकाराम जी का शाके १५७१ में निर्वाण हुआ था। इस सम्वन्ध में वहाँ एक अभंग लिखा है :–

विरोधिनाम संवत्सरे (अमंद) शाके १५७१
आम्ही ताते तुम्ही कृपा असो धानी
सकला सांगावी विनंती माझी
वाड़ वेड़ झाला उभा पाण्डुरंग
वैकुण्ठा श्रीरंग वोलविणे
अन्त काली विटोवा आम्हासी पावला
कुंडी सहित झाला गुप्त तुका॥

श्रीदाता ने इसे वडे प्रेम मे पढा और फिर इसका अर्थ वताया। श्रीदाता ने इस भाषा का अध्ययन भी नही किया फिर भी इतना साफ अर्थ वताया कि आश्चर्य होता है। उनकी लीला ही विचित्र है। वहा का वातावरण वडा शान्त और मधुर था। थोडी सी देर ही ठहरना हुआ किन्तु मजा आ गया।

वम्वई में

वहाँ से आगे वढे। मार्ग पहाडियो के मध्य होकर जाता है। घाटे में वस गर्म हो गई अत कुछ देर ठहरना पडा। हरी-भरी पहाडियो व लीलाधारी की विचित्रताओ को देखते हुए कुछ दूर पैदल ही चल पडे। आलिन्दी से प्रभुलाल जी, जगदीशचन्द्र जी व स्याली जीको वम्वई ठहरने की व्यवस्था हेतु भेज दिया था। वम्वई में कोशीयल का नहरिया परिवार जो श्रीदाता का परम भक्त है, रहता है। उनसे मिल कर उन्होने एक सुन्दर आवास की व्यवस्था कर ली।

वम्वई से अस्सी मील दूर एक पेट्रोल पम्प पर वसे पेट्रोल लेने ठहरी। जयपुर वाले फोन करने को ठहर गये जिसका परिणाम यह हुआ कि दोनो वसें अलग अलग हो गई। वडी वस थाने के मार्ग पर चली जव कि छोटी वस सीधे ही वम्वई के मार्ग पर चली गई। इसमे वडी कठिनाई का सामना करना पडा। वडी वस थाने के पास जाकर छोटी वस की प्रतीक्षा करने लगी। लगभग चार घण्टे तक ठहरना पडा। इस वीच श्रीदाता एक डेरी फार्म देखने पधारे जो सडक के पास ही था। उसमें लगभग २५-३० भैंसे थी जो एक से एक वढ कर सुन्दर थी। वहाँ की सुन्दर व्यवस्था एव भैंसो की सेवा देखकर वे वडे प्रसन्न हुए। लगभग एक घण्टे तक डेरी की व्यवस्था को देखते रहे।

वम्वई वाले वम्वई से १० कि मी चलकर सडक पर प्रतीक्षा कर रहे थे अत हम लोगो ने थाने से फोन किया जिसको उठानेवाला कोई नही मिला। हम लोग भी हैरान होकर अस्थिर से हो गये। कुछ सूझ नही रहा था कि क्या किया जाय? उधर छोटी वस वाले हमारी वस की प्रतीक्षा में थे। दैवयोग से वे नेहरिया परिवार से मिल लिये। वहाँ उन्हे मालूम हुआ कि एक सडक थाने होकर

आती है व एक सीधी। श्री गहरीलाल जी नेहरिया ने तत्काल एक टैक्सी किराये से की और थाने के लिये चल दिये। जव वे हमारे पास पहुँचे तव जाकर परेशानी दूर हुई।

जयपुर वाले एक वन्दे के नानिया ससुराल वालों के यहाँ ठहरना चाहते थे। उनका कहना था कि वहाँ निःशुल्क व्यवस्था हो जावेगी। वाकी के लोग नेहरिया परिवार द्वारा की गई व्यवस्था का प्रयोग करना चाहते थे। एक प्रकार की कसमकस चली। श्रीदाता ने इस संम्वन्ध में चुप्पी साध ली। जव अधिक आग्रह किया गया तो फरमाया, "जैसी मौज हो, करो। पवई चलना हो तो पवई चलो।" इस पर वसों को 'पवई' चलने का आदेश दे दिया गया। हम लोगों को इससे वड़ा आघात लगा कारण एक माह के पूर्व से ही नेहरिया परिवार श्रीदाता के पधारने की प्रतीक्षा कर रहे थे। लेकिन कुदरत दाता की। वे ले जाना तो चाहते थे पवई (वड़गाँव) लेकिन पहुँच गये 'मलाड़'। मलाड़ में पारीख भवन में व्यवस्था थी। हुआ इस तरह की वन्दों ने वसों के ड्राईवरों को तो पवई का आदेश दे दिया किन्तु टैक्स ड्राईवर को आदेश देना भूल गये जो मार्गदर्शक का काम कर रहा था।

वम्वई में नेहरिया परिवार के अतिरिक्त अन्य सत्संगी भी रहते हैं। सभी ने मिल कर व्यवस्था की थी। उनका श्रीदाता के प्रति प्रेम और श्रद्धा देखने योग्य थी। उन्होंने वड़े प्रेम से सव की सेवा की। उनकी सुन्दर व्यवस्था और सेवा ने लोगों की नाराजगी को शीघ्र ही प्रसन्नता में वदल दिया और सभी यह अनुभव करने लगे कि मलाड़ में आकर अच्छा ही किया।

अगले दिन प्रातः श्रीदाता ने स्पष्ट कर दिया. "माको राम तो दाता की आज्ञा का वन्दा है और दाता भाव के भूखे हैं। वम्वई आने की कतई इच्छा नहीं थी क्योंकि शहर में जाने से ही जी घुटता है और फिर वम्वई तो भारी शहर है किन्तु करें तो क्या करें! इन छोकरों के पीछे वम्वई आना ही पड़ा।" वाह रे दाता! तूं कितना दयालु है। भक्तों के भावों के पीछे नाचना कितना अच्छा लगता है। तेरा मान भले ही टल जावे किन्तु भक्त का

मान नही टलते देखा। जय हो तेरी। तेरी इस छोटी सी कृपा से बम्बई स्थित तेरे बन्दे कितने निहाल हो गये।

श्रीदाता हॉल में विराजे थे और बम्बई वाले प्रेमीजनो की बाते हो रही थी उस समय डाक्टर शर्मा के एक मित्र डा. मिश्रा आ गये। वे हाल ही में अमेरिका आदि देशो का भ्रमण कर आये है। पूछने पर उन्होने बताया कि अमेरिका वाले हर वस्तु का मापदण्ड अर्थ के आधार पर करते हैं अत· दु खी हैं। श्रीदाता ने सूत्र रूप में बताया कि दाता के प्रति रुचि न रखने वाला व्यक्ति अशान्त ही रहता है। कुछ समय ठहर कर श्रीदाता ने सुख और दु ख की व्याख्या करते हुए बताया कि यह सब मन के निर्मित हैं। भौतिक आवश्यकताएँ दु ख में वृद्धि करती हैं। दाता के चरणो में प्रेम होना ही सुख का मूल है। इच्छा करना ही बुरा है। इस तरह बडी देर तक प्रवचन चलता रहा। अन्त में फरमाया कि बात सीधी सी है कि जब तक उसकी चाह नही है तब तक फूल खिलता नही। गाढ का लाड है। खुदी के मिटने पर ही खुदा मिलता है आदि।

नाश्ते के पश्चात बम्बई दर्शन का कार्यक्रम बना। शान्ताक्रुज, शिवाजी पार्क, माहिम, बोरीबन्दर, गोरेगाँव, चर्चगेट आदि स्थानो पर होते हुए विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन जो बम्बई का सबसे बडा स्टेशन है और जहाँ लाखो की सख्या में यात्रियो की भीड लगी रहती है, वहा पहुँचे। वहाँ की भीड से उकता कर आगे बढे। फ्लोरा फाउन्टेन, टाइम्स ऑफ इण्डिया, प्रेस भवन, म्यूजियम, विधानसभा भवन, ताजमहल होटल, इण्डिया गेट आदि स्थानो पर होते हुए विवेकानन्द जी और शिवाजी की प्रतिमाओ के पास जा पहुँचे। इण्डिया गेट पर स्टीमरो में बैठ कर समुद्र में सैर करने का आनन्द लिया। वहाँ से चलकर 'नारीमान पाइन्ट' पर पहुँचे। इस स्थान पर बनी हुई इमारते चौबीस-चौबीस मन्जिलो की बनी हुई हैं और देखने योग्य है। हमने इतनी ऊँची और भव्य इमारते कभी नही देखी थी अत आश्चर्यचकित रहे। वहा से चौपाटी पर पहुँचे। वहाँ का दृश्य भी निराला ही था। अधिकतर लोग मनो-विनोद

और ऐश करने को ही वहाँ आया करते हैं। फिर हैंगिग गार्डन होते हुए लक्ष्मी जी के मन्दिर में पहुँचे। यह मन्दिर समुद्र के किनारे पर है व दर्शनीय है। वहाँ से साधु वेला, जुहुवीच आदि स्थानों पर होते हुए 'हरे कृष्ण, हरे राम' के मन्दिर में गये। मन्दिर वृन्दावन में वने हुए मन्दिर के समान ही है। उसमें कीर्तन चल रहा था। वहां का शान्त और मधुर वातावरण तथा विदेशियों की भारतीय धर्म एवं संस्कृति में विपुल श्रद्धा देख कर वड़ा हर्ष–मिश्रित आश्चर्य हुआ।

मन्दिर के मण्डप के ठीक सामने तीन सौ कमरों वाला 'अन्तर्राष्ट्रीय गेस्ट हाऊस' है जो वड़ा व्यवस्थित तथा धार्मिक क्षेत्र में वड़ा अद्भुत है। इसमें शाकाहारी विदेशी ही ठहरते हैं। इसमें सुन्दर ओडिटोरियम भी है। इसका निर्माण श्री गिरिराज दास नामक अँग्रेज साधु ने कराया। इसके निर्माण में पूरे पाँच वर्ष लगे। वम्वई के विभिन्न स्थानों को देखते देखते सन्ध्या हो गई अतः पारीख भवन पहुँच गये। प्रिय जनों ने जो सेवा की उसका वर्णन करना कठिन है। वड़े प्रेम से स्वादिष्ट भोजन कराया। भोजनोपरान्त सभी आराम करने की इच्छा करने लगे। श्रीदाता का भोजन नहीं हुआ था। उनके पास कुछ लोग वैठे थे। पवई से भी व्यक्ति आये। उन्होंने रात्रि को ही पवई चल कर आराम करने की तथा प्रातः के भोजन की प्रार्थना की। उनके वड़े आग्रह पर कुछ संशोधन के साथ दोनों ही वातें स्वीकार कर ली गई।

पवई जाने के लिये विस्तर वांधे जाने लगे। पूरे दिन भर के थके हुए थे अत कुछ लोगों को पवई जाना अच्छा नहीं लगा। समय वहुत हो गया था और श्रीदाता ने भी हरेहर (भोजन) किया नहीं था अतः उस वन्दे को भी रात्रि को पवई जाना युक्ति संगत नहीं लगा अतः उन्होंने श्रीदाता से प्रार्थना कर पवई जा स्थगित कराया।

वम्वई वालों ने नाश्ता प्रातः ६ वजे ही तैयार करा दिया था अतः सभी ने नाश्ता किया व सात वजे पवई के लिए प्रस्थान किया। पवई में सड़कें छोटी होने तथा वृक्षों की डालियाँ नीची होने से वसों को दूर ही खड़ी करना पड़ा। वन्दे के नानी स्वसुर

और मामीस्वसुर ने आगे बढ कर श्रीदाता का स्वागत किया। भोजन तैयार था अत बाँध कर बस में रख दिया गया। नाश्ता लेकर वहाँ से चले। चलते वक्त दाता ने फरमाया-

"रीता भरे- भग्चा ढुलकावे, महर करे तो फेर भरे॥ कर्मकाण्डी और ज्ञानी कहते हैं कि चलते रहो, जब कि परदा रखना जरूरी है। यदि परदा नही रखा जाय तो कचूमर ही निकाल दे। उसकी महर ही तो है। यह तो महर ही का सौदा है।"

पवई से ही गणेशपुरी की ओर चले। कन्या कुमारी में ही श्रीदाता ने नासिक का कार्यक्रम रद्द कर दिया था। उन्होने कहा था, "इस समय नासिक चलने की आवश्यकता नही है।" इस रहस्य को कौन जाने? बम्बई में कुछ बन्दो ने अधिक आग्रह किया अत नासिक की आज्ञा मिली।

गणेशपुरी

बम्बई नासिक की मुख्य सडक से ४० कि मी हट कर गणेशपुरी है जहाँ स्वामी नित्यानन्द जी की समाधि है। वहाँ पहुँचते पहुँचते दिन के बारह बज गये। कडी गर्मी थी और आश्रम बन्द था तथा नित्यानन्द जी के मुख्य शिष्य स्वामी मुक्तानन्द जी विदेश में थे। अत सब को नित्यानन्द जी की समाधि के दर्शन कर ही सतोष करना पडा। भयकर गर्मी के कारण वहाँ विशेष ठहरना नही हो सका। पास ही वृजेश्वरी जी का मन्दिर है। श्रीदाता उस मन्दिर में पधारे। गर्मी के कारण दाता का सारा शरीर पसीने से तर था व पैर में जूतियों के न होने से पैर जल रहे थे। मन्दिर की सीढियाँ ऊँची और पत्थर की थी फिर भी श्रीदाता मन्दिर में पधारे ही। वही रेणुका जी और कालिका जी की मूर्तियाँ भी है। वहाँ के दर्शन कर लौट पडे।

नासिक में

भोजन पवई से साथ लिया था किन्तु यहाँ कुछ भोजन और सब्जी बनानी पडी। भोजन करने कराने में पाच बज गये। नासिक पहुँचते पहुंचते साढे नौ बज गये। सभी धर्मशालाएँ भरी पडी थी।

पारीख साहब और जोशी जी कमरों की तलाश में घूमते रहे। बसें बस स्टैण्ड पर थीं। परिवहन का निरीक्षक जाँच हेतु हमारी बसों के पास आया। वह शराब के नशे में चूर था। उसने बसों के मालिक को पकड़ा और कागज देख कर बोला कि उसने पैसा कम जमा कराया है। उसने कुछ ऐंठने के लिए बड़ी देर तक बसों को रोके रखा। अन्त में बस मालिक ने तेरह सौ रुपये देकर पीछा छुड़ाया। उधर पारीख साहब ने मुक्ति धाम में ठहरने की व्यवस्था की।

त्र्यम्बकेश्वर में उस समय मेला लगा हुआ था। वहाँ लाखों व्यक्ति थे अतः श्रीदाता ने कह दिया, "जिसको जाना हो चला जाय।" बिना श्रीदाता के कौन जावे। मुक्तिधाम में ठहरने की अच्छी व्यवस्था हो गई।

हमने रात्रि को मुक्तिधाम को धर्मशाला मात्र ही समझा किन्तु प्रातः देखने पर विदित हुआ कि मुक्तिधाम मुक्तिधाम ही है। इस धाम में चारों धाम, द्वादश ज्योतिर्लिंग और अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियों के दर्शन किये जा सकते हैं। भारत के तीर्थों में नासिक की बड़ी गणना है। यहाँ श्रीराम, लक्ष्मण और सीता सहित कई वर्ष तक रहे थे। इसी पावन तीर्थ में सन् १९७१ में मुक्तिधाम का निर्माण हुआ है। मुक्तिधाम भारत का सर्वांग सुन्दर अति विशाल, संगमरमर के पत्थरों से जड़ा हुआ अति मनोहर दर्शनीय मन्दिर है। भारत के सभी प्रसिद्ध तीर्थों की प्रतिच्छाया वहाँ मूर्तरूप में अंकित है जैसे कैलाश का दृश्य ज्यों का त्यों है। मुक्तिधाम के निज मन्दिर में चित्रों में भी चित्रित हैं। कहानी चित्र भी है। इसके बनाने का उद्देश्य किसी न किसी तरह लोगों में धर्मभावना, सुसंस्कार और सदाचार फैलाना और उनका नैतिक उत्थान करना है। मुक्तिधाम में नीचे लिखे अनुसार सुन्दर दर्शन है –
राम लक्ष्मण और सीताजी, लक्ष्मीनारायण, राधाकृष्ण, श्रीविट्ठल–रखुमाई, संकट मोचन हनुमान, अष्टभुजा सिंहवाहिनी श्रीदुर्गामाता, श्री सिद्धि विनायक गणपति जी, श्री दत्तात्रेय भगवान, श्री महालक्ष्मी,

श्री महासरस्वती, श्री गायत्री देवी, श्री द्वारिकाधीश भगवान, श्री सतोषी माता, तिरुपति बालाजी, श्री रणछोडराय जी, श्रीनाथ जी, श्री जगन्नाथ जी जगन्नाथपुरी, श्री बद्रीनारायण जी, पचायतन के साथ दण्डकारण्य में श्री रामचन्द्रजी, सीताजी, लक्ष्मण, काचन-मृग और रावण भिक्षा मागता हुआ, श्री काशी विश्वनाथ, भारत के बारह ज्योतिर्लिंग।

इन दर्शनो के अतिरिक्त भक्त जालाराम, बापा, मीराबाई, सत रामदेव, साईबाबा, सन्त तुकाराम, श्री ज्ञानेश्वर, श्री रामदास, सन्त तुलसीदास, जय और विजय, नारायण और भक्त ध्रुव, शबरी के बेर खाते हुए राम और लक्ष्मण, सुदामा के चावल खाते हुए श्रीकृष्ण, शेषशायी भगवान्, ऋद्धि-सिद्धि, भक्त केवट, गीता जी का उपदेश देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण आदि की मूर्तियाँ है।

श्री कालिय-नाग दमन, अशोक वाटिका में श्री सीतामाता, विमान में बैठकर जाते हुए श्री तुकाराम, माता यशोदा के बन्धन में श्रीकृष्ण, श्री रामेश्वर, श्री सेतुबन्ध, भरतजी की पादुका पूजा आदि काच पर खुदाई के सुन्दर नमूने है। निर्माणकर्ता ने ऐसा प्रयास किया है कि इस एक स्थान पर बैठे हुए पूरे भारत के तीर्थों के दर्शन किये जा सके। हमें यह जानकर विशेष प्रसन्नता हुई कि इस मन्दिर का निर्माण उदयपुर (राजस्थान) के कारीगरो ने किया है। इसके दर्शन कर सभी बडे आनन्दित हुए। श्रीदाता बडी देर तक इसे देखते रहे।

गिरनार की ओर

१०-३० पर मुक्तिधाम से प्रस्थान किया। जिन्होंने नासिक के लिये अधिक आग्रह किया उन्हे अपनी जिद्द पर पश्चाताप हुआ। नासिक में ही श्री बसन्तीलाल जी खडे खडे ही पत्थर जडे आँगन पर गिर कर बेहोश हो गये। हमें ब्रेन हेमरेज का भय हो आया। श्रीदाता के सम्मुख उन्हे ले जाया गया। श्रीदाता की कृपा से वे ठीक हो गये और हम सब चिन्ता मुक्त हुए। गिरे तो वे नासिक में प्रस्थान के समय थे व पुकार तारानगर में की गई। तारानगर में भोजन हेतु ठहरना हुआ। वहाँ श्रीदाता ने अपने बचपन की अनेक

घटनाओं पर प्रकाश डाला। बचपन में आये दुःखों और अभावों का संकेत करते हुए बताया कि यदि उस समय इतने कष्ट न आये होते तो दाता की महर नहीं हुई होती। उसके लिए तन, मन और सर्वस्व देना क्या बड़ी बात है ?

वहाँ से चल कर सूरत होते हुए राजकोट की ओर बढ़े। रात्रिभर चलते रहे व प्रातः ही नीमड़ी पहुँचे। मार्ग में कीर्तन होता रहा। वैसे कीर्तन तो बसों में चलता ही रहता था किन्तु सूरत के पास उस संध्या को जैसा कीर्तन हुआ वैसा कीर्तन पूरी यात्रा में नहीं हुआ। कीर्तन करने वाले और सुनने वाले सभी भावविभोर हो गये। श्री शिवसिंह जी तो इतने मस्त हो गये थे कि तन-बदन की सुध ही नहीं रही। कीर्तन एक घण्टे बाद बन्द कर दिया गया था किन्तु उन्हें पता ही नहीं लगा कि कीर्तन बन्द कर दिया गया है। वे बड़ी मस्ती से लगभग एक घण्टे तक और बोलते रहे। जब उनके स्वर में भारीपन आने लगा तब उन्हें झकझोर कर चुप किया गया। रात्रिभर उन्हें उस कीर्तन की मस्ती बनी रही।

गिरनार

नीमड़ी दैनिक कार्यों से निपट कर राजकोट होते हुए दोपहर को गिरनार पहुँचे। सनातन धर्मशाला में ठहरने की व्यवस्था हुई।

कुछ लोग रात्रि को ही गिरनार पर चले गये। विचित्र प्रेरणा उनके हृदय में जागृत हुई थी इसलिए जाने के पूर्व उन्होंने श्रीदाता से भी आज्ञा नहीं ली। अनुभव शून्य होने से वे चले तो गये किन्तु उनका वहाँ जाना कुछ लोगों के लिए भारी पड़ा। हवा बड़ी तीव्र और ठण्डी थी। उस हवा में चल पाना और चढ़ना–उतरना बड़ा खतरनाक था। कुछ तो देवी के मन्दिर के पास एक दुकान में ठहर गये। छः व्यक्ति तो ऊपर चले ही गये। यह प्रभु कृपा ही रही कि उनकी किसी प्रकार की कोई हानि नहीं हुई। उन्हें बड़ा ही आनन्द आया। उन्हें रात्रि की नीरवता, एकान्त, तीव्र वायु के झोंके, ऊँचाई आदि का विचित्र ही अनुभव रहा। श्री वंशीधर जी तो नाथ जी की धूनी के पास जाते जाते इतने

मस्त हो गये कि उन्होने अपने शरीर के सब कपडे उतार कर एक ओर फेंक दिये और नाथ जी के चरणो के पास जाकर ध्यानस्थ खड़े हो गये। लगातार दो घण्टे तक एक ही स्थिति में रहे। बडी कठिनाई से उन्हे कमरे में लाया गया।

अगले दिन अर्थात् २६-१-७९ को प्रात ४-३० बजे धर्मशाला से चले। कुछ माताएँ, मातेश्वरी जी व सब एक-एक कर श्रीदाता के पीछे हो लिये। पारीख साहब कुछ पीछे रह गये अत तेजी से चले जिसके फलस्वरूप उन्हे स्वाँस चलने लगा व श्रीदाता के पास पहुँचते पहुँचते बेचैन होने लगे। श्रीदाता ने केवल उन्हें इतना ही कहा, "क्या स्वाँस चल रहा है ?" तत्काल उनकी बेचैनी समाप्त हो गई। वे मस्ती से चलने लगे।

गिरनार अत्यन्त पवित्र पर्वत है। इसका नाम रैवतगिरि तथा उज्जयन्त पर्वत भी है। श्री कृष्णचन्द्र जब द्वारिका में थे तब यह यादवो की क्रीडा भूमि रहा है। योगियो की यह तपोभूमि है। भगवान दत्तात्रेय यहाँ गुप्त रूप से सदा निवास करते है। जैनो का यह सिद्ध क्षेत्र है। गिरनार की तलहटी में स्वर्णरेखा नाम की एक छोटी सी नदी है जिसपर दामोदर-कुण्ड बना है। दामोदर-कुण्ड के पास ही रेवती कुण्ड है जहाँ वल्लभाचार्य महाप्रभु की बैठक है। लगभग दो हजार दो सौ सीढियाँ चढने के बाद भर्तृहरि की गुफा है। गुफा में भर्तृहरि जी और गोपीचन्द जी की सगमरमर की मूर्तियाँ है। सोरठ के महल से जैन मन्दिर प्रारभ होते है। इसके पूर्व एक सूखे कुण्ड के पास एक जैन प्रतिमा और दो स्थानो पर चरण चिन्ह है। यहां कई जैन मन्दिर है जो कला से परिपूर्ण है। मुख्य मन्दिर श्री नेमीनाथ का है। पास ही कोट के भीतर गुफा में पार्श्वनाथ की मूर्ति है। मन्दिरो के चारो ओर चौबीस तीर्थंकरो के स्थान है। एक मन्दिर में बीस सीढियो के नीचे श्री आदिनाथ जी की मूर्ति है। इस मन्दिर के नीचे भीम कुण्ड और सूर्य कुण्ड है। यहाँ जैन धर्मशाला और दूकानें भी है और भोजन की सुव्यवस्था है।

कोट के बाहर से एक मार्ग राजुल की गुफा की ओर जाता है जहाँ राजुल की मूर्ति और नेमीनाथ जी के चरण चिन्ह है। यहीं

जटाशंकर हिन्दू धर्मशाला है। जटाशंकर धर्मशाला के आगे सात-पुड़ा कुण्ड है। इसको पवित्र तीर्थ मानते हैं। कुण्ड के पास गंगेश्वर तथा ब्रह्मेश्वर के मन्दिर हैं। यहाँ से आगे दत्तात्रेय जी का मन्दिर और भगवान सत्यनारायण जी का मन्दिर है। हनुमान जी, भैरव जी आदि के स्थान भी हैं। उसके आगे महाकाली का मन्दिर है। इसे साँचाकाका का स्थान भी कहते हैं।

महाकाली के स्थान से आगे अम्बिका शिखर है। यह गिरनार का प्रसिद्ध शिखर है। इस शिखर पर देवी का विशाल मन्दिर बना हुआ है। कहा जाता है कि भगवती पार्वती यहाँ हिमालय से आकर निवास करती हैं। अम्बिका शिखर से कुछ आगे गोरक्ष शिखर है जहाँ भगवान गोरखनाथ की धूनी और चरण चिन्ह है। यहाँ एक शिला के नीचे लेट कर यात्री निकलते हैं। इसे योनीशिला कहते हैं। यहाँ नेमीनाथ जी के चरण चिन्ह भी हैं।

गोरक्ष शिखर से छः सौ सीढ़ी उतर कर और आठ सौ सीढ़ी चढ़ने पर दत्त शिखर है जहाँ दत्तात्रेय जी की तपस्थली है इस शिखर पर दत्तात्रेय जी की चरण-पादुका है। यहाँ भी जैन बन्धु आते हैं। ऐसा मानते हैं कि यहीं से नेमीनाथ जी मोक्षधाम गये थे। एक शिला में नेमीनाथ जी का स्मृति चिन्ह है। यहाँ एक बड़ा घण्टा लगा हुआ है।

दत्त शिखर और गोरक्षनाथ शिखर के बीच नेमीनाथ शिखर है जिसपर सीढ़ियाँ नहीं हैं। वहाँ नेमीनाथ जी की काले पत्थर की मूर्ति बताई जाती है। दत्त शिखर और गोरक्ष शिखर के मध्य नीचे की ओर जाने पर कमण्डलु-कुण्ड आता है जहाँ से एक पगडण्डी महाकाली शिखर पर जाती है। वहाँ गुफा में महाकाली की मूर्ति बताई जाती है। कमण्डलु-कुण्ड से एक मार्ग पाण्डव गुफा तक जाता है।

श्रीदाता सूर्योदय होते होते गोरक्षनाथ जी की धूनी पर पहुँच गये। सभी लोग उनके पीछे पीछे आ रहे थे। श्री रामसिंह जी, डा. श्री शर्मा, वैद्य श्री दुर्गाप्रसाद जी, मुरलीधर जी की पत्नी आदि के लिए इतनी सीढ़ियाँ चढ़ना असंभव नहीं तो कठिन तो था ही किन्तु आश्चर्य है कि वे लोग श्रीदाता के साथ ही साथ चले जा

रहे थे। श्रीदाता भी नाथ महिमा का वर्णन करते हुए प्रसन्न मुद्रा में पधार रहे थे। गोरक्ष शिखर पर तो वे भाव-विभोर हो गये। सभी ने धूनी पर साष्टाग प्रणाम किया।

इसके पश्चात् श्रीदाता दत्त शिखर पर पहुँचे। जिस समय श्रीदाता शिखर पर पहुँचे उस समय एक कुत्ता वहाँ आया। श्रीदाता ने उस कुत्ते के चरण छुए। कुत्ता चुपचाप खडा रहा। बाद में श्रीदाता की देखादेखी अन्य लोगों ने भी उसके चरण छुए। उसने अपना सिर हिला दिया और श्रीदाता के पास जा खडा हुआ। इतनी ऊँचाई पर कुत्ते का पहुँचना और सब को पैरो के हाथ लगाने देना विचित्र बात ही थी।

एक एक कर सभी दत्त शिखर पर पहुच गये। सब के अन्त मे वैद्य जी और उनकी पत्नी थी। वे दोनो बुरी तरह थक चुके थे। वहाँ पहुँच कर दोनो ने एक साथ ही दाता को प्रणाम किया। प्रणाम करना था कि न मालूम उनकी थकावट कहाँ चली गई। वे ताजगी का अनुभव करने लगे। उन्होने भी उस कुत्ते के चरण छुए।

वहाँ से वापिस लौटे। चढने के बजाय उतरना भारी पडता है किन्तु श्रीदाता जो साथ थे। श्रीदाता एक बजे के लगभग धर्मशाला में आ गये। कई लोग एक घण्टे बाद तक आते रहे। वृद्ध महिलाएँ, डाक्टर साहब, हृदय रोगी वैद्य जी और उनकी पत्नी, टूटी टाग वाले रामसिह जी और पारीख साहब जैसे व्यक्तियो के लिए तो बिना श्रीदाता की कृपा के गिरनार चढना असभव ही था। सही है प्रभु कृपा से 'पगु लघयते गिरिम्' वाली कहावत सत्य ही सिद्ध होती है।

दत्त-शिखर तक सीढियाँ बनी है। जामनगर नरेश द्वारा इन सीढियो का निर्माण कराया गया था। बाद मे गुजरात सरकार ने पन्द्रह लाख रुपये लगाकर विक्रम सवत् १८४५ मे १९५४ तक इन्हे ठीक करवाया।

अगले दिन प्रात ही गिरनार से चल कर जूनागढ नरसी महता के घर गये। वही नरसी के आराध्य देव श्रीकृष्ण के श्री विग्रह

का मन्दिर है। आँगन में ही एक छोटा सा शिव मन्दिर है। बड़ी देर तक श्रीदाता नरसी-चित्रघर में भिन्न-भिन्न समय के चित्रों को देखते रहे।

सोमनाथ

जूनागढ़ से रवाना होकर सीधे सोमनाथ पहुँचे। सोमनाथ के लिए कहा गया है :–

यत्र गंगाच्च यमुनाच्च यत्र प्राची सरस्वती।

यत्र सोमेश्वरो देवस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रमिन्द्रो परिश्रव।

सोमनाथ का मन्दिर प्राचीन है। यह मन्दिर पाशुपत पंथियों का समूचे भारत वर्ष का केन्द्र रहा है। इस मन्दिर ने वड़े वड़े उत्थान–पतन देखे हैं। जितना विध्वंस इस मन्दिर का हुआ, शायद ही किसी अन्य मन्दिर का हुआ हो। प्रथम वार इस मन्दिर को ईसवी सन् की पहली सदी में वनाया गया। दुवारा यह मन्दिर सन् ६४९ ईसवी में वनाया गया। ईसवी सन् ७२२ में अरवों ने इस मन्दिर को नष्ट किया। आठवी सदी के प्रथम चरण में तीसरी वार यह मन्दिर वनाया गया। ईसवी सन् १०२६ में महमूद गजनी ने इस मन्दिर का विनाश किया। महमूद गजनी के द्वारा विनाश के वाद 'लाट' राजाओं ने इसका नव-निर्माण कराया। अलाउद्दीन खिलजी की निगाह भी इस मन्दिर पर पड़े विना न रह सकी। उसने भी इसे ध्वस्त किया। ईसवी सन् १४६९ मे महमूद वेगड़ा ने सोमनाथ के लिंग को हटा कर उस स्थान पर मस्जिद का निर्माण करवा दिया। कुछ समय वाद यह पुनः मन्दिर के रूप मे आ गया। ईसवी सन् १७८३ में इंदोर की महारानी अहल्यावाई ने मन्दिर के तत्कालीन खण्डहरों को मूर्ति के प्रतिष्ठापन के लिए अनुपयुक्त देखकर पुराने देवालय से कुछ दूर एक नया मन्दिर वनवाया। विनाशकारियों से रक्षा करने के लिए मुख्य लिंग को अन्य लिंग के वीच गुप्त रूप से प्रतिष्ठापित किया। भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् १२ नवम्वर १९४७ ई. को वल्लभभाई पटेल, काकासाहव गाडगिल, मुन्शी जी आदि जाम साहव सहित जूनागढ़ पहुँचे। वहाँ से वे लोग सोमनाथ गये। वहां सोमनाथ के अवशेष कालचक्र से

टकरा कर शत्रुओ के आघात सहन करते हुए खडे थे जिन्हे देख कर उन्हे वडा दु ख हुआ। उन्होने इस मन्दिर के पुन निर्माण की प्रतिज्ञा की। तदनुसार नवानगर के महाराजा श्री जाम साहब के करकमलो द्वारा ४ मई सन् १९५० ई को सोमनाथ मन्दिर का शिलान्यास किया गया।" मई सन् १९५१ ई को महामहिम राष्ट्रपति डा राजेन्द्र प्रसाद जी के करकमलो द्वारा लिग का प्रतिष्ठापन किया गया। प्रबन्ध सोमनाथ ट्रस्ट के अन्तर्गत है। मुख्य प्रासाद का काम लगभग हो चुका है। मन्दिर के चारो ओर वाटिका लगाने की योजना है।

मन्दिर में जाने पर मन्दिर का सारा इतिहास आँखो के सामने नृत्य करने लगा। लिग के दर्शन करते वक्त अनेको के नेत्रो में आँसू थे। मन्दिर के विविध रूप के चित्र, टूटे हुए खण्डहरो के दर्शन दूसरी और तीसरी मजिल में किये जा सकते है। पश्चिम की ओर विशाल समुद्र इसके पाँव पखार रहा है। समुद्र और किनारे पर स्थित मन्दिर का सौन्दर्य देखते ही वनता है। यह क्षेत्र प्रभास पट्टन के नाम से विख्यात है जो कभी विश्वविख्यात व्यापारिक मण्डी एव व्यावसायिक केन्द्र था।

वहाँ से चल कर उस स्थान पर पहुँचे जहाँ भगवान कृष्ण के चरणो में वाण लगा था। वहाँ कृष्ण मन्दिर, भगवान विष्णु का मन्दिर और माता लक्ष्मी का मन्दिर है। विग्रह वडे भव्य और आकर्षक है। पास ही थोडी दूरी पर लाल का तीर्थ है जहाँ भगवान कृष्ण की बैठी हुई मूर्ति है। कुछ लोगो की मान्यता है कि भगवान कृष्ण ने अपने शरीर का त्याग इसी स्थान पर किया था। इस स्थान पर शिव मन्दिर भी है।

द्वारिका

वेरावल होते हुए चोरीपुर में पहुँचे जहाँ डाक बगले में ठहर कर भोजन की व्यवस्था की गई। वहाँ केलो की अधिकता थी। प्रभास क्षेत्र भगवान कृष्ण की लीला स्थली रहा है और यही यादवो की विनाश लीला हुई थी। श्रीदाता ने अनेक लीला-कथाओ का वर्णन किया। वहाँ चल कर पोरवन्दर होते हुए द्वारिका पहुँचे।

कबीर-आश्रम में विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातः ही ८ बजे द्वारिकाधीश के मन्दिर में पहुँचे। मन्दिर गोमती नदी के किनारे वना हुआ है। मन्दिर के चारों ओर चार द्वार हैं। परिक्रमा पथ दो दीवारों के मध्य है। मन्दिर मे भगवान कृष्ण की वड़ी भव्य मूर्ति है। दर्शन के समय साथी लोग 'हरे कृष्ण, हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव' कीर्तन वोलने लगे। कीर्तन में वड़ा आनन्द आया। मण्डप में भगवान कृष्ण की मूर्ति के सामने ऊपर की ओर एक वड़ा काच लगा हुआ है जिसमें भगवान श्रीकृष्ण के श्री विग्रह का प्रतिविम्व पड़ता है। उस काच में भीड़ होते हुए भी दर्शकों को श्री विग्रह के पूरे दर्शन हो जाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन ने सभी के हृदय में स्फूर्ति एवं आनन्द का स्रोत वहा दिया। मस्ती लिए हुए वहाँ से त्रिविक्रम भगवान के मन्दिर में पहुँचे। इसमें राजा वलि तथा सनकादि चारों कुमारों की मूर्तियाँ हैं। एक कोने में गरुड जी भी विराजमान हैं। उत्तर में प्रद्युम्न जी का मन्दिर है। पास ही अनिरुद्ध जी की छोटी मूर्ति है। सभा मण्डप में एक ओर वलदेव जी की मूर्ति है। उत्तर में मोक्षद्वार के पास ही कुशेश्वर महादेव का मन्दिर है। प्रधान मन्दिर के पश्चिम दीवार के पास कुशेश्वर महादेव के आगे अम्वा जी, पुरुषोत्तम जी, दत्तात्रेय जी, दक्षिण से माता देवकी और माधव जी के मन्दिर हैं। पूर्व की दीवार के पास उत्तर में सत्यभामा जी का मन्दिर, शंकराचार्य जी की गढ़ी, जामवन्ती, श्री राधाजी और लक्ष्मीनारायण के मन्दिर हैं।

वहाँ से चल कर वेंट द्वारिका के लिए ओखा होते हुए समुद्र के किनारे पहुँचे। वहाँ से स्टीमर द्वारा वेंट द्वारिका पहुंचे। वेंट द्वारिका एक छोटे से द्वीप पर है। द्वीप के एक विशाल चौक मे तीन दुमंजिले व पाँच तीन मंजिले महल वने हुए हैं। द्वार में होकर सीधे पूर्व की ओर जाने पर दाहिनी ओर श्रीकृष्ण का महल है। इसमें पूर्व की ओर प्रद्युम्न जी का मन्दिर है, मध्य में रणछोड़ जी का मन्दिर और दूसरी ओर त्रिविक्रम का मन्दिर है। इस मन्दिर के आगे एक ओर पुरुषोत्तम जी, देवकी माता तथा माधव जी का मन्दिर है। कोट के दक्षिण-पश्चिम की ओर अम्वाजी का मन्दिर है। उसके पूर्व में गरुड मन्दिर है।

रणछोड जी के महल के समीप सत्यभामा जी और जामवन्ती जी के महल है। पूर्व की ओर साक्षी गोपाल का मन्दिर है तथा उत्तर को रुक्मणी जी और राधिका जी के मन्दिर हैं। इसी प्रकार रुक्मणी जी के महल के मन्दिर के पूर्व गोवर्धन नाथ का मन्दिर है। रणछोड जी के मन्दिर के पीछे एक लाट है। लाट और दीवार के बीच थोडा सा स्थान है जिसमें होकर यात्री निकलते हैं। डाक्टर साहब निकलते वक्त उसमें फँस गये। वे बडी कठिनाई से निकल सके। वहाँ से चल कर श्रीदाता वहाँ के मुख्य पुजारी जी के पास पधारे। उन्होंने श्रीदाता का स्वागत किया। पुजारी जी के पास कई लोग थे। कुछ बातचीत के बाद पुजारी जी ने श्रीदाता को खीर व मिठाई भेंट की। श्रीदाता की आज्ञा लेकर श्री जोशी जी ने पुजारी जी को एक सौ एक रुपया भेंट किया।

समुद्र के किनारे आकर श्रीदाता ने स्नान किया। कुछ लोगों ने भी शीघ्रता से स्नान कर लिया। स्टीमर में बैठ कर वापिस किनारे पर आ गये। स्टीमर पर एक साधु साथ हो गया। जिसने पहले भजन व बाद में कीर्तन बोला। अन्य लोगों ने भी साथ दिया। एक समा सी बँध गई। उतरते समय सभी ने प्रसन्न होकर उसे एक एक रुपया भेंट स्वरूप दिया। वह साधु परोपकारी निकला। उसको जो कुछ मिला, किनारे पर आकर उसने उसे गरीबों में बाँट दिया। मनुष्य के रूप में महापुरुष भी होते हैं।

किनारे पर पहुँच कर सभी लोग बसों में जा बैठे। बडी बस में श्रीदाता भी आ विराजे। कुछ दिनों से छोटी बस वालों और बडी बस वालों के मध्य विचार-विरोध चल रहा था। इसकी भनक कहीं श्रीदाता को हो गई अतः कुछ असन्तुष्ट होकर उन्होंने फरमाया, "मारा राम से गलती हो गई जो यात्रा में आपके साथ आया। वे लोग निरन्तर आपकी सेवा करते हैं कितने बडे हैं वे लोग। इधर आप लोगों के विचार कितने ओछे हैं। एक पैसा भी अधिक खर्च हो जाता है तो सिर चढ जाते है। आपको दूसरों में अवगुण देखना ही आता है। कितना अच्छा अवसर मिला सेवा का आप लोगों को,

किन्तु अहंकार के वशीभूत होकर उस अवसर को खो रहे हो। मन के साथ चल कर मनमानी कर रहे हैं।"

इस प्रकार श्रीदाता ने उन्हें खूब लताड़ा। सभी लोग पश्चाताप करने लगे। वे घबरा गये। कइयों की आँखों मे आंसू आ गये। श्रीदाता तो दया सागर जो ठहरे। लोगों की आँखों में पश्चाताप के आँसू देख कर पसीज गये और बोले, "अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है। जाओ और पूरी गाड़ी से क्षमा मांगो।"

यह सुनते ही सब के सब बस मे उतर गये और साष्टांग प्रणाम कर जयपुर वालों से और पूरी बस मे क्षमा माँगने लगे। जयपुर वालों को कुछ पता था नहीं। पहले तो वे हक्के-बक्के रह गये फिर वे भी बस से उतर कर माफी माँगने लगे। बड़ा अद्भुत और करुणाजनक नजारा उपस्थित हो गया। उस समय सभी की आँखों में आँसू थे। मोटर मालिक और ड्राइवर तक पीछे नहीं रहे। कुछ देर ऐसा ही होता रहा। सभी के हृदय शुद्ध होकर उनमें प्रेम रूपी अपार सिन्धु की लहरें हिलोलें लेने लगी। यह वही स्थान है जहाँ यादव लोग ऐरा की घास से परस्पर लड़ कर नाश को प्राप्त हुए थे। उसी स्थान पर आज प्रभु प्रेरणा से भाई भाई वापिस गले मिल कर एक हृदय हुए। धन्य है भगवान और उसकी लीला।

सभी के आश्वस्त हो, बसों में बैठ जाने पर बसें चली। मूल द्वारिका में होती हुई बसें जामनगर की ओर बढ़ी। मार्ग में हवा तेजी से चलने लगी व धूल भी उड़ने लगी। इससे सभी लोग घबरा गये। प्रभु कृपा मे कुछ आगे चलने पर हवा की तीव्रता मे कमी आयी। रखाना गाँव के एक कुँए पर ठहर कर भोजन बनाया गया। द्वारिका में मछलियों की दुर्गन्ध से भोजन बनाना तो दूर, ठहरना भी कठिन हो रहा था। उस कुएँ का मालिक बड़ा सहृदय था। उसने हमारी हर संभव मदद की। शाम को जामनगर पहुँचे। वहाँ जाते जाते एक बस का डायनुमा खराब हो गया, जिस वजह से वहीं ठहर जाना पड़ा। एक पुरानी सराय मे व्यवस्था हो गयी।

अगले दिन २९–१–७९ को जामनगर से प्रस्थान किया। जामनगर मे दो ही वस्तुएँ देखने काबिल है। एक तो श्मशान भूमि

और दूसरा सूर्य-चिकित्सा महल । सराय से ज्योंही निकले कि एक सुरमा बेचने वाला आ गया । । उसकी बोली से प्रभावित होकर कई लोग सुरमा खरीदने लगे । श्रीदाता लोगो के भोलेपन को देख कर हँस पडे । हँसते हँसते उन्होने एक कहानी कही । वे बोले, " एक तेली के यहाँ लोहे की घानी थी । एक दिन कुछ लोग उसके यहाँ आये । उन्होने घानी को देखी । वे उसे नही पहिचान सके । वे एक दूसरे से पूछने लगे । उनमें एक बूझागर (बुद्धिमान) था । उसने कहा, "अरे ! तुम इसे नही जानते । यह तो खुदा की सुरमादानी है ।" इस कहानी को सुन कर सभी हँसने लगे । सुरमा खरीदने वाले सिटपिटा गये ।

बसे राजकोट होती हुई आगे बढी । अहमदाबाद से ४० कि मी इधर सडक पर ही एक ओर भोजन बनाने की व्यवस्था की । श्रीदाता उस समय प्रसन्न मुद्रा में थे । उन्होने फरमाया, "झूठ बोलना बुरा है किन्तु जिसको झूठ बोलने की आदत पड जाती है तो कठिनाई से छूटती है ।" इस सम्बन्ध में उन्होने एक मनोरजक कहानी सुनाई । "एक गाँव में दो झूठे बसते थे । गाँव वालो ने दु खी होकर उन्हे यात्रा को भेज दिया । उन्होने सोचा कि ये वहाँ जाकर झूठ बोलना छोड आवेगें । यात्रा कर वे तीन माह बाद लौटे । आने पर गाँव वालो ने उनका अच्छा स्वागत किया । फिर उनको यात्रा का अनुभव पूछा । एक ने कहा – मैंने एक स्थान पर एक कडाह देखा जो बहुत बडा था । उसका एक सिरा दूसरा सिरे से इतना दूर था कि यदि एक ओर से तोप दागी जाय तो उसकी आवाज दूसरे सिरे पर न पहुँचे । दूसरे व्यक्ति ने कहा – मैंने एक ऐसा गोभी का फूल देखा जिसके पत्ते की छाँह में घुडदौड हो रही थी और पूरी फौज कवायद कर रही थी । पहले व्यक्ति ने यह सुन कर कहा – तुम झूठ बोल रहे हो । ऐसा फूल किसमें पकाया जावेगा । दूसरे ने तपाक से कहा – जो कडाह तुम देख आये हो उसीमें पकाया जावेगा ।" यह कहानी सुन कर सभी हँसने लगे । श्रीदाता ने फरमाया, "कहने का तात्पर्य है कि झूठ छोडना इतना सरल नहीं है किन्तु कोशिश करने पर छोटा जा सकता है । दाता के

दरवार में कभी झूठ नहीं वोलना चाहिये।" इसी प्रकार की वहुत सी हँसी मजाक की वातें होती रही।

अहमदाबाद

वहाँ से चल कर सीधे अहमदावाद जगन्नाथ जी के मन्दिर में पहुँचे। मन्दिर रामानुज सम्प्रदाय का है। अनेक सन्त मन्दिर की पूजा और व्यवस्था में लगे हुए थे। पास ही मन्दिर की गो-शाला थी जिसमें अनेक उत्तम गायें थी। जिस समय श्रीदाता का मन्दिर में पधारना हुआ उस समय आरती हो रही थी। आरती में वड़ा ही आनन्द रहा। हमने अव तक किसी साधु को मन्दिर की पूजा करते नहीं देखा था। साधु की पूजा और पुजारी की पूजा में अन्तर तो होता ही है। हम सव उस आरती में मस्त होकर उछलने लगे। आरती के वाद मालपुआ और नमकीन सेव का प्रसाद वाँटा गया। श्रीदाता गो-शाला में पधारे। उन्हें देख कर गायें दाता के पास आ गई। गायें हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर थी। वड़ी देर तक श्रीदाता गायों को देखते-पुचकारते रहे। फिर मन्दिर के पीछे पधारे। मन्दिर के पीछे आश्रम है जिसमें सन्तों के चित्र थे। मन्दिर के सामने सड़क पर एक स्थान पर रामानुजाचार्य और उनके शिष्यों की मूर्तियाँ हैं। वहाँ से निपट कर ऋषभ देव पहुँचे। वहाँ सराय में ठहरने की व्यवस्था हो गई।

केसरिया जी

ऋषभ देव को केसरिया जी भी कहते हैं। यहाँ भगवान ऋषभ देव जी की वहुत प्राचीन किन्तु चित्ताकर्षक वीतराग प्रतिमा है। यहाँ से एक मील दूर उनकी चरण पादुकाएँ हैं। यहाँ के धूलिया भील के स्वप्न कें अनुसार यह प्रतिमा जमीन से निकली थी। उसी भील के नाम से यह गाँव धूलवे कहलाया। यह मन्दिर अपनी प्राचीन शिल्प कला से अलंकृत है। यह मन्दिर इतना विशाल और सुन्दर है कि यात्रियों के मन को मोहित किये विना नहीं रहता। कहा जाता है कि इसका निर्माण दूसरी शताब्दी में ईंटों से और आठवीं शताब्दी में परेवा पत्थर से किया गया था। विक्रम सं. १४३१ में यह पुख्ता पत्थर का वनाया गया। इसके वाद समय समय पर इसकी मरम्मत

और विस्तार होता गया। यहा प्रतिमा पर केसर चढायी जाती है, इसी कारण से इन्हे केसरिया जी कहते है। यह मन्दिर चमत्कारो के लिए प्रसिद्ध रहा है। ऐसी मान्यता है कि यहाँ वन्दना करने से इच्छा पूरी होती है। अत जैन समाज के साथ साथ अन्य समाज के लोग भी आते है। श्रीदाता ने फरमाया कि "भारत में दो ही मन्दिर ऐसे देखने को मिले जहाँ हर वर्ग, हर जाति, हर श्रेणी के लोग मन्दिर में प्रवेश कर दर्शन कर सकते है। एक यह मन्दिर और दूसरा विट्ठल का।" शिल्प कला की दृष्टि से यह मन्दिर भारत के श्रेष्ठतम मन्दिरो में से एक है। दर्शनार्थियो की आँखें कलापूर्ण मूर्तियो की ओर ऐसी आकर्षित होती है कि टकटकी लगा देखती रह जाती है और ऐसी स्थिति हो जाती है जिसका वर्णन करना सभव नही।

'गिरा अनयन, नयन बिन वाणी'

निज मन्दिर में ऋषभदेव की प्रतिमा है। गर्भगृह के ऊपर विशाल शिखर है। गर्भगृह के बाहर खेलामण्डप की दीवारो में आमने सामने दो शिलालेख है जो मन्दिर का विवरण प्रस्तुत करते है। खेलामण्डप में तेईस जिन प्रतिमाएँ विराजमान है। मण्डप पर सुन्दर गुम्बज है। नौचौकी मण्डप के मध्य भाग में डेढ फीट ऊँची वेदी बनी हुई है जिस पर नित्य नियमबद्ध पूजा होती है। वेदी के समीप दक्षिण स्तम्भ पर श्री क्षेत्रपाल जी की मूर्ति है तथा पास ही दस दिग्गजो का स्तम्भ है। प्रथम प्रवेश द्वार पर पार्श्वनाथ जी की प्रतिमा है। नौचौकी के सामने सुन्दर सभामण्डप है जहाँ पूजा और कीर्तन होता है। मन्दिर के दक्षिण भाग में 'श्रीमद् भागवत' लिखा हुआ सिंहासन का एक चबूतरा है। निज मन्दिर के चारो ओर बावन जिनालय है। इन्हीं जिनालयो में प्रत्येक दिशा में एक एक मण्डप सहित विशाल शिखर बन्दी मन्दिर है जिसमें केशयुक्त ध्यानस्थ भगवान आदिनाथ की मूल मूर्तियाँ विद्यमान है। श्रीदाता ने तो इसे पूर्व में भी देखा है। हममें से भी कइयो ने इसे पूर्व में देखा है किन्तु ठीक प्रकार से तो इस बार ही देखा जा सका। इस मन्दिर की कलाकृति को देख कर प्रत्येक व्यक्ति इस ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रह सका।

उदयपुर में

वहाँ से चल कर उदयपुर पहुँचे। उदयपुर वालों को पूर्व में ही सूचना मिल चुकी थी। आयड़ में श्री मांगीलाल जी के यहां सभी एकत्रित थे। श्रीदाता के पहुँचते ही सभी उत्साह एवं आनन्द से भर गये। उन्होंने सभी का हृदय से स्वागत किया। भोजन की सुन्दर व्यवस्था की गई। उस दिन उदयपुर वाले भक्त श्रीदाता को एवं सभी को वहीं रोकना चाहते थे किन्तु कतिपय कारणों से श्रीदाता ने मना कर दिया। उन्हें प्रेम से पुचकार कर सत्संग के अन्तर्गत कई ऐसे सूत्र दिये जिससे वे निहाल हो गये। अन्त में यह बताते हुए "दाता ही कर्ताधर्ता हैं अन्य सब कठपुतली के सदृश हैं। उनको वश में करने के लिए प्रेम ही आधार है। प्रेम ही सार है और कुछ सार नहीं"। वहाँ से विदा हुए। कैलाशपुरी में भगवान एकलिंग नाथ के दर्शन किये। श्री एकलिंग भगवान के बड़े भव्य दर्शन हैं। वे मेवाड़ के मालिक कहे जाते हैं। मेवाड़ के महाराणा अपने आप को इनके दीवान कहते हैं। भगवान एकलिंग नाथ का मन्दिर भारत के प्रसिद्ध मन्दिरों में से एक है। इसकी महत्ता वर्णनातीत है। मेवाड़ के चार धाम हैं :–(१)चारभुजा, (२)एकलिंग जी, (३) नाथद्वारा और कांकरोली में श्री नाथ जी और द्वारिकाधीश, (४) ऋषभ देव। पूरे भारत के लोग यहाँ दर्शनों को आते हैं।

दाता निवास पहुँचे

वहाँ से विदा होकर सीधे ही दाता-निवास पहुँच गये। दि. ३१–१–७९ को सभी ने वहीं विश्राम किया। श्री हल्वे साहब आदि कुछ लोग पहले से ही वहाँ मौजूद थे। श्रीदाता के यात्रा से लौटने की बात सुन कर सभी भक्तजन दाता-निवास आवेंगे व उन्हें आने जाने में कष्ट होगा, ऐसा सोच कर श्रीदाता ने सभी जगह सूचना भिजवा दी कि किसी को दाता-निवास आने की आवश्यकता नहीं है। जहाँ श्रीदाता न पहुँच सके वहाँ के भक्तजन शिवरात्रि पर दाता-निवास आ जावें। दाता स्वयं उनके पास पहुँच रहे हैं। कितनी महानता है श्रीदाता की। शिवरात्रि पर तीन दिन के अखण्ड

कीर्तन की आज्ञा दे सभी को अगले दिन विदा किया। इस प्रकार श्रीदाता की कृपा से यह यात्रा निर्विघ्न समाप्त हुई। इस यात्रा में कई तीर्थस्थान छूट गये। कुछ तो अनभिज्ञता से व कुछ कुछ लोगों की शीघ्रता के कारण। यात्रा के प्रमुख आयोजक डा श्री योगेश जी व श्री महेश जी भी सम्मिलित न हो सके जिन्हे दक्षिण भारत के तीर्थो की पूरी जानकारी थी। जो भी हो यात्रा बडी आनन्दप्रद रही तथा पूरी यात्रा में श्रीदाता की अपार कृपा रही। यह यात्रा अविस्मरणीय है। आज भी जब इसकी याद हो आती है तो शरीर रोमाचित हो जाता है और आनन्द की लहरे दौडने लगती है। जय हो श्रीदाता एव उनके प्रेमी भक्तो की।

O O O

दक्षिण-यात्रा के बाद अपने बन्दों के बीच

'श्रीदाता दयाल दक्षिण भारत की यात्रा से लौट आये है' यह सूचना विद्युत प्रवाह की तरह चारों ओर फैल गई। लोग दाता-निवास पहुँचने की तैयारी करने लगें कि श्रीदाता की आज्ञा दाता-निवास न पहुँचने की आ गई। श्रीदाता दिनांक ९-२-७९ को राजाराम बस द्वारा गोमती, आमेट आदि स्थानों पर होते हुए नान्दशा पहुँच गये। पधारने की सूचना पूर्व में ही पहुँच गई थी अतः आसपास के भक्तजन नान्दशा पहुँच गये। सभी श्रीदाता के दर्शन कर अतीव प्रसन्न हुए मानो उन्हें खोया हुआ खजाना पुनः मिल गया हो। दिनांक १०-२-७९ को करेड़ा, भीलवाड़ा आदि क्षेत्र के भक्त लोग भी आ गये। नान्दशा मे मेला सा लग गया। चारों ओर अपारहर्ष की लहर दौड़ पड़ी। नान्दशा में बाल-वृद्ध स्त्री-पुरुषों की इतनी भीड़ हो गई कि व्यवस्था करना कठिन हो गया।

नान्दशा त्रिदिवसीय कीर्तन

नान्दशा मे श्रीदाता के पधारने की खुशी मे तीन दिन का अखण्ड कीर्तन दि. १०-२-७९ को प्रातः से ही प्रारंभ कर दिया। बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ यह कीर्तन किया गया। बोलने वालों की कमी नहीं थी। कीर्तन की ध्वनि चारों ओर गूँजने लगी व वातावरण भक्तिमय हो गया। बड़ा ही आनन्ददायक वातावरण हो गया। नान्दशा में सत्संग भवन छोटा है अतः बोलने वालों को आँगन में बाहर तक बैठना पड़ा। कीर्तन मे लोग भाव-मय होकर नृत्य भी कर रहे थे। स्वर्गिक आनन्द था। सगरेव, जगपुरा, पर्वती और बावड़ी की बहनें भी वहीं उपस्थित थी। वे निरन्तर भजन बोल रही थी। उनके उलाहने युक्त भजन देखने-सुनने की बात ही

थी। ऐसा प्रेम देखने में नही आया। उनकी प्रेममयी भक्ति की तुलना नही।

उन तीन दिनो में श्रीदाता जब बाहर चबूतरे पर विराजते तो अनेक प्रसग चल जाते। यात्रा का वर्णन सुन सुन कर लोग भाव-विभोर हुए विना नही रहे। श्रीदाता की स्थिति भी इन दिनो विचित्र ही रही। कभी वे कीर्तन में जा बैठते तो कभी भजन सुनने लगते तो कभी भक्तो के बीच बैठ कर दाता की लीलाओ का वर्णन करते। बहने भी प्रेम-रस में अपने आप को भूल सी गई थी। वे भजनों में कभी दाता को कोसती, कभी स्नेह से बुलाती, कभी राम के लिए आह्वान करती, कभी माँ यशोदा के पास लल्ला की शिकायत करती। अनन्य प्रेम से परिपूर्ण उनकी भक्ति थी। अच्छे अच्छे नास्तिक उस समय अपने घुटने टेकते नजर आये।

तीन दिनो तक नान्दशा मे आनन्द की गगा बहती रही। श्रीदाता ने वहाँ भक्तिरूपी गगा ही बहा दी जिसमें अवगाहन कर अनेक लोगो ने अपने आप को पावन किया। ये तीन दिन बात की बात में निकल गये। श्रीदाता वहाँ आये और सभी से मिले। वहाँ आने वाला प्रत्येक व्यक्ति यही अनुभव करता रहा कि दाता की कृपा उस पर सबसे अधिक है। इस प्रकार आनन्द के वातावरण में तीन दिन पूरे होने पर कीर्तन की समाप्ति हुई। भोजन की व्यवस्था एक दिन बावडी के भक्तो व दो दिन नान्दशा के भक्तो द्वारा की गई। कीर्तन समाप्ति के बाद श्रीदाता वापिस दाता-निवास पधार गये।

भीलवाडा

दिनाक १४-२-७९ को श्रीदाता मातेश्वरी जी को साथ लेकर भीलवाडा पधारे। मार्ग में पोटला ठहर कर वहाँ की भक्त-मण्डली को दर्शन देकर कृतार्थ किया। वहाँ से चलते चलते अन्धेरा हो गया। पुर के पास आते आते जोर का तूफान आ गया। तेज हवा चलने लगी और वर्षा प्रारम हो गई। वर्षा के साथ ओले भी गिरने लगे। ठण्ड की मौसम तो थी ही। हवा, वर्षा और ओलों के कारण वातावरण अधिक ठण्डा हो गया। श्रीदाता का भीलवाडा लगभग नौ बजे पधारना हुआ।

भीलवाड़ा में तेज तूफान के कारण रोशनी मे गड़बड़ हो गई। भीलवाड़ा में कुछ समय के लिए 'ब्लैक आउट' हो गया। चारों ओर घना अन्धकार था। शिवसदन में एक हरिकेन की व्यवस्था की गई किन्तु हवा के कारण उसकी हालत भी विचित्र ही थी। उसका होना न होना बराबर सा था। ऐसे समय मे श्रीदाता की जीप आकर शिवसदन के बाहर रुकी। तेज हवा, घने अन्धकार और वर्षा की बौछार मे श्रीदाता का शिवसदन मे पधारना हुआ। पूर्व सूचना तो थी नहीं अतः हम लोग तो निश्चिन्त से थे। अतः दाता की जीप आकर रुकी तो हड़बड़ा से गये। ज्यों त्यों कर मोमबत्तियों की तलाश कर जलाई गई लेकिन हवा ने उन्हें भी बेकार कर दिया। हमारी स्थिति देख कर श्रीदाता भी हँसे बिना नहीं रह सके। वे सत्संग भवन में पधार गये। ज्यों ही वे सत्संग भवन मे पधारे, रोशनी आ गई और सभी बल्ब जल उठे। सारा शिवसदन एकदम चमचमा उठा। हम सब ने श्रीदाता और श्री मातेश्वरी जी को साष्टांग प्रणाम किया।

यद्यपि मौसम खराब था किन्तु बात की बात मे श्रीदाता के पधारने की सूचना सर्वत्र फैल गई। वर्षा और ठण्डी हवा की परवाह न कर लोग दर्शन हेतु आ गये। श्रीदाता सत्संग भवन में विराज गये। सुशील, राजेन्द्र, गोपाल, चन्द्रप्रकाश आदि युवा लोग भजन बोलने लगे। श्रीदाता ने पहले भजन के अन्त मे कहा, "अरे! वह तो है सो है।" फिर पूछा, 'है सो है' का क्या तात्पर्य है। सुशील ने बताया, "भगवान एक स्वरूप ही है। उसमे कोई परिवर्तन नहीं। वह तो है जैसा ही है।" श्रीदाता मुस्करा पड़े। उन्होंने कहा, "जिसकी जैसी भावना होती है, उसके लिये प्रभु उसकी भावना के अनुसार वैसी ही हो जाता है। तुलसीदास जी ने रामरूप मे देखना चाहा, वह रामरूप मे हो गया। सूरदास जी ने कृष्ण रूप में देखना चाहा, वह कृष्णरूप बन गया। जिसके जैसे भाव हैं उसके लिए वह वैसा ही है।" आगे बताया, "दाता के पास 'मान' का ठिकाना नहीं है। जहाँ मान की इच्छा है वहाँ भेद है। दाता किसी के मन की नहीं रखता है। नारद मुनि जैसे महान् व्यक्ति तक के मन की बात

नही रखी ।" श्रीदाता ने फिर पूछा, "तुम लोग बता सकते हो कि दाता का क्या स्वरूप है ? दाता का स्वरूप प्रेम है । प्रेम मे ही वह प्राप्त होता है । गोपियो ने प्रेम मे ही उसे अपने वश में किया था ।" इसी प्रकार का प्रसग चलता रहा । रात्रि के दो बजे तक प्रसग चलता रहा ।

अगले दिन भी मौसम खराब ही रहा । पूरे दिन बादल छाये रहे व लोग सूर्य भगवान के दर्शन तक नहीं कर सके । ऐसे मौसम में भी श्रीदाता स्नान हेतु श्री मोहनलाल जी ओझा के कुएँ पर पधारे । खेत पर नगर की तुलना में हवा तेज थी । बडी तीखी हवा चल रही थी । स्नान कर के लौटते लौटते तो वर्षा होने लगी । शिवसदन में पधार कर सत्सग भवन में विराजना हुआ । नवयुवक मण्डली सामने बैठ गयी । हसी-मजाक की बाते होती रही । इतने में बशीधर जी आ गये । उन्हे देख कर हँस पडे । श्रीदाता भी हँसने लगे फिर बोले, "बशीधर जी काम तो जी तोड करते है किन्तु इन्हे यश मिलता नहीं । कोई मान रखना चाहता है तो काम चलता नही । मान और प्रतिष्ठा एक विष का कीडा है जिसके काटने मे तो विष फैलता ही है । दाता तो सरल के सामने सरल व जटिल के सामने जटिल । शबरी, करमा आदि के सामने दाता कितने सरल हो गये ।" इस प्रकार की बाते हँसी मजाक के वातावरण में चलती रहीं । वर्षा तेज हो गई । आकाश घने बादलो से आच्छादित हो गया । बादल गर्जने लगे । दिन में भी रात्रि सा अन्धेरा हो गया । श्रीदाता ऐसे वातावरण में भी खेडा पधारे । शाम तक वापिस पधारना हो गया ।

रात्रि को सत्सग भवन में सभी आ विराजे । मीरा का भजन बोला गया । भजन के अन्त में श्रीदाता ने फरमाया, "लाज शर्म नहीं है ।" श्रीदाता ने एक भजन की कडी बोली 'तेरे लिये मैने सब लाज शर्म छोडी रे' । सभी इस भजन को बोलने लगे । बडी मस्ती से भजन बोला गया । लोग मस्त हो गये । अन्त में श्रीदाता ने फरमाया, लाज शर्म कुछ नही है । उसके सामने कौनसी लाज व कौनसी शर्म । यह तो झूठा प्रपच है । कपडो में सभी नगे है ।

लाज शर्म तभी तक है जब तक दर्द शुरु नहीं होता है। दर्द होते ही मरीज डाक्टर को सब कुछ सौंप देता है। दाता तो घट घट वासी है। उससे क्या छिपा है?" इस तरह अनेक उदाहरण देते हुए रात्रिभर श्रीदाता का प्रवचन होता रहा। बड़ी ही कृपा रही।

दिनांक १६-२-७९ को भी भीलवाड़ा ही विराजना हुआ। नवयुवक मण्डली के साथ आमोद-प्रमोद भजन-कीर्तन आदि मे पूरा दिन बीत गया। संध्या को श्रीदाता का पधारना दाता-निवास हो गया। श्रीदाता ने पिपासु लोगों को दर्शन देकर अमृतपान ही नहीं कराया अपितु उन्हें प्रेम का पाठ पढ़ा कर प्रभु के चरणों में प्रेम की बढ़ोत्तरी की। धन्य हैं श्रीदाता जिन्हें अपने बन्दों का इतना ध्यान है।

दाता-निवास त्रिदिवसीय कीर्तन

पूर्व निश्चयानुसार दिनांक २२-२-७९ ई. को प्रातः आठ बजे दाता-निवास मे कीर्तन प्रारंभ कर दिया गया। कीर्तन के प्रारंभ के समय भीलवाड़े से कुछ लोग, जयपुर से गप्पूलाल जी व किशनगढ़ से जज साहब श्री हल्वे व उनकी पत्नी थी। उन सभी प्रेमी जनों को आना था जो दक्षिण यात्रा के बाद श्रीदाता के दर्शन नहीं कर पाये थे। कीर्तन को प्रारंभ श्रीदाता ने करताल हाथ में लेकर नृत्य करते हुए किया। कुछ समय में ही उन्हें भावावेश हो गया और उनका कीर्तन साधारण कीर्तन न होकर दिव्य कीर्तन हो गया। श्रीदाता नृत्य कर रहे थे। कुछ लोग भी श्रीदाता के साथ ही नृत्य करने लगे। इस कीर्तन को देख कर भागवत में वर्णित उन महाभागवतों के दिव्य कीर्तन की याद हो आयी जो भगवान कृष्ण के सम्मुख किया था।

प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी
वीणाधारी सुरर्षि स्वरकुशलतया रागकर्तार्जुनोऽभूत्।
इन्द्रोऽवादीन्मृदङ्गं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमारा
यत्राग्रे भाववक्ता सरसरचनया व्यासपुत्रो बभूव ॥
ननर्त मध्ये त्रिकमेव तत्र भक्त्यादिकानां नटवत्सु तेजसाम्।

(चचलगति प्रह्लाद जी करताल, उद्धव जी झाँझ और नारद जी वीणा वजाने लगे, स्वर कुशल अर्जुन राग अलापने लगे, इन्द्र मृदङ्ग वजाने लगे और सुन्दर सनकादि जय जयकार करने लगे। उनके आगे शुकदेव जी रसीली रचना मे भाव वताने लगे। तेजस्वी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नटो के समान नाचने लगे।)

इसी प्रकार की समा वंधी उस कीर्तन में। उस समय कीर्तन कर्ताओं को अपने शरीर की सुध-बुध ही नही रही। एक घण्टे तक यह दिव्य कीर्तन होता रहा। इसके पश्चात् श्रीदाता सत्सग भवन से वाहर आ गये। उनका पूरा शरीर पसीने मे तर था। आदमी कम होने से उस दिन प्रत्येक आदमी को आठ-आठ घण्टे कीर्तन बोलना पडा। उस दिन श्रीदाता की विशेष कृपा ही रही जिससे प्रत्येक व्यक्ति इतना वोल सका। कीर्तन विधिवत चलता रहा।

सध्या समय श्रीदाता मकान के वाहर विराज गये। जो लोग उस समय कीतन नही वोल रहे थे वे श्रीदाता के सामने जा बैठे। ज्ञान और प्रेम से सम्वन्धित वाते चल पडी। श्रीदाता ने फरमाया, "योग और ध्यान ज्ञानियों के लिए है, प्रेमियों के लिए नही। प्रेमियो के लिए तो एकमात्र प्रेम ही है। गोपियो के समक्ष ज्ञान का क्या मूल्य था। वहाँ तो कृष्ण ही कृष्ण है। श्री राधा जी ने कहा था कि विश्व है ही नही। चीर हरना, माखन चुराना, दही लूटना और रास रचना मे तात्पर्य है शरीर, मन, कर्म और भ्रम तथा जीव और ब्रह्म। रास ब्रह्म और माया का सम्मिलित रूप ही तो है। यदि ब्रह्म नही होता तो गोपी (शरीर, माया) का कही पता ही नही चलता। ज्ञानी इस राज को क्या जाने? चीर हरण अर्थात् अहरूपी आवरण को हर लेना। अहरूपी आवरण के हटते ही तू ही तू वचा रहता है।" इस प्रकार श्रीदाता ने उस दिन प्रेम की विशद व्याख्या की। सुनने वाले सुनकर आनन्दित हुए।

रात्रि को मातेश्वरी जी भी कीर्तन में आकर विराज गई। श्रीदाता भी पधारे। कीर्तन वोलने वालो में जोश आया। कीर्तन की मधुर ध्वनि रात्रि की नीरवता को भग करती हुई दूर दूर तक पहुँच रही थी। रात्रिभर मस्त कीर्तन चलता रहा।

प्रातः होते होते जयपुर वाले वस लेकर आ गये। कीर्तन वोलने वालों की कमी रही नही। कीर्तन मे स्वर्गीय आनन्द की अनुभूति होने लगी। दिन को जयपुर वाले श्रीदाता के पास जाकर वैठे। कुछ लोगों ने शिकायत की कि आज के नवयुवक कुसंगति मे विगड़ रहे हैं। इस पर श्रीदाता ने फरमाया, "विगड्या सो जात का, सुधर्या जो नाथ का" कुछ देर वाद वोले। खराव संगति मे लोग विगड़ते है अतः संगति का पूरा ध्यान रखना चाहिये। सत्संग ही मनुष्य को निर्मल करता है। तुलसीदास जी ने फरमाया है :–

साधु चरित शुभ चरित कपासू।
निरस विसद गुनमय फल जासू॥
जो सहि दुःख पर छिद्र दुरावा।
वंदनीय जेहि जग जस पावा॥
जलचर थलचर नभचर नाना।
जे जड़ चेतन जीव जहाना॥
मति कीरति गति भूलि भलाई।
जव जेहि जतन जहाँ जेहि पाई॥
सो जानत सतसंग प्रभाऊ।
लोकहुँ वेद न आन उपाऊ॥
विनु सतसग विवेक न होई।
राम कृपा विनु सुलभ न सोई॥
सतसंगत मुद मंगल मूला।
सोइ फल सिधि सव साधन फूला॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई।
पारस परस कुधात सुहाई॥
विधि वस सुजन कुसंगत परहीं।
फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं॥

सतसंग ही ऐसे लोगों को राहपर ला सकता है। कुसंगति तो वर्वाद कर देती है अतः हर प्राणी को ध्यान रख कर ही चलना चाहिये।

इस समय के भौतिक वातावरण में चारो ओर खतरा ही खतरा है। केवल मात्र दाता ही रक्षक है।

काजल केरी कोठरी, काजल का ही कोट।
वलिहारी वा दास की, जो रहे राम की ओट ॥

सभी सम्वन्ध झूठे है। सच्चा सम्बन्ध केवल दाता का ही है।" इस प्रकार वडी देर तक श्रीदाता का प्रवचन होता रहा। प्रवचन में दु ख के महत्व को स्वीकार करते हुए उन्होने दु ख को अच्छा माना है।

सपत मे आफत भली जो दिन थोडे होय ॥
सुख के माथे सिल परै, नाम हृदय ते जाँय।
वलिहारी वा दु ख की, पल पल नाम रटाय ॥

श्रीदाता ने यात्रा करना भी आवश्यक वताया। ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है फिर भी लोग मन्दिर जाते है। वह जितना मन्दिर में है उतना ही घर पर भी किन्तु घर पर जब वह दिखाई नही देता है तव मन्दिर जाकर उसके दर्शन किये जाते है। जब मालिक घर पर नही मिलता तव उसे वाहर खोजा जाता है। जब मनुष्य की दृष्टि दिव्य हो जाती है तव उसे कही आना जाना नहीं पडता है।

शाम को भीलवाडा मे भी वस आ गई। उदयपुर, कोटा, आमेट व अन्य गाँवो के भक्त लोग भी आ गये। काफी सख्या में लोग आ गये जिससे कीर्तन भवन में बैठने का स्थान मिलना भी कठिन हो गया। वडे जोश के साथ कीर्तन हुआ। कीर्तन में जगह न मिलने पर अधिकतर लोग श्रीदाता के पास आ बैठते। वहाँ तो हर समय सत्सग ही चलता रहता। शाम के समय जव दाता वाहर विराजे थे तव फरमाया, "दाता का नाम लेते ही धरा-आसमान एक हो जाता है। आपको रोटी की जरूरत पडी तो आपने धरा-आसमान एक कर दिया। कर्म-अकर्म का भी ध्यान नही रखा। आपका एक दिन का भी ठिकाना नही किन्तु आपने अनेक शर्त नामे लगा दिये। आप दाता को चाहते है और उसे अपने मन के अनुसार चलाना चाहते है, किन्तु हृदयरूपी किवाड वन्द कर रखे है।

आपको उसकी जरूरत ही नहीं है। यदि जरूरत है तो आप मन्दिर में जाकर वापिस लौटते क्यों हे ? व्यर्थ की बातें करना छोड़ कर यदि डट कर बैठो तो मन्दिर वाला स्वयं ही आ जावेगा। आप एक मुट्ठी शक्कर कुएँ में डाल कर उसके पानी को मीठा करना चाहते हो। क्या यह ठीक है। जितनी शक्कर डालोगे उतना ही पानी मीठा होगा। चौबीस घण्टों में २१६०० स्वास चलते हैं। आधे चले जाते हैं सोने में, आधे में से आधे चले जाते हैं मनोरंजन में। शेष में से पौन चले जाते हैं विकार मे, प्रपंच में और टंटे बाजी में। शेष समय दाता के लिए खर्च करना चाहते हो तो क्या काम बनने का।

एरन की चोरी करे, करे सुई का दान।
चढ़ चौवारे झाँकन लागे, कब आसी बेवाण ॥"

सत्संग भवन में कीर्तन जोरों पर था। ज्यों ज्यों रात्रि होती गई कीर्तन में अधिकाधिक रस आने लगा। दस बजे श्रीदाता कीर्तन में पधार गये। कुछ समय तक योंही बोलते रहे फिर करतालें हाथ में लेकर खड़े हो गये। भावमग्न होकर नृत्य करने लगे। लोगों के खड़े खड़े ही पॉव उठने लगे। सुशील, गोपाल, रामसिंह, रामरतन आदि भी नृत्य करने लगे। वाद्य-यंत्र जोर से बजने लगे। झाँझ की झनकार पर पैर उठने लगे। माथुर बहिनों से एवं सत्यनारायण जी से भी नहीं रहा गया। वे भी नृत्य करने लगे। भावात्मक नृत्य था। लोग होश-हवाश खो बैठे। कीर्तन में गति आ गई। तीन चार घण्टों तक एक सी स्थिति बनी रही। जब श्रीदाता बाहर पधार गये तब जाकर कीर्तन कुछ ठण्डा पड़ा। बाद में जामोला वाले सत्संगी कीर्तन करने बैठे। वे कीर्तन करने में माहिर हैं। उनकी लय ही अलग है। उनके बाद उदयपुर वालों की बारी आयी। इस प्रकार रात्रिभर कीर्तन में गति बनी रही। इतना आनन्द आ रहा था कि किसी की आँख में निद्रा का नामोनिशान नहीं था।

कीर्तन दिनांक २५–२–७९ को दोपहर तक चलता रहा। दोपहर को पूर्णाहुति हुई। उस समय भी श्रीदाता का कीर्तन के साथ नृत्य हुआ। आरती के बाद सभी श्रीदाता के चरणों में लोट

गये। कीर्तन में बड़ा ही आनन्द रहा। उस दिन वृहद भोज का आयोजन हुआ। रात्रि को भजन हुए। अगले दिन सभी लोग वहाँ से रवाना हुए। जो कीर्तन हुआ उसका प्रभाव कई दिनों तक लोगों के मानस पटल पर बना रहा।

दाता अपने बन्दों के साथ गिरनार द्वारिका में

दक्षिण यात्रा के समय कई लोग श्रीदाता के साथ जाने से वंचित रह गये थे उनमे से अधिकतर भीलवाड़ा क्षेत्र के नवयुवक थे। शिवरात्रि के त्रिदिवसीय कीर्तन के बाद उन्होंने श्रीदाता से पुनः छोटी सी यात्रा के लिए अर्ज किया। श्री मातेश्वरी जी भी अस्वस्थता के कारण पिछली यात्रा के समय गिरनार पर चढ़ने से वंचित रह गई थी। कुं. हरदयालसिंह जी की भी यही स्थिति रही, कारण अवकाश न होने से वे बम्बई से ही रवाना हो गये थे। इस तरह कतिपय ऐसे कारण बन गये जिससे श्रीदाता ने नवयुवकों की प्रार्थना स्वीकार कर ली किन्तु समय निश्चय नहीं किया गया।

श्री किशनलाल नाथानी अपनी पत्नी के उपचार हेतु उदयपुर गये हुए थे। वहाँ से लौटते समय श्रीदाता के दर्शनार्थ दाता-निवास पधारे। श्रीदाता ने उनके साथ बस की व्यवस्था करने की आज्ञा दी। पूरी जानकारी के अभाव में श्री रामलाल जी टेलर दाता-निवास पहुँचे। उन्होंने दिनांक ५-३-७९ को दोपहर को बताया कि बस दिनांक ६-३-७९ तक दाता-निवास पहुंच जानी चाहिये। यात्रा बस की व्यवस्था सरल नहीं थी। आज्ञा सुन कर परेशानी हुई किन्तु प्रभु की लीला विचित्र है। लोग क्या व्यवस्था करेंगे। उसकी व्यवस्था वह स्वयं ही करता है। श्रीदाता की इच्छा हो और उसमे रुकावट हो, यह संभव नहीं। भीलवाड़े के एक व्यापारी ने यात्रा-बस के नाम से एक नई बस खरीदी थी, जो भाग्य से उसी दिन भीलवाड़े में आयी। सूचना मिलते ही, बात कर उसे २.२० रु. प्रति कि. मी. पर तैय कर ली गई। सभी औपचारिकताएँ दूरभाषी यंत्र के माध्यम व अन्य माध्यमों से पूरी कर दी गई। आवश्यक सामान व चलने के इच्छुक लोगों को साथ लेकर भीलवाड़ा से चलकर दाता-निवास पाँच बजे पहुँच गये। भीलवाड़ा से चले

उस समय ठण्ड बिलकुल नही थी अत. चलने वालो ने गर्म कपडे नही लिए व बिस्तर भी साधारण ही लिया। दाता-निवास पहुँच कर बस मे नीचे उतरे कि ठण्डी हवा लगी। वहाँ ठण्ड बहुत ही ज्यादा थी। कुछ ही देर में ठिठुर गये और वहाँ के बिस्तरो के अतिरिक्त आग का आश्रय लेना आवश्यक हो गया।

दक्षिण-यात्रा मे सम्मिलित होने वाले लोगो को इस यात्रा मे लेने की आज्ञा नहीं हुई किन्तु श्रीदाता की इस सेवक पर कृपा हो गई और विशेष आज्ञा मिल गई। यात्रा में सम्मिलित होने वाले लोगो की सूची परिशिष्ट ख (॥) मे दी गई है।

दिनाक ६-३-७९ ई को रात्रि को शीत लहर के कारण बहुत ही अधिक ठण्ड थी। इतनी कि खेतो में पानी जम गया। अत ठण्ड के कारण निकलने में देरी हो गई। ग्यारह बजे दाता-निवास मे प्रस्थान हुआ। गोमती पार करते ही भजन बोलना प्रारभ कर दिया। हारमोनियम, ढोलक और झांझ आदि साथ ही थे। नवयुवकों मे उमग और मस्ती थी ही व श्रीदाता साथ देने वाले। भजन भी भावात्मक और प्रेमरस से परिपूर्ण था। इन भजनो का क्या कहना ? कब नाथद्वारा और एकलिंग जी निकल गये कुछ पता ही नही चला। बात की बात में उदयपुर आ गया। हाथीपोल के बाहर कनक लॉज पर बस रोक दी गई। वहाँ के भक्त-जन एक दिन पूर्व से ही प्रतीक्षा में थे। सभी ने भगवान श्रीदाता को साष्टाग प्रणाम किया। कुछ लोगो ने उस दिन वहीं ठहरने की प्रार्थना की जिस पर श्रीदाता ने फरमाया, "अभी नही ! लौटती वक्त यदि दाता की महर हुई तो चार पाँच घण्टो के लिए ठहरना हो जावेगा।" वहाँ से राधेश्याम जी और श्यामसुन्दर जी को लेकर आगे बढे।

उदयपुर से रतनगढ तक की सडक पहाडियो के मध्य होकर जाती है। दो वर्ष पूर्व हुई भारी वर्षा मे सडक अधिक खराब हो गई थी और जगह जगह मे टूट चुकी थी। स्थान स्थान पर निर्माण कार्य भी चल रहा था, इसलिये बस की गति सीमित ही रखनी पडी। पहाडियाँ शुष्क थी। यत्रतत्र सागवान और अन्य पेड दिखाई दे रहे थे। उदयपुर से ज्यो ज्यो आगे बढते गये त्यो त्यो वृक्षो की

संख्या में वृद्धि होकर प्राकृतिक सौन्दर्य मे वृद्धि होती गई। बस धीरे धीरे आगे बढ़ रही थी और उसमे भजनो की धूम थी। बीच बीच में श्रीदाता मजाक कर हँसी की फुहार बिखेर देते थे। बड़ा ही आनन्ददायक वातावरण था।

पाँच बजे रतनगढ़ चेक पोस्ट पर पहुँचे। वहाँ बस चेक की गई। सौभाग्य से शीघ्र ही निपट गये। वहाँ मे चल कर सांवरा जी पहुँचे। वहां गुजरात क्षेत्र का चेक पोस्ट था। बस को वहाँ भी रोका गया। बस का पूरे भारत के भ्रमण का परमिट था। चेक पोस्ट वालों ने यात्रियों की प्रमाणित सूची माँगी जो भीलवाड़ा से शीघ्रता के कारण लाना भूल गये थे। चेकपोस्ट वालों ने इस छोटी सी भूल के कारण बस को आगे ले जाने मे मना कर दिया और रिश्वत के रूप में पाँच सौ रुपये माँगे। बडी कठिनाई से पचास रुपये देकर पिण्ड छुड़ाया। इस प्रपंच मे एक घण्टा लग गया। सभी लोग बस में बैठे बैठे उकता गये। इस प्रकार के अधिकारियों के व्यवहार पर आश्चर्य और दु:ख हुआ। श्रीदाता तो बस में मे उतर कर आगे चल दिये। पास ही सांवला जी का मन्दिर था अत: दर्शन हेतु पधार गये। अन्य लोग भी श्रीदाता के पीछे ही चल दिये।

मन्दिर विशाल एवं भव्य है। मन्दिर की दीवारों पर अनेक सुन्दर मूर्तियाँ खुदी हुई हैं, जो अत्यधिक सुन्दर हैं। उनकी भिन्न भिन्न मुद्राएँ अनेक पौराणिक कहानियों को छिपाये हुए हैं। मन्दिर का आँगन सुन्दर है। जगमोहन भी सुन्दर और कलापूर्ण है। भीड़ विशेप नहीं थी अत: दर्शन करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। सांवला जी का श्री विग्रह बड़ा ही मनमोहक और आकर्षक है। वहीं मन्दिर के पिछले भाग में सन्ध्या की हरेहर की। हरेहर के बाद एक बार पुन: विग्रह के दर्शन किये। फिर मन्दिर के बाहर आ गये। बस खड़ी थी अत: उसमें बैठ कर रवाना हो गये।

बस हिम्मतनगर होती हुई अहमदाबाद पहुँची। रात्रि के १०–३० बज गये थे। राधावल्लभ जी के मन्दिर में ठहरने की व्यवस्था की गई। भोजन कुछ था, कुछ बनाया गया और खा-पीकर

सो गये । प्रात ही उठे । शौचालय एक ही था अत वहाँ से रवाना हो गये । राजकोट की सडक खोजने में कुछ समय लग गया । पन्द्रह कि मी पर बस रोक दी गई । शौचादि कार्यों से निपट कर आगे बढे । हमने बावला, बागोदरा, नीमडी होकर जानेवाला मार्ग पकडा जो राष्ट्रीय मार्ग ८ अ से कुछ कम पडता है । इस मार्ग में दोनों ओर हरेभरे खेत थे । भूमि उपजाऊ है । सडक भी अच्छी थी । गेहूं के खेतों की फसल कट रही थी । बीच बीच में गन्ने के खेत मार्ग की शोभा को बढा रहे थे । बागदरा कुछ देर ठहर कर नाश्ता-पानी किया, फिर नीमडी पहुँचे । नीमडी के बाहर सडक पर ही इमलियों से घिरा हुआ साफ सुथरा सीतला माता का मन्दिर है । वहाँ पास ही तालाब है । एक कुई भी है जिसपर हैण्ड पम्प लगा हुआ है । तालाब की पाल पर सिचाई विभाग वालों की नर्सरी भी है । स्थान उपयुक्त समझ कर वहीं ठहर गये । हवा तेज थी फिर भी भोजन की व्यवस्था तो करनी ही थी । भोजन बनाते समय एक पागल कुत्ता पास से होकर निकला । हम सब असावधान थे । हँसी मजाक कर रहे थे । श्रीदाता ने उसे आते हुए देख लिया । उन्होंने हमे सावधान कर दिया । कुत्ता हमारे पास से होता हुआ एक ओर निकल गया । कुछ समय बाद ही हाथ में लकड़ियाँ लिये हुए पाँच युवक दौडते हुए आये । वे कुत्ते के पीछे चले गये । यह तो श्रीदाता की कृपा हो गई कि उसने हमें नही काटा । यदि वह काट देता तो कितनी परेशानी हो गई होती । किन्तु ऐसा होता क्यों, मालिक जो साथ थे । भोजन बना हम सबने मस्ती से स्नान व भोजन किया ।

श्रीदाता ने भोजनोपरान्त पागल कुत्ते की अनेक कहानियाँ सुनाई । उन्होंने कहा कि ऐसे कुत्तो से सावधान रहना चाहिये कारण ये सीधे ही काटने को ऊपर आते हैं । ऐसे समय हाथ में लकडी या डण्डा होना आवश्यक है । वहाँ से निवृत्त होते होते तीन बज गये । नीमडी अहमदाबाद से १०१ कि मी दूर है और नीमडी से राजकोट १०३ कि मी है । राजकोट से गिरनार १०५ कि मी है । गोण्डवा होते हुए ८-४५ बजे गिरनार पहुँचे । सीधे ही सनातन धर्मशाला मे पहुँचे । मैनेजर ने मना कर दिया और किसी अन्य

धर्मशाला में चले जाने को कहा। अधिक आग्रह पर बरामदे में जगह बता दी। असमंजस में खड़े थे कि कुछ ही देर में स्वयं मैनेजर ने आकर कहा कि ऊपर की मंजिल पर कमरे रिजर्व हैं। नौ बजे का समय दिया हुआ है। यदि वे सव्वा नौ बजे तक नहीं आये तो वह कमरे आपको दे दिये जावेंगे। मैनेजर की इस सहानुभूति पर आश्चर्य होना स्वाभाविक है। नौ तो बज ही चुका था। चार पाँच मिनिट बाद उसने ऊपर के कमरे खोल दिये। ऊपर मन्जिल में हमारे सिवा अन्य कोई यात्री नहीं था। उस दिन धर्मशाला मे बड़ी भीड़ थी। गिरनार पर चढ़ने को कई यात्रियों के दल आये हुए थे। धर्मशाला ठीक दस बजे बन्द हो जाती है अतः सबसे पहले ड्राईवर और खलासी के लिये बाजार से ही भोजन की व्यवस्था करनी पड़ी। भीड़ अधिक होने व समय अधिक होने से होटलों व हलवाई की दुकानों पर भी खाने पीने की वस्तुएँ बड़ी कठिनाई से मिल पाई।

हमें भोजन बनाते बनाते रात्रि के बारह बज गये। श्रीदाता उस दिन बहुत अधिक प्रसन्न मुद्रा में थे अतः भोजनोपरान्त बड़ी देर तक सत्संग होता रहा। बीच बीच में विनोद की बातें भी हो जाती थी। बड़ा ही आनन्द रहा। तीन बजे के लगभग सोये। ठण्ड पहले के दिन से भी अधिक थी। हवा ठण्डी व तेज थी। ओढ़ने को चद्दरों के अतिरिक्त कुछ नहीं था। गर्म कपड़े भी किसी के पास नहीं थे। ठण्ड लग जाने का भय था। दाता की लीला ही विचित्र है। अन्दर कमरे में इतनी भारी ठण्ड होते हुए भी पसीना आता रहा। हमें तो पता ही नहीं चला कि ठण्ड है।

अगले दिन चार बजे उठ गये। मुश्किल से एक घण्टा लेटे होंगे। दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर तैयार हो गये। पाँच बजे चढ़ाई के लिए निकल पड़े। उस समय हवा बड़ी जोर की चल रही थी और उसमें तीखापन था। सभी लोग अपने अपने चद्दर शरीर पर डाले हुए थे किन्तु फिर भी सभी सिकुड़ रहे थे। कुछ लोग तो थरथर काँप भी रहे थे। श्रीदाता सबसे आगे थे। उनके शरीर पर धोती के सिवा कुछ भी नहीं था। पीछे पीछे मातेश्वरी जी

और अन्य लोग थे। कुछ के हाथो में लकड़ियाँ थी। चलती हुई तेज हवा और शीत में हम लोग घबरा गये और सोचने लगे कि चढाई कैसे सभव हो सकेगी। किन्तु कुछ सीढियाँ चढे होगे कि पहाडी की ओट आने से हवा का प्रभाव कम होने लगा जिससे सब लोग कुछ राहत सा अनुभव करने लगे। उस समय तक अधेरा था। तलहटी में जलते हुए बिजली के बल्ब और रोशनी ऐसी सुन्दर और आकर्षक लग रही थी जो देखते ही बनती थी। दूर दूर के गाँवो में भी बल्ब जल रहे थे जो ऐसे लग रहे थे मानो स्वच्छ आकाश में तारे चमक रहे हो या यो कह दिया जाय कि चाँदी-सोने के तारो वाली बडी काली जाजम बिछा रखी हो। दृश्य बडा ही मनमोहक था। पहाडी की ओट आ जाने से हवा तो कम लग रही थी किन्तु उसकी साँय साँय की आवाज बडे जोरो से आ रही थी। पौने दो हजार सीढियाँ चढे होगे कि पहाडी की ओट कुछ हटने से हवा के सीधे प्रवाह में आ गये। फिर क्या था पुन सिकुडने लगे। शरीर पर ओढी हुई चद्दरे उडने लगी जिन्हे सभालना कठिन हो गया, फिर भी ज्यो त्यो कर आगे बढते गये। आगे पुन मुख्य पहाड की ओट आ गई व पुन हवा का प्रवाह कम हो गया। श्री मातेश्वरी जी के पैर में सूजन थी फिर भी व आगे थी। ब्लड प्रेशर की मरीज बहन सज्जन कँवर जिसके लिए दो सीढी चढना भी भारी था वह भी श्री मातेश्वरी जी के साथ आराम से सीढियाँ चढ रही थी। श्रीदाता ने उसे पूछा, " बडी बाई! कैसे हो ?" उसने हँसते हुए जवाब दिया "दाता की महर है।" शकरलाल जी जाट व्यायाम शिक्षक है व हम सबसे उनका शरीर अधिक हृष्ट-पुष्ट है किन्तु वे दो हजार सीढियाँ चढते चढते थक गये व हाँपने लगे। एक स्थान पर आते आते तो वे लेट ही गये। इसपर श्रीदाता ने उनसे पूछा, "शकर जी तबियत कैसी है ?" उन्होने उदास मुँह से कहा, "भगवन्! थकावट आने लगी है। चढना भारी है। भगवान की महर हो तब ही चढा जा सकता है।"

उधर जज साहब मस्ती से चढ रहे थे। उनकी पत्नी को अवश्य चढने में कठिनाई हो रही थी। श्रीदाता ने आनन्द स्वरूप को

कुछ सहारा देने को कहा । श्री आनन्द स्वरूप जी के सहारा लगा देने पर माता जी ठीक चलने लग गईं ।

दो हजार एक सौ चौवीस सीढियाँ पार कर लेने पर श्री भर्तृहरि और गोपीचंद जी की धूनी आयी । वहाँ नाथ सम्प्रदाय के दो साधु थे । उन्होंने श्रीदाता को पहिचान लिया । उन्होंने कहा, "महात्माजी ! आप तो एक माह पूर्व भी तो आये थे । बड़ी कृपा की । आओ ! विराजो ।" दस मिनिट तक साधुओं और श्रीदाता के बीच बातें होती रही । विषय धूनी से सम्बन्धित ही था । वहाँ एक गुफा भी बताई गई किन्तु गुफा में कोई गया नहीं । कुछ आगे बढ़ने पर राधाकृष्ण जी का मन्दिर आया । उस समय तक उजाला हो गया था । सामने की पहाड़ी एवं तलहटी का दृश्य बड़ा मनमोहक था ।

तीन हजार तीन सौ छप्पन सीढ़ियाँ चढ लेने पर सुभद्रा बहन और उनके पुत्र की चरण पादुकाओं के दर्शन हुए । तीन हजार पाँच सौ चौतीस सीढ़ियों को पार कर लेने के बाद दत्तात्रेय जी की गुफा आई । वहाँ दत्तात्रेय जी की संगमरमर की बनी सुन्दर मूर्ति है । वहीं तीन चार सीढ़ी नीचे खोडियार माँ का स्थान है । तीन हजार सात सौ ग्यारह सीढ़ियाँ पार कर लेने पर जैन मन्दिर का प्रवेश द्वार है । श्रीदाता द्वार पार कर एक ओर विराज गये । ओट कम हो जाने से हवा की तीव्रता का पुनः अनुभव होने लगा । एक छोटे से मन्दिर की ओट लेकर और लोग भी बैठ गये । ठण्ड और श्रम का प्रभाव सभी पर अवश्य था किन्तु सब प्रसन्न चित्त थे । श्रीदाता ने कुछ विनोद की बातें की जिससे सभी हँसने लगे । कुछ देर विश्राम कर श्रीदाता उठ खड़े हुए । कुछ सीढ़ियाँ और पार कर लेने पर जैन मन्दिर प्रारंभ हो गये । कुछ मन्दिरों को अन्दर से देखा, कुछ को बाहर से । एक मन्दिर तो बहुत सुन्दर है जिसे देख कर सभी प्रसन्न हुए ।

जैन मन्दिरों को पार कर आगे बढे होंगे कि ओट न होने से हवा तेज लगने लगी । एक प्रकार से हवा का ताण्डव नृत्य चल

रहा था। शीत लहर जो चल रही थी। साँय साँय की आवाज से एक दूसरे की आवाज सुनना भी कठिन था। श्रीदाता ने सभी को बड़ी सावधानी और मजबूती से बढ़ने को कह दिया था। फिर भी हवा के झोंको से सीढ़ियों से गिरने का खतरा हर समय बना ही रहता था। श्रीमती हरबे साहिबा ज्यादा थक गई थी। अब सीधी चढ़ाई थी। उनसे एक एक सीढ़ी चढ़ना कठिन हो रहा था। उनकी यह स्थिति देखकर श्रीदाता सीढ़ियों से एक ओर हट कर एक वृक्ष के नीचे जा बैठे। सभी उनके इर्द-गिर्द जा बैठे। श्रीदाता ने जज साहब की पत्नी को साहस बँधाया। कुछ सुस्ता लेने पर आगे बढ़े। तीन हजार नौ सौ बीयासी सीढ़ियाँ चढ़ लेने पर गो-मुखी गंगा का स्थान आया। वहाँ बहुत बड़ा कुण्ड है जिसमें निर्मल पानी था। ऐसी मान्यता है कि इसमें गङ्गा का पानी आता है। ठीक आठ बजे हम सब इस कुण्ड पर थे।

चार हजार आठ सौ अठारह सीढ़ियाँ चढ़ लेने पर अम्बा माता का मन्दिर है। माँ का मन्दिर पहाड़ की एक चोटी पर बना हुआ है। उससे आगे कोई ओट नहीं थी और ऊँचाई भी अधिक है। हवा बड़ी तेज गति से चल रही थी और आगे बढ़ना खतरे से खाली नहीं था। साधारण दिनों में ही वहाँ की हवा में तेजी होती है फिर इस समय तो शीत लहर का प्रकोप था। आगे बढ़ना एक समस्या थी। जो व्यक्ति हम लोगों से आगे बढ़ गये थे वे भी वहीं ठहरे हुए थे। मन्दिर के पास ही एक विश्राम गृह है। उसके एक कमरे में हम सब जा बैठे। कुछ लोग नारियल के छिलके जला कर शरीर को गर्म करने का असफल प्रयास कर रहे थे।

दस बज कर तीन मिनिट पर हवा का वेग कुछ कम हुआ तब कमरे से बाहर निकल कर आगे बढ़े। अम्बा माता से सौ सीढ़ियाँ नीचे उतर कर और तीन सौ उनपचास सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद भगवान श्री गोरक्षनाथ जी की धूणी आई। यह धूणी गिरनार की सबसे ऊँची चोटी पर है। यह स्थान अत्यधिक आकर्षक एवं रमणीक है। अनेक भक्त लोग आकर्षित होकर यहाँ आते हैं और दर्शन कर अपने जीवन को धन्य बनाते हैं।

वहाँ भगवान गोरक्षनाथ जी का छोटा सा किन्तु सुन्दर मन्दिर बना है जिसमें उनका एक चित्र रखा है। श्रीदाता मन्दिर में पधारे। मातेश्वरी जी भी पधारी। उन्होंने वहाँ उस स्वरूप के दर्शन किये जिस स्वरूप के दर्शन उन्होंने विवाह के पूर्व किये थे। श्रीदाता के दर्शन कर लेने पर अन्य सब लोगों ने भी दर्शन किये। बाद में गुफानुमा स्थान को लेट कर पार किया। पास ही एक ओर श्री गोरक्षनाथ जी के चरणचिन्ह हैं। श्रीदाता सहित सभी ने वहाँ साष्टांग प्रणाम किया। दर्शनोपरान्त श्रीदाता एक ओर चट्टान पर बैठ गये। वहाँ धीरे धीरे भीड़ अधिक होने लगी अतः श्रीदाता कुछ नीचे उतर कर बने हुए कमरों के पीछे जा विराजे।

बहनों और अन्य कुछ लोगों ने दत्त-शिखर जाने की इच्छा व्यक्त की। श्रीदाता ने उन्हें जाने तथा शीघ्र ही वापिस लौटने की आज्ञा दे दी। श्रीदाता, मातेश्वरी जी, जज साहब और उनकी पत्नी, किशनलाल जी, सवाईराम जी, बरदीचन्द जी और यह सेवक वहीं ठहरे, बकाया अन्य लोगों ने दत्त-शिखर के लिए प्रस्थान किया। श्री मातेश्वरी जी ने जाने की इच्छा प्रकट की जिसपर श्रीदाता ने फरमाया, "अरे! अब भी कुछ देखना बाकी रह गया क्या?" इसपर वे आगे नहीं गई।

गोरक्षनाथ शिखर मे आठ सौ सीढ़ियाँ उतर कर व सात सौ दस सीढ़ियाँ चढ़ने पर दत्त शिखर का स्थान है। सात सौ दस सीढ़ियाँ यों तो गिनती मे ज्यादा नहीं है किन्तु ऊँचाई लिए होने से जाने वालों के नाम पूछती हैं। यात्रियों को वहाँ तक पहुँचने में अपनी नानी याद हो आती है। चढ़ने उतरने में पैर जवाब दे देते हैं, किन्तु श्रीदाता की दया से सभी हँसते खेलते व श्रीदाता की जय बोलते हुए वहाँ पहुँच गये।

श्रीदाता दत्त-शिखर जाने वालों की प्रतीक्षा न कर अम्बा माता के मन्दिर पर लौट आये। कुछ देर तक एक चट्टान की ओट में विराजे रहे फिर उठकर मन्दिर में पधार गये। दो सन्त द्वार पर ही पैसा मांग रहे थे। ऐसे सिद्ध स्थान पर आकर व सन्यास ग्रहण कर लेने पर भी पैसे की भूख नहीं मिटी, आश्चर्य है। सत्य ही कहा है :--

प्रानी कउ हरिजसु मनि नहि आवै ।
अहनिसि मगनु रहै माइआ में कहु कैसे गुन गावै ।।
पूत मीत माइआ ममता सिउ इहु विधि आपु बँधावै ।
मृगतृसना जिउ झूठो इहु जगु देखि ताहि उठि धावै ।।
भुगति मुकति को कारनु स्वामी, मूढ ताहि बिसरावै ।
जन नानक कोटिन में कोऊ भजन राम को पावै ।।

वहाँ से चल कर धीरे धीरे श्रीदाता नीचे उतरने लगे । कु हरदयालसिह जी का छोटा बच्चा भवर कृष्णदयालसिह जिसकी आयु छ वर्ष की होगी साथ था । आते वक्त तो वह गोदी में था । लौटते वक्त वह पैदल चलने लगा । दिन के बारह बज गये थे और वातावरण में गर्मी आने लगी थी । जैन मन्दिर तक तो हम लोग श्रीदाता के साथ ही थे । जैन मन्दिर के पास हम लोग बैठ गये व श्रीदाता अकेले ही आगे निकल गये । भँवर हम लोगो के साथ ही था । एकाएक वह दौड कर सीढियाँ उतरने लगा । हम लोगो के लिए उसे पकड पाना कठिन हो गया । बडी कठिनाई से उसे पकड पाये । श्री गोपाल जी को आगे श्रीदाता के साथ जाने को भेज दिया व हम लोग धीरे धीरे चलने लगे । दत्त-शिखर जाने वाले भी आ गये । उतरना चढने से भी भारी पड रहा था । प्रभु कृपा से सभी सकुशल धर्मशाला में पहुँच गये ।

बहन सज्जन कँवर, जज साहब और उनकी पत्नी का गिरनार पर चढ जाना एक आश्चर्य ही है । भँवर कृष्णदयाल का अम्बा माता से धर्मशाला तक पैदल आना भी कम आश्चर्य की बात नही है । बिना भगवान की विशेष कृपा के ऐसा हो ही नही सकता । धर्मशाला में हमने अन्य यात्रियो को देखा है । वे बडी कठिनाई से चल पा रहे थे । लोग उनके शरीरो पर मालिश कर रहे थे व उनके श्रम को दूर करने के लिए गर्म पानी का प्रयोग कर रहे थे । नाइयो और मालिश करने वालो की भीड ही थी । एक नाई तो श्रीदाता के पास भी पहुँच गया । वह बोला, "बाबाजी ! दाढी बना दूं और मालिश कर दूं । थकावट दूर हो जावेगी और रोम

रोम खुल जावेगा।" इस पर श्रीदाता ने हँस कर जवाव दिया, "तुम्हें इस काम के लिए मैं ही दीखा।" हम लोग भी हँस पड़े। भोजनोपरान्त रात्रि होने पर सभी सो गये कारण दो रात्रियों का जागरण जो हुआ था।

दिनांक १०–३–७९ को प्रात: चार वजे उठ गये। भोजन आदि से आठ वजे ही निपट गये किन्तु उस दिन श्रीदाता ने स्नान ही देर से किया अत: वहाँ से निकलते निकलते ग्यारह वज गये। मैनेजर को पुरस्कार तो पहले ही दे दिया गया था। चलते वक्त श्रीदाता ने उसे प्रसाद के रूप में एक नारियल दिया। नारियल का प्रसाद भाग्यशालियों को ही मिलता है।

वहाँ से चल कर नरसी महता के चोरे पर पहुँचे। उस समय वहाँ की मरम्मत चल रही थी। वहाँ भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन कर महता जी के जीवन की झाँकियों के चित्र देखे। उधर पुलिस ने ड्राईवर से पच्चीस रुपये रिश्वत के ले लिए। जूनागढ़ से सोमनाथ की ओर चले। सड़क के दोनों ओर की भूमि उपजाऊ लगी। वड़े वड़े खेतों के खण्ड थे। कहते हैं कि गुजरात की भूमि सोना उगलती है सो ठीक ही है।

वेरावल पार करते ही मछलियों की दुर्गन्ध आने लगी। वस की सभी खिड़कियों को वन्द कर देना पड़ा। कुछ देर वाद सोमनाथ पहुँचे। कई लोगों ने समुद्र को पहली वार देखा था। वे समुद्र को देखकर इतने प्रसन्न हुए कि कई तो उसके पानी से खेलने ही लग गये। सोमनाथ के एवं अहल्यावाई द्वारा निर्मित मन्दिर में मूल सोमनाथ के लिंग के दर्शन कर सभी आनन्दित हुए। वहाँ से कृष्ण भगवान के निर्वाण स्थान पर गये। उस दिन मछलियों की इतनी दुर्गन्ध थी कि कहीं अधिक ठहर ही नहीं सके।

द्वारिका के मार्ग में उस ग्राम में आये जहाँ से भगवान श्रीकृष्ण रुक्मणी जी को हर कर लाये थे। उस गाँव का नाम अव माधवपुर है। वहाँ गोविन्द माधव का सुन्दर मन्दिर है। वहां से सुदामापुरी की ओर वढ़े। पास ही मुख्य मार्ग से कुछ हट कर मूल द्वारिका है। आगे विस्तृत समुद्र का किनारा आया। सभी की इच्छा हुई कि

वही ठहर कर अस्त होते हुए सूर्य को देखा जाय लेकिन श्रीदाता ने इस पर ध्यान नही दिया । जब सूर्य अस्ताचल की ओर बढने लगा तब बस समुद्र के किनारे पहुँच गई । बस रोक दी गई । नवयुवक बस पर चढ गये व अन्य लोग नीचे ही खडे रहे । बडा ही सुन्दर दृश्य था । अस्त होते हुए सूर्य की किरणें समुद्र की लहरो पर पड रही थी जो अनेक रगो में प्रतिबिम्बित हो रही थी । समुद्र की सतह पूरी स्वर्णिम थी । वहाँ के दृश्य को देख कर आनन्द से आविर्भूत हो गये व श्रीदाता की जय बोलने लगे । सब ही अपने आप में भूले हुए थे । जब सूर्यास्त हो गया व समुद्र सामान्य हुआ तब हम लोग भी आश्वस्त हुए और बस चल पडी । साढे सात बजे सुदामापुरी अर्थात् पोरबन्दर पहुँचे । पोरबन्दर में गाँधी जी का आधुनिक मन्दिर है । एक चौराहे पर जल का फुँहारा चल रहा था जो आकर्षक था । बाजार मे होते हुए आगे बढ गये । भजन-कीर्तन करते हुए लगभग दस बजे द्वारिका पहुँचे । श्रीदाता ने कबीर द्वारे चलने को कहा किन्तु चुँगी नाके पर एक सज्जन मिल गये जो हमारी बस को बागड धर्मशाला में ले गये । वहाँ एक कमरा व बरामदा मिल गया अत वही ठहर गये ।

भोजन साथ था । सब्जी बना ली गई । पीने के पानी की कमी थी । कन्याकुमारी की तरह द्वारिका मे भी पीने के पानी की कठिनाई ही है । नल बन्द हो जाने से जो कुछ पानी हमारे पास था उसीसे काम चलाना पडा । हमारी बस में पानी की एक टकी फिट थी । हम लोग सदैव उसे भरा रखते थे जिसकी वजह से तनिक भी कठिनाई जैसी बात नही हुई । दो बजे के लगभग सोये व चार बजे उठ गये । प्रात ही वहाँ से रवाना हो गये ।

सात बजे द्वारिकाधीश के मन्दिर में पहुँचे । आरती हो रही थी अत सभी ने मस्ती से दर्शन किये । वहाँ से ओखा पहुँचे । स्टीमर तैयार था, शीघ्र ही बेंट द्वारिका पहुँच गये । वहाँ भी जिस समय पहुँचे आरती का समय था । दर्शन भव्य थे । जिसके जैसे भाव थे, वैसे ही दर्शन हुए । मातेश्वरी जी को सतगुरु के रूप में, श्रीमती हल्वे को दाता के रूप में और कइयो को प्रकाश के रूप में

दर्शन हुए। सभी का हृदय उस समय आनन्द से भरा था। नेत्रों से प्रेमाश्रु टपक रहे थे। बड़ी देर तक एक ही रूप के दर्शन होते रहे। आरती के बाद ही वहाँ से हट कर एकएक मूर्ति के दर्शन हो सके। भगवान कृष्ण के वारवार दर्शन किये गये। मन्दिर की दीवारों पर सुन्दर चित्र लगे थे जिनमें कृष्ण के भिन्न भिन्न रूपों के दर्शन थे। वहां से चल कर साक्षी स्तम्भ, परिक्रमा, साक्षी गोपाल आदि के दर्शन किये। सब दर्शन कर लेने और पण्डों को दान-दक्षिणा देकर वहाँ से चल कर समुद्र के किनारे आये। स्नान वहीं हुए। स्टीमर के आ जाने पर किनारे पर आ गए। किनारे पर एक होटल था। होटल वाले ने ज्यों ही श्रीदाता को देखा हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। उसने श्रीदाता को होटल में पधारने की अर्ज की। उसका कहना था, "स्वामी जी एक माह पूर्व यहाँ पधारे थे। मैंने उस समय दर्शन किये थे तथा इनके उपदेशों को सुना। ये महापुरुष हैं। उसी दिन से मेरा होटल अच्छा चल रहा है। अब यदि ये मेरे होटल में पधार जाँय तो मेरा होटल पवित्र हो जाय। उनका आशीर्वाद मिल जाय तो अच्छा है।" कुछ समय के दर्शन मात्र से ही उस पण्डा के कैसे भाव हो गये। उसने चाय नाश्ते की बड़ी मनुहार की। श्रीदाता ने हाथ जोड़ कर माफी माँगी।

मछलियों की दुर्गन्ध दुःख दे रही थी। वहाँ से द्वारिका की ओर बढ़े। दुर्गन्ध सता रही थी अतः सभी चुप थे। सड़क पर ही रुक्मणी जी का मन्दिर आया। कथा हो रही थी। वहाँ से दर्शन कर आगे बढ़े। द्वारिका में ही गलत सड़क पकड़ ली। चार पाँच किलो मीटर आगे निकलने पर ड्राइवर को अपनी भूल मालूम हुई। वह वापिस लौटा। कबीर द्वारे के पास ही जामनगर की सड़क जाती है। कबीर द्वारा के पास बस पहुँची कि श्रीदाता ने बस रुकवा दी। कबीर आश्रम में कुछ भेंट करने का आदेश हुआ। मैं और शंकरलाल जी दौड़ कर आश्रम में गये। महन्त जी कार्यालय में ही थे। उन्होंने हमें पहिचान लिया। जब उन्हें मालूम हुआ कि हम लोग रात्रि को बांगड़ धर्मशाला में ठहरे तो उन्होंने कबीर आश्रम में न ठहर कर वहाँ ठहरने का उलाहना दिया। जब श्रीदाता का नमस्कार कह कर भेंट दी तो वे गद्गद् हो गये। वे

बोले, "सन्तो को भेंट की जाती है या उनसे ली जाती है। यह आश्रम उनका ही है और हम भी उन्ही के सेवक है।" उन्हे कहा कि यह श्रीदाता की भेंट नही हैं, प्रसाद है तब जाकर उन्होने उसे स्वीकार किया। उन्होने हमारी चाय नाश्ते की बडी मनुहार की तथा कहा कि भविष्य में आया जाया करे तो कबीर द्वारा उनकी सेवा के लिये तैयार है। वहाँ से लौट कर श्रीदाता को महन्त जी और हमारे बीच हुई बातचीत बताई। अन्य लोगो ने भी सुना तो उन्हे कबीर द्वारे न ठहरने का पश्चाताप हुआ। श्रीदाता ने फरमाया, "ऊँची जाति वालो ने सदैव ही नीची जाति वालो को सताया है। नीची जाति में भी बडे बडे महापुरुष हुए है। ये लोग कितने सेवाभावी होते है। कहाँ तो बाँगड धर्मशाला वाले अधिकारियो का व्यवहार और कहाँ कबीर द्वारे के आश्रम के महन्त का व्यवहार। दोनो में आकाश-पाताल का अन्तर है। एक में अहकार भावना और धन का गर्व है, दूसरी ओर विनयशीलता और सेवा के भाव। व्यक्ति जाति से महान नही बनता कर्म से बनता है।"

वहाँ से चल पडे। शीत लहर का प्रभाव समाप्त हो गया था। वातावरण में गर्मी थी। मौसम ही बदल गया। दुर्गन्ध के कारण खिडकियाँ बन्द करनी पडी तो पसीने मे घबरा गये। ज्यो त्यो कर उस क्षेत्र मे बाहर निकले। कुछ आगे जाने पर एक स्थान पर पम्प चल रहा था अत वही ठहर गये। भोजन आदि से निवृत्त होते होते पाँच बज गये। वहाँ से चल कर जामनगर होते हुए आगे बढ गये व बेंट नगर में पहुँचे। वहाँ नदी की पुलिया पर एक ट्रक फँस गया। जिससे रास्ता अवरुद्ध हो गया। एक घण्टे तक प्रतीक्षा करनी पडी। वहाँ से चल कर राजकोट पहुँचे। कही विश्राम का स्थान नही मिला अत आगे चल दिये। लीमडी शीतला माता के मन्दिर में ठहरे किन्तु वहाँ मकोडो की अधिकता थी अत कोई सो नही सका। श्रीदाता तो रात्रिभर बस मे ही बैठे रहे।

प्रात ही वहाँ से चल पडे। प्रात मे ही हँसी मजाक प्रारभ हो गई। माध्यम बने किशनलाल जी अग्रवाल और महेश दवे। श्रीदाता विनोदप्रिय तो है ही अत खूब विनोद होता रहा। कब अहमदाबाद आया इसकी खबर भी नही रही। अहमदाबाद में

सब्जी लेकर वापिस बस में बैठ गये। आगे सड़क के किनारे एक स्थान पर पम्प चल रहा था। वहीं ठहर कर स्नान आदि किया व वहीं भोजन की व्यवस्था की। साँवला जी पहुँचते पहुँचते आठ बज गये। चेक पोस्ट वाले ने इस वार भी पाँच सौ रुपये माँगे। इस वार माँगने का तरीका भिन्न था। उन्होंने कहा, "आपने अनेक तीर्थ किये होंगे। पण्डों को दक्षिणा भी दी होगी। हमे भी इनाम मिलना चाहिये। बस पाँच सौ के नोट निकाल दो।" बड़ी कठिनाई से तीस रुपये देकर पिण्ड छुडाया।

वहाँ से भजन बोलना प्रारंभ कर दिया। बात की बात में ऋषभ-देव आ गया। कुछ देर वहीं ठहर कर उदयपुर के लिये चल दिये। सीधे वकील साहब माँगीलाल जी के घर पहुँचे। वकील साहब सिनेमा में थे जिन्हें फोन कर के बुलाया गया। रात्रि विश्राम वहीं किया गया।

रात्रि को श्रीदाता ने हमें अपने पास कमरे में बुलाया और यात्रा में हुई उपलब्धि के बारे में पूछा। मातेश्वरी जी ने बताया कि गिरनार और बेंट द्वारिका में अपूर्व आनन्द की अनुभूति हुई थी। उन्हें वहाँ दाता के दिव्य स्वरूप के दर्शन हुए। बहन सज्जन ने प्रकाश का होना बताया। सभी ने अपना अपना अनुभव बताते हुए कहा कि, भगवान की कृपा से ही यह सब कुछ हो सका है। उनकी महर से ही इतने आनन्द की अनुभूति हो पाई है। श्रीदाता ने इसपर फरमाया, "उसकी कृपा से जीवन ही सुधर गया। उसकी कृपा से ही बड़ी बाई और श्रीमती हल्वे इतनी चढ़ाई चढ़ सके हैं। उसकी कृपा से ही द्वारिका की यात्रा अद्वितीय रही। दाता तो सर्वत्र है किन्तु उसकी कृपा से ही स्थान विशेष का महत्व बढ़ जाता है।" कुछ देर ठहर कर फरमाया, "ब्राह्मणों के पाखण्ड और महाजनों के स्वार्थ ने ही देश का और धर्म का नाश किया है। ब्राह्मण स्वयं तो अपने कर्तव्यों का पालन करते नहीं किन्तु दूसरों को मजबूर करते हैं। ग्रह, शकुन, जन्म पत्रिका आदि दूसरों के लिये हैं। अधिकतर इतने स्वार्थी और भ्रष्ट हो गये हैं कि बड़े से बड़ा कुकर्म करने में नहीं हिचकिचाते हैं। ऊपर से स्वच्छ और

अन्दर मे मैंने है। आज प्रत्येक तीर्थ को इन पण्डो ने ही दूषित कर रखा है। इन लोगो की स्वार्थपरता और सकीर्णता से ही देश का ह्रास हुआ है। सेवा करने वालो से घृणा करना पाप है। उनके प्रति भेदभाव रखना मानवता के प्रति भेदभाव रखना है।" इस प्रकार पण्डो और ब्राह्मणो के पाखण्ड, महाजनो के स्वार्थ, जातिवाद, छुआछूत आदि पर श्रीदाता बहुत कुछ फरमाते रहे। अन्त में कहा, "प्रेम बडी चीज है। वह दर्शाने की वस्तु नही वरन् अनुभव करने की वस्तु है। आपको आनन्द आता है, ऐसा क्यो होता है? कोई कहता है कि आनन्द आया और कोई कहता है कि आनन्द नही आया, इसका क्या कारण है? आपको मेरे दाता से मिलने की इच्छा है, उसके प्रति प्रेम है तो उसकी प्रत्येक वस्तु अच्छी लगेगी। उसका नाम, उसका गाना, उसका भजन, उसका कीर्तन, उसका चित्र दर्शन, उसका ध्यान आपको अच्छा लगने लगेगा और इन सब मे आपको आनन्द आने लगेगा। सच्चे प्रेम में ही वह प्रकट होता है। वह तो सर्वत्र है किन्तु बन्दे के भाव ही उसे कही कम व कही ज्यादा बना देते है।" कैलाश की यात्रा का वर्णन करते हुए फरमाया कि प्रेम से पुकारने पर उसने किस प्रकार अन्धकार को प्रकाश में बदल दिया। दाता तो बडा ही दयालु है। आप आर्त होकर प्रेम से उसे पुकार कर तो देखो। इस प्रकार बडी देर तक बडे प्रेम से समझाते रहे। श्रीदाता की इस अनुभूत कृपा से हम निहाल हो गये। हम तो स्वार्थी एव कुकर्मी जीव हैं। श्रीदाता की इस प्रकार कृपा नही होती, उनका कृपाहस्त रक्षक बन कर हमारे सिर पर नही होता तो हमारी क्या दशा होती। शायद कुत्ते भी खीर नहीं खाते! वाह् रे दाता तेरी कृपा की बलिहारी है। तेरी जय हो।

दिनाक १३-३-७९ को होली थी अत प्रात ही प्रस्थान की तैयारी हो गई। श्रीमती राणावत साहिब, उनके बहन बहनोई आदि अनेक लोग दर्शनार्थ उपस्थित थे। कई लोग पुकार करना चाहते थे। श्रीदाता ने सभी को दर्शन दिये व सबकी सुनी। कुछ भागे हुए बच्चे श्रीदाता की दया से वापिस लौट कर आये थे वे भी वहा

उनके संरक्षकों के साथ उपस्थित थे । श्रीदाता ने उन्हें भी पुचकारा । सभी को परम स्नेह के प्रसाद का वितरण करते हुए श्रीदाता वस में जा विराजे और वस चल दी । भजन वोलना शुरू कर दिया । प्रभु कृपा से मस्ती आ गई । कब एकलिंग जी, नाथ द्वारा, कांकरोली आई, कुछ पता ही नहीं रहा । दाता-निवास जाकर वस ठहरी तव जाकर मालूम हुआ कि मंजिल आ गई है । श्रीदाता की जय वोल कर वस से उतर पड़े । उतरते ही श्रीदाता और मातेश्वरी जी के चरणों में जा पड़े । यह उनकी महती कृपा ही थी कि ऐसी आनन्ददायिनी यात्रा हो सकी ।

उस दिन चन्द्रग्रहण था अतः भोजन आदि से निवृत्त होकर श्रीदाता व हम लोग वाहर रेत पर आ वैठे । पास ही 'मूँडा' नाम की एक लंगड़ी गाय थी । श्रीदाता ने उसे आवाज दी । वह तत्काल श्रीदाता के पास आ गई । श्रीदाता ने फरमाया, "देखो रे ! आप मे व पशुओं में कितना अन्तर है । आप लोग तो मेरे दाता के आदेश पालन मे मीन मेख निकालते हो किन्तु इन पशुओं को देखो । वे दाता के तनिक से संकेत पर 'मर पूरा' देते हैं । जिसकी थोड़ी सी भी लगन दाता की तरफ हो जाती है तो दाता का भी झुकाव उधर हो जाता है चाहे वह पशु ही क्यों न हो ।

इस प्रकार की वातचीत हो ही रही थी कि मुख्य न्यायाधीश श्री राणावत जी अपनी पत्नी सहित कार लेकर आ गये । उनके साथ श्री लक्ष्मीलाल जी जोशी थे । वे प्रणाम कर वहीं वैठ गये । कुशल क्षेम पूछने के वाद श्री दाता ने फरमाया, "लगन वड़ी चीज है । आज तनिक इच्छा हुई थी जोशी जी से मिलने की । इच्छा होते ही वे आ गये । "जे इच्छा होत मन माहीं, राम कृपा ते दुर्लभ कछु नाही" । जव छोटी छोटी इच्छाएँ भी दाता की कृपा से पूरी हो जाती हैं तो फिर दाता से मिलने की इच्छा क्यों न पूरी होगी । अवश्य पूरी होगी । चाहिये लगन । भाव शुद्ध और ऊँचे होने पर कर्म नीचे रह जाते हैं । दो वातों मे से कोई एक वात कर लो । या तो भाव ऊँचे कर लो या उससे सच्चा प्रेम कर लो । कर्म नीच है किन्तु शरीर और शरीर के साथ सव कुछ अर्पण कर देने पर

कर्म ठहरते ही नही । वे निर्वीज हो जाते हैं । अत कर्म बुरा नही, भाव बुरा है । वैश्या की तीन गति है । एक दर्जा है पेट के लिए काम करने वाली का । दूसरा दर्जा है उसके चाहने वालो के प्रति काम का और तीसरा दर्जा है वासना के लिए काम करने वाली का । कर्म एक है किन्तु भावो के साथ भेद है । किसी को खून की आवश्यकता है, प्राण बचाने के लिए खून का देना न्याय है । कोई खून करने को खून मांगता है तो खून देना अन्याय है । घृत और दूध क्या है ? पशुओ का शोषण ही तो है किन्तु भाव है जिओ और जीने दो । भाव ही कर्म को अच्छा और बुरा बनाता है ।" इस प्रकार बडी देर तक सत्सग चलता रहा । कुछ देर बाद उन्होने जाने की आज्ञा मांगी । पचामृत का प्रसाद देकर श्रीदाता ने उन्हे विदा किया ।

रात्रि को श्रीदाता बरामदे में विराज रहे थे । उस समय फरमाया, "कागजी कार्यवाही मे काम नही चलता । वह तो कागजो तक ही सीमित रह जाती है । बातूनी प्रेम से काम नहीं चलता वहाँ तो सच्चा प्रेम चाहिये ।" रात्रि को कीर्तन और भजन हुए । कैलाश बहन ने खूब भजन बोले । बडा ही आनन्द रहा ।

दिनाक १४-३-७९ को श्रीदाता ने सभी को रोक रखा । धुलेण्डी का दिन था । भोजनोपरान्त सभी ने श्रीदाता और श्री मातेश्वरी जी के चरणो में गुलाल डाली । फिर सभी ने मिल कर होली का भजन गाया । सभी गद्‌गद् हो गये । उस समय सभी की आँखो में आँसू थे । श्रीदाता ने सभी पर गुलाल डाली । होली का अपूर्व दृश्य था । जिसपर श्रीदाता की कृपा हो उसे ही ऐसा अपूर्व अवसर मिलता है । उस दिन ड्राईवर व खलासी भी अछूते नहीं रहे । श्रीदाता ने उन्हे भी भीतर बुलाया व श्री हस्तकमल से उन पर गुलाल डाल कर होली खिलाई ।

अपराह्न में सभी करेडा रवाना हुए । श्रीदाता भी साथ ही पधारे । करेडा पहुँचते ही सभी प्रेमीजन एव भक्त तत्काल उपस्थित हो गये । कु हरदयालसिंह जी का पोस्टिंग करेडा ही था । उनके निवास स्थान पर विराजना हुआ । श्रीदाता ने करेडा वाले

प्रेमियों को भी गुलाल मे होली खिलाई । लोग आपस में भी गुलाल डालने लगे । बड़ा अनोखा दृश्य उपस्थित हो गया । सैकड़ों दर्शक भी इस अनोखे दृश्य को देखने आ गये । बड़ा ही आनन्द रहा ।

वह बस तो भीलवाड़ा चली गई । श्रीदाता दूसरी बस में नान्दशा पहुँचे । बात की बात में सर्वत्र सूचना पहुँच गई व आसपास के लोग दर्शनार्थ उपस्थित हो गये । सभी श्रीदाता का दर्शन कर कृतार्थ हुए । दिनांक १६-३-७९ को बावड़ी पधारना हुआ । आनन्दपुरा होते हुए वापिस नान्दशा पधार गये । दिनांक १८-३-७९ को शाम तक नान्दशा ही विराजना हुआ । फिर करेड़ा पधारना हो गया । अगले दिन करेड़ा ही विराजना हुआ । खूब सत्संग हुआ । दिनांक १९-३-७९ को पुनः नान्दशा पधारना हुआ । वहाँ हरदेव जी की पत्नी सख्त बीमार हो गई थी । पुकार हुई और वह ठीक हुई । फिर जीप द्वारा दाता-निवास पधारना हो गया । इस तरह कृपा कर सभी भक्तों को घर जाकर आनन्दित किया । इस प्रकार श्रीदाता की महती कृपा से यह यात्रा पूरी हुई । जय हो भगवान और उसके प्यारे भक्तों की ।

○ ○ ○

श्री श्रद्धानाथ जी के आश्रम पर

अप्रैल सन् १९७९ को रामनवमी का सत्संग माडल तालाब की पाल पर था वहाँ एकाएक छोटे जमाई जी श्री गणपतसिंह जी के पेट में दर्द हो गया। डाक्टर शर्मा के परामर्श पर उन्हे सन्तोषबा अस्पताल मे जयपुर भिजवा दिया गया जहाँ अपेन्डीसाईटिक की शल्य चिकित्सा हुई। श्रीदाता का उन्हे देखने दिनाक १४-४-७९ को जयपुर पधारना हुआ। वहाँ माजी साहिबा श्री राणावत जी के मन्दिर में पधारना हुआ। श्री गणपतसिंह जी को देखने अगले दिन अस्पताल में जाना हुआ। उनके स्वास्थ्य मे काफी सुधार था। फिर भी दो तीन दिन वही विराजना हुआ। इसी बीच श्री कल्याण प्रसाद जी की प्रार्थना पर श्री श्रद्धानाथ जी के आश्रम पर लक्ष्मणगढ पधारना हुआ। लक्ष्मणगढ जयपुर मे १२८ कि मी के लगभग उत्तर-पूर्व की ओर बीकानेर के मार्ग पर स्थित है जो सीकर जिले के प्रमुख नगरो में से एक है। इसके पास ही फतहपुर है जहा प्रसिद्ध सन्त श्री अमृतनाथ जी की समाधि है। श्री श्रद्धानाथ जी अमृतनाथ जी के पोता शिष्यो में से एक है। सन् १९७१ ई के आसपास इन्होने रेल्वे स्टेशन के पास ही कुछ भूमि लेकर एक आश्रम का निर्माण कर स्थापना की। तभी से वे वही रह कर साधना करने लगे। उस क्षेत्र में इनकी अच्छी मान्यता है।

श्रीदाता का पधारना बस द्वारा हुआ था। जयपुर मे डाक्टर शर्मा, वैद्य जी, वृजविहारी, कुजविहारी जी, कल्याणनारायण जी आदि कई भक्तलोग श्रीदाता के साथ थे। कीर्तन करते हुए लगभग चार बजे बस लक्ष्मणगढ पहुँची। रेत की अधिकता के कारण बस आश्रम के द्वार तक नही जा सकी। पैदल चल कर आश्रम तक जाना पडा। आश्रम के अगले भाग में एक सुन्दर वाटिका है। द्वार पर दोनो ओर युकिलपटम् के सुन्दर पेड लगे है। इनके पीछे नीम आदि के पेड है। प्रवेश द्वार के दूसरी ओर रास्ते के सामने 'ओनिया भवन' नामक भवन है जिसमें कुछ कमरे हैं। आश्रम में

चाय, तम्वाकू, वीड़ी, सिगरेट आदि पीने वालों के लिए विशिष्ट स्थान है। आश्रम में इन सव का प्रयोग निषिद्ध है। चारदीवारी के पास पत्थर के चौके रखे है। द्वार के एक ओर चरण पादुकाएँ रखने का स्थान है। पास ही हस्त प्रक्षालन का स्थान है। मार्ग के दोनों ओर दूव लगी हुई है। प्रवेश द्वार के ठीक सामने प्रार्थना भवन है जिसके ऊपर '३ॐ' और 'शिव गोरख' लिखा हुआ है। वायीं ओर भी भवन वने है। प्रथम प्रकोष्ठ में श्री अमृतनाथ जी का चित्र है। इस चित्र के नीचे श्रद्धानाथ जी के गुरुदेव, गुरुभाई और कुछ अन्य लोगों के चित्र है। कमरे के द्वार पर एक पात्र मे भभूत रखी रहती है। इस कमरे के वरावर ही नीचे भूतल पर जाने को जीना है और एक कमरा है जिसमें अढ़ाई फीट की ऊँचाई पर परम श्रद्धेय श्री गोरक्षनाथ जी महाराज का अत्यन्त सुन्दर और मनोहारी चित्र लगा हुआ है। इस कमरे के ऊपर ही श्रद्धानाथ जी के विराजने का कमरा है।

श्रीदाता के वहाँ पधारने की पूर्व सूचना तो थी नही। महाराज कमरे में ही विराज रहे थे। कमरे में दरी विछी हुई थी। श्रीदाता को अचानक पधारे हुए देख कर महाराज पहिचान भी नहीं सके क्योंकि पूर्व में दोनों का एक दूसरे का साक्षात्कार तो कभी नहीं हुआ था। दरी विछी होने से श्रीदाता को कमरे में जाने में संकोच हुआ। जव दरी हटा दी गई तव वे अन्दर पधारे। अन्य लोग भी श्रीदाता के साथ ही कमरे में जाने लगे। इस पर महाराज ने उन्हें संकेत से रोक कर वाहर दूव पर वैठने को कहा। मातेश्वरी जी ने कमरे में जाकर उन्हें प्रणाम किया।

जव महाराज को श्रीदाता का परिचय मालूम हुआ तो वे अत्यधिक प्रसन्न हुए और आसन से एकदम उठ गये। उन्होंने दाता और मातेश्वरी जी को नमस्कार किया। फिर वे वाहर आ गये। वे तो अपने आसन पर आ विराजे। श्रीदाता और मातेश्वरी जी पास ही वैठ गये। कुशल क्षेम के वाद महाराज ने पूछा, "कोई साधन दिखाई नहीं दे रहा है। आप लोगों का काहे से पधारना हुआ।" डाक्टर शर्मा ने वताया कि श्रीदाता वस से पधारे हैं।

रेत के कारण बस आश्रम तक नही आ मकी। यह मुन कर वे दुखी से हो गये और बोले, "गाडी यहाँ तक आती है। यदि ड्राईवर नही लाता है तो बहुत सी गाडियाँ मेवा में आ जावेगी। दाता को आश्रम तक पैदल आना पड़ा इसका खेद है।" उन्होने तत्काल अपने आदमी भेज कर बस ड्राईवर को बुलाया और उसे कह सुन कर बस को आश्रम के द्वार पर मगवा ली। उन्होने फरमाया, "हमारे तो कानो में कुण्डल और शरीर पर भगवा है किन्तु यदि आप लोग ठीक मे देखो तो ये कुण्डल और भगवा दाता ने भी धारण कर रखा है। हमारे बाहर है और इनके अन्दर। हम साधु के वेश में है और ये गृहस्थ के वेश में।" इसपर श्रीदाता ने फरमाया "यह सब नाथ जी की दया है। नाथ जी की महिमा तो अपरपार है। वे तो इतने समर्थ है कि जिसपर महर हो जाती है उसे ब्रह्मा, विष्णु आदि को प्रसाद रूप में दे देते है।

> सतगुरु सिन्धु का वारपारा नही,
>
> अगम है नीर नही भेद पावा।
>
> ब्रह्मा विष्णु से लाखो मीन वहाँ,
>
> वार ही वार गोता लगावा॥"

फिर बोले, "साका राम तो नाथ के दरबार का पामर कूकर है जो जानता कुछ भी नही है।" महाराज बोले, "गोरख नाथ कहो, दाता नाथ कहो, गिरधर नाथ कहो। सभी नाथ है, कोई फर्क नहीं है।" इस प्रकार एक दूसरे को महान् कहने सम्बन्धी बाते होती रही। महाराज ने सभी को शीतल जलपान कराया। दाता के लिए निम्बू की सिकजी प्रस्तुत की गई। वहाँ के लोगो को श्रीदाता का परिचय मालूम नही था। सभी जिज्ञासा वश एक दूसरे को देख रहे थे। हिम्मत कर महाराज के एक शिष्य ने पूछ ही लिया, "महाराज का बिराजना कहाँ है?" डाक्टर शर्मा ने कहा, "महाराज नाथद्वारे के पास रहते है।" इसपर उसने पुन कहा, "क्या वही नाथ द्वारा है जहाँ के महन्त जी ने अभी अभी अपने पुत्र के विवाह में दो करोड रुपये खर्च किये है।" इसपर श्रद्धानाथ जी बोले, "लोग तो नाथद्वारा के नाम से ही समझते है कि वहाँ भी

नाथ जी का ही स्थान है किन्तु ऐसा नहीं है। पहले निहंग गद्दी रही होगी फिर वहाँ के महन्त विचार करने लगे होंगे।" इसका जवाव किसी ने कुछ नहीं दिया।

इसके पश्चात् महाराज स्वयं श्रीदाता को प्रार्थना भवन में ले गये। वहाँ से चल कर फिर पूरा आश्रम वताया। आश्रम के पिछले भाग में एक कुआँ है जिस पर लिखा है 'जल व थल'। एक ओर मन्दिर है जिसमें राम और हनुमान जी की प्रतिमाएँ हैं। पास ही में फूस की वनी एक गोल कुटिया है। जिसमे सामने श्री गोरक्षनाथ जी का चित्र संजोया हुआ है। उसमें 'ॐ' का चित्र है और हनुमान जी का भी चित्र है। यह कुटिया महाराज का साधना कक्ष है। वाँयी ओर एक तखत लगा है जिस पर वैठ कर महाराज साधना करते हैं। कुटिया के चारों ओर शहतूत के वृक्ष लगे हैं। कुटिया के सामने राम देवरा वना हुआ है। आश्रम देख कर वापिस पूर्व के स्थान पर आ गये। वहाँ नारंगी का प्रसाद वितरित किया गया। दाता को महाराज ने अपने हाथों से प्रसाद नजर किया। नजर करते वक्त वोले, "यह ब्रह्म और माया को सप्रेम अर्पित है।" दाता को तो वहीं भोग लगाने की कह कर अन्यों को दूसरा स्थान वता दिया। हस्त प्रक्षालन के वाद श्रीदाता ने चलने को कहा। इस पर महाराज ने कहा, "आना तो आपके हाथ में था किन्तु जाने की तो हम कहेंगे तव ही होगा। आप यहीं विराजें। जिन्हें जल्दी जाना हो उन्हें भिजवा दें। आप तो दो चार दिन यहीं विराजे।"

"फतहपुर में हमारा मुख्य स्थान है। वहाँ श्री अमृतनाथ जी की समाधि है। हम उनके पोता शिष्य हैं।" सीताराम जी ने चलने को कहा जिसपर महाराज जी ने फरमाया, "यदि आपको इतनी जल्दी जाना था तो फिर आये ही क्यों? देर से पधारे हैं तो अव जाने में देर तो होगी ही।" विशेष आग्रह करने पर वे चुप हो गये। उन्होंने सभी को वतासे का प्रसाद दिया। सभी लोगों ने महाराज के चरण छुए जिस पर वे वोले, "ये लोग करना तो कुछ

चाहते नही, यो ही लूटना चाहते है।" इस पर श्रीदाता ने कहा, "आप लोग ऐसा ही करे जैसा महाराज कहे।" इस पर शेष रहे लोगो ने उन्हे दूर से ही प्रणाम किया। वहाँ से विदा लेकर सभी बस के पास आ गये। महाराज ने बडे प्रेम से श्रीदाता को विदा किया। बस वहाँ से रवाना हुई कि सब ही जोर जोर से कीर्तन बोलने लगे 'भज गोविन्द, बालमुकुन्द, परमानन्दम् हरे हरे' सभी ने भाव विभोर होकर भजन का आनन्द लिया। डाक्टर साहब तो इतने भाव-विभोर हो गये कि उनके नेत्रो से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। रीगस तक कीर्तन चलता रहा फिर बन्द कर दिया गया। जयपुर जाने पर वहाँ रात्रिभर सत्सग होता रहा।

श्री श्रद्धानाथ जी सन् १९७२ ई से ही दाता के दर्शनो की इच्छा कर रहे थे। श्री कल्याणप्रसाद जी मे उन्होंने दाता के बारे में बहुत कुछ सुना था। तभी मे उनकी इच्छा बलवती होती गई। दाता के पधारने मे वे अत्यधिक प्रसन्न हुए। यद्यपि श्रीदाता के सान्निध्य में रहने का अवसर उन्हे अधिक नही मिला फिर भी दोनो ही महापुरुषो का मिलन अनोखा ही रहा। सन्त प्रत्यक्ष में तो कुछ बोलते नही। उनका आदान प्रदान तो अप्रत्यक्ष में ही होता है। जो भाग्यशाली होते है या जिन पर प्रभु कृपा होती है वे ही सकेत को समझें तो समझें।

सन् १९८० के अगस्त के मास में महाराज का पधारना जयपुर हुआ था उस समय श्रीदाता कुछ अस्वस्थ थे। इलाज चल रहा था। वे सेठी कोलोनी में प्रभुनारायण के बगले पर विराज रहे थे। श्री श्रद्धानाथ जी बगले पर पधार कर श्रीदाता से मिले। श्रीदाता के दर्शन कर वे अत्यधिक प्रसन्न हुए और हँसते हुए ही बोले, "हम तो आपको साक्षात् भगवान ही मानते है और आपने यह क्या खेल रचा रखा है। आप हमें व अन्य लोगो को क्यो मोह में फँसाने का काम करते है।" कितने मार्मिक शब्द है उनके।

इसके बाद से उनका श्रीदाता से प्रेम बढता ही गया। दो तीन माह पूर्व १९ तारीख को श्रीदाता का उनके आश्रम पर

पधारना हुआ। यह कार्यक्रम भी अचानक ही बना। एकाएक श्रीदाता को उनके दर्शनों की इच्छा हुई और वे एक कार में लक्ष्मणगढ़ पधार गये। महाराज कुछ अस्वस्थ थे। बड़े प्रेम से दोनों का मिलन हुआ। उसी दिन श्रीदाता वापिस पधार गये। बाईस तारीख को उन्होंने अपने नश्वर शरीर को त्याग दिया। जिसने भी सुना वह दु:खी हुए बिना न रह सका। अचानक श्रीदाता लक्ष्मणगढ़ क्यों पधारे, यह रहस्य बाद में मालूम हुआ।

⊙ ⊙ ⊙

भक्तों के वश श्रीदाता

भक्तों का एकमात्र आधार भगवान ही है। वही उसके सभी कार्यों का कर्ता-धर्ता है। उसके बिना उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। वही पालक है, पोषक है और विश्वाधार है। माता, पिता, भाई, बहिन, सखा आदि जो कुछ कहो भक्त के लिए तो वही है। उसको तो भगवान और उसकी भक्ति ही प्यारी है। वे तो चरणदास जी के इस कथन में विश्वास करते हैं —

हमारे रामभक्ति धन भारी।
राज न डांडे चोर न चोरै लूटि सकै नहिं धारी॥
प्रभु पैसे अरु नाम रुपैये मुहर मोहब्बत हरि की।
हीरा ग्यान जुक्ति के मोती कहा कमी है जर की॥
सोना सील भंडार भरे हैं रूपा रूप अपारा।
ऐसी दौलत सत्गुरु दीन्ही जा का सकल पसारा॥
बांटो बहुत घटै नहिं कबहूँ दिन दिन ड्योढी ड्योवढी।
चोखा माल द्रव्य अति नीका बट्टा लगे न कौडी।
साह गुरु सुकदेव विराजै चरणदास बन जोटा।
मिलिमिलि रंक भूप होइ बैठे कबहूँ न आवे टोटा॥

रामभक्ति ही उनका सबसे बड़ा धन है। उनके लिये तो वही वह है। उनके रोम रोम में भगवान ही बसा रहता है।

विराजे रोम रोम में राम, नहिं कछु दूजो धाम।

ऐसे भक्त के लिए भगवान भी पीछे नहीं रहते हैं। वे उस भक्त के दास ही हो जाते हैं। जैसे भक्त नचाता है वैसे ही वह नाचता है। धना जाट के लिए तो वह हाली तक बन गया।

जाट के बन गयो हाली रे।

नरसी महता के लिए उसे सेठ का स्वांग रचना पड़ा। यही हाल श्रीदाता का भी है। श्रीदाता अपने बन्दों की इच्छा पूर्ति के

लिए बड़े से बड़ा कष्ट हँसते हँसते सहन करने को तैयार रहते हैं उनकी आर्त पुकार पर तो शरीर तक का ध्यान नही रखते। आये दिन श्रीदाता का शरीर अस्वस्थ रहता है, कारण यही है कि वे उनके कष्ट अपने पर ले लेते हैं और उन्हें कष्ट मुक्त कर देते है। श्रीदाता का अप्रैल सन् १९७९ में जयपुर, भीलवाड़ा होकर पधारना हुआ। भीलवाड़ा से रवाना होते वक्त श्री राजेन्द्रप्रसाद ने प्रार्थना कर दी कि लौटते वक्त भीलवाड़ा पधारना हो। प्रार्थना इस प्रकार के आर्तनाद से की गई कि श्रीदाता से अस्वीकार करते नहीं बना। दैवयोग से लौटते वक्त यह बात भूल गये और जयपुर से अजमेर होकर सीधे ही दाता-निवास पधार गये। वहाँ जाते जाते श्री राजेन्द्र प्रसाद की प्रार्थना याद हो आयी। श्रीदाता दाता-निवास से भीलवाड़ा पधार गये।

भीलवाड़ा वालों को सूचना मिल चुकी थी कि श्रीदाता सीधे ही दाता-निवास पहुँच गये हैं अतः वे निराश होकर अपने अपने काम में लग गये। अचानक श्रीदाता को पधारे हुए देख कर सभी आश्चर्यचकित तो हुए किन्तु दाता की दयालुता और भक्त-वत्सलता से प्रभावित होकर गद्‌गद् हो गये। प्रसन्नता की लहर दौड़ पड़ी और सभी शिवसदन दौड़ पड़े। प्रणाम् कर सभी श्रीदाता के समक्ष बैठ गये। श्रीदाता ने फरमाया, "लो भाई! तुम लोगों ने बुलाया है तो आ गया हूँ। लम्बी लम्बी पुकारें करते हो। आने की इच्छा तो नहीं थी किन्तु तुम लोगों की लड़ाई से डर लगता है अतः आना ही पड़ता है।" देखो श्रीदाता की महानता। क्या मूल्य है दाता के समक्ष हम जैसे छोटे प्राणियों का। किन्तु वह तो प्रेम का भूखा जो ठहरा। जो वन्दा सत्‌गुरु पर निर्भर हो जाता है उसका सभी भार सत्‌गुरु ही वहन करता है।

श्रीदाता ने सत्‌गुरु का आदेश मानने की ताड़ना देते हुए प्रेमपूर्वक हम सब को खूब समझाया और प्रेम में ही सार है और कुछ सार नहीं है, इस बात पर बल दिया। रात्रिभर हमारे बीच रह कर, हमें आनन्दरूपी प्रसाद देकर प्रातः ही दाता-निवास पधार गये। भीलवाड़ा मे श्रीदाता ने न तो भोजन ही किया और न

पानी ही पिया। अपने बन्दे के आग्रह को स्वय ने पर्याप्त कष्ट सह कर भी पूरा किया। कितने महान हैं श्रीदाता।

सोहनलाल जी मुथार का भानजा उदयपुर में रहता है। उसने कामलीघाट चौराहे पर 'डायमण्ड एस्टोवस' नाम से एक कारखाना लगाया। उसकी इच्छा थी कि श्रीदाता का पधारना कारखाने में हो। उसने जिद्द कर ली कि श्रीदाता के पधारने पर ही वह कारखाने को चलावेगा। दाता का सच्चा प्रेमी था। दाता का स्वास्थ्य भी ठीक नही था व कई लोग दाता-निवास आये हुए थे किन्तु उसके लिए श्रीदाता को वहाँ जाना स्वीकार करना ही पडा। चौबीस घण्टे का कीर्तन था। दिनाक २९-४-७९ को प्रात ही वहाँ पधारना पडा। कीर्तन का समापन श्रीदाता के सान्निध्य में हुआ। उद्घाटन देवगढ़ के राजासाहब से कराया गया किन्तु मशीनें तो तब ही चलायी गई जब श्रीदाता ने स्वय अपने करकमलो द्वारा हेण्डिल घुमाया। कितनी निष्ठा थी उसकी और कितनी महानता थी दाता की। उसने जिद्द कर श्रीदाता को कष्ट दिया किन्तु उस कष्ट से कइयो को सत्सग लाभ हुआ। कईयो ने श्रीदाता का प्रवचन सुन कर अपने भाग्य की सराहना की।

कोशीथल का नेहरिया परिवार श्रीदाता के चरणो में असीम प्रेम रखता है। दक्षिण यात्रा के समय बम्बई में उन्होने श्रीदाता व उनके साथ वाले व्यक्तियो की सच्चे दिल से सेवा की थी। श्री रामदयाल जी अपने भाई रमेश के लिए भीलवाडा में मकान बनाया। उनकी इच्छा थी की श्रीदाता का पधारना हो तब ही गृह प्रवेश हो। श्रीदाता दयालु जो ठहरे। आग्रह को स्वीकार कर ९-५-७९ ई का दिन निश्चित किया गया। इसके पूर्व चौबीस घण्टे का कीर्तन का भी आदेश हुआ। दिनाक ८-५-७९ को प्रात ही श्रीदाता को लिवाने हेतु जीप दाता-निवास पहुँची। वहाँ उस समय कई लोग पुकारो के लिए आये हुए थे। बडी अनोखी एव जटिल पुकारे थी। उदयपुर वाले वकील साहब श्री गुप्ता जी की पुकार उनका लडका लेकर आया था। उसने अपने पिताजी की पुकार न कर स्वय की पुकार कर दी श्री दाता हँस पडे। उन्होने फरमाया,

"मनुष्य की गति देखो। वह कितना स्वार्थी है। पिता तो गौण हो गया। यहाँ तो स्वयं की दाढ़ी पहले बुझाई जा रही है। यहाँ स्वार्थ प्रवृत्ति काम नहीं करती है। यहाँ तो नीयत साफ हो तो काम बन जाता है।"

वहाँ के लोगों को निपटाते निपटाते चार बज गये। वहाँ से चल कर आमटे, कोशीथल, नान्दशा होते हुए कोशीथल पहुँचे। श्री शंकरलाल नाई के लडके का विवाह था उस दिन प्रीतिभोज था। उसे भी खुश करना था। वहाँ पहुँच कर बच्चे की गोद भरी। पास ही कोठारी जी का मकान था। श्री ख्यालीलाल जी वहीं थे। श्रीदाता ने घर पधार कर उनपर भी कृपा की। वहाँ से भीलवाड़े के लिए रवाना हुए। मटूणियां वालों को पहले ही पता चल गया था कि श्रीदाता शाम को इधर से पधारेंगे अतः पूरा गाँव ही बस स्टैण्ड पर आ गया। श्रीदाता विनोदी तो हैं ही। उन्हें देख कर जीप ड्राईवर को वहाँ न रोकते हुये आगे चल कर रोकने को कह दिया। जीप को आगे बढ़ते देख कर वे दुःखी हुए। कुछ तो पीछे पीछे दौड़े भी। उनकी दशा देखने योग्य हो गई। जब जीप ठहरी तब उनके जीव में जीव आया। वे दौड़ कर जीप के पास आये व श्रीदाता के चरणों में लोट गये। दही की मटकी श्रीदाता के चरणों में रख दी। शक्कर मिला कर सभी को प्रसाद बाँटा गया। उनका साँवरिया तो माखन-मिश्री का खाने वाला जो ठहरा। उस दिन दाता को वहीं ठहराने के लिए सभी पीछे पड़ गये। बड़ी कठिनाई से श्रीदाता उनसे विदा ले पाये। उनका निःस्वार्थ प्रेम देखने योग्य था। लगभग आधा घण्टा वहीं ठहर जाना पड़ा। रात्रि को आठ बजे के बाद भीलवाड़ा पहुँचना हुआ।

अगले दिन कई लोग दर्शनार्थ शिवसदन आ गये। कई अधिकारी भी दर्शनार्थ उपस्थित हुए। बड़ा अच्छा सत्संग हुआ। कई प्रसंग चले। भाव था कि कोई वस्तु अच्छी-बुरी नहीं है। भाव ही अच्छे व बुरे होते हैं। कर्म तो करना पड़ता है लेकिन उसका काम समझ कर करने पर कर्म-बन्धन नहीं होता। अनेक लोग श्रीदाता का प्रवचन सुन कर कृतार्थ हुए।

दिन को नेहरिया के मकान पर पधारना हुआ। कीर्तन की समाप्ति पर कमरे में विराजना हुआ। वहाँ नेहरिया परिवार को अपने पास बिठा कर बडे प्यार से उनसे बातचीत करने लगे। कुछ देर बात कर उन्हे पूरी सान्त्वना देकर शिवसदन पधार गये। करेडा वाले भक्त लोग भी वही थे। बडे प्रेमी लोग है। सब ही ने बडे प्रेम से श्रीदाता को वैशाखी पूर्णिमा पर गोरखिया पधारने के लिए निवेदन किया। दो दिन बाद ही पूर्णिमा थी। श्रीदाता उनके आग्रह को नही टाल सके। वे उसी दिन शाम को नान्दशा पधार गये। एक दिन नान्दशा के भक्तजनो को आमन्दित कर दिनाक ११-५-७९ को दाता-निवास पधारे और उसी दिन सायकाल गोरखिया पधार गये। गोरखिया गाँव के तालाब की पाल के पूर्वी किनारे पर श्री गोरक्षनाथ जी की धूनी है। वहा गाँव वालो ने एक कमरा और एक सराय बना दी है। पास ही मीठे पानी की कुंई भी खुदवा दी गई है। स्थान बडा रमणीक है। उस क्षेत्र में उस स्थान की बडी मान्यता है। वैशाखी पूर्णिमा की पूर्व की रात्रि को जागरण होता है व वैशाखी पूर्णिमा के दिन आसपास के क्षेत्र के लोग अपना सब कार्य छोड कर दर्शनो के लिए उपस्थित हो जाते है। पच्चीस किलो आटे का एक ही रोट बनाया जाता है जिसको सूर्यास्त के समय आँच से बाहर निकालते है व धूनी पर चढाकर उसको प्रसाद स्वरूप वितरित करते है। आसपास के गूजर लोग उस दिन प्रात का सारा दूध धूनी पर ले आते है और प्रसाद रूप में उसे धूनी पर उपस्थित लोगो मे बाँट देते है। भीलवाडा, रायपुर, करेडा, कोशीथल आदि स्थानो के भक्तजन पहले ही धूनी पर पहुँच गये।

रात्रि को जागरण में भजन बोले गये। एक पार्टी आसपास के लोगो की व एक पार्टी सत्सगियो की भजन बोलने में थी। भजन बडी मस्ती से बोले गये। जामोला से कृष्ण गोपाल जी आदि भी आ गये। करेडा के मेघासिह जी थे ही। फिर क्या कहना ? श्रीदाता भी पूरी रात्रि विराजे रहे। बडा ही आनन्द आया। दर्शक और अन्य श्रोतागण भी वहाँ से हिले तक नही। वे भी भावमग्न होकर भजनो का आनन्द लेते रहे। बात की बात मे रात्रि व्यतीत हो गई।

प्रातः ही दैनिक कार्यो से निपट कर सब ही धूनी पर आ गये। लोगों ने सभी को दूध का प्रसाद दिया। शुद्ध दूध और वह भी प्रसाद के रूप में सब ही को मजा आ गया। कुछ ही देर मे अलग अलग झुण्डों में भक्तलोग हाथ मे झण्डा लिए हुए अलग अलग दिशाओं से भजन बोलते हुए आने लगे। अद्‌भुत दृश्य था।

श्रीदाता को वहाँ विराजे देखकर लोग अत्यधिक प्रसन्न हुए। सर्वत्र थोड़ी ही देर में दाता के पधारने की सूचना मिल गई और लोग दर्शनार्थ दौड़े आये। उन लोगों की श्रीदाता के चरणों मे अपार श्रद्धा थी। पुकारों वाले भी खूब आये। धीरे धीरे भीड़ बढ़ने लगी। खड़े रहने की भी जगह नहीं अतः श्रीदाता खेत में पधार गए। वहाँ भी लोगों की भीड़ बढ़ने लगी। अतः भोजनोपरान्त श्रीदाता का पधारना दाता-निवास हो गया।

जामोला निवासी कृष्णगोपाल सिंह जी अपनी पार्टी सहित वहाँ पधारे थे। उन्होंने श्रीदाता को जामोला पधारने की और वहाँ तीन दिन के अखण्ड कीर्तन की प्रार्थना की। पहले तो श्रीदाता ने टालना चाहा किन्तु जब उनका आग्रह बहुत ज्यादा देखा तो दिनांक १९-५-७९ से २०-५-७९ तक का कीर्तन निश्चित कर दिया। श्रीदाता ने १८-५-७९ को जीप दाता-निवास भिजवाने की आज्ञा दी थी। जीप की व्यवस्था का भार श्री कृष्णगोपाल सिंह जी ने मुझपर डाल दिया था। दि. १७-५-७९ को जीप की व्यवस्था करनी थी किन्तु उस दिन शाम तक कोई व्यवस्था नहीं हो पायी। हर संभव प्रयास करने पर भी निराशा ही हाथ लगी। अन्त में हताश होकर सत्संग भवन में दाता के चित्र के सामने जा बैठे और बोले, "हम तो हार गये अब व्यवस्था तेरी तू ही जाने"। लगभग आधा घण्टा बैठे होंगे कि शिवसदन के बाहर एक जीप आकर ठहरी। उठकर देखा तो एक सत्संगी भाई कोटा से जीप लेकर आये हैं और दाता के दर्शनों को दाता-निवास जा रहे है। हमारी प्रसन्नता का कोई ठिकाना नही। देखो दाता की दया। किराये के पैसे भी बच गये व जीप की व्यवस्था भी हो गई। कितना दयालु है दाता।

दूसरे दिन उसी जीप में श्रीदाता का भीलवाड़ा पधारना हो गया। दिनभर सत्संग चलता रहा। श्रीदाता ने उस दिन जीवन

सम्वन्धी आवश्यकताओ को घटाने पर बल दिया। उन्होने वताया कि जितनी भोगेच्छा वढेगी उतनी ही आवश्यकताएँ वढेंगी। और यदि आवश्यकताएँ वढेंगी तो अशान्ति वढेगी। इच्छा तो एक ही होनी चाहिए और वह भी दाता की।

शाम को पाँच वजे उसी जीप में श्रीदाता का पधारना जामोला हुआ। अन्य लोग रेल से गये। सतवाडिया गाँव तक तो जीप ठीक रास्ते पर चलती रही फिर रास्ता भटक गयी। जगल में इधर-उधर भटकती रही लेकिन मार्ग मिला नही। घवरा से गये। ऐसे समय में अचानक एक व्यक्ति उस जगल में आ निकलता है। उसने मार्ग वताया तव कही जामोला जा पाये। अनेक वालक और गाँव वाले जीप को देख कर दौड आये। एक अच्छी भीड हो गई। जामोला में एकत्रित सत्सगी-बन्धु भी आ पहुँचे। सभी ने श्रीदाता को प्रणाम किया। श्रीदाता छत पर जा विराजे। कुछ देर वाद भीलवाडा वाले भी आ गये। रात्रिभर कीर्तन चलता रहा।

दिनाक २०-५-७९ को प्रात ही उठ कर शौच के लिए जगल में जाना पडा। स्नान के लिए भी दो किलोमीटर चल कर एक कुँए पर पहुँचे। धूप और हवा दोनो थी। हवा के साथ जो धूल उड रही थी वह लोगो के लिए परेशानी का कारण वन रही थी। कुँए के पास ही एक गाँव था जहा के निवासी स्त्री, पुरुष और वालक सव ही श्रीदाता के दर्शन हेतु आ गये। श्रीदाता ने नाश्ते हेतु लाया हुआ जो सामान था उसे प्रसाद के रूप में गाँववालो में वँटवा दिया। स्नान से लौट कर कीर्तन की समाप्ति की गयी। गर्मी के कारण सव परेशान से हो गये अत श्रीदाता ने भोजन करा के सव को विदा कर देने को कहा। श्रीदाता ने भी भोजन किया और ठीक वारह वजे वहाँ से विदा ली। भीलवाडे वाले ऐसी कडी धूप में पैदल ही रवाना हुए। कडी धूप में दौडते हुए मुख्य सडक पर जो चार मील दूर थी आये। दौडे इसलिए कि वे दाता के साथ भीलवाडा पहुँचना चाहते थे। उनमें से एक-दो तो गर्मी में व्याकुल होकर वीमार भी हो गये।- वे सडक से वस में वैठ कर भीलवाडा पहुँचे।

श्रीदाता जीप में थे किन्तु लू के झपाटे लग रहे थे। शरीर लू के कारण झुलस रहा था किन्तु वे चलते ही रहे। भीलवाड़ा पहुँचने में पूरे तीन घण्टे लगे। शिवसदन पहुँचने पर राहत मिली। अन्य लोग चार बजे शिवसदन पहुंच गये। जब सभी कुछ शान्त हुए तो श्रीदाता ने फरमाया, "एक बार कोई चक्कर खाकर गिर पड़े और कोई दया कर उसे निकाल दे तो इसका मतलब यह तो नहीं है कि-गिरने वाला बार बार गिरा करे और निकालने वाला बार बार कृपा कर निकाला करे। एक बार आपको दाता की महर का भान हो गया तो क्या वह बार बार महर किया ही करे। संकेत के लिए तो एक झलक ही पर्याप्त है।" दाता का फरमाना सही है। हमें दाता आनन्द देते हैं, दाता का अनुभव देते हैं, उसकी झलक बताते हैं लेकिन हम तो अन्धे हो जाते हैं। घोर मूर्ख और अज्ञानी जो ठहरे। पलपल में वह हाथ पकड़ कर न संभालता होता तो हमारी क्या गति हुई होती।

इस प्रकार श्रीदाता कष्ट उठा कर भी अपने बन्दों की इच्छा-पूर्ति करते हैं। बावड़ी वाले और जगपुरा वाले तो श्रीदाता को बहुत ही सताते हैं। बार बार दाता को अपने बीच बुलाने के लिए बड़ा आग्रह करते हैं, हाथ जोड़ते हैं और रोते हैं। श्रीदाता को उनके लिए अपने सभी नियम ताक में रखने पड़ते हैं। बावड़ी के श्री सवाईराम जी ने अपने यहाँ दाता की आज्ञा लेकर अगस्त सन् १९७९ में अखण्ड कीर्तन रख लिया। उन्होंने रो-धोकर न केवल दाता के पधारने की स्वीकृति ही ली वरन् सभी सत्संगियों को कीर्तन में बुलाने की आज्ञा ले ली। मजबूरन श्रीदाता को २६-८-७९ को प्रातः ही पधारना हुआ। वे बावड़ी के बाहर बने ऐनीकट पर ही ठहर गये। आने वाले लोग वहीं एकत्रित होते रहे और उधर बावड़ी वाले श्रीदाता की प्रतीक्षा करते रहे। अन्त में जब उन्हें मालूम हुआ कि श्रीदाता ऐनीकट पर हैं तो दौड़े हुए आये व कीर्तन बोलते हुए श्रीदाता को गाँव में ले गये। बाहर चबूतरे पर नीम की छाँह में जाकर विराजे। महिलाओं के अलग भजन व नवयुवकों के अलग भजन चल पड़े। बालिकाएँ नृत्य करने लगी। भावमय दृश्य हो गया। भावोद्रेक से कइयों के नेत्र तरल हो गये। जयपुर-

उदयपुर वालो ने तो ऐसा दृश्य कभी न तो देखा था और न कभी सुना ही था। वे एकटक इस दृश्य को देखते ही रहे। शरीर की सुध-बुध तक न रही। बड़ा आनन्ददायक दृश्य रहा।

जगपुरा की बहनें भी आई थी। वे भी भजन बोलने लगी। श्रीदाता ने फरमाया, "दाता को जानने की सभी लोग इच्छा करते हैं किन्तु वे चाहते हैं कि बिना परिश्रम किये, चलते चलाते ही अपने आप हो जाय। उनकी इच्छा तो है किन्तु इच्छा में तीव्रता नहीं है। एक स्त्री को अपने पति की एक झलक मिल जाती है तो वह सुहागिन हो जाती है। उसी प्रकार इस सुरतारूपी सुन्दरी को यदि दातारूपी प्रियतम की एक झलक मिल गई तो वह निहाल हो जाती है।"

भीलवाडा वालो ने भजन बोला। भजन था
आज ठाडो है बिहारी यमुना तट पै,
मति जाइयो री अकेली कोई पनघट पै,
आली मोर मुकुट भृकुटिन की लपट,
मन रहियो री अटक घुघराली लट पै,
आली छोड कुल लाज गोपी गई भाजभाज,
श्याम रमिया को रास आज वशी वट पै,
आली देख नन्द छोना मन वश में रह्यो ना,
मोपे डारयो जादू टोना नटखट वट ने,
चन्द्रसखी भज श्याम सलोना,
जाऊँ बलिहारी बाँकी चितवन पै।

यमुना का अर्थ श्रीदाता ने शरीर बताया। गोपियो का अर्थ वृत्तियों में लिया। दाता के दर्शन कर लेने मात्र मे वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं।

कैलवाडे के झबरलाल जी, जगदीश जी तथा सत्यनारायण जी की बच्चियों ने भी भजनो पर मस्त होकर नृत्य किया। बड़ी देर तक इसी प्रकार का सत्सग होता रहा। लोगो का इतना उत्साह था कि श्रीदाता को उस दिन वही ठहरना पडा। अगले दिन ऐनीकट पर खूब सत्सग चला। कई लोगो की पुकारे सुनी। भोजन करते-

करते पाँच वज गये। सभी को रोते-विलखते छोड़ कर श्रीदाता नान्दशा पधार गये।

करेड़ावालों के वड़े आग्रह पर दिनांक २८-८-७९ को करेड़ा जाना था। नान्दशा में प्रातः ही श्रीदाता के सम्मुख कई लोगों ने अपनी समस्याएँ ला कर रखी। श्रीदाता को उन समस्याओं को सुलझाने में वहीं नौ वज गये। वहाँ से चल कर कोठारी नदी पर स्नान हुए। वहाँ भी एक व्यक्ति बीमार वैल को लेकर आ गया। श्रीदाता ने महर कर उसकी पुकार भी सुनी। वहाँ से करेड़ा पहुंचे। सव लोग पहले ही करेड़ा पहुँच गये थे। वहां विशाल पशु मेला था। उस मेले को पार करने में काफी समय निकल गया। जीप आनन्द कुटीर पहुंची जहाँ सभी एकत्रित थे। श्रीदाता के पहुंचते ही जय निनाद से आकाश गूंज उठा। चारों ओर हर्षोल्लास छा गया। श्रीदाता वरामदे में जा विराजे। श्री मेघसिंह जी ने हारमोनियम उठा लिया और भजन वोलने लगे। श्रीदाता कुछ देर बाद ही भावावेश में हो गये और कमरे में चले गये। उनका चेहरा अपूर्व प्रकाश से प्रदीप्त हो गया। उस समय यह सेवक कुछ दूर बैठा था। श्रीदाता ने संकेत कर पास वुला लिया। मैं पास जाकर वैठा। मैंने देखा कि श्रीदाता भावावेश में हैं। उनके शरीर पर अपूर्व तेज है और शरीर पर निगाह टिकना संभव नहीं हो रहा है। मैं हाथ जोड़े उनके अपार सौन्दर्य का पान कर रहा था। एकाएक शरीर में स्फूर्ति का अनुभव हुआ फिर ऐसा लगा जैसे मुझको कोई ऊपर उठा ले जा रहा है। कुछ देर में गति विचित्र हो गई, मस्तिष्क में आनन्द की लहरें चलने लगी और अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होने लगी। अचानक श्रीमुख से शब्द निकले, "सारे दिन में एक झलक पिऊ की मिल जाय, तो निहाल हो जाय।" वाहर भजन चल रहा था 'भर के पिला दे साकी भर के पिला दे जाम।' इसी भजन की एक पंक्ति है 'ऐ साकी सारा मयखाना तेरे नाम कर दीजिये'। भजन मण्डली इसी पंक्ति को वार वार वोल रही थी। उपस्थित लोग भाव-विभोर थे। श्रीदाता मस्ती में झूम रहे थे। वे उठ कर वरामदे में पधार गये। कुछ ही समय वाद वापिस कमरे में आकर

आसन पर विराज गये । अचानक पुन इस सेवक को सम्बोधित कर और कमरे में लगी हुई तस्वीरो की ओर इगित कर बोले, "तुम इन सब को नमस्कार करते हो और ये सब तुम्हे नमस्कार करते है, इसमें क्या अन्तर है ?" मै कुछ भी नही समझ सका । मैने उत्तर दिया "भगवन् ! उसी को नमस्कार करना अच्छा है ।" भगवान ने उन्ही शब्दो को दुवारा दोहराया । मै कुछ भी उत्तर नही दे सका तब फरमाया, "सब एक है रे । सब में वही वह है । वही नमन करता है और उसी को नमन किया जाता है । उसकी महर हो जाय तो बस सब वही वह है रे ।" बिना उसकी कृपा के श्रीदाता के शब्दो को समझना सरल नही है ।

बडी देर तक भजन चलते रहे । दाता भी अपनी मस्ती में मस्त रहे व भजन में साथ देते रहे । भजनों के बाद प्रवचन हुआ । दाता ने अन्त में फरमाया कि यदि कोई पूछे कि भगवान कैसे हैं तो मुह के सामने अगुली रख दो अर्थात् चुप हो जाओ । क्यो कि वह बोली में आता ही नही । वह तो गूगें का गुड है । बेमाली के कुछ मास्टर आ गये उन्हे दाता ने बताया कि सच्चे मास्टर बनो जिससे जीवन का मजा ही आ जाय ।

शाम को श्रीदाता दाता-निवास पहुँच गये । आगरिया ठाकुर शिवनाथ सिह जी भी दाता के अनन्य भक्तो में से एक है । उनकी वजह से कई आगरिया के लोग दाता के श्री चरणो में श्रद्धा रखने लगे हैं । वे अपने यहाँ कीर्तन कर श्रीदाता को बुलाना चाहते थे । कीर्तन का तो हुक्म हो गया किन्तु जाने के लिए स्वीकृति नही दी । सन् १९७९ की विजय दशमी पर कई लोग दाता निवास आये हुए थे । वहाँ अखण्ड कीर्तन चल रहा था । बडा ही आनन्द का वातावरण था । कीर्तन के दूसरे दिन दोपहर को सभी देरवाजे में बैठे थे । जोरदार सत्सग चल रहा था ठीक उसी समय एक जीप आकर ठहरी जिसमें शिवनाथ सिह जी के लडके भगवत सिह जी आदि थे । आते ही उन्होने श्रीदाता को आगरिया पधारने की अर्ज की । सत्सग चल ही रहा था । अनेक लोग बैठे थे । उनकी प्रार्थना सभी को अटपटी लगी । डा शर्मा, सीताराम जी, भोपाल के लोग

आदि नहीं चाहते थे कि श्रीदाता वहाँ से आगरिया पधारे। वहाँ बड़ा आनन्द चल रहा था। श्रीदाता के पधारने पर आनन्द में कमी होगी। इस संभावना से सभी ने एक आवाज में निवेदन किया, "दाता का पधारना आज तो कहीं अन्यत्र न हो।" श्रीदाता मुस्करा दिये। वे तनिक धीरे से बोले, "गर्मी में आये हैं। ज्यादा दूर नहीं है। पाँच मिनिट के लिए हो आना चाहिये। इन्हें बड़ा कष्ट हुआ है। मुश्किल से दो घण्टे लगेंगे। जल्दी ही वापिस लौट जावेंगे।" इसपर लोग क्या बोलते।

श्रीदाता साथ में डाक्टर साहब और सीताराम जी को लेकर आगरिया पधारे। आमेट से तीन मील दूर स्थित आगरिया एक छोटा सा गाँव है। वहाँ एक छोटा सा मन्दिर है वहीं कीर्तन हो रहा था। श्री भगवत सिंह जी को दृढ़ विश्वास था कि दाता पधारेंगे अतः उन्होंने आसपास के क्षेत्र के लोगों को सूचना भिजवा दी थी। सैकड़ों की संख्या में लोग एकत्रित हो गये। गांव के प्रत्येक घर की सफाई कर उसे उपयुक्त ढंग से सजाया गया। दूर से मोटर की धूल उड़ते देखकर सब सतर्क हो गये और कीर्तन बोलने लगे। ज्योंही श्रीदाता जीप से बाहर आये कि लोग उनके चरणों में लोट गये। फिर 'दाता की जय' के निनाद से आकाश गूँज उठा। चारों ओर से फूलों की वर्षा होने लगी। कई नर-नारी प्रसन्नता से नाचने लगे। अपूर्व प्रेम था उनका। श्रीदाता का उन्होंने हृदय खोल कर स्वागत किया। उनका प्रेम देखने योग्य था। देखते ही देखते बैण्डवाले आ गये। आगे आगे बाजेवाले, पीछे दाता और उनके पीछे सैकड़ों नर-नारी कीर्तन करते हुए नाचते-कूदते चलने लगे। गाँव के घर-घर के बाहर लोग खड़े थे जो श्रीदाता का बड़े प्रेम से स्वागत कर रहे थे। वे कुंकुम, रोली और पुष्पों से युक्त थालियाँ लेकर खड़े थे। ज्योंही श्रीदाता घर के बाहर पधारते वे बड़े प्रेम से पूजा करते। गाँव में फिरने से काफी समय हो गया। सभी प्रेम-भाव से ओतप्रेत थे। सच्चे प्रेम की परिभाषा वहां जानी जा सकती थी। श्रीदाता कीर्तन स्थल पर पहुँचे। कुछ देर बाद ही कीर्तन समाप्ति की आज्ञा हुई। आरती संजोने के बाद कीर्तन की

समाप्ति हुई। भोजन की भी व्यवस्था थी। श्रीदाता मन्दिर के चबूतरे पर विराज गये। हरेहर की पुकार हुई किन्तु श्रीदाता ने यह कह कर टाल दिया कि वहाँ के लोग प्रतीक्षा कर रहे है।

श्रीदाता वहाँ से विदा हुए। सभी ने आँखो मे आँसू बहाते हुए उन्हे विदा किया। डाक्टर साहब एव सीताराम जी उनके प्रेम को देख कर दग रह गये तथा अपने भाग्य की सराहना करने लगे कि उन्हे ऐसा अवसर मिला। उन्होने दाता-निवास आकर बताया कि श्रीदाता का ऐसा स्वागत अन्यत्र न देखा व न सुना। उन्होने वहाँ निश्छल प्रेम की झाँकी देखी है। उनकी कथनी और करनी में कोई अन्तर नही। सचमुच ऐसे लोग महान् है।

पूरे दिन वहाँ कीर्तन चलता रहा। डाक्टर साहब और सीताराम जी आगरिया वालो की प्रशसा करने में अघाते नही थे। श्रीदाता कुछ देर के लिए ही आगरिया में विराजे किन्तु वहाँ के इतिहास में स्वर्ण अक्षरो में लिखने योग्य हो गये।

श्री चाँदमल जी जोशी की सेवा निवृत्ति दिनाक ३–१०–७९ ई को हुई थी। उनकी तीव्र इच्छा थी कि श्रीदाता की आज्ञा लेकर पुष्कर में अखण्ड कीर्तन किया जाय। पुष्कर में अब तक अखण्ड कीर्तन श्रीदाता के सेवकों द्वारा नही किया गया। श्रीदाता तो अपने बन्दो की इच्छा में है। उन्होंने कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर १–११–७९ से ४–११–७९ ई तक करने की आज्ञा दे दी। व्यवस्थापक श्री मोतीसिंह जी बनाये गये। गो-शाला में कीर्तन का आयोजन हुआ।

श्रीदाता का पधारना कीर्तन के प्रारभ के समय तक नही हुआ था। दाता की असीम कृपा से उपस्थित लोगो ने कीर्तन प्रारभ कर दिया। प्रारभ में ही आनन्द की अनुभूति हुई जिससे लोगो में जोश आ गया। बडे ठाट से कीर्तन बोला जाने लगा। श्रीदाता का पधारना साय ६ बजे हो गया। उनके पधारते ही कीर्तन में जोश आ गया।

धीरे धीरे लोग आते गये व कीर्तन में बढ़ोतरी होती गई। अलग अलग पार्टियों में एक प्रकार की प्रतियोगिता होने लगी। किसके समय में कीर्तन अच्छा चलता है इसकी होड चल पड़ी जिससे हर समय कीर्तन की ध्वनि भावोत्पादक हो गई। आने वाला व्यक्ति प्रभावित होकर कुछ देर वहाँ बैठे विना नहीं रह सकता था। श्रीदाता भी यदाकदा कीर्तन मे पधार ही जाते थे। उनके पधारने पर आनन्द की रसधारा में वृद्धि हुए विना नहीं रहती।

पुष्कर में कार्तिक का मेला था ही। उस मेले में अनेक साधु व अन्य गृहस्थी लोग आते हैं। गो-शाला मुख्य सड़क पर ही है। जिसके कानों में कीर्तन की मधुर ध्वनि पडती वे अन्दर आये विना नहीं रहते। मोती डूँगरी वाले बावाजी श्री सर्वोत्तम दास जी भी वहाँ आये। वे भावमय और मस्ती भरे कीर्तन को देखकर बड़े प्रभावित हुए। जब दाता की उनसे बात हुई तो श्रीदाता ने कहा, "आप तो महान् हैं। मैं तो दाता के दरबार का छोटा सा कूकर हूँ, जो द्वार पर पड़ा रहता हूँ। उनके पुचकार लेनेपर आनन्द मनाता हूँ।" इस पर बावाजी गद्‌गद् हो गये और बोले, "भगवन्! आप महान् हैं। ऐसे महापुरुष तो वन्दनीय हैं।"

पूरे दिन लोग आते रहे व कीर्तन का तथा श्रीदाता के प्रवचन का आनन्द लेते रहे। चारों ओर कीर्तन की धूम मच गई। इससे आकर्षित होकर परिचित-अपरिचित सभी प्रकार के लोग कीर्तन मे आने लगे। वहाँ आये लोगों को तो उठते-बैठते, खाते-पीते हर समय कीर्तन के ही बोल निकलते थे। बाड़मेर उच्च माध्यमिक विद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री सांगीदान जी और प्रयोगशाला के सहायक श्री परमानन्द जी भी आये हुए थे। वे भी कीर्तन स्थल पर आये। दोनों ही नृत्यकला के पारंगत थे। उन्होंने अपना कलात्मक नृत्य कीर्तन की ध्वनि पर किया। अपूर्व एवं कलापूर्ण नृत्य था उनका। भावात्मक नृत्य था जिसने अनेकों को भाव-विभोर कर दिया। उनके एक साथी परमानन्द जी थे जिनका स्वर कोकिल के स्वर को भी मात करने वाला था। कीर्तन की ऐसी समा बंधी जिसका वर्णन

करना संभव नही । श्रीदाता भी ध्वनि सुन कर पधार गये । इसपर मागीदान जी चट उठे उन्होने स्त्री-रूप धारण कर नृत्य करना प्रारंभ किया । सभी उपस्थित समाज मंत्रमुग्ध से हो गये ।

दिनांक ४-११-७९ को प्रातः दस बजे कीर्तन की पूर्णाहुति का समय था किन्तु देर हो गई । कीर्तन समाप्ति बारह बजे हुई । कीर्तन की समाप्ति पर सर्वोत्तम दास जी का पधारना भी हुआ । श्रीदाता का करताल हाथ में लेकर कीर्तन करना दिव्य था । वे भाव-लीन थे । उनका चेहरा दिव्य प्रकाश से प्रकाशित था । दाता के स्वरूप को देखकर अनेक लोग भाव-विभोर होकर अपने आप को ही भूल गये । बड़ा ही दिव्य व आनन्दमय समय था । आरती सजोकर आरती की गई । बड़ा आनन्दमय वातावरण था ।

कीर्तन की समाप्ति पर सभी बैठ गये । सर्वोत्तम दास जी ने गद्‌गद् वाणी से कहा, "भगवन् ! आपकी कृपा से हम सब लोगो को प्रभुनाम का लाभ मिला है । ऐसा आनन्द आपकी कृपा से ही मिल पाया है । सत्‌गुरु की महिमा अपरपार है । आपके आशीर्वाद से इतने लोगो ने अपने अमूल्य जीवन को सार्थक किया है । आप महान् हैं ।" इसपर श्रीदाता ने फरमाया, "बावजी ! महान् तो वही (दाता) है । ये सब मन्दिर उसी के हैं और इन सब मन्दिरो में वही वह है । माकाराम तो भोपू है । इस भोपू का प्रयोग कर वह जो बोलना चाहता है बोल देता है । बोलने वाले की बलिहारी है । हम तो पशु हैं और पशुवृत्ति रखते हैं । पशु को मालिक जैसे रखता है वह उसी प्रकार रहता है । उसी प्रकार हम भी दाता जहाँ बिठाता है बैठ जाते हैं और जो खिलाता है खा लेते हैं । बस उसी की मस्ती में मस्त रहते हैं ।"

श्रीदाता बड़ी देर तक सत्संग देते रहे । बाद में बाड़मेर के कलाकारो ने अपना नृत्य प्रस्तुत किया । इसके बाद संगीत हुआ । उनकी कला से मुग्ध हुए बिना नही रहा गया । इस प्रकार कीर्तन समाप्त हुआ ।

इस प्रकार हम देखते आये हैं कि श्रीदाता अपने भक्तो को हर तरह से बटाबा देते हैं । जिसकी निष्ठा दाता के प्रति पक्की है

उसकी तो हर प्रकार की इच्छा को रखते हैं। उनका तो उद्देश्य ही यह रहता है :—

खुद का मान भले ही टल जाय,
किन्तु भक्त मान न टलते देखा।

अपने भक्त के सुख के लिए श्रीदाता बड़े से बड़े बलिदान के लिए तत्पर रहते हैं। ऐसे भक्तवत्सल भगवान श्रीदाता को बारंबार नमस्कार है।

○ ○ ○

उज्जैन सिंहस्थ एवं गिरनार की यात्रा

सन् १९८० के अप्रैल माह में उज्जैन सिंहस्थ था। कई लोगो ने श्रीदाता को इस कुंभ मे पधारने हेतु निवेदन किया। कु हरदयाल सिंह जी दक्षिण यात्रा के समय बम्बई से ही लौट आये थे इसलिए गिरनार नही जा सके थे। पुन गिरनार की यात्रा भी उन्ही के आग्रह पर हुई थी किन्तु उस बार भी कार्य विशेष के कारण उनका जाना नही हो सका। इस बार उनका पुन आग्रह था। पहले तो श्रीदाता ने कोई इच्छा व्यक्त नही की किन्तु दिनाक १०-४-८० को एकदम इस यात्रा के लिए आज्ञा दे दी। आज्ञा के मिलते ही उदयपुर से मेवाड़ ऐजेन्सी की बस न ४७३९ किराये पर ले ली गई। वह बस १२-४-८० को दाता निवास पहुँच गई। उसी बस द्वारा श्रीदाता का भीलवाड़ा पधारना हो गया।

दिनाक १०-४-८० को ही जयपुर, अजमेर, कोटा, उदयपुर आदि स्थानो पर सूचना भेज दी थी अत यात्रा मे जाने वाले व्यक्ति भीलवाडा आ गये। रात्रि को सत्सग हुआ। श्रीदाता ने फरमाया, "आप लोगो को कुछ न कुछ अवश्य करते रहना चाहिये। कहा है –

जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ।
वो बोरी डूबन गई रही किनारे बैठ॥"

इस प्रकार कह कर श्रीदाता ने नाम स्मरण के लिए अपने बन्दो को प्रेरित किया। श्री शिवदान सिंह जी वही बैठे थे। उनकी इच्छा श्रीदाता के साथ यात्रा मे चलने की थी। श्री महावीर सिंह जी भी चलना चाहते थे। शिवदान सिंह जी चाहते थे कि पिता-पुत्र में से केवल एक प्राणी जावे। शिवदान सिंह जी मस्त प्रकृति के हैं। लोग उनसे मजाक कर दिया करते है। अत सभी ने महावीर सिंह जी को ले चलने को कहा। इसपर श्रीदाता मुस्करा दिये। वे बोले –

मन्दिर तोड़ मस्जिद तोड़, यह तो बना हुआ बन्दे का है।
किसी का दिल मत तोड़, यह घर खास खुदा का है ॥

यह सुन कर सभी जोर से हँस पड़े। विनोद का वातावरण हो गया। चलने की तैयारी पूरी हो चुकी थी। नवयुवक भजन बोलने लगे। 'प्रभु जी मोरी राखो लाज हरि' की ध्वनि गूँज उठी। भजन से वापिस गंभीर वातावरण हो गया। श्रीदाता आँख बन्द कर ध्यानस्थ होकर भजन सुनने लगे। दूसरा भजन बोला गया, 'मैं तो गिरधर के रंग राती' सभी मस्त हो गये। बस के पास वाली भीड़ सत्संग भवन में आने लगी। उधर देरी हो रही थी अत: श्रीदाता से पधारने को निवेदन करना पड़ा। 'सत्गुरु समर्थ की जय' और 'दाता की जय' के साथ बस चल पड़ी। यात्रा में जाने वाले अधिक हो गये थे। सूची परिशिष्ट ख (iii) में अंकित है। श्री सुशीलकुमार जी और श्री गजसिंह जी उज्जैन तक के लिए साथ हो गये।

बस चलते ही भजन बोलना शुरू कर दिया जो निम्बाहेड़ा तक चलते रहे। चेकिंग पोस्ट पर आवश्यक खाना पूर्ति के बाद आगे चल पड़े। फलोरी के पास भोजन कर आगे बढ़े। फलोरी से वापिस भजन शुरू हो गये। भोपाल के श्री खरे साहब को फोन द्वारा श्रीदाता के पधारने की सूचना दे दी गई थी। उन्हें समय आठ का बताया। वे आठ बजे से ही चुंगी नाके पर प्रतीक्षा कर रहे थे। हमारी बस ठीक आठ बजे सायं पहुँची। उस समय शुक्ला साहब चेक पोस्ट पर बैठे थे। राजस्थान की बस देख कर दौड़े हुए आये। श्रीदाता को देखकर वे अति प्रसन्न हो गये। उन्होंने प्रणाम किया व बस में आ बैठे। चेकिंग के बाद वे बस को सीधी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय के छात्रावास में ले गये। वहाँ भोपाल से आये हुए सभी सत्संगी बन्धु स्वागतार्थ उपस्थित थे। दिनभर की निराशा के बाद श्रीदाता के पधारने पर सभी लोगों के हृदय उल्लास से भर गये। उनके द्वारा की गई व्यवस्था अति सुन्दर थी। उनकी व्यवस्था, उनकी सेवा और उनके प्रेम के आगे हमारी दिनभर की थकावट बात की बात में समाप्त हो गई।

अगले दिन दिनाक १४-४-८० को वैशाख कृष्ण चतुर्दशी थी। दैनिक कार्यो से निवृत्त होकर मेले में जाने की सोच ही रहे थे कि अतिरिक्त जिलाधीश श्री बदरीनारायण जी जो उस समय मेले के मुख्य अधिकारी थे, उनका पदार्पण हो गया। दाता के दर्शन कर वे हाथ जोडकर सामने विराज गये। उन्होने मेले का पूरा विवरण प्रस्तुत किया। उन्होने यह भी बताया कि सन्यासियो के बीच झगडा हो गया था जिसे बडी कठिनाई से निपटा पाये। महाकालेश्वर के पास क्षिप्रा के घाट पर ही सब का स्नान होता है। साधु लोग अपनी अपनी मण्डली के साथ स्नान करने आते हैं। उस समय सामान्य जन उस घाट पर स्नान नही कर पाते। सभी साधुओं की मण्डलियो के प्रतिनिधियों को बुला कर उनकी मीटिंग कर यह निवेदन किया गया कि एक ओर का घाट सामान्य जनता के लिए छोड दिया जाय जिससे स्नान की सुविधा हो जाय। सभी ने इस सुझाव को मान लिया किन्तु दत्त अखाडे वालो ने विरोध किया। कल अमावस्या का स्नान है। कल झगडा हो सकता है। दत्त अखाडे वालो को समझाने का प्रयत्न चल रहा है। महाकालेश्वर की कृपा हुई तो समझौता हो ही जावेगा। इसपर श्रीदाता ने कहा, "ऐसे अवसरो पर तो झगडा हो ही जाता है। यह सब माया दाता की ही तो है। आपने यहाँ अनेक रूप देखे हैं किन्तु सब रूप उस एक के ही हैं। सभी में वह एक विद्यमान है। अत उस एक को पकड लेने पर सब काम बन जाता है।" इस प्रकार बातचीत होती रही। बदरीनारायण जी ने पूर्व में श्रीदाता के दर्शन नही किये थे। श्रीदाता के अमृतसने वचनों को सुन कर वे बडे प्रसन्न हुए। उन्हें व्यवस्था हेतु जल्दी जाना था अत शुक्ला जी को आवश्यक निर्देश देकर और दाता को प्रणाम कर के वे चले गयें।

बस के मेले में जाने की मनाई थी अत आवश्यक आज्ञापत्र प्राप्त कर तथा एक पुलिस वाले को साथ मे लेकर आगे बढे। भगवान महाकालेश्वर के मन्दिर में अपार भीड थी। घाट पर भी मनुष्य ही मनुष्य दिखाई दे रहे थे। इतना जनसमूह एकत्रित हुआ था कि देख कर आश्चर्य हुआ। वहाँ से आगे बढे। जगह जगह

अखाड़ों पर यज्ञ, भजन, कीर्तन, प्रवचन आदि चल रहे थे और लोगों की भीड़ थी। साधु लोग अपने अपने तम्वुओं में अपनी अपनी कलाओं का प्रदर्शन कर रहे थे। एक साधु ऐसा भी देखा गया जो अपनी इन्द्री से पचास कि. ग्राम का पत्थर बाँधकर उसे खींचते हुए अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर रहा था। अलग अलग सम्प्रदायों और समाजों की ओर से कितने ही अन्नक्षेत्र खुले हुए थे जहाँ लोगों को भरपेट भोजन दिया जा रहा था। पृथक पृथक सम्प्रदायों के पृथक पृथक अखाड़े थे। अखाड़े क्या थे मानो छोटा-मोटा नगर ही वसा हो। हमने कई मण्डलेश्वरों, महामण्डलेश्वरों, चारों मठों के शंकराचार्यो, रामद्वारे महाराज आदि के अखाड़े भी देखे। सभी एक से एक वढ़ कर सुसज्जित और आकर्षक थे। द्वारों पर ही मोटे-मोटे अक्षरों में उनका परिचय था। लाखों-करोड़ों रुपये उनके निर्माण मे, उन्हें सजाने में और उनकी व्यवस्था में लगे होंगे। वहाँ की चहल-पहल देखते ही वनती थी। एक-एक साधु और वहाँ होने वाली एक-एक वात को देखने के लिए तो एक दो दिन नहीं, महीने चाहिये।

वहाँ से चलकर सान्दीपन आश्रम मे पहुँचे। वहाँ भी अपार भीड़ थी अतः भर्तृहरि जी के आश्रम पर पहुँच गये। वहाँ भी लोगों की इतनी भीड़ थी कि खड़े रहने को भी स्थान नहीं। वहाँ से लौट कर मेले की विभिन्न प्रवृत्तियों को देखते हुए वापिस छात्रावास मे पहुँच गये। वहाँ डाक्टर शर्मा के लड़के नितिन जी आये हुए थे। श्रीदाता ने उसे प्यार से अपने पास विठाया, कुशलक्षेम पूछी तथा सत्संग दिया। अन्य लोग भी श्रीदाता के पास पहुँच गये। श्रीदाता ने मेले का विवरण देते हुए वताया कि मेले में हमने तो एक ही वात देखी है, सभी अपने अपने कार्य में मस्त हैं। हमने तो सरकारी कार्यकर्ता मे, साधारण मनुष्य में, मण्डलेश्वर में, महामण्डलेश्वर में, सभी मे एक उसी को रमण करते देखा है। चोटी से लेकर एड़ी तक वही एक आपरूप हैं। ये जितने धर्म हैं, जितने मत है सव उसी के है। ये सव उसी तक पहुँचने के साधन मात्र हैं। जिसमे चलने की शक्ति होती है वे पहुँच जाते हैं। किन्तु कुछ ऐसे भी हैं

जो शक्ति हीन है और जिनमें चलने की शक्ति नही है किन्तु दर्शनो की इच्छा लेकर द्वार पर पटे है, उनपर भी तो महर होती ही है। श्रीदाता ने फरमाया कि यह मन रूपी कुत्ता मान जाय तो काम हो जाय। अनेक वाद है किन्तु शरणागति जैसा कोई वाद ही नही। उन्होने कहा, "आप चाहे जो काम करो–चाहे कोयले की दलाली करो–चाहे सोने का सौदा करो, यदि आपको अपने मालिक मे प्यार है–उसकी चाह है तो वह आपके पास है वरना यह शरीर तो काँच की हाडी है। मानिक की रोशनी से प्रकाशित होने पर ही इसका मूल्य है अन्यथा यह तो हाँडी है सो टूटेगी ही।"

"यह विश्व दाता का लम्वा-चौडा वाग है। उसमें आप और हमारे जैसे अनेक रग-बिरगे फूल है। सभी अपने अपने रग में रगे हुए है और मस्त हैं। आप फूलो को वाँध कर रखोगे तो अन्दर ही अन्दर दम घुट कर नष्ट हो जावेगे। उन्हे देखने की छुट्टी दो। जो देखना चाहे देखने दो, जो दौडना चाहे दौडने दो। पिया (दाता) की चाह पैदा हुई और उसको देखने की इच्छा तीव्र हुई कि मन दौड शान्त हो जावेगी।"

इस प्रकार श्रीदाता वडी देर तक वताते रहे। उन्होने अनेक उदाहरण देकर ज्ञान, योग, भक्ति और प्रेम की वातें वतायी। प्रवचन चल ही रहा था कि जयपुर के लोग आ गये और वातावरण में तवदिली आ गई। वे सव वडे आदमी, पूरे दिनभर की यात्रा और गर्मी के ताप मे बुरी तरह व्यथित थे। थकावट से चूर, वे प्रणाम कर वैठ गये। श्रीदाता के स्नेहमय शब्दो के कान में पडते ही वे तरोताजा हो गये। उनकी थकावट न जाने कहाँ चली गई। वे मस्ती मे श्रीदाता की अमृतवाणी सुनने वैठ गये।

रात्रि को शुक्ला जी ने एक तर्क प्रस्तुत किया। उन्होने कहा, "भगवन्! उज्जैन वटे वडे ऋषि-महर्षियो की तपोभूमि रही है। अनेक सन्तो ने यहाँ साधना की है। नाथों की भी यह ध्यान स्थली रही है। ऐसे स्थान पर जाने मे तो सभी उलझनें समाप्त हो जानी चाहिये।"

श्रीदाता ने फरमाया. "कौन सी भूमि उसकी है और कौन सी उसकी नहीं है? सभी भूमि गोपाल की, उसमें अटक कहाँ। उज्जैन क्या पूरी भारत भूमि ही महापुरुषों की क्रीडास्थली रही है। जिस प्रकार तीनों गुणों में गुण और नवनाथों में नाथ विद्यमान है उसी प्रकार माया और ब्रह्म में आप विद्यमान हैं। आप तक पहुँचने के बाद सब उलझनें समाप्त हो जाती हैं। जितनी भी उलझनें हैं वे सब मन और बुद्धि की है। मन और बुद्धि के चक्कर, स्थान विशेष के महत्व को समाप्त कर देते है।" महापुरुषों की शक्ति का वर्णन करते हुए फरमाया कि वे तो इतने शक्तिशाली होते हैं कि वे काँच में सूर्य चमका देते हैं। उनका पार पाना ही कठिन है।

अगले दिन अमावस्या थी। इस पर्व के मुख्य स्नानों में से एक स्नान था। सिंहस्थ के मुख्य स्नान अक्षयतृतीया, वैशाखी अमावस्या और वैशाखी पूर्णिमा ही है। इस दिन अनेक लोगों ने क्षिप्रा में स्नान किये। हम लोग प्रातः का भोजन कर चलने की तैयारी में थे। उस समय एक कुत्ता आया। श्रीदाता ने उसे रोटी डलवायी। रोटी डाली गई किन्तु उसने उसे देखा तक नहीं। वह कुत्ता वहीं का था। चौकीदार आया और उसने अपने हाथ से रोटी दी तब ही उसने खाया। कैसी ऊँची बात थी। श्रीदाता ने उसकी दृढ़ता की सराहना की और उसके चरण छूकर बोले कि कुत्ता कितना समझदार है। यदि मनुष्य भी ऐसा ही बन जाय तो देश का ढाँचा ही बदल जावे। ऐसे कुत्ते जो वफादार होते है नमस्कार के योग्य ही होते हैं।

सुशीलकुमार, चन्द्रप्रकाश, गजसिंह जी आदि जो वहाँ तक के लिए ही आये थे, उन्होंने श्रीदाता को प्रणाम कर वहाँ से प्रस्थान किया। हम सब लोग भी बस में बैठ गये। भोपाल वालों की दशा विचित्र थी। सभी के नेत्रों में आँसू थे। श्रीदाता ने उन सब को उनकी सेवा व उनके परिश्रम के लिए धन्यवाद दिया व बस में जा विराजे। बस चलने को ही थी कि अकस्मात् एक हाथिनी बस के द्वार पर आ खड़ी हुई। श्रीदाता ने उसे नमस्कार कर एक नारियल दिलाया। नारियल को सूँड से पकड़ कर पैर नीचे दिया

और उसे फोड कर गिरि निकाल कर खा लिया। फिर वह भी सूंड के इशारे से श्रीदाता को प्रणाम कर आगे बढ गई।

बस चल पडी और भजन शुरू हो गये। इन्दौर होते हुए धामनोद गाँव तक गये। मार्ग में गर्म हवा के झोको ने सभी को परेशान कर दिया। भजन बोलना भूल गये। प्यास अलग लग गई लेकिन पानी ठीक नही मिला जिसे पीकर प्यास बुझाई जा सके। नल समय पर ही पानी देते थे। अत मजबूरन आगे बढना पडा। धूलिया गाव में पहुंचे तब जा कर राहत की सास लेने को मिली। नल तो वहाँ भी बन्द थे किन्तु एक विभाग के अतिथि गृह में स्थान मिल गया जहाँ कुँआ था। कुँए पर मोटर लगी हुई थी जिसके चला देने पर पानी की अच्छी व्यवस्था हो गई।

अगले दिन धूलिया से प्रात ही चल दिये। मार्ग में सडक के इधर उधर केले व अगूर के खेत थे। आगे पर्वत मालाएँ आ गई। बडा नैसर्गिक सौन्दर्य था। मार्ग में एक स्थान पर ठहर कर भोजन की व्यवस्था की। श्रीदाता एक खेत में बैठ कर जयपुर वालो से बाते करने लगे। अपने बाल्यकाल की बाते बताते हुए उन पर हुई दाता की दया का वर्णन किया। मदना जी कमाई का दृष्टान्त देते हुए बताया कि पहले दाता परीक्षा लेता है, दु ख देता है, फिर सुख ही सुख देता है। दृढता के लिये दु ख आवश्यक है।

सत्गुरु कुम्हार शिष्य कुभ है, घड घड काढे खोट।
अन्दर हाथ सहार दे, बाहर मारे चोट ॥

बडी देर तक इस प्रकार की बाते होती रही। भोजन कर वहाँ से चले और नासिक न ठहर कर सीधे ही त्र्यम्बकेश्वर पहुँचे। त्र्यम्बकेश्वर का ज्योतिर्लिंग द्वादश ज्योतिर्लिंगो में से एक है। यह स्थान गोदावरी का उद्गम स्थान है महर्षि वसिष्ठ और महर्षि गौतम ने यही तपस्या की थी। श्री गोरक्ष नाथ जी भी काफी दिनों तक यहाँ तप कर चुके है। पहाड की तलहटी में दो नदियो के सगम पर यह मन्दिर है। निज मन्दिर के बाहर सामने की ओर सफेद सगमरमर का कश्यप बना हुआ है। शिवलिंग कुछ गहराई में है

और अन्य शिवलिंगों से भिन्न है। एक छोटे से गड्ढे के आकार का है। लिङ्ग छः इन्च व्यास के आकार का है जो एकाएक देखने पर दिखाई नहीं देता है। ऊपर काँच लगा है जिसमें उसका प्रतिविम्ब भलीभाँति देखा जा सकता है। मुख्य तोरण द्वार के अतिरिक्त तीनों ओर भी एक एक द्वार है। उत्तरी द्वार के वाहर नन्दिकेश्वर की सफेद संगमरमर की मूर्ति है। मन्दिर के पृष्ठ भाग में पचास वर्ग फीट का एक जलाशय है जिसमें चारों ओर सीढ़ियाँ हैं। पास की पर्वत शृंखला पर गोरक्षनाथ जी की गुफा है जहाँ से गोदावरी नदी निकलती है जिसका वहाँ का नाम अहल्या है। पौराणिक कथाओं के आधार पर इसे कुशावत तीर्थ कहते हैं। पासवाले पर्वत को ब्रह्मगिरि पर्वत के नाम से पुकारा जाता है। दोनों नदियों के संगम पर गोरक्ष धूनी है जिसका निर्माण कार्य चल रहा है।

वहां से नासिक आये। आर. टी. ओ. ने वस रोक ली। ड्राईवर से देखने को आवश्यक पत्र लेकर विना कुछ कहे सुने अन्यत्र चला गया। उसके पास कार थी। हमें उस अधिकारी के व्यवहार पर आश्चर्य हुआ। कितने हृदयहीन और अमानवीय व्यक्ति हैं वे लोग। पारीख साहव और महेश जी उनके कार्यालय तक गये। काफी वहस के वाद उसने कागज वापिस लौटाये। इस कार्य में लगभग एक घण्टा लगा। वस, वसस्टैण्ड पर ही थी। इसी बीच जोर की आँधी चली। खूव धूल छा गई। वातावरण वड़ा खराव हो गया। पारीख साहव के आने पर वस वम्वई की ओर चली। लगभग दस किलो मीटर चली होगी कि टायर फट गया। घोर अन्धेरा था अतः दूसरा टायर लगाने में एक घण्टा लगा। काफी देर हो गई।

थाने के पास के पेट्रोल पम्प पर एक टैक्सी लेकर रामदयाल जी सन्ध्या से ही प्रतीक्षा कर रहे थे। वे वस के आगे हो गये। मलाड़ में श्री गहरीलाल जी ने एक फ्लेट वनवाया था। उसमें प्रवेश हेतु उन्होंने श्रीदाता से प्रार्थना की थी। वनवा कर उन्होंने ताला वन्द कर दिया था और यह निर्णय कर लिया था कि इसका ताला श्रीदाता के पधारने पर ही खोला जावेगा। इसी हेतु श्रीदाता का

बम्बई पधारना हुआ था। बम्बई वाले बन्धुजन, थाने वाले शुक्ला साहब और बम्बई वाली माताजी फ्लेट के बाहर श्रीदाता की प्रतिक्षा कर रहे थे। माताजी के हाथ में कुकुम की थाल थी। 'श्रीदाता की जय' से स्वागत किया गया। माताजी श्रीदाता की वही पूजा करना चाहती थी किन्तु उन्होंने मना कर दिया।

श्रीदाता कमरे मे पधार गये। माता जी भी कमरे में पधार गयी। बातचीत होने लगी।

श्रीदाता "आने में देर हो गई। आप लोगो को कष्ट हुआ।"

माताजी "ऐसा कष्ट तो आप रोज ही दिया करे। हमें ऐसी तकलीफ में बडा आनन्द आता है। यहाँ नाना महाराज का पधारना हुआ था। वे आपकी बडी प्रशसा कर रहे थे। सत्सग की बात भी हुई थी।"

शुक्लाजी "दाता आज अक्षय तृतीया है। आज ही तो आपके माताजी के और नाना साहब के दर्शन हुए थे। मेरे लिये तो आज का दिन बडा पवित्र दिन है।

माताजी "जयपुर में आप वृक्ष के नीचे बैठे थे तब ऐसा अनुभव हुआ जैसे हनुमान जी वृक्ष के नीचे बैठे है। मन में कुछ ऐसा हुआ तो हनुमान जी ने फरमाया तुम्हारा हो गया है।"

ओमजी "वह आनन्द तो अनोखा ही था। उस आनन्द की बात कोई नहीं कर सकता।"

इस तरह की बात चल ही रही थी कि माता जी बोली, "कोटि कोटि प्रणाम करू मै देव।" यह कहते हुए वे सतगुरु की आरती बोलने लगी।

नमो नम सद्गुरु देवदेवा
श्रीरामदत्त अवधूत सिद्धय अन्त गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे
गोविन्द गोविन्द मारगपाणी गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण
गोविन्द गोविन्द नमो नमस्ते।

परित्राणाय साधूनाम् ··· इतना बोलते बोलते उन्हें भावावेश हो गया। उनकी वाणी अवरुद्ध हो गई। शरीर काँपने लगा। स्वरूप दिव्य हो गया। शुक्ला साहब की पत्नी ने आगे बढ़कर पहले तो उन्हें पकड़ा फिर कुंकुम की थाली लेकर उनके ललाट पर तिलक किया, माला अर्पण की और चरण छुये। माताजी दाता के सामने खड़ी हो गई। उनके दोनों हाथ स्वतः ही वक्षस्थल पर आ गये। उनके हाथों में कुंकुम आ गई। उन्होंने श्रीदाता के चरणों मे कुंकुम चढ़ाई फिर पुष्पहार पहनाने लगी। श्रीदाता ने पुष्पहार अपने हाथों में ले लिया। इसके बाद माताजी ने मातेश्वरी जी के चरणों में कुंकुम चढ़ाई। वहाँ उपस्थित सब लोगों ने एक-एक कर माताजी को प्रणाम किया। फिर दिन को घर पधारने का निमंत्रण देकर उठ खड़ी हुई। जाते समय बोली, "पधारोगे ना! मेरे तो घर ही नहीं है। सवेरे पधारोगे ना!" शुक्ला साहब ने कहा, "भगवन्! मैं जहाँ भी रहूँ वहाँ आपके चरण अवश्य पड़ें।" वे लोग चले गये।

जो कुछ लिखा जा रहा है वह कुछ नहीं के बराबर है। लेखनी उस समय का चित्रण करने मे कतई समर्थ नहीं है। जिस आनन्द की अनुभूति उस समय हुई थी उसका अंकन भी शब्दों में नहीं किया जा सकता है। यह कह देना मात्र पर्याप्त है कि उस समय अपूर्व आनन्द की प्राप्ति हुई थी। गहरीलाल जी के बड़े आग्रह पर रात्रि के तीन बजे भोजन हुआ। भोजन के पहले पानी की समस्या पैदा हुई। दिन को टंकी भर दी गई थी किन्तु किसी ने टंकी की टूटी खोल दी जिससे टंकी खाली हो गई। इसका ध्यान किसी को नहीं रहा। बड़ी कठिनाई से रात्रि को पानी की व्यवस्था हो पाई।

प्रातः दैनिक कार्यो से निवृत्त होकर कमरे में आ विराजे। भगवान ने कहा, "देखो! यह बम्बई है। समुद्र में है। इसके चारों ओर समुद्र है फिर भी पानी बाहर से आता है। आश्चर्य है हिन्दुओं के तेंतीस करोड़ देवी-देवता हैं फिर भी हिन्दुओं का पेट नहीं भरता। वे कब्र पर पीर पैगम्बर को पूजने जाते हैं। कैसी अद्भुत बात है!" इसके बाद सत्संग की बातें चलने लगी। श्रीदाता ने बताया कि

दाता सर्वत्र है किन्तु जहाँ चाह होती है वही वह प्रगट होता है। उन्होंने अमृतनाथ जी, चैतन्य महाप्रभु आदि के उदाहरण देकर बताया कि जहाँ विश्वास होता है वही वह प्रगट होता है।

शुक्ला साहब ने श्रीदाता को माताजी के यहाँ पधारने के लिए निवेदन किया। वे तत्काल उठ कर कार मे जा विराजे। अन्य लोग भी बस में जा विराजे। डेढ बजे के लगभग बस माता जी के घर के बाहर पहुँच गई। दो-चार व्यक्ति अन्दर गये। श्रीदाता का पधारना नही हुआ था। वे लोग कमरे के बाहर गये ही थे कि श्रीदाता का पधारना हो गया। माता जी ने आगे बढ़ कर श्रीदाता का स्वागत किया। श्रीदाता को कमरे में एक आसन पर बिठा दिया। पास ही मातेश्वरी जी और कुवरानी जी को भी बिठा दिया। कुछ दूरी पर अन्य लोग बैठ गये। माताजी ने आरती सजोई। श्रीदाता के चरणो का प्रक्षालन किया। फिर चदन, कुकम, अक्षत आदि चढ़ाकर पूजा की। ललाट पर कुकुम का तिलक लगाया। फिर फल, सौ रुपये और नारियल लेकर दाता के चरणो में भेंट किया। फिर केले और दूध का प्रसाद दिया। मातेश्वरी जी का भी इसी प्रकार पूजन किया। श्रीदाता ने और मातेश्वरी जी ने श्री भवानी के श्री विग्रह के दर्शन किये। दर्शन के बाद श्रीदाता ने प्रसाद ग्रहण किया। हरदयाल जी ने माताजी के चरणो में प्रणाम कर एक सौ ग्यारह रुपये भेंट किये। इसके बाद हम सब से एक-एक कर तुलजा भवानी के श्री विग्रह के दर्शन किये। हम सब को भी केले का प्रसाद मिला। माताजी ने कैमरा मगाकर श्रीदाता और मातेश्वरी जी का चित्र लिया।

कुछ समय वहाँ विराज कर शुक्ला साहब के मकान पर पधारे। श्री शुक्ला जी पूना के रहने वाले है। उन्होंने थाने में मकान बना लिया। मकान के निर्माण के समय से ही उनकी इच्छा थी कि श्रीदाता का पदार्पण हो। श्रीदाता कार से व हम लोग बस से गये। वहाँ भी बस पहले पहुँची। हम लोग मकान देखकर बाहर आँगन में आकर बैठे। श्रीदाता मकान में पधारे। श्री शुक्ला साहब की प्रार्थना पर मकान के हर कमरे में पधारे। श्री शुक्ला

साहब ने निवेदन दिया, "आज मेरा घर पवित्र हुआ है। अब हम रह सकते हैं।" शुक्ला साहब ने सभी को प्रसाद दिया। वहाँ से चल कर मलाड़ में आये, विभिन्न व्यञ्जनों सहित स्वादिष्ट भोजन किया और विश्राम किया। रात्रि को सत्संग हुआ।

अगले दिन कुछ लोग बम्बई देखने गये। इसके पश्चात भोजन कर विदा हुए। बम्बई वाले भाइयों ने भावभीनी विदाई दी। उनका प्रेम अनुकरणीय था। उन्होंने जो दो दिन सेवा की उसका वर्णन संभव नहीं। एक वर्ष पूर्व भी जब श्रीदाता का बम्बई पधारना हुआ तो इसी तरह की सेवा की थी। उनका प्रेम और उनकी सेवा स्तुत्य है। उभेड़ गाँव मे जाते जाते सन्ध्या हो गई। गिरनार पहुँचना संभव नहीं था अतः वहीं छोटू भाई-धनजी भाई पटेल के नवनिर्मित दो मंजिले मकान मे ठहर गये जिसका उद्घाटन नहीं हुआ था। भोजन साथ ही था अतः खा-पीकर सो गये।

अगले दिन १९–४–८० को प्रातः ही उभेड़ से रवाना होकर अहमदाबाद सड़क छोड़कर सीधे ही बागोदरा सड़क पकड़ी। वहीं मार्ग में बोरी गाँव के कुँए पर ठहर कर भोजन की व्यवस्था की। भोजनोपरान्त वहाँ से प्रस्थान किया। बागोदरा से कुछ दूर रहे होंगे कि एक टायर फट गया। अलग स्टेपनी नहीं रही। बम्बई में उस फटे हुए टायर को भी ठीक कर लिया था जिसे लगा कर धीरे धीरे आगे बढ़े। सोचा राजकोट में दूसरी स्टेपनी खरीद लेंगे, किन्तु वह भी संभव नहीं हो सका। गिरनार दोपहर तक पहुँच कर महेश्वरी धर्मशाला में ठहर गये।

अगले दिन २०–४–८० को जल्दी ही उठ गये व आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर गिरनार की चढ़ाई हेतु निकल गये। पहले की तरह तेज एवं ठण्डी हवा नहीं थी। इस बार तो गर्मी थी। भर्तृहरि जी की गुफा, जैन मन्दिर आदि के दर्शन करते हुए अम्बा माता के मन्दिर तक पहुँचे। वहाँ से गोरक्षनाथ जी के मन्दिर में पधारे। वहाँ कुं. श्री हरदयालसिंह जी ने जोड़े की धोक दी। श्रीदाता और मातेश्वरी जी ने आते ही धोक दे दी थी। अन्य लोगों ने भी धोक दी।

उस समय का बडा मनमोहक दृश्य था। कुंवर श्री हरदयालसिंह जी ने उस समय के चित्र लिये। वहीं एक नाथ सन्त बैठे थे जो प्रत्येक यात्री के यह कहते हुए छाप लगा रहे थे, 'गोरख जति, कट जावे पाप सभी'। सभी ने एक एक रुपया भेंट स्वरूप देकर उस सन्त की सेवा की। उसके बाद नाथ जी के चरण चिन्हों को प्रणाम किया। भीड अधिक होने से श्रीदाता लौट पडे। कुछ लोग दत्त-शिखर पर गये। वापिस लौटते वक्त तेज गर्मी थी। प्रभु कृपा से ज्यों त्यों कर धर्मशाला में दो बजे के लगभग पहुँच पाये। मातेश्वरी जी और कुछ लोगों के पधारने में तीन तक बज गये। नाथ जी की धूनी पर जो आनन्द आया उसका वर्णन सम्भव नहीं। वहाँ के साधु ने श्रीदाता का स्वागत करते हुए कहा था कि यदि आपका विराजना हो जाय तो जाजम बिछा दें। इसके उत्तर में श्रीदाता ने जो कुछ कहा उससे उस स्थान का महत्व जाना जा सकता है। श्रीदाता ने फरमाया था, "यह नाथ की जाजम बिछयोडी है, यही सब से मोटी है। उनमें हैं नौ नाथों में नाथ, चौरासी सिद्धों में सिद्ध, तीनों गुणों में गुण, पाँचों ही तत्वों में तत्व, अजर, अमर अविनाशी, अद्वितीय प्रकाश, सच्चिदानन्द, अवतारों में अवतार, ब्रह्मा, विष्णु, शिव और स्वयं भगवान श्रीकृष्ण आप ही हैं। अगर इस खालडे को उघाड कर देखो तो अन्दर वही विराजमान है। वह सर्वव्यापी है। ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ आप विराजमान न हो। फिर भी स्थान का महत्व है। एक स्थान ऐसा भी चाहिये जहाँ नाथ के नाम पर सिर टेक सके।

उस दिन सब थक गये थे अतः खा-पीकर सो गये। अगले दिन प्रातः ही रवाना होकर सोमनाथ पहुँचे। वहाँ के दर्शन कर शारदा ग्राम स्कूल में ठहरे। वहाँ से चलकर आगे बढे। सन्ध्या के कुछ पूर्व बडी अच्छी गति से बस जा रही थी। सभी भजन बोलने में मस्त थे। मार्ग में एक ट्रक जा रहा था। ट्रक ने मार्ग दे दिया जिससे बस की गति में कमी नहीं आई। बस ज्योंही ट्रक को पार कर आगे बढी कि एक सायकिल वाला सामने आ गया। वह था तो सडक के किनारे किन्तु कुदरत दाता की, उसकी साईकिल फिसली।

साइकिल के पीछे डेढ़-दो मन के करीब लोहे का सामान था। साइकिल एक ओर गिरी और वह व्यक्ति विलकुल वस के सामने आ गया। लगभग चार-पांच फीट आगे रहा होगा। ऐसी स्थिति देख कर ड्राईवर के तो हाथ पाँव ही फूल गये। किन्तु दाता की लीला, एक झटका लगा। वस सडक छोड़ कर छोटे मोटे जाड़ों से टकराते-तोड़ते सड़क से नीचे उतरी और दूसरे क्षण वापिस सड़क पर आ गई। कैसे क्या हुआ दाता ही जाने। वह व्यक्ति सड़क से उठा भी नहीं था कि उसे वचाते हुए वस आगे निकल कर रुक गई। ट्रक भी रुका। झटका लगते ही हमे ऐसा लगा कि वस उलट रही है। हम सव भी घवरा कर श्रीदाता की जय वोल उठे। यह सव इतना शीघ्र हुआ कि कहते नहीं वनता। ड्राईवर थरथर कांप रहा था। वह नीचे उतर कर श्रीदाता के सामने आकर साष्टांग प्रणाम कर वैठ गया और रोते हुए वोला, "भगवन्! ऐसा मैंने क्या अपराध किया जिसमे इतनी वड़ी सजा देने की सोची।" श्रीदाता ने उसे पुचकारते हुए कहा, "तुम्हारी इसमें कोई गल्ती नही है। दाता की लीला ही विचित्र है। मारने वाले से वचाने वाला वड़ा है। आज दाता ने महर कर अपनी सव की लाज रख ली और हम सव को वचा लिया है। उसके नाम को याद करो।" कुछ समय वाद वह आश्वस्त हुआ। वह व्यक्ति उठा। माफी मांग कर व प्रणाम कर रवाना हुआ। हम लोग प्रभु की महर के गुणगान करते हुए मूल द्वारिका पहुँचे। वहाँ शिव मन्दिर, ज्ञान वाटिका, द्वारिकाधीश आदि के दर्शन कर आगे वढ़े। वहाँ से चल कर कवीर आश्रम मे पहुँचे। एक पार्टी पहले ही ठहरी हुई थी अतः परेशानी अवश्य हुई किन्तु गर्मी के दिन थे व वहाँ लम्वा चौड़ा आँगन था अतः हमने अपने आप को व्यवस्थित कर लिया। कठिनाई यह थी कि वहाँ भी गन्दगी थी और मछलियों की दुर्गन्ध आ रही थी। ज्यों त्यों कर रात्रि निकाली।

अगले दिन प्रातः ही शौचादि से निवृत्त होकर द्वारिकाधीश के मन्दिर में गये। दर्शन कर आनन्दित हुए। वहाँ से दर्शन कर वेट द्वारिका गये। लोगों ने स्टीमर में चलने का आनन्द लिया।

बेंट द्वारिका में सभी दर्शन कर वापिस लौटे। समुद्र के किनारे समुद्र ही में स्नान कर वहाँ से रवाना हुए। जामनगर, राजकोट होते हुए नीमडी में शीतला माता के मन्दिर पर जाकर रात्रि विश्राम किया। पूर्व की भाँति इस बार भी श्रीदाता रात्रिभर जागते रहे।

अगले दिन चल कर अहमदाबाद पार किया। आगे चल कर एक कुँए पर ठहर कर भोजन की व्यवस्था की। वहाँ से मस्ती से भजन-कीर्तन करते हुए उदयपुर पहुँचे। राधेश्याम जी और मागीलाल जी के आग्रह पर रात्रि विश्राम वही किया। उदयपुर वालो की सेवा अद्वितीय थी। दिनाक २४-४-८० को प्रात ही श्रीदाता के दर्शनो के लिए कई लोग आ गये। मोटर मालिक भी आया। श्रीदाता के दर्शन कर वह भी बडा प्रभावित हुआ। खूब सत्सग चला। श्रीदाता ने अपने बचपन के कई सस्मरण सुनाये। फिर वहाँ से नौ बजे विदा होकर दाता-निवास पहुँचे। इस प्रकार प्रभु कृपा से यह यात्रा बडे आनन्द के साथ सम्पन्न हुई।

○ ○ ○

भक्त गेमाजी पर कृपा

भीलवाड़े के कुछ सत्संगी अध्यापक वन्धुओं का स्थानान्तरण डूंगरपुर जिले में हो गया। एक अध्यापक सीमलवाड़ा भी पहुँचा। सीमलवाड़े के पास ही खण्डेश्वर महादेव नामक एक प्राचीन मन्दिर है जो उस क्षेत्र का एक आकर्षण है। वहाँ श्री रामदास जी और श्री मधुरामदास जी नामक साधु आ विराजे। उन्होंने आदिवासियों की सहायता से एक आश्रम की स्थापना कर दी। आसपास के लोग अपनी आध्यात्मिक पिपासा को शान्त करने आ जाया करते हैं। आये दिन वहाँ अभिषेक, भजन, कीर्तन आदि हुआ करते है। भक्त हृदय अध्यापक जी भी वहाँ जाने लगे। उनसे एवं श्रीदाता के जीवन से सम्बन्धित साहित्य के माध्यम से न केवल दोनों ही सन्त वरन् आसपास की जनता एवं भक्त-हृदय-जन श्रीदाता के बारे में जानने लगे। पुस्तकों की जानकारी से उनकी श्रीदाता के दर्शनों की इच्छा जागृत हुई व श्रीदाता के चरणों में श्रद्धा भी उत्पन्न हुई। वे श्रीदाता के दर्शनों की इच्छा करने लगे। जो भगवत् प्रेमी होते हैं उनके हृदय में सुन्दर भावों का जागृत होना स्वाभाविक ही है।

राम को नाम अनंत है अंत न पाये कोय।
'भीखा' जस लघु वुद्धि है, नाम तवन सुख होय॥
नाम का रंग मँजीठ, लगै छूटै नहिं भाई।
लचपच रहो समाय, सार ता में अधिकाई॥

राम नाम के साथ ही साथ दाता नाम से उन्हें रुचि होने लगी।

सीमलवाड़े के पास ही शीतल नामक गाँव है जिसमे डामोर गोत्र वाले भीलों के धर्मगुरु श्री गेमाजी रहते है। वे शुद्ध एवं सात्विक हृदय वाले पवित्र आत्मा हैं। एक धर्मगुरु में जो गुण होने चाहिये वे सब उनमें विद्यमान है। डामोर गोत्र वाले उनपर अपने प्राण न्योछावर करते हैं और उन्हें भगवान का अवतार ही मानते हैं। वे गृहस्थी हैं तथा उनका खान-पान शुद्ध एवं सात्विक है।

निरन्तर भगवान कृष्ण एव भगवान राम की भक्ति में लीन रहते है। उनका लडका एव कुटुम्ब के अन्य बालक सीमलवाडा स्कूल में पढते थे। वे भी भक्त-हृदय अध्यापक जी के सम्पर्क में आये। सत्सग के प्रति रुचि तो थी ही अत वे भी श्रीदाता के चरणो में प्रीति रखने लगे। श्रीदाता रूपी सूर्य की रोशनी गेमाजी के हृदय मन्दिर में भी पहुँची। तत्री का तार झकृत हुआ और श्रीदाता के दर्शनो की तीव्र इच्छा जागृत हुई। वे अपनी इस इच्छा का दमन नही कर सके और सन् १९८१ की शिवरात्रि पर वे दाता-निवास पहुँच गये। जाति के भील होने से उनके मन में सकोच हुआ कि कही श्रीदाता उनकी उपेक्षा तो नही कर देंगे। श्रीदाता के स्वभाव से परिचित न होने से ऐसी शका का होना स्वाभाविक ही था। किन्तु दाता तो महान् है तथा साथ ही घट घट वासी है। गेमाजी के हृदय में उठे हुए भावो को जान लिया और अपने भक्तो सहित आगे बढकर उनका इस प्रकार स्वागत किया जैसे एक भक्त भगवान का स्वागत करता है। उनकी कुशल क्षेम पूछ कर उन्हे अपने पास आसन देकर विठाया और उचित सम्मान दिया।

श्री गेमाजी श्रीदाता और उनके भक्तो द्वारा दिये गये सम्मान एव प्रेम से गद्‌गद् हो गये। जब उन्हे श्रीदाता का प्रवचन सुनने को मिला तब तो वे दाता के प्रति असीम श्रद्धावान हो गये। हरेहर के वक्त के दर्शनो से तो वे श्रीदाता को पूर्णतया सत्‌गुरु के रूप में ही देखने लग गये। उन्होने श्रीदाता के चरणो में साष्टाग प्रणाम कर लिया। भाव ही बदल गये।

तेरा मैं दीदार दिवाना।
घडी घडी तुझे देखा चाहूँ, सुन साहेब रहमाना॥
हुआ अलमस्त खबर नहि तन की, पिया प्रेम पियाला।
ठाढ होऊँ तो गिर गिर परता, तेरे रग मतवाला॥
खडा रहूँ दरबार तिहारे, ज्यो घर का बदाजादा।
नेकी की कुलाह सिर दीये, गले पैरहन साजा॥

तीजी और निमाज न जानूँ, ना जानूँ धरि रोजा।
बाँग जिकर तबही से बिसरी, जब से यह दिल खोजा॥
कहैं मलूक अब कजा न करिहौं, दिल ही सों दिल लाया।
मक्का हज्ज हिये में देखा, पूरा मुरसिद पाया॥

गेमाजी ने पूर्णतया आत्मसमर्पण कर दिया।

तीन दिन उनका दाता-निवास ठहरना हुआ। ये तीन दिन उनके बड़े आनन्द से बीते। जाते वक्त उन्होंने दाता से शीतल पधारने की प्रार्थना की जिसे श्रीदाता ने स्वीकारा और उन्हें सभेंट विदा किया।

श्रीदाता अपने दिये हुए वचन को कभी नहीं भूलते हैं। रंगपंचमी के तीन चार दिन पूर्व उन्होंने अपने कुछ भक्तों को उदयपुर दिनांक २३-३-८१ को पहुँचने के निर्देश दे दिये। श्रीदाता कार द्वारा दोपहर तक उदयपुर पधार गये। जयपुर, भीलवाड़ा आदि स्थानों के लगभग चालीस व्यक्ति एकत्रित हो गये। कार्यक्रम अचानक बना व प्रयत्न यह किया गया कि गुप्त रखा जाय किन्तु आग को कोई छिपाना चाहे तो क्या वह छिप सकती है। लोगों को बात की बात में पता चल गया और अनेक स्त्री-पुरुष श्रीदाता के दर्शनार्थ उपस्थित हो गये। सभी सत्संग की इच्छा लेकर आये थे। श्रीदाता यात्रा से यद्यपि थके हुए थे फिर भी जिज्ञासुओं की जिज्ञासा को देखकर उनके बीच में जाकर विराजे। उन्होंने उन्हें दाता के चरणों में प्रेम रखने को कहा। शान्ति दाता के चरणों में ही है। सत्गुरु ही एक ऐसी शक्ति है जो परेशानियों को दूर कर शान्ति दे सकता है। काम सब करना ही है। न करने पर कर्महीन हो जावेंगे। काम करना है किन्तु उसमें लिप्त नहीं होना है। लिप्त होने पर ही कर्मबन्धन में बँधना पड़ता है। उसको याद रखने से मार्ग अपने आप मिल जावेगा। वासना-कामना से हमें रहित होना चाहिये। कामना यानी इच्छा रखनी है तो केवल मात्र दाता की ही। इस प्रकार बड़ी देर तक श्रीदाता का प्रवचन होता रहा। सभी बड़े प्रभावित हुए। अन्त में श्रीदाता उठकर कमरे में पधार

गये। सीमलवाडे मे कुछ भक्त लोग और श्री रामदास जी पधारे हुए थे। श्रीदाता की मधुर एव अमृतवाणी से वे बडे प्रभावित हुए। दाता के कमरे मे पधार जाने पर वे भजन बोलने लगे।

मै तो गिरधर आगे नाचूगी ।

भजन के प्रारभ होते ही श्रीदाता वापिस पधार गये। वे भावमग्न होकर समाधिस्थ हो गये। जब वे बाहरी दुनिया में आये तो फरमाया, "यह नाचने वाली सुरता रूपी सुन्दरी है। वह सदैव इस गिरधारी अर्थात् पचतत्व के शरीर को धारण करने वाले दाता के सामने नाचती है। वह अपने स्वरूप को प्राप्त करना चाहती है। इस हेतु यह श्रृङ्गार करती है और अनेक प्रकार से हावभाव दिखाती है। जब तक पिया के दर्शन नही होते है तभी तक श्रृङ्गार और हावभाव है। दर्शन होते ही सब श्रृङ्गार उतर जाते है। फिर तो शुद्ध रूप ही रह जाता है। उसकी याद बनाये रखो। वह हमारे में ही है अत उसे भीतर देखो। कहा है –

जाके पिया परदेश बसत है, लिख लिख भेजे पाती।
मेरे पिया मेरे घर बसत है, कहूँ न आती जाती॥

हमारा पिया तो देश-विदेश कही नही जाता। भ्रम का परदा पड जाने पर वह विदेश में अर्थात् ओट में है। भ्रम का परदा हटा नहीं कि वह घर में ही दिखाई देने लगता है। मीरा ने उसे घर में ही देखा है। आपको भी अपने पिया को देखना है तो घर में ही ढूंढो। उसको रिझाने के लिए वही नृत्य करो। वह अवश्य ही प्रगट होगा।" इस प्रकार बडी देर तक श्रीदाता समझाते रहे।

रात्रि को भी सत्सग चला। अगले दिन कुछ लोगो सहित श्री रामदास जी सीमलवाडे पधार गये। श्रीदाता दिन को सत्सग में विराज गये। उदयपुर के अनेक भक्त लोग आ गये थे। श्रीदाता ने उन्हे सत्गुरु को पकड लेने को कहा। उन्होने कहा –

एक ही साधे सब सधे सब साधे सब जाय।

सतगुरु परदे में रहता है। वह सब कुछ करते हुए भी अकर्ता है।

करम अकरम करे विधि नाना फिर भी रहे अकर्ता रे।

सतगुरु वास्तव में सतगुरु ही है। वह कठपुतली वाले की तरह सब को नचाता है। जीव समझ बैठता है कि वही नाच रहा है। यही तो भूल है। गुरु के आदेश का निरन्तर पालन होना चाहिये तथा गुरु से कभी शिष्य को मान-सम्मान की इच्छा नहीं रखनी चाहिये। एक कवि ने लिखा है :—

अहं अग्नि निशि दिन जरे, गुरु से चाहे मान।
तिनको मम न्यौता दिये, होहु हमार महमान ॥

इस प्रकार के विचार श्रीदाता व्यक्त करते रहे।

शाम को ४-४५ बजे श्रीदाता ने एक बस व एक जीप में सीमलवाड़े के लिए प्रस्थान किया। उदयपुर से कुछ ही दूर चले होंगे कि कीर्तन प्रारंभ हो गया। "श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेवा" ॥ 'श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभुनित्यानन्दा, हरे दाता हरे कृष्ण राधे गोविन्दा' और 'भज गोविन्दं बालमुकुन्दं परमानन्दम् हरे हरे' क्रमशः गाये गये। कीर्तन इतने जोर का हुआ कि वहाँ विद्यमान लोगों ने बताया कि उन्होंने ऐसा दिव्य कीर्तन न कभी सुना और न देखा ही। श्रीदाता ही नहीं वरन् अनेक भक्तलोग भावविभोर होकर कीर्तन कर रहे थे। अनेक भावविभोर होकर बस में ही उछल कूद कर रहे थे। कई भक्तों के आनन्दाश्रु बह रहे थे। बस डूँगरपूर पार कर सीमलवाड़ा के पास पहुँची तब तक लोगों को कुछ ध्यान ही नहीं था। वे कीर्तन में इतने मस्त थे। सीमलवाड़े के पास पहुँचते पहुँचते अन्धेरा हो गया। सड़क की मोड़ पर सड़क के किनारे एक बहुत बड़ा गड्ढा था। अचानक बस उस गड्ढे में चली गई। गड्ढा काफी गहरा था। बस गिरते गिरते बची। गिर ही जाती लेकिन ऐसा लगा कि किसी ने बस को हाथ पर उठाकर सड़क पर रख दिया हो। बस ठहर गई। लोग बस से बाहर निकले। पास के गड्ढे को देखा। देख कर आश्चर्यचकित से रह गये। गड्ढा इतना बड़ा था कि पूरी बस उसमें समा जाती। श्रीदाता ने सब को बचा लिया अन्यथा क्या हुआ होता। रात्रि के नौ बजे महादेव जी के मन्दिर में पहुँचे। ज्योंही श्रीदाता वहाँ पहुँचे लोग मन्दिर के बाहर आ गये। श्री रामदास जी, मधुरामदास जी

सब से आगे थे। श्री रामदास जी के हाथ में पूजा की थाली थी। आरती के बाद 'श्री दाता की जय' निनाद हुआ। वहाँ वालो ने श्रीदाता का भव्य स्वागत किया। श्रीदाता मन्दिर में जाकर विराजे। फिर भजन बोले जाने लगे जो रात्रिभर चलते रहे। प्रात ही पास ही स्थित नदी पर जाकर विराजे। अमूमन श्रीदाता किसी के यहाँ भोजन प्रसाद करते नहीं है। साधुओ पर या सस्थाओं पर भार डालना तो उन्हे बिल्कुल ही पसन्द नही है। उनका कहना रहता है, "हम गृहस्थी हैं। दाता ने लोगो की सेवा करने का अवसर दिया है तो सेवा करनी चाहिये। साधुओ की सेवा करे या उनसे सेवा करवावे।"

श्री रामदास जी तो इधर के नियमो से परिचित नही थे। भक्त अध्यापक भी एक प्रकार से अनभिज्ञ ही थे। घर में मेहमान आये हैं, यह सोच कर उन्होने प्रसाद तैयार कर लिया। प्रसाद भी चावल, दाल का होता तो अलग बात है, मोहन भोग बना लिया। जब श्रीदाता को मालूम हुआ तो उन्हे अटपटा लगा। स्नानोपरान्त उन्होंने प्रस्थान की आज्ञा दे दी। इस पर वहाँ के महन्त जी कुछ असन्तुष्ट हो गये। उनका ऐसा करना भी स्वाभाविक ही था। उन्होंने श्रीदाता से वही विराजने और प्रसाद पाने की प्रार्थना की।

श्री रामदास जी "भगवन्! ऐसा नही हो सकता। आपको यही विराजना होगा। सब का भोजन प्रसाद भी यही होगा।"

श्रीदाता "म्हाका राम तो दाता का एक साधारण सा किंकर हैं। आप बडे है और स्वतत्र हैं। म्हाका (मेरा) राम तो गुलाम है। गुलाम के हाथ में क्या है। उसके हाथ में तो हुक्म का पालन ही है। मेरे दाता जो भी हुक्म देते है उसका पालन करना ही पडता है। आपने प्रसाद बना लिया तो बडी कृपा की, प्रसाद लेने वाले अनेक है। कण कण पर नाम लिखा है। जिसके नाम का कण है वह लेगा ही। आपकी महर हो गई जो आपके दर्शन हो गये। अब हमें जाने की आज्ञा दीजिये।

वहता पानी निर्मल, भरिया गँदला होय ।
साधु तो रमता भला, दाग न लागे कोय ।।

भोगी का काम सन्तों के दर्शन करना है, उनकी मेवा करना है। सन्तों को कष्ट देना उनका काम नहीं है। आप को हम लोगों ने रात्रिभर कष्ट दिया, यह अपराध भी कम नहीं है। आपके दैनिक कार्य में वाधा ही डाली किन्तु मजबूरी थी। अव अधिक ठहरने की मेरे दाता की आज्ञा नहीं है अतः हम लोग जाने की आज्ञा चाहते हैं। भोजन करना इस गुलाम के हाथ मे नही है। वन्दे के हाथ मे क्या है? जो कुछ है दाता के हाथ है। दाता की आज्ञा के विना कोई कुछ नहीं कर सकता है। उसकी इच्छा के विना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता है।" "म्हाका राम वृन्दावन गया। साथ मे वहुत लोग थे। एक दिन उन्होंने वाँकेविहारी जी के मन्दिर मे प्रसाद लेने का निश्चय किया। प्रसाद तैयार होने पर सभी लोग वहाँ पहुँचे। वहां जाने पर भोजन करने का मन ही नहीं हुआ। वड़ा आश्चर्य है। वाँके विहारी जी का प्रसाद है और आज्ञा नहीं हो रही है। लोगों ने वड़ा आग्रह किया किन्तु मजबूरी थी। म्हाका राम ने भोजन नहीं किया। अतः आप लोगों को नाराज नहीं होना चाहिये।"

इस वात का श्री मथुरामदास जी पर वड़ा प्रभाव पड़ा। वे पानी पानी हो गये और रोते हुए वोले, "भगवन्! आप प्रसाद को स्वीकार नहीं करते तो कोई वात नही है किन्तु कुछ प्रसाद तो भक्तो में वाँट लेने दीजिये।" श्रीदाता ने ऐसा करने की आज्ञा दे दी। वे वहाँ से उठकर अन्यत्र जाकर विराजे। गढ़ा के कुछ लोग उनके पास जाकर खड़े हुए। गत रात्रि को आरती के समय उन लोगों को श्रीदाता के वारे में विचित्र सा अनुभव हुआ था। एक को तो श्रीदाता कृष्ण रूप में दिखाई दिये थे। उनको खड़े देखकर श्रीदाता ने पूछा, "आप फरमावें। आप क्या चाहते हैं?"
भक्तगण··· "आपकी महर है। आपके दर्शन करने आये थे सो दर्शन हो गये।"
श्रीदाता··· "दर्शन तो दाता के। म्हाको राम तो दाता का कूकर है।"

भक्तगण "आप क्या है यह तो हमने अच्छी तरह देख लिया है। रात्रि को आप पधारे तब भी यहाँ की सब गायें आप के पास आकर खडी हो गई थी। अभी भी जब आपके पधारने का समय आया तो देखिये सब की सब आप के दर्शनार्थ आकर उपस्थित हुई है। सभी किस तरह आपको देख रही है। यह बताता है कि आप क्या है?"

श्रीदाता "यह तो इनका और आपका बडप्पन है।"

भक्तगण "हमें दु ख इसी बात का रहेगा कि आपका नाम और आपका कार्यक्रम सुनकर आसपास के गाँवो के अनेक लोग आ रहे है। वे निराश होंगे। हम उन्हे क्या कहेंगे?"

श्रीदाता "म्हाका राम की तरफ से क्षमा माग लेना।"

श्रीदाता भी हँसने लगे और उपस्थित मण्डली भी हसने लगी। कुछ ही देर में श्रीदाता वहा के दोनो सन्तो का सम्मान कर और भेंट पूजा कर रवाना हो गये। सीधे शीतल में भक्त गेमाजी के यहाँ पधारे। गेमाजी ने अपने सभी कुटुम्ब के लोगों को साथ लेकर बडी भावभक्ति से श्रीदाता और उनके भक्तो का स्वागत किया। गेमाजी की घर की महिलायें आँगन लीप रही थी व उसमें माटणे माट रही थी। श्रीदाता अचानक ही पहुँच गये थे। आरती की थाली इत्यादि सजा कर एक ओर रख दी थी किन्तु समय पर सब ही भूल गये। केवल भूमि पर लेट कर प्रणाम ही कर सके। प्रणाम के बाद आरती हुई। आरती के बोल थे– "सतगुरु की उतारे रे आरती' आदि गुरु की उतारे रे आरती। गोरख की उतारे रे आरती। आरती रे आरती, मन भावन की आरती।" ढोलक-मजीरों के साथ उन्ही की भाषा मे आरती बोली गई। उस समय कई बालक नृत्य कर रहे थे व उछल रहे थे। अद्भुत दृश्य था। प्रेम का स्रोत क्या नदी ही बह रही थी जिसमे सौभाग्यवान प्राणियों को ही जिन पर दाता की महर होनी है, स्नान करने का अवसर मिलता है। आरती के बाद श्रीदाता बरामदे में जा बिराजे। वहाँ गेमाजी की मण्डली भजन बोलने लगी। फिर एक बार उनकी

मण्डली व एक बार इधर की मण्डली भजन बोलने लगी। बड़ा दिव्य ही दृश्य था। आनन्द की पराकाष्ठा थी। गेमाजी की मण्डली ने तो दिल खोल कर ही रख दिया। ऐसा निश्छल प्रेम देखने को कहाँ मिलता है। बड़ी देर तक पीयूषधारा बहती रही।

उस दिन रंगपंचमी थी। रंगपंचमी पर उधर होली खेलने का रिवाज है। पाटीदार व अन्य लोग आ जाते हैं। उस दिन भी उपस्थित थे। पानी और रंग से कोठियाँ भरी थी। होली खेलना प्रारंभ हुआ। सत्संगी बन्धुओं के पास भी गुलाल थी। उन्होंने गेमाजी व उनकी मण्डली के लोगों पर गुलाल डाली। फिर एक दूसरे पर रंग डाला। डट कर होली खेली गयी व होली के भजन बोले गये। भजन बागड़ी बोली मे थे जो सरलता से नहीं समझे जा सके फिर भी उनकी ध्वनि में माधुर्य था। सुनते ही एक प्रकार की मस्ती आती रही। सभी प्रेम में मस्त थे।

होली के बाद सभी श्रीदाता के सामने जाकर विराजे। चाय दूध की मनुहार हुई। श्रीदाता ने पानी मांगा। इसपर गेमाजी दौड़ कर पानी लाना चाहते थे किन्तु श्रीदाता ने पूजा का लोटा मांगा। पूजा के लोटे का पानी पूजा के समय खर्च कर दिया गया था। श्रीदाता ने उसी लोटे को लिया। उसमें चार-पाँच बूंद पानी था। उसी पानी को हथेली में लेकर भगवान के भोग लगाकर ग्रहण कर लिया। उदयपुर से प्रस्थान के बाद से पानी भी वहीं प्रसाद के रूप मे वे जल की बूंदें थी। श्री गेमाजी ने भोजन की खूब मनुहार की किन्तु श्रीदाता ने मना कर दिया। गेमाजी ने श्रीदाता को अपना पूरा घर बताया। एक छोटा सा बगीचा था जिसमें विविध प्रकार के पेड़-पौधे थे। वे श्रीदाता को बगीचे मे ले गये और प्रत्येक पेड व पौधे को बताया। श्रीदाता ने उस बगीचे की बड़ी सराहना की। वहाँ से अन्त में श्रीदाता ने आज्ञा माँगी। इसपर गेमाजी और कुटुम्बी जनों की विचित्र स्थिति हो गई। उनके नेत्रों में आँसू आ गये। कई बच्चे तो फूट फूट कर रोने भी लगे। विदाई का अद्भुत दृश्य था। उनका सच्चा प्रेम ही था जिसने श्रीदाता को वहाँ आने के लिए मजबूर किया। कहा भी है :–

प्रबल प्रेम के पाले पड कर प्रभु को नियम वदलते देखा ।
अपना मान भले टल जावे, भक्त मान न टलते देखा ॥
जिनकी केवल कृपा दृष्टि से, सागर सप्त उवलते देखा ।
उनको गोकुल के गोरस पर, सौ सौ बार मचलते देखा ॥
जिनके चरण कमल कमला के, करतल मे न निकलते देखा।
उनको हरि भक्तो के कारण, कण्टक पथ पर चलते देखा ॥
जिनका ध्यान विरचि शम्भु सनकादिक, से न सभलते देखा।
उनको ग्वाल सखा मण्डल में, लेकर गेंद उछलते देखा ॥
जिनकी वक्र भृकुटी के भय मे, सागर सप्त उवलते देखा ।
उनको ही यशोदा के भय मे, अश्रु विन्दु दृग ढलते देखा ॥

सुदामा जी चावल की पोटली लेकर भगवान कृष्ण के पास गये थे। भगवान ने दो मुठ्ठी चावल ग्रहण कर सुदामा को त्रिलोक की सम्पत्ति दे दी । यहाँ श्रीदाता ने भक्त गेमाजी के हाथो जल की बूँदें ग्रहण कर उन्हे निहाल कर दिया । जो आनन्द श्रीदाता ने उन्हे दिया उसका वर्णन कर पाना देवो के लिये भी शक्य नही है । श्रीदाता सभी को आनन्दित कर वापिस पधार गये ।

गेमाजी के बच्चे का जन्म-दिवस था । वह एक वर्ष का होने जा रहा था । उन्होंने इस अवसर पर श्रीदाता को पधार कर पूजा में विराजने और बच्चे व कुटुम्बी जनो को आशीर्वाद देने हेतु प्रार्थना की। दाता तो दीनदयाल जो ठहरे। उनके प्रेम के आगे कुछ बोल ही नहीं सके । न केवल श्रीदाता ही वहाँ जाने को तैयार हुए वरन् उन्होंने जयपुर, अजमेर और भीलवाडा क्षेत्र वालो को भी बुलवा भेजा । सभी उदयपुर में एकत्रित हो गये । उदयपुर वालो ने बस की व्यवस्था कर दी । सभी कीर्तन करते हुए शीतल सध्या समय पहुँचे । भक्त गेमाजी के सारे कुटुम्बी जन और आसपास के लोग सडक पर आकर उपस्थित हुए । सडक पर ही स्वागत द्वार बना दिया गया । चार बजे से ही प्रतीक्षा कर रहे थे । ज्योही जीप की रोशनी दिखायी दी वे उठ गये व मृदग तथा झांझ पर भजन बोलने लगे । बस के रुकते ही 'दाता की जय' बोलने लगे "श्रीदाता के

उतरते ही सभी ने भूमि पर लेट कर प्रणाम किया। फिर श्रीदाता की व भक्तजनों को लेकर मकान के आँगन में गये। भजन मण्डली श्रीदाता के आगे आगे भजन बोलती हुई चल रही थी। बड़ा भावभीना स्वागत था। सडक से मकान के आँगन तक जाने में लगभग आधा घण्टा लगा। श्रीदाता को दूसरी मन्जिल के बरामदे में ठहराया गया जिस पर सीढ़ी लगा कर चढ़ना पड़ा। अन्य लोग इधर उधर बरामदों व कमरों में ठहर गये। भोजन साथ में था ही। दूध एवं मठ्ठा की व्यवस्था वहाँ से हो गई। उन्होंने तो भोजन की व्यवस्था भी की थी। पाटीदार आदि अन्य भी कई लोग थे किन्तु साथ वाला भोजन खराब होता अतः उनसे क्षमा मांग कर साथ में लाया हुआ भोजन काम में लिया गया।

पूजन का कार्य रात्रि को बारह बजे से प्रारंभ हुआ। पूजन की विधि सामान्य पूजन विधि से बिलकुल भिन्न थी। पूजागृह के बाहर बरामदे में आँगन को गोबर और गोमूत्र से लीप कर उसमें आटे से चौक पूरा गया। सत्गुरु, राम, कृष्ण और विभिन्न देवताओं के लिए अलग अलग स्थान निर्धारित किया गया। मंत्र क्या थे यह बात तो समझ में नहीं आयी कारण सभी बोली उनकी ही भाषा में थी और वह भी अपभ्रंश। समझने का प्रयत्न खूब किया किन्तु सब बेकार। श्रीदाता को पूजागृह में चार बजे जब पूर्णाहुति का समय हो तब लाने का कार्यक्रम था। इस बीच वे अपने ही तोर तरीकों से अपने कुटुम्बि जनों के साथ पूजा करते रहे।

श्रीदाता जहाँ विराजे थे वहाँ सत्संगी बन्धु आ बैठे। कुछ बातचीत के बाद श्रीदाता ने उन्हें कीर्तन करने को कहा। वे लोग शान्त स्वर में कीर्तन करने लगे। कीर्तन अधिक समय तक नहीं चल सका। श्रीदाता ने सब को विश्राम करने को कहा। अन्य लोग विश्राम करने चले गये किन्तु कुछ लोग श्रीदाता के पास ही बैठे रहे। श्रीदाता ने उन्हें सदा सत्य बोलने के लिए कहा। श्रीदाता ने कहा, "कभी झूठ नहीं बोलना चाहिये। कैसी भी परिस्थिति क्यों नहीं आवे, कभी झूठ न बोले। साँच का मतलब ही आप है। साँच बोलने वाले की अन्त में विजय ही होती है। साँच सभी अवगुणों को दूर कर देता है।"

श्रीदाता ने इस बारे में एक कहानी कही। उन्होने फरमाया कि एक व्यक्ति ऐसा था जिसमें हर प्रकार के अवगुण भरे पड़े थे। वह झूठा, चोर, व्यभिचारी, दुरात्मा, कुकर्मी, द्रोही, वाचाल आदि सभी था। लोग उससे बडी घृणा करते थे। वह जहाँ भी जाता लोग उस पर थूंकते थे। शर्म के मारे उसका दिन में घर से निकलना भारी पड गया। जो कुछ बदमाशी करना रात्रि में ही करता। संयोग से एक दिन रात्रि में उसे एक साधु मिल गया। उसने उससे बात की। वह गद्गद् हो गया और बोला, "आप ही ऐसे आदमी मिले हैं जिन्होंने प्रेम से मुझ से बात की है अन्यथा सभी लोग घृणा करते हैं।" इसपर साधु ने कारण जानना चाहा। उसने साफ साफ बता दिया कि वह अवगुणों की खान है। साधु ने उसे धैर्य बँधाते हुए बताया कि यदि उसकी एक आज्ञा मान जावे तो उसका कल्याण हो सकता है। उसे कभी किसी भी परिस्थिति में झूठ नही बोलना चाहिये। उस व्यक्ति ने साधु की यह बात मान ली और संकल्प कर लिया कि वह झूंठ नही बोलेगा। धीरे धीरे लोगो को मालूम हुआ कि वह सदा सत्य बोलता है तो उसमें उन्होने घृणा करना कम कर दिया। वह व्यक्ति गरीब तो था ही। अपनी रोजी-रोटी चोरी करके ही चलाता था। धन के अभाव में चोरी करने निकला। वहाँ का राजा बडा न्यायी था। वह प्रति दिन वेष बदल कर राज्य में फेरी लगाता था। एक दिन जब राजा शहर में चक्कर लगाने गया तो उस व्यक्ति ने राजा का वेश धारण किया और महलो में गया। चौकीदार ने उसे टोका तो उसने कह दिया, 'देखते नही हो।' उसे राजा के वेश में देख कर चुप हो गये। इस प्रकार महलो तक, यहाँ तक कि खजाने तक पहुँचने में उसे कोई कठिनाई नही हुई। सौभाग्य से खजाने की चाबी भी वही मिल गई। खजाना खोला। एक डिबिया में छ हीरे रखे थे। उनमे से उसने चार हीरे ले लिये और खजाना बन्द कर जिस मार्ग से आया था उसी से चला गया। प्रात खजाची ने जब खजाना संभाला तो उसने चार हीरे चोरी गये पाये। वहाँ केवल दो ही हीरे थे। खजाची के मन में बेईमानी आयी। उसने दो हीरे उठा कर घर भिजवा दिये और हीरो की चोरी जाने की खबर राजा के पास कर दी। तहलका मच गया।

चोर तो वह था ही अतः लोगों की शंका उस पर भी गयी। उसे बुलाया गया। उसने सच सच कह दिया। राजा को उस पर विश्वास हो गया। दो हीरों का पता चलाने पर खजान्ची दोषी पाया गया। राजा ने खजान्ची को हटा कर उस व्यक्ति की सत्यता पर प्रभावित होकर उसे खजान्ची बना दिया। एक सत्य भाषण पर उस व्यक्ति का कैसा परिवर्तन हो गया। अतः किसी को असत्य भाषण नहीं करना चाहिये।

सत्य बोलने पर दाता बड़े से बड़े अपराध को क्षमा कर देता है। इस सम्बन्ध में भी श्रीदाता ने एक उदाहरण दिया। भीलवाड़ा जिले में ही एक देवस्थान है जहाँ एक उच्च कोटि का साधु रहता था। वह पवित्रात्मा एवं महान् था। धूणी पर आने वालों की सेवा करता था। उसने अपने आश्रम मे फल-फूलों के पौधे लगा दिये थे। एक प्याऊ भी बना दी थी। जानवर पानी पीकर तृप्त होते थे। एक बार कुछ रेबारी उधर आ निकले। उनके ऊँट बगीचे मे नुकसान करने लगे। दो-चार बार समझाने पर भी जब वे नहीं माने तो एक दिन भय देने हेतु एक रेबारी के चिमटे की दे मारी। कुदरत की बात है कि उसके कोमल स्थान पर लग गई और वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। साधु को बड़ा दुःख हुआ। वह वहीं बैठ गया और कहने लगा कि उसके हाथ से रेबारी मर गया है। लोगों ने उसे समझाया कि वह मना कर दे किन्तु वह इस बात को मानने को तैयार नहीं हुआ। पुलिस पहुँची। पुलिस अधिकारी ने भी साधु को समझाने की कोशिश की किन्तु उसने अपने बयान नहीं बदले। पुलिस ने चालान दे दिया। मैजिस्ट्रेट भी उस साधु के प्रति श्रद्धा रखने वाला था। वह भी चाहता था कि साधु अपने बयान बदल दे किन्तु साधु झूठ बोलने को तैयार नहीं हुआ। अन्त मे मैजिस्ट्रेट ने मुकदमे को सत्र न्यायालय में भेज दिया। न्यायाधीश भी महात्मा जी के प्रति श्रद्धावान था। उसने भी बयान बदलने के लिए उन्हें निवेदन किया। किन्तु महात्मा असत्य बोलने को तैयार नही हुए। अन्त में न्यायाधीश ने अपना निर्णय दिया कि सन्त-महात्मा की नियत रेबारी को कत्ल करने की नहीं थी अतः उन्हें मुक्त किया

जाता है। इस तरह हमने देखा कि अपराधी होते हुए भी वह सन्त अपराध से मुक्त हुआ। सत्य वक्ता का रक्षक भगवान होता है। अत प्रत्येक व्यक्ति को सत्य बोलना चाहिये चाहे कितनी ही आपत्ति क्यो न आवे। श्रीदाता ने बताया कि दो स्थान तो प्रत्येक व्यक्ति को रखना चाहिये। एक स्थान तो ऐसा होना चाहिये जहाँ माथा टेका जा सके अर्थात् जहाँ हम समर्पण कर सकें। माथा टेकने से सभी भार उतर जाता है और व्यक्ति भार हीन हो जाता है। दूसरा स्थान ऐसा हो जहाँ हम सत्य बोल सके। दोनो ही स्थान गुरु चरण ही हो सकते हैं।

श्रीदाता ने यह भी फरमाया कि किसी निर्दोष व्यक्ति को सताना भी पाप है। कितने दिन जीना है? किसके लिये पाप एकत्रित करें? क्यो किसी को सतावे?

यह ससार चल चला चल इक आवत इक जाता है।
ज्ञानी ध्यानी सिद्ध सूरमा कोई रहन नही पाता है।
सुत दारा और मीत पियारे झूठ जगत का नाता है।
सूरदास सुमिर सतगुरु जो भव बन्धन मिटाता है।

सत्गुरु ही एक ऐसा है जो हर प्रकार हमारी रक्षा कर हमारी नैया को ससार रूपी सागर से पार कराता है। इस प्रकार बातचीत होती रही। कितनी कृपा है श्रीदाता की। आजतक पुचकार कर किसी ने इस प्रकार समझाने का प्रयास नही किया। यह तो सत्गुरु ही है जो गढगढ कर खोट निकालता है।

सत्गुरु कुम्हार शिष्य कुभ है, गढगढ काढे खोट।
अन्दर हाथ पसार दे, बाहर बाये चोट॥

बात ही बात मे चार बज गये। श्रीदाता पूजा स्थल पर पधारे। वहाँ भीड थी। आरती में देर थी अत श्रीदाता एक ओर बिराज कर पूजा के तोर तरीको को देखने लगे। पूजा के समाप्त होने में ४–३० बज गये। अन्त में आरती की गयी। पूजा के देवो की आरती के बाद श्रीदाता की आरती की। बोल बागडी भाषा में ही था किन्तु हावभावो से अर्थ समझा जा सकता था। गुरु की

महिमा का ही वर्णन किया गया। आरती के समय भक्त गेमाजी के नेत्रों से प्रेमाश्रु टपक पड़े। बड़ा ही भावप्रद दृश्य था। पूजा के पश्चात् गेमाजी सहित पूरा कुटुम्ब श्रीदाता के चरणों में लोट गया। इस प्रकार उन्होंने श्रीदाता का आशीर्वाद प्राप्त किया।

पूजा की समाप्ति होते ही श्रीदाता ने चलने की तैयारी करने का आदेश दे दिया। सुन कर गेमाजी और परिजनों का मुँह उतर गया। वे चाहते थे कि दाता वहीं विराजे किन्तु श्रीदाता के समक्ष कुछ बोल भी तो नहीं सकते थे। बालक भी एकत्रित हो गये। वे मस्ती से नृत्य करते हुए भजन बोलने लगे। उन्हें देखकर श्रीदाता ने फरमाया, "इस उम्र में यदि दाता से प्रेम हो जाता है तो बड़ा उत्तम है। आजकल के बालक अपना बाल्यकाल खेलकूद या आमोद-प्रमोद में ही बिता देते है। आजकल तो घर-घर मे टी. वी. हो गई है। बच्चों की नींव ही खराब करती है। इसमे व्यर्थ मे समय तो नष्ट होता ही है साथ ही जीवन की दिशा ही बदल जाती है। इन बच्चों को भक्ति में लगा देने से इनका कल्याण ही होगा।" श्रीदाता ने ठीक ही फरमाया। आज का बालक विनाश की ओर ही बढ़ रहा है, कारण आध्यात्मिक शिक्षा से उन्हें वंचित रखा जाता है। विष्णु-पुराण में इस बात का संकेत दिया है –

> बाल्ये क्रीडनकासक्ता यौवने विषयोन्मुखाः।
> अज्ञा नयन्त्यशक्त्या च वार्द्धक्यं समुपस्थितम्॥
> तस्माद्बाल्ये विवेकात्मा यतेत श्रेयसे सदा।
> बाल्ययौवनवृद्धाद्यैर्देहभावैरसंयुतः॥

(मूर्ख लोग अपनी बाल्यावस्था में खेल-कूद में लगे रहते हैं, युवावस्था में विषयों में फँस जाते हैं और बुढ़ापा आने पर उसे असमर्थता मे काटते हैं। इसलिये विवेकी पुरुषों को चाहिये कि देह की बाल्य, यौवन और बुढ़ापा आदि अवस्थाओं से ऊपर उठ कर बाल्यावस्था से ही अपने कल्याण का यत्न करें।)

श्रीदाता बस के पास पधार गये। अन्य लोग भी बस मे जाकर बैठे। गेमाजी और अन्य लोग श्रीदाता को घेर कर खड़े हो

गये। सन्त जाम्भो जी जैसे भाव उस समय उनके थे जिन्हे वे अपनी ही बोली में व्यक्त कर रहे थे। जाम्भो जी फरमाते हैं –

"वही अपार सरूप तू, लहरी इद्र धनेश।
मित्र वरुण और अरजमा, अदिति पुत्र दिनेश॥
तू सर्वज्ञ अनादि, अज, रविसम करत प्रकाश।
एक पाद में सकल जग, निसदिन करत निवास॥
इस अपार ससार में किसविध उतरूँ पार।
अनन्य भक्त मै आपका, निश्चल लेहु उबार॥"

उनके इस प्रकार के भावो पर श्रीदाता मुस्करा दिये। उन्होने फरमाया, "करने-धरने वाला दाता है। उसकी महर चाहिये। उसी का निरन्तर स्मरण करने से ही बेडा पार होगा।

सुमिरन हरि को करौ रे,
जासो होवै भव पार।
यही सीख जान मान कह्यो है,
पुराण में भगवान आप करतार।
दीन-बन्धु दया-सिन्धु पतित पावन,
आनदकद तोसे कहत हौं पुकार।
'तानसेन' कहैं निरमल सदा,
लहिये नर देही नही बारबार॥"

यह कहकर श्रीदाता बस में आकर विराजे। जय बोलने के साथ बस रवाना हो गई। श्री गेमाजी का प्रेम निश्छल प्रेम है। उन्होने श्रीदाता को जैसा चाहा नाच नचाया। उनकी भक्ति अनुकरणीय है। श्रीदाता ने जैसी कृपा श्री गेमाजी पर की वैसी सभी पर करे ऐसी उनके चरणो में विनम्र प्रार्थना है।

O O C

फागोत्सव

वृन्दावन यात्रा के समय फाल्गुन का महीना था और फाल्गुन माह में वृन्दावन कें प्रत्येक मन्दिर में फाग का उत्सव बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। उस माह में अनेक मन्दिरों में रासलीला होती है। बड़ा ही आनन्ददायक दृश्य होता है। श्रीदाता के साथ जाने वाले प्रेमी सज्जनों को वहां का फागोत्सव वड़ा अच्छा लगा। श्रीदाता के भक्तों के लिये दाता-निवास वृन्दावन से कम नहीं है। उनकी इच्छा हुई कि दाता-निवास में प्रति वर्ष फागोत्सव मनाया जाय। किन्तु लोगों की इच्छा मन की मन में रह गई, कारण दाता-निवास में फाग होली के दूसरे दिन मनाते हैं और त्यौहार का दिन होने से प्रत्येक के लिये वहाँ पहुँचना संभव नहीं। गिरनार की दूसरी यात्रा से लौटना होली के दिन ही हुआ था। वह कार्यक्रम एक प्रकार से नवयुवक मण्डली का ही था। दाता-निवास आकर होली के दूसरे दिन फाग का कार्यक्रम रक्खा। वहाँ से उसी दिन करेड़ा गये व वहाँ भी फाग का कार्यक्रम रक्खा। उसी समय श्रीदाता से प्रति वर्ष फागोत्सव मनाने की आज्ञा ले ली। अगले वर्ष चैत्र की अमावस्या को फाग मनाया गया। उस समय सीमित लोग ही आ पाये। सन् १९८१ ई. में रंगपंचमी पर शीतल पधारना हुआ। श्री गेमाजी के यहाँ रंगपंचमी को फाग होता है। लोगों ने वहाँ भी फाग का आनन्द लिया। वहीं यह निश्चय कर लिया गया था कि इस वर्ष की चैत्र माह की अमावस्या को वृहत रूप से फागोत्सव मनाया जाय और इसके पूर्व कीर्तन भी हो।

कीर्तन प्रारंभ हुआ। त्रयोदशी से ही लोगों का आना प्रारंभ हो गया। जयपुर, उदयपुर, डूंगरपुर, अजमेर, जोधपुर, बीकानेर, भोपाल, कोटा, भीलवाड़ा आदि अनेक स्थानों के भक्त-जन चतुर्दशी के शाम तक दाता-निवास आ गये। खण्डेश्वर महादेव के दोनों महन्त, शीतल के श्री गेमाजी मय परिवार के और डाकोर के वृद्ध महन्त जी का आगमन भी हुआ। गुरुपूर्णिमा पर जितने प्रेमीजन

आते हैं लगभग उतने ही व्यक्ति इस अवसर पर आ गये । श्री गेमाजी की मण्डली अपने पूरे साज सामान सहित आयी थी । इतने लोग आये कि व्यवस्था करना कठिन हो गया । गर्मी के दिन आ गये थे अत यत्र-तत्र जहाँ भी स्थान मिला वहीं ठहर गये । शाम से ही भजन भी बोलना प्रारभ हो गया । भजन की कई मण्डलियाँ विद्यमान थी । जामोला, भीलवाडा, डूँगरपुर, उदयपुर आदि स्थानो की मण्डलियाँ अपने अपने साजवाज के साथ थी । भजन प्रारभ हो गये । प्रत्येक मण्डली यह प्रयत्न करने लगी कि उसका भजन अच्छा हो अत प्रतियोगात्मक भावना जागृत हो गयी । एक से एक बढ़िया भजन बोला जाने लगा । बोलने वालो को तो मजा आ ही रहा था, सुनने वाले भी सुनते ही रह गये । देर रात तक यही क्रम चलता रहा । कीर्तन भी बडी मस्ती से चल रहा था । वहाँ के आनन्द का कोई ठिकाना नही । सत्सग भवन में इतनी भीड थी कि तिल रखने को भी जगह नही ।

अगले दिन प्रात ही दैनिक कार्यो से निवृत्त होकर कई लोग श्रीदाता के पास आकर बैठे । सत्सग वार्ता चल पडी । एक बन्दे ने उनसे प्रश्न किया, "मुझे एक बात की शका हो गई । गोपियाँ भगवान कृष्ण को नचाती थी या भगवान कृष्ण गोपियो को नचाते थे ।"

श्रीदाता– "नाचने वाला और नचाने वाला सब दाता ही है । यह खेल सब दाता का ही है । जब भगवान कृष्ण उनमें बैठते थे तब वे नाचते थे और जब भगवान नचाते थे तो गोपियाँ नाचती थी । वहाँ तो प्रेम की पराकाष्ठा थी । प्रेम में गोपियाँ तो श्रीकृष्ण थी और श्रीकृष्ण गोपिया । गोपी दही बेचने निकली किन्तु दही ले लो के बजाय बोलने लगी –

> कोई श्याम मनोहर लो री, सिर धरे मटकियाँ डोले ।
> दधि को नाम बिसर गई ग्वालिन, हरि लो, हरि लो, बोले ॥
> कृष्ण रूप छकि है ग्वालिन, और ही औरे बोले ।
> मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चेरी भई बिन मोले ॥

जब लकड़ी में आग का प्रवेश होता है तब वह लकड़ी नही रहती है। वह तो आग हो जाती है। कोई शराब पीता है। उसे नशा आता है। आप समझते हैं कि शराब में नशा है किन्तु ऐसा है नहीं। यदि शराब में नशा होता तो बोतल में शराब रहता है, फिर बोतल को नशा आ जाना चाहिये। शराब को तो जब आप सेवन करोगे तब ही नशा आवेगा। जब नशा आवेगा तो आप जो कुछ करोगे वह नशा ही तो करेगा। जब गोपियों को भगवान का नशा चढ़ गया तो फिर उनसे जो कुछ करा रहा था वह वही नशा तो करा रहा था। यह सब भाव की बातें हैं और भाव बनते है मन की गति से। मन की गति एक सी नहीं रहती है। जब बैठे है और समर्पण के भाव हैं तो हम भगवान कह देंगे। किन्तु जब भाव नीचे होते हैं तो स्थिति दूसरी ही होती है। जैसे भाव होंगे वैसा ही प्राणी होगा।" इस तरह बहुत देर तक सत्संग चलता रहा।

उदयपुर वाले भोजन बनाने में व्यस्त थे। कुछ लोग चौक मे टेबुल रखकर उस पर भगवान के चित्र सजाने में लगे थे। एक ओर कुछ कोठियाँ पानी से भर दी गई व उनमे रंग घोल दिया गया। भगवान की तस्वीर के सामने कुछ लोग हारमोनियम और झाँझ लेकर बैठ गये। आँगन के बीचोबीच ढ़ोल रख दिया गया। थालियों में विभिन्न रंगों की गुलाल रख दी गई। फाग की आवश्यक तैयारियाँ पूरी कर ली गई। उधर सत्संग भवन में कीर्तन अपनी पूरी गति से चल रहा था। श्रीदाता एवं श्री मातेश्वरी जी कीर्तन भवन में पधारे। श्रीदाता ने करताल हाथ में लेकर कीर्तन बोलना प्रारंभ किया। कुछ देर के बाद वे दाता के आसन के सामने नृत्य करने लगे। श्रीदाता जब दाता के आसन के सन्मुख नृत्य करते हैं उस समय का दृश्य निराला ही होता है। कीर्तन बोलने वालों में भी उत्तेजना आ गई और जोर-शोर से कीर्तन होने लगा। कुछ देर इसी प्रकार होता रहा फिर श्रीदाता का नृत्य बन्द हो गया। श्रीदाता के संकेत पर आरती संजोई गई और कीर्तन की जय के साथ समाप्ति हुई। आरती बोली गई। वह दृश्य भी देखने योग्य था। आनन्द की रसधारा क्या, गंगा ही बह रही थी। प्रसाद

वितरण के बाद सभी बाहर आ गये। चौक में सैंकडो लोग खडे थे। सभी को प्रसाद दिया गया।

आधे घण्टे बाद श्रीदाता का उस स्थान पर पधारना हुआ जहाँ फाग का आयोजन था। मातेश्वरी जी भी साथ थीं। जोडे से उन्होंने बालकृष्ण के चित्र पर पुष्प, इत्र और गुलाल चढाई। फिर पिचकारी में रग भर कर बालकृष्ण के चित्र के पास छोड दिया। जय जयकार की ध्वनि से आकाश गूज उठा। फिर एक-एक कर सभी ने श्रीदाता के एव श्री मातेश्वरी जी के चरणो में गुलाल अर्पित की। श्रीदाता ने पिचकारी में रग भरकर सभी की ओर पिचकारी छोड दी। ढोल वाले ने ढोल बजाया। हारमोनियम लेकर बैठे व्यक्तियों ने भजन बोलना प्रारभ कर दिया।

आज ब्रज में होरी रे रसिया,
होरी नही छवर जोरी रे रसिया,
इतते आये कुँवर कन्हैया,
उतते आयी राधा गोरी रे रसिया।
गोकुल से आये कुँवर कन्हैया,
बरसाने से राधा गोरी रे रसिया॥
कृष्ण के हाथ कनक पिचकारी,
राधा के हाथ रग बोरी रे रसिया।
भर पिचकारी गोरे मुख डारी,
राधा के हाथ रग बोरी रे रसिया।
चन्द्र सखि ब्रज बालकृष्ण छवि,
चिरजीव रहो ये जोरी रे रसिया॥

दूसरे लोगो ने भी साथ दिया। कुछ लोगों के हाथों में डण्डे थे जिनसे उन्होंने गैर नृत्य शुरू कर दिया। भजन के साथ ही साथ गैर चलने लगी। दर्शक लोग अलग हट कर देखने लगे। इधर भजन और गैर नृत्य चल रहा था और उधर श्रीदाता पिचकारी भर भर कर रग डाल रहे थे। वहाँ उपस्थित भक्तो में से कोई

फागोत्सव में श्री दाता

ऐसा नहीं था जो यह इच्छा न कर रहा हो कि श्रीदाता उस पर भी रंगरूपी कृपा की वर्षा करें। बड़ा ही सुन्दर नजारा था। भजन बोलने वालों में एवं गैर नृत्य करने वालों में गजब की मस्ती थी। गंधर्वराज भी मृदंग बजाने मे क्यों पीछे रहने लगे। न्यौछावरों पर न्यौछावरें हो रही थी। जब वह भजन समाप्त हुआ तो दूसरा भजन बोला गया।

होरी खेलन आयो श्याम, आज याने रंग में बोरो री।
कोरे कोरे कलश मंगाय, रंग केसर घोलो री।

चन्द्र सखी की यही विनति करे निहोरो री।
हाय हाय करें जब पइयाँ पकड़े, तब भी न छोड़ो री॥

इस प्रकार भजन बोले जाने लगे। मेवाड का गैरनृत्य प्रसिद्ध है ही। जयपुर, कोटा, भोपाल आदि स्थानों के लोगों को ऐसा दृश्य देखने को कहाँ मिले? गैर नृत्य तो उनके लिये नया था फिर गैर नृत्य दाता के नवयुवक भक्तों द्वारा किया हुआ जिनको अपने तन-बदन की भी सुधि न हो। वे भी आनन्द मे मस्त थे। लगभग एक घण्टे तक यह नृत्य और भजन चलता रहा। अन्तिम भजन बोला गया –

रसिया को नार बनाओ री,
लहंगा पहना के याकूं चूंदड़ी ओढ़ाओ री,
यांके मुखन गुलाल लगावो री, रसिया को नार बनाओ री।
कजरा लगा के यांके बिन्दिया लगावो री,
यां को नकवैसर पहनाओ री, रसिया को नार बनाओ री।
कमर करधनी पावों में पायल,
यांके हाथों में पहुँची डारो री, रसिया को नार बनाओ री।
बाजो चंग मृदंग ढोल-ढब,
यांको ब्रज मण्डल में घुमावो री, रसिया को नार बनाओ री।
इलरी, तिलरी और पचलरी,
यांको बाजूबन्द पहनाओ री, रसिया को नार बनाओ री।

नैना याके कजरा सारो,
याकी मोतियन माग भराओ री, रसिया को नार बनाओ री।
सब सखियन मिल पकड ले आओ,
याको जसुमति आगे नचाओ री, रसिया को नार बनाओ री।
नारायण प्रभु की छबि निरखो,
याको ठुमुक-ठुमुक नचाओ री, रसिया को नार बनाओ री॥

होली के दिनो हँसी मजाक में किसी पुरुष को स्त्री वेश पहना देना इधर का रिवाज सा है। बृज में गोपियाँ होली खेलते समय श्रीकृष्ण के साथ भी इसी प्रकार की ठट्ठा किया करती थी। भजन के माध्यम से एक झाँकी सी प्रस्तुत की गई। सभी भाव-विभोर हो गये।

इस के बाद सभी एक दूसरे पर रग छीटने लगे। श्रीदाता और मातेश्वरी जी एक ओर खडे हो गये और लोगो को होली खेलते देखते रहे। एक दूसरे को पकडना, रग डालना, मुँह पर रग लपेटना आदि कार्य चलते रहे।

बडी देर तक होली खेलना चलता रहा। जो रग के डर से या कपडे खराब होने के डर से छिप गये थे उन्हे एक एक कर पकडा गया व रग में सराबोर किया गया। कोई भी रग से नहीं बच सका। जब सब रग समाप्त हो गया तब ही जाकर लोग ठहरे। प्रात कीर्तन, बाद में भजन और नृत्य और फिर रग का खेल। लोग थक से गये अत. सभी बाहर रेत पर जा बैठे। लगभग आधे घण्टे विश्राम के बाद लोगो को स्नान करने की सुधि आयी। कपडे साबुन आदि लेकर कुँओ पर चले। गाँव के लोगो और आसपास के कुएँ के लोगो ने अमावस्या होते हुए भी कुएँ जोत दिये। नहाने की अच्छी व्यवस्था हो गई। सभी ने मस्ती से स्नान किये। इधर भोजन तैयार था ही, लड्डू, पूडी, मेव, दाल, सब्जी आदि। दिनभर के परिश्रम मे भूख लग चुकी थी। श्रीदाता की आज्ञा होते ही लोग भोजन करने लगे। आनन्द रस की खुमारी थी ही, उसकी मस्ती में लोगो ने छक कर खाया। इतना खाया जिसका कुछ

होली खेलते हुए श्री दाता

कहना नहीं। भण्डार दाता का था। वहाँ भोजन की कोई कमी नहीं थी। इतना स्वादिष्ट भोजन और वह भी प्रसाद के रूप में, क्या कहा जाय। कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता है। सभी के भोजन कर लेने के वाद ही श्रीदाता ने भोजन किया।

लोग वाहर रेती पर व यत्र तत्र जहां सुविधापूर्वक स्थान मिला वहीं वैठ गये। कुछ लोग डाकोर जी के महन्त जी के पास जा वैठे। वहीं खाण्डेश्वर महादेव के दोनों महन्त श्री रामदास जी और श्री मधुरामदास जी विराज रहे थे। वे लोग श्रीदाता की वड़ाई करते नहीं अवा रहे थे। डाकोर जी के महन्त जी कह रहे थे, "आज तक मैंने कई फाग देखे है एक से एक वढ़ कर किन्तु जैसा आनन्द यहाँ आया वैसा आनन्द अन्यत्र कहीं नहीं आया। लोग श्रीदाता को आदमी ही मानते हैं किन्तु वे आदमी हैं नहीं। ये तो नर के वेश में साक्षात् नारायण हैं। ये परब्रह्म, परमेश्वर, अजर, अमर, अविनाशी आपरूप हैं। इनकी लीला अपरंपार है। कुछ दिनों पूर्व इनके दर्शन मैंने ऋषिकेश मे किये थे। एक आश्रम में ये विराज रहे थे। इनका प्रवचन चल रहा था और कई भक्त लोग वड़े प्रेम से इनके प्रवचन को सुन रहे थे। जव मैंने प्रेम से प्रणाम किया तो उन्होंने मुझ से वात की और वहीं ठहराया। भोजन भी अपने साथ ही कराया।"

सुनने वालों के मन-मस्तिष्क में उनकी यह वात नहीं आयी। एक ने कह ही दिया, "वावजी! ऐसा नहीं हो सकता। आपको स्वप्न आया होगा।" इस पर महन्त जी ने कहा, "विश्वास करना न करना आप लोगों के हाथ है। मैं तो सही कह रहा हूँ। मैंने तो न केवल उन्हें देखा है वरन् मैंने तो वातें भी की थी। धोखा कैसे खा सकता हूँ।" उनकी इस वात से हमें आश्चर्य हुआ और साथ ही श्रीदाता के चरणों में श्रद्धा भी वढ़ी।

रात्रि को कुछ समय तक भजन चलते रहे। फिर श्रीदाता का प्रवचन चल पड़ा। श्रीदाता ने कर्म की प्रधानता वताते हुए कर्म करने को कहा। एक वन्दे ने कहा था कि जव दाता ही सव काम का करने वाला है तव हमें तो उसी के भरोसे वैठ जाना चाहिये।

इस पर श्रीदाता ने कहा, "कर्म तो करना ही चाहिये। कर्म करना जरूरी है। यह पच तत्व का शरीर धारण किया, इसलिये इसको रखने के लिये कर्म तो करना ही पडेगा। कर्म करना आवश्यक है किन्तु कर्म में उलझना ठीक नहीं। कर्म के लिये कर्म करना ठीक नही। आवश्यकता की पूर्ति के लिये कर्म करना जरूरी है। ब्राह्मणो ने क्या किया? वे कर्म में ही उलझ गये अत उनका अलग ही कर्मकाण्ड बन गया। आपका नौकर आपसे ज्यादा काम करता है फिर भी वह आपका नौकर है अत कर्म के रहस्य को समझ कर ही कर्म करना चाहिये। कर्म को प्रधानता न देकर भावो को प्रधानता देनी होगी। एक व्यक्ति एक वस्तु को देखता है। दूसरा व्यक्ति भी उसी वस्तु को देखता है किन्तु देखने देखने में फर्क है। दोनो ही अलग अलग भाव से देख रहे हैं। उनके भावो में समानता नही है। एक सुन्दर बालिका सडक पर जा रही है। उसको अनेक लोग देख रहे हैं। सडक पर चलने वाला साधु भी उसे देखता है तो अन्य लोग भी। एक व्यक्ति ने उस साधु को पूछ लिया। उसने कहा कि वह साधु होकर बालिका को देखता है। साधु ने जवाब दिया कि यह उसकी भूल है। वह न तो बालिका को देख रहा है और न बालिका में भरे हुए मल-मूत्र को देख रहा है। वह तो उस कारीगर की कारीगरी को देख रहा है। उसने कितना सुन्दर नमूना अपने सांचे में ढाला है। उसने उस व्यक्ति के दृष्टिकोण को दूषित बताते हुए कहा कि वह विषय-वासनाओ से युक्त है इसलिये उसे केवल मल-मूत्र ही दिखायी दे रहा है। यह भावना की बात है। आप अपनी भावनाओ को शुद्ध रखो फिर मजे से अपना काम करते जाओ। इन्द्रियाँ अपना काम करती रहे। वे तो अपना कार्य करेगी ही किन्तु भाव शुद्ध होने से आप कर्म-बन्धन में नही बँधोगे। आप माला जपो, जप करो, तप करो या चाहे आप उपासना करो या आराधना करो, आपके भाव ही प्रधान होगे। कबीरजी ने कहा है–

माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।
कर का मन का छांड दे, मन का मन का फेर॥"

एक बन्दा– "भगवन्! आध्यात्मिक विषय में चरित्र की क्या आवश्यकता है? दाता के मार्ग में चरित्र क्या बाधा डालता है?"

श्रीदाता– "यह प्रश्न आप हमें न पूछ कर हमारी माई अर्थात् आपकी पत्नी से पूछा होता तो अच्छा होता। आपको वह पूर्णरूप से ही चाहती होगी। अव आप ही वतावें कि आपको अपनी पत्नी को प्राप्त करने के लिए चरित्र की आवश्यकता पड़ेगी या नहीं। यदि वह असत्य भाषी, चोरी करने वाली और चरित्र हीन है तो आप पर क्या प्रभाव पड़ेगा? यदि वह साध्वी है, पतिव्रता है, विकार रहित और शुद्ध हृदय वाली है तो आप पर कैसा प्रभाव पड़ेगा? आप किस प्रकार की पत्नी को पसन्द करेंगे? यह सही है कि कोई भी पत्नी गन्दगी धारण कर, गन्दे वस्त्र धारण कर यदि पति के पास जावेगी, तो पति उसे पसन्द नहीं करेगा। प्यार करने के स्थान पर वह घृणा करने लगेगा। आप पूजा करने वैठते हैं तो आप मन और शरीर की शुद्धि कर के ही तो वैठते हैं। शरीर और मन की शुद्धि से ही तो मन लगता है। आप पूजा करने वैठते हैं तव न केवल मन और शरीर को साफ करते है वरन् इत्र छिड़क कर व अगरवत्ती लगाकर वातावरण तक को साफ करते हैं व सुगन्धित वनाते हैं। यह आप इसलिए करते हैं कि मन पवित्र और सुन्दर वातावरण को अधिक पसन्द करता है। गन्दगी से सभी को घृणा है। हर प्राणी गन्दगी के वजाय पवित्रता में दाता को देखना अधिक पसन्द करता है। चरित्र का प्रभाव भी सीधा मन पर पड़ता है और इस मार्ग में मन ही प्रधान है। मन को ठीक मार्ग पर चलाने के लिये मन को विकार रहित रखना जरूरी है। कहा भी है :– "मन चंगा तो कठोती में गंगा।"

"दाता सर्वत्र है। वह तो कणकण में है। विश्व की ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जिसमें वह नहीं हो। वह गटर के नाले की गन्दगी में भी है तो बाग के सुगन्धित फूलों की सुगन्ध में भी है किन्तु आप उसे सुगन्धित फूलों में ही देखना पसन्द करेंगे। यही आपके लिये उचित भी है। कारण, मानव प्रकृति गन्दगी को पसन्द नहीं करती। वह सुन्दरता, खुशवू और स्वच्छता को अधिक पसन्द करता है। आप जानते हैं कि आपका मन वड़ा चंचल है। गटर के नाले में प्रविष्ट होकर आप उसे देखने की कोशिश करोगे तो

आपका मन वहाँ गन्दगी में फिसल न पड़े इसका भय हर समय बना ही रहेगा। इसीलिये महापुरुषों ने कहा है कि उसे फूलों की सुगन्ध में ही देखने की कोशिश करो। मन्दिर को स्वच्छ, साफ और सुगन्ध से युक्त रखने का यही तो राज है। धूप-दीप, केसर, चन्दन आदि का प्रयोग भी इसी हेतु किया जाता है। दाता इन वस्तुओं का भूखा तो है नहीं। वह तो इन वस्तुओं में भी है और बाहर भी। उसके लिये तो सुगन्धी और गन्दगी समान है किन्तु साधक के लिये ऐसा नहीं है। साधक के लिये जरूरी है कि साधना के समय उसका मन विकारों से ग्रस्त न हो जाय। विकारों की चटक-भटक में वह फँस गया तो फिर चटक-भटक ही उसके सामने रह जावेगी। मूल वस्तु अर्थात् दाता को ही वह भूल जावेगा। अत उसे प्राप्त करने को सभी पथ्य- परहेज रखने होंगे। आप शिखर पर जाना चाहते हैं तो पूरी तैयारी करनी होगी और उसके लिये पूरा परिश्रम करना पड़ेगा। दाता रूपी पिया के पास जाने के लिए पहले शृङ्गार तो करना ही पड़ेगा। शृङ्गार के साथ ही साथ मन और शरीर को पवित्र रखना ही पड़ेगा। ऐसा करने पर ही पिया मिल सकता है। दाता से मिलने हेतु चरित्र की परमावश्यकता है।"

इस प्रकार से प्रसंग चल ही रहा था कि दो-तीन देहाती एक व्यक्ति को उठाये वहाँ आये। उन्होंने उस व्यक्ति को श्रीदाता के सामने सुला दिया। उन्होंने कहा कि यह खेत में काम कर रहा था तब एक सर्प ने डस लिया। झाड़ा फूका किया किन्तु धीरे धीरे इसकी तो हालत ही बिगड़ गई। देवरा भी इसे ले गये लेकिन भैरूजी ने भी उत्तर दे दिया। हम गरीब हैं। यह मर जावेगा तो घर ही बिगड़ जावेगा। छोटे छोटे बच्चे है, अनाथ हो जावेंगे। आप समर्थ हैं। लोगों ने बताया कि आप ही इसे बचाने वाले हैं। इसपर श्रीदाता ने कहा, "बचाने वाला तो दाता है। आप लोगों को डाक्टरों के पास जाना चाहिये। मैं डाक्टर थोड़े ही हूँ। तुम लोग भोले हो। इसमें भैरूजी और माताजी क्या करे।" श्रीदाता ने वहाँ बैठे डाक्टरों से उसे देखने को कहा। डाक्टरों ने केस को देख कर कह दिया कि यह उनके वश की बात नहीं है क्यों कि

एक तो मरीज की हालत ज्यादा खराव हो गई है दूसरा उनके पास साधन नहीं है। इसका वचना तो कठिन है फिर इसे जयपुर या उदयपुर शीघ्र ले जाना चाहिये। दाता की महर हो तव ही इसका वचना संभव है। श्रीदाता ने कुछ देर कोई वात नही की। वे लोग टकटकी लगाकर दाता को देखते रहे। कुछ देर वाद श्रीदाता ने अपने हाथ मे लकड़ी ली और उसको पत्थर पर फटकारा। ऐसा दो-तीन वार किया। मरीज ने आँखें खोल दी। एक-दो वार के संकेत से वह उठ वैठा। श्रीदाता ने आसन पर उसकी पुकार करने को कहा। एक वन्दा उठा और उसने उसे सत्संग भवन में ले जाकर पुकार करा दी। आया तो वह तीन व्यक्तियों के कन्धों पर किन्तु गया वह चल कर। इस चमत्कार को देखकर कई लोग दंग रह गये। जो दाता की शक्ति को जानते थे उनके लिये कोई नवीनता नहीं थी कारण प्रतिदिन ही ऐसी घटनाएँ होती ही रहती है।

श्रीदाता ने कहा, "दाता की महर तो अत्यधिक है और प्रत्येक पर है। वह सव की ही रक्षा करता है किन्तु वन्दा इस वात को समझे तव न। वन्दा तो चाहता है कि वह पड़ता रहे और दाता उसे उठाता रहे। दाता का काम उसे एक वक्त उठा देने का है। एक वक्त उठा देने पर भी यदि वह नहीं मानता और वार वार गिरता है तो दाता को क्या पड़ी है? वन्दा मरता है तो मरा करे। यह वन्दे की निरी मूर्खता ही है।"

वातावरण में परिवर्तन हो गया था अतः श्रीदाता उठ कर अन्दर मकान में पधार गये। अन्य लोग गप-शप करने लगे, रात्रि को जामोला मण्डल भजन वोलने लगा। अन्य लोगों ने भी साथ दिया। दो वजे तक वे वोलते रहे फिर जयपुर वालों ने उनका स्थान ले लिया। जयपुर वालों का स्वर शान्त और मधुर है। सूर, मीरा और कवीर के भजन वड़े शान्त स्वर में गाते हैं। प्रातः सूर्योदय तक उनके भजन होते रहे।

अतः कुछ लोग वहाँ से रवाना हो गये। गेमाजी, रामदासजी आदि सन्त भी जाना चाहते थे किन्तु श्रीदाता ने उन्हें वहीं रोक

दिया। भोजन की व्यवस्था की गई। उस दिन भी मिष्टान्न ही बनाया गया।

भोजनोपरान्त सभी श्रीदाता के पास आकर बैठ गए। श्रीदाता ने कहा, "दुनिया बडी भोली है। थोडी सी भी विपत्ति आयी नही कि वह रो देता है। दाता का तो विश्वास करता नही और दर दर भटकता रहता है। आपने देखा, काटा साप ने और दौड कर गया भैरू के पास। इधर उधर भटकने मे क्या होना है। दर-दर भटकने वाले का कोई ठिकाना नही।

'जणा जणा को थोग राखती वैश्या हो गई बाँझ'

सार कुछ हाथ लगता नही। अत भटकना ही है तो दाता के पास ही भटको। हमें तो केवल दाता का ही आसरा है। न कभी दाता के सिवा किसी दूसरे को देखा और न देखने की इच्छा ही है। कबीर के शब्दों में –

अब मोहि राम भरोसा तेरा।
और कौन का करौं निहोरा॥
जा के राम सरीखा साहब भाई।
सो क्यू अनत पुकारन जाई॥
जा सिरि तीनि लोक कौ भारा।
सो क्यू न करै जन को प्रतिपारा॥
कहै कबीर सेवौ बनवारी।
सींचौं पेड पीवै सब डारी॥
हरि नामै दिन जाइ रे जाकौ।
सोइ दिन लेखै लाइ राम ताकौ॥

एक स्वाँस भी खाली नही जाना चाहिये। न मालूम किस स्वाँस में उसकी महर हो जाय।" श्रीदाता ने ठीक ही फरमाया कि एकमात्र दाता का ही आधार रखना चाहिये। निरन्तर उसी के भजन में लीन रहना चाहिये। खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते एकमात्र दाता का ही स्मरण करने मे ही हमारा जीवन सार्थक है। तृष्णा में पड

कर मानव अँधा हो रहा है। अपने स्वाँसों को योंही नष्ट कर रहा है।

वीत गये दिन भजन विना रे।
वाल अवस्था खेल गँवाई।
जब जवानी तव नारि तना रे।।
जा के कारण मूल गँवायो,
अजहुँ न गई मन की तृष्ना रे।
कहत कवीर सुनो भाई साधो,
पार उतर गये संत जना रे।।

हमारा मन चंचल है वह लोहे के समान है और दाता का नाम पारस है। दाता के नाम रूपी पारस के सम्पर्क से हमारा मन रूपी लोहा अवश्य सोना हो जावेगा। वह मन को विल्कुल शुद्ध कर देगा।

नाम जो रत्ती एक है, पाप जो रत्ती हजार।
आध रत्ती घट संचरै, जारि करै सव छार।।
राम नाम निज औषधी, सतुगुरु दई वताय।
औपधि खाय के पथ रहै, ताको वेदन जाय।।

रात्रि को भजन हुए। अगले दिन सभी वहां से विदा हुए। श्री गेमाजी, श्री रामदास जी, श्री मधुरामदास जी एवं डाकोर के महन्त जी को भेंट देकर वड़े सम्मान के साथ विदा किया। विदाई का दृश्य करुणाजनक था। सभी के नेत्रों मे प्रेमाश्रु थे। सव ही इस प्रकार जा रहे थे जैसे कोई जवरन उन्हें निकाल रहा हो। थोड़ी थोड़ी दूर जा कर लोग पीछे फिर फिर कर श्रीदाता को देख रहे थे। देखने में वे अघाते ही नहीं थे। अन्त में सव विदा हुए ही।

चैत्र कृष्ण अमावस्या पर फाग के कार्यक्रम से भक्तजनों को आने में कठिनाई अनुभव होने लगी। कारण रामनवमी के सत्संग पर सभी को आना अनिवार्य होता है। आठ दिन वाद ही पुनः आना आज के जमाने में साधारण व्यक्ति के लिये सरल नहीं है

अत श्रीदाता ने कृपा कर फाग का दिवस फारगुन कृष्ण अमावस्या रख दिया। शिवरात्रि के पर्व पर लोग अमूमन आते ही है। उस समय एक दिन अधिक दिया जा सकता है। अत सन् १९८२ ई से ही फागोत्सव शिवरात्रि के दूसरे दिन मनाया जाता है। अब तक शिवरात्रि पर पाँच फागोत्सव मनाये जा चुके हैं। प्रत्येक फागोत्सव अभूतपूर्व ही रहा है। धीरे धीरे इतनी मात्रा में लोग आने लग गये कि व्यवस्था करने में कठिनाई होने लग गई। इस वर्ष यह उत्सव नान्दशा मे मनाया गया। इस अवसर पर भक्तिमति मीरावाई अपनी शिष्या के तथा अन्य भक्तो के साथ पधारी थी। बडा ही आनन्द रहा।

○ ○ ○

दतिया प्रतिष्ठोत्सव में श्रीदाता

अप्रैल का महीना और गर्मी के दिन। श्रीदाता दाता-निवास के वाहर विराज रहे थे। कुछ लोगों से इधर उधर की वातें हो रही थी। ठीक उसी समय एक कार आकर रुकी। कार से डाक्टर साहव योगेश जी और सागर वावू उतरे। श्रीदाता को प्रणाम कर वे सामने ही वैठ गये। कुशल क्षेम के वाद श्रीदाता ने उन्हें पधारने का कारण पूछा। डाक्टर साहव ने अर्ज की, "भगवन्! दतिया मे गुरु महाराज के श्री विग्रह का प्रतिष्ठा समारोह दिनांक ४ मई से ७ मई तक का है। ट्रस्ट के सभी सदस्यों की इच्छा है कि पूज्य गुरु महाराज के श्री विग्रह का अनावरण आपके करकमलों द्वारा हो। आपके पधारने से समारोह की शोभा वढ़ेगी और समारोह पूर्णता को प्राप्त होगा। इसी हेतु उन्होंने हमें उनके प्रतिनिधि के रूप मे भेजा है।" श्रीदाता ने फरमाया, "मारा राम तो एक साधारण सा प्राणी है। मारा राम इन वातों में क्या समझे! यह तो वड़े लोगों या महापुरुपों का काम है। किसी महापुरुप को ले जाओ। मारा राम की तवियत भी ठीक नहीं रहती और गर्मी भी वहुत पड़ती है।" इस पर सागर वावू ने कहा, "भगवन्! हमारी उत्कट इच्छा है कि आप पधारें। आपसे वड़ा कौन है? गर्मी तो है किन्तु 'एअर कण्डीशन वस' भिजवा दी जावेगी जिसमें कुछ भी तकलीफ नहीं होगी। भगवान का पधारना नहीं होगा तो सभी को वड़ी निराशा होगी। इस मन्दिर के निर्माण में कई कठिनाइयाँ आयी हैं। श्रीदाता की असीम कृपा से श्रीचरणों में पुकार करने से ही दूर हुई है। हमारी प्रार्थना तो स्वीकार की जाय।" इस प्रकार की प्रार्थना करते करते सागर वावू की आँखों में आँसू आ गये। श्रीदाता तो दयालु है ही। अपने व्यक्तियों की आँखों में आँसू देख ही नहीं सकते। उन्होंने स्वीकृति देते हुए फरमाया, "गाड़ी भेज देना। दाता की महर हुई तो रम जावेंगे।" सागर वावू एवं डाक्टर साहव प्रसन्न होकर चले गये।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र प्राचीन काल मे ही ऋषि-मुनियो का तप स्थल रहा है। इसी क्षेत्र में सनक-सनन्दन ऋषियो ने ज्ञान का प्रसार किया। इसी क्षेत्र में दतिया नगर स्थित है जो प्राचीन काल में दन्तवक्रपुर के नाम से पुकारा जाता था। यहाँ पर सिन्ध एव पुष्पभद्रा नदियाँ सतत प्रवाहमान होती हुई सम्पूर्ण क्षेत्र को पावन बना रही है। इसी नगर के दक्षिण और तीन ओर पानी से घिरा हुआ वनखण्डेश्वर महादेव का स्थान है जिसकी सस्थापना महाभारत काल में दन्तवक्त्र द्वारा हुई थी। इस समय यह स्थान पीताम्बरा–पीठ के नाम से प्रसिद्ध है। इस समय उपलब्ध साहित्य से स्पष्ट होता है कि यह स्थान तान्त्रिक साधुओ का साधनास्थल रहा है। वनखण्डेश्वर मे सुदीर्घ काल से साधको की लम्बी परम्परा रही है। कहते है कि कुछ दिव्य विभूतियाँ आज भी यहाँ सूक्ष्म रूप में निवास करती हुई साधको की साधना में सहायता करती है। इसकी पुष्टि यहाँ के साधको ने की है। उनके कथन के आधार पर एक विशाल आकृति का साधु पीपल के पेड मे प्रकट होकर समय समय पर साधको को मार्ग-दर्शन देता रहता है। इस बात की पुष्टि जयपुर के तीन प्रमुख सत्सगियो ने भी की है। एक बार वे तीनो स्वामीजी के दर्शन करने दतिया गये। स्वामीजी के दर्शन कर वे बैठ गये। स्वामीजी ने उन्हे प्यार से पुचकार कर पास में बिठा लिया। कुछ देर बाद उपासना का समय हो गया। सब लोग मालाएँ ले लेकर बैठ गये। इन्होने सोचा कि हम क्या करे? स्वामीजी इनके भावो को जान गये। उन्होने एक बन्दे से कहा, "इन्हे हेड ऑफिस में बिठा आवो।" वह बन्दा उन तीनो को लेकर पुराने पीपल के पेड के पास स्थित शिवमन्दिर में इन्हे बिठा दिया। ये तीनो वहाँ चुपचाप बैठ गये। कुछ ही देर में तीनो का ही ध्यान लग गया। वहाँ ध्यान के समय तीनो ने ही वहाँ अर्द्धनारीनटेश्वर भगवान शकर के दर्शन किये। इससे भी स्पष्ट होता है कि वहाँ महापुरुष का निवास है।

इसी स्थान पर १ जुलाई १९२९ को एक तेजोदीप्त सन्यासी जी का आगमन हुआ। उस समय यह स्थान श्मशान सदृश भयावह था।

अनेक प्रकार की व्याधियों ने सन्यासी जी को विचलित करने का प्रयास किया किन्तु वह धीर गम्भीर तपस्वी अपनी साधना में तल्लीन रह कर अपनी तपस्या की प्रखरता फैलाते रहे। धीरे धीरे तपस्या के प्रभाव से लोगों ने घेरना प्रारंभ किया, राजा-महाराजाओं ने पीछा किया और सेठ साहूकारों ने अपने आँचल फैलाये। दीन हीन लोगों को आश्रय मिलने लगा। तपस्वी सन्यासी जी धीरे धीरे दतिया के स्वामी जी के नाम से प्रख्यात होने लगे।

स्वामीजी न केवल सन्त ही थे अपितु संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान थे। स्वामीजी के नाम, धाम, प्रारंभिक जीवन आदि के वारे में अभी तक किसी को कुछ मालूम नहीं है। जिन्होंने अव तक स्वामीजी के वारे मे कुछ लिखने का प्रयास किया वह अनुमान के आधार पर ही है। सन् १९१४ से १९२६ तक इन्होंने समस्त भारत का भ्रमण किया। इसके वाद वे दतिया में आये। उनके लिये एक विद्वान ने लिखा है, "स्वामीजी चंदन चढ़ाने को अनामिका ही वने रहे।"

स्वामीजी वनखण्डेश्वर में रह कर निरन्तर साधना एवं ज्ञान प्रकाश में संलग्न रहे। सन् १९३६ ई. में इन्होंने 'हरे राम हरे राम' की ध्वनि में नौ दिन का अखण्ड कीर्तन कराया जिसमें लगभग दस हजार लोगों ने भाग लिया। सन् १९४२ ई. में स्वामी जी ने शास्त्रीय विधि से पीताम्वरा देवी की स्थापना की और इस स्थान को पीताम्वरा पीठ का नाम दिया। इसके वाद से यज्ञ और कीर्तन वरावर होते रहे। सन् १९६२ में चीन युद्ध के समय भारत की विजय का उद्देश्य लेकर राष्ट्र रक्षा अनुष्ठान नामक सहस्रचण्डी यज्ञ किया गया तथा अस्सी व्राह्मणों को विठा कर तीस दिन का पाठ किया गया। इसी यज्ञ में स्वामी जी को राष्ट्रगुरु की उपाधि से विभूषित किया गया। सन् १९७४ में छत्तीस दिन का वेद पाठ यज्ञ किया गया। इस यज्ञ की समाप्ति पर रूस के एक योगी ने लिखा कि तीन ओर पानी से घिरा एक योगी इस तरह मंत्रोच्चारण कर रहा है जो हिमालय से टकरा कर भारत की रक्षा कर रहा है। इस तरह के थे स्वामीजी। इन्होंने लगभग

५३ ग्रन्थों की रचना एवं प्रकाशन कराया । अधिकतर ग्रन्थ तंत्र शास्त्र, उपनिषद, वेद आदि विषयों पर आधारित है ।

स्वामी जी २३–१२–७८ को साय ६ बजे एकाएक अस्वस्थ हो गये । उनका स्वास्थ्य निरन्तर गिरता ही गया । अन्त में २ जुलाई सन् १९७९ ई को स्वामी जी ब्रह्मलीन हो गये । चारों ओर शोक छा गया । जिसने भी सुना आँसू बहाये बिना नही रह सका ।

श्रीदाता की स्वामी जी के दर्शनों की इच्छा कई वर्षों से थी । वैसे तो अप्रत्यक्ष रूप में तो वे मिले ही थे किन्तु भौतिक रूप से दर्शन नही हुए थे । श्रीदाता की दिसम्बर सन् १९७८ को दतिया पधारने की इच्छा थी और श्रीदाता ग्वालियर तक पधार भी गये थे किन्तु अचानक स्वामी जी के अस्वस्थ हो जाने से कार्यक्रम में परिवर्तन करना पड़ा । स्वामी जी के कई शिष्य है जो साधना पथ पर काफी प्रगति कर चुके है । श्री स्वामी जी का श्रीदाता के प्रति अच्छा प्रेम रहा है । उन्ही के संकेतों पर उनके अनेक शिष्य श्रीदाता के चरणों में प्रेम रखने लगे है । कुछ पत्रों के नमूने परिशिष्ट (क) में बताये गये है जिससे पाठक सरलता से यह अनुमान लगा सकेंगे कि वे श्रीदाता के चरणों में कितना प्रेम रखते है व श्रीदाता उनसे कितना प्यार करते है ।

दतिया आने के पूर्व स्वामी जी धौनपुर में सन् १९२६ ई से सन् १९२९ ई के बीच विराजे थे । वहाँ श्री नारायण सिंह जी जेलर ने अच्छी सेवा की । वहाँ के सरकारी अधिकारियों की भी अच्छी श्रद्धा थी । उनके द्वारा भी स्वामी जी के बारे में बहुत कुछ सुना गया जिससे यह कहा जा सकता है कि स्वामी जी एक पहुँचे हुए सन्त, सिद्ध-पुरुष एवं शक्तिपुञ्ज थे । वे परोपकारी एवं राष्ट्र-प्रेमी सन्त थे । उनकी भावना रहती थी –

सर्वे भवन्तु सुखिनो सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुख भाग्भवेत ॥

दतिया प्रतिष्ठोत्सव में श्री दाता

स्वामी जी के ब्रह्मलीन हो जाने पर उनके भक्तों ने एवं पीताम्बरा पीठ के ट्रस्ट के सदस्यों ने स्वामी जी के श्री विग्रह के संस्थापन का निर्णय लिया। उन्होंने लाखों रुपये खर्च कर एक अनुपम मन्दिर का निर्माण किया जिसका नाम मणिपुर धाम रखा गया। मन्दिर का शिखर गुरुमण्डलाकार है। शिखर के रूप मे यह गुरुमण्डल मेरु पृष्ठ रूप में है। स्थापत्यकला तथा वास्तुशिल्प की दृष्टि से मणिपुरधाम समूचे विश्व मे अद्वितीय है। गुरुमण्डल मे विन्दु, षट्कोण, अष्टकोण, नवकोण, पंचदशकोण, मण्डलत्रय, अष्टदल, वृत्तत्रय एवं भूपुर का समावेश है। मंत्र रूप में गुरुमण्डल मिलते है किन्तु शिखर रूप में संभवतः यह प्रथम अवसर ही हो।

श्री विग्रह जयपुर से वनवाया गया था। ४ मई सन् १९८४ से ७ मई १९८४ ई. तक 'पूज्यपाद विग्रह प्रतिष्ठा समारोह' का आयोजन रखा गया। देश के विभिन्न भागों से पण्डितों, विद्वानों, महान् सन्तों और मठाधीशों को आमंत्रित किया गया। सर्वत्र समारोह के कार्यक्रम की सूचना भेजी गयी। भव्य तैयारी की गई।

वैशाख का महीना था। गर्मी दिनोदिन वढ़ती ही जा रही थी। वाँसा में भी गर्मी विशेष थी। लू के झपाटों से कोई भी व्यक्ति दिन में वाहर निकलने का साहस नहीं करता था ऐसी अवस्था में ऐसी तेज गर्मी में इतनी दूर जाना किसी को भाया नहीं। हममे से कइयों ने तो निवेदन भी कर दिया कि ऐसी गर्मी मे आपको नही पधारना चाहिये। श्रीदाता ने तो एक ही शब्द फर्माया, "जैसी मौज।" दिनांक ५-५-८४ को दाता-निवास से प्रस्थान करना था। इसके पूर्व श्रीदाता को अपने दौहित्र की शादी मे लोगों को सन्तुष्ट करने के लिए पीपली एवं रूप जी के गुड्डे जाना पड़ा। रूपजी के गुड्डे में श्रीदाता ने एक वन्दे को जोधपुर जाकर डा. मिश्रा को फोन द्वारा वस न भेजने हेतु सूचना भेजने का आदेश दे दिया था। वे जोधपुर के लिए रवाना हो गये व उन्होंने जोधपुर जाकर फोन कर दिया।

कुछ देर रूप जी के गुड्डे मे ठहर कर विवाह में उपस्थिति देकर श्रीदाता दाता-निवास पधार गये। वहाँ जाकर देखा कि वस

तो आयी हुई है। बस को देखते ही पहले तो श्रीदाता चिढ गये किन्तु साथ में आने वालो की गिडगिडाहट पर चलने को तैयार हो गये।

दिनाक ५ को तीन वजे श्रीदाता अपने वारह सेवको सहित बस में जा विराजे। बस वटी और वातानुकूलित थी अत उसमें गर्मी के कारण कोई परेशानी नही थी। दो घण्टे में बस अजमेर पहुँच गई। अजमेर से आगे चलने पर रेडियेटर से पानी निकलने लगा अत गति में शिथिलता आ गयी। जैसे तैसे १-३० वजे जयपुर पहुँचे।

प्रात ७ वजे प्रस्थान का समय था किन्तु रेडियेटर को ठीक कराने में ग्यारह वज गये। इस वीच जयपुर के वन्धुजन आ विराजे। सत्सग सम्वन्धी वाते चलने लगी। श्रीदाता ने फरमाया कि हमारा एक भी स्वाँस खाली नही जाना चाहिये। चलते-फिरते, सोते-जागते, खाते-पीते निरन्तर दाता में ही अपने मन को लगाना चाहियें। योगी और भोगी की एक ही गति है। जिस प्रकार योग की साधना लोगो के लिए कठिन है उसी तरह भोग भी कठिन है। योगी भोग के आनन्द के लिये ही तो योग करता है। भोगी भोग का साधन करता है किन्तु योग की क्रिया नही जानता तो उसका भोग व्यर्थ है। कहा है :—

जोगी होकर जोग न जाने हार हार कर थाके।

चाहे योग करो चाहे भोग करो, मन का सतुलित होना आवश्यक है।

ग्यारह वजे जयपुर से रवाना हुए। जयपुर से कई लोग साथ हो गये। पूरी वस भर गई। चार वजे के लगभग भरतपुर डाक-वगले पर पहुँचे। भरतपुर में नाश्ता व धौलपुर में भोजन की व्यवस्था थी। ग्यारह वजे तक धौलपुर पहुँचना था किन्तु रेडियेटर के कारण सभी अस्त-व्यस्त हो गया। भरतपुर में चाय नाश्ता लेकर आगे बढे और ठीक सात वजे धौलपुर पहुँचे। धौलपुर वालो ने ६ वजे तक प्रतीक्षा की फिर वनाया हुआ भोजन इधर उधर वितरित कर दिया। श्रीदाता के पधारते ही सव लोग भाग कर वाहर आ गये।

वे सब प्रसन्न हो गये। जो कुछ अन्न बचा था उसे रोक लिया गया। दाल चावल भट्टी पर चढ़ा दिया गया।

श्रीदाता शिव मन्दिर में पधारे। मन्दिर कलाकृति से परिपूर्ण था। श्रीदाता का वहाँ लगभग एक घण्टे तक विराजना हुआ। श्रीदाता ने तो भोजन किया नहीं किन्तु अन्य सभी ने भोजन किया। वहाँ के व्यवस्थापक ने बड़े प्रेम से सभी को भोजन कराया।

वहाँ से आठ बजे रवानगी हुई। व्यवस्थापक जी भी साथ हो लिये। उन्होंने धौलपुर मन्दिर और स्वामी जी के बारे में बहुत कुछ बताया। उन्होंने ही बताया कि स्वामी जी की कृपा जेलर श्री नारायण सिंह जी पर बहुत थी। श्री नारायण सिंह जी ने उनके लिए एक कुटिया बना दी थी जिसमें रहा करते थे। जब श्री नारायण सिंह जी की मृत्यु हुई और सरदार जी ने स्वामी जी को खबर दी। स्वामी जी के मुखारविन्द से अनायास ही निकल पड़ा, "रहने का एक स्थान समाप्त हुआ।"

दतिया पहुँचते पहुँचते ११–३० बज गये। ठहरने की व्यवस्था एक बगीचे में बतायी गयी। बगीचे की खूब तलाश की किन्तु पता नहीं चल सका। अन्त में नगर में होकर शक्तिपीठ पहुँचे। पूरी दतिया की परिक्रमा हो गई। सागर बाबू उस समय झाँसी पधारे हुए थे। एक सदस्य ने सब को शर्मा आयुर्वेद भवन में ले जाकर ठहराया। अधिक समय हो जाने से श्रीदाता ने तो उस दिन भोजन ही नहीं किया। श्री मिश्रा जी सागर बाबू को झाँसी जाकर बुला लाये। श्रीदाता विश्राम कर रहे थे अतः उन्हें श्रीदाता के दर्शन तो प्रातः ही हो सके।

प्रातः सागर बाबू श्रीदाता को प्रणाम कर सामने जा बैठे। उनके साथ कुछ लोग और थे। सागर बाबू ने श्रीदाता से रात्रि के कष्ट के लिए क्षमा मांगी। सागर बाबू के साथ कुछ लोग थे। एक व्यक्ति ने सीधा ही श्रीदाता से प्रश्न किया, "गुरु को ही ईश्वर क्यों माना जाता है?" उस कमरे में राम और कृष्ण की तस्वीरें लगी थी श्रीदाता ने उन तस्वीरों की ओर संकेत कर पूछा, "ये किनकी तस्वीरें हैं?"

प्रश्नकर्ता– "राम और कृष्ण की।"

श्रीदाता–"ये तो कागज मात्र या फ्रेम मात्र है।"

प्रश्नकर्ता– "नही।"

श्रीदाता– "सब उसी का रूप है। सब में उसी को देख रहे है। गुरु कृपा से ही यह अनुभूति सभव है। गुरु प्रत्यक्ष है जब की ईश्वर अप्रत्यक्ष। इसीलिए गुरु को ईश्वर से अधिक मानते है।"

प्रश्नकर्ता– "गुरु कैसे प्राप्त किया जाता है?"

श्रीदाता– "आप कहाँ से आये है?"

प्रश्नकर्ता– "गाव से।"

श्रीदाता– "वह कैसा है?"

प्रश्नकर्ता– "वहुत वढिया।"

श्रीदाता– "फिर उसे छोड कर यहाँ कैसे आये?"

प्रश्नकर्ता चुप हो गये। इस पर श्रीदाता बोले, "एक लडकी को अपने प्रियतम के पास पहुँचने में ही शान्ति मिलती है। वह जन्म से ही प्रियतम की प्राप्ति में लग जाती है। जब तक उसे प्रियतम की प्राप्ति नही होती, चैन नही मिलता है। वह प्रियतम की प्राप्ति में अपना सब कुछ स्वाहा कर देती है। जब वह सब कुछ दे देती है तो सब कुछ पा लेती है। आप भी उस लडकी के समान बन जाओ। ईश्वर तो रुपयो की एक थैली है जब कि सत्गुरु भण्डार है जिसमे कई थैलियाँ है।

इस प्रकार कुछ देर सत्सग चलता रहा। स्वामी जी के श्री विग्रह के स्थापन का समय आठ वजे का था। श्री विग्रह स्थापना स्थल के पास रखा था। विधि विधान से स्थापना हेतु वडे वडे विद्वान पण्डित भारत के विभिन्न क्षेत्रो से आये हुए थे। वेद ऋचाओ का उच्चारण हो रहा था। विधि के पूर्ण होने पर श्री विग्रह को पण्डितो ने अपने स्थान पर रखना चाहा। श्री विग्रह को कमल के बने फूल में रखना था। उन्होने श्री विग्रह को उठाना चाहा किन्तु आश्चर्य की बात यह हुई कि श्री विग्रह हिला तक नही। श्री विग्रह जयपुर से लाया गया था। लाने-रखने में कही

कठिनाई नहीं आयी। किन्तु परम आश्चर्य वही श्री विग्रह हिला तक नहीं। पण्डितों ने अपने शास्त्र का और अन्य लोगों ने अपने शरीर का वल लगा दिया फिर भी श्री विग्रह टस से मस नहीं हुआ। अनेकों ने प्रयत्न किये किन्तु सब वेकार। श्री विग्रह तो हिला तक नहीं। प्रयत्न करते करते आठ से ग्यारह वजने को हो गया। मणिधाम के वाहर अपार भीड़ थी। मणिधाम के कई द्वार व खिड़कियाँ हैं। प्रत्येक के वाहर अन्दर प्रवेश हेतु अपार भीड़ थी। विषम समस्या अधिकारियों के समक्ष उपस्थित हो गई। व्यवस्थापक घवरा गये। वे किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये। अचानक किसी को श्रीदाता की याद हो आयी। उन्होंने सागर वावू, वदन सिंह जी, मिश्रा जी आदि को श्रीदाता से प्रार्थना करने को कहा। वे लोग कार लेकर भागे। श्रीदाता से निवेदन किया। पहले तो श्रीदाता ने कहा, "इसमें मारा राम क्या जाने।" किन्तु जव सागर वावू व अन्य लोगों की घवराहट देखी तो तत्काल पधारने को तैयार हो गये। श्रीदाता और मातेश्वरी जी वहाँ पधारे। वड़ी कठिनाई से उन्हें मणिपुर धाम में ले जाया जा सका। श्रीदाता श्री विग्रह के सामने जा खड़े हुए। उन्होंने संकेत मात्र किया और श्री विग्रह को उठाने का इशारा किया। श्री विग्रह आसानी से उठा लिया गया। उसकी सुगमता से आसन पर स्थापना हो गयी। सभी दंग होकर देखते रह गये। श्रीदाता और मातेश्वरी जी एक ओर जाकर खड़े हुए। जव पण्डितों ने श्रीदाता की महानता देखी तो वे श्रीदाता को घेर कर खड़े हो गये और लगे वेद ध्वनि करने। उन्होंने डट कर श्लोकों और वेद की ऋचाओं से श्रीदाता का अभिषेक कर स्तुति की। लगभग आधा घण्टा इसमें लगा। फिर ट्रस्ट की अध्यक्षा राजमाता सिंधिया ने श्रीदाता के चरणों में धोक देकर पुष्प एवं फल भेंट किये। इस वीच श्री विग्रह को स्थापित कर अनावरण की तैयारी कर दी गई। राजमाता व अन्य लोगों ने श्रीदाता से अनावरण के लिये प्रार्थना की। श्रीदाता ने श्री विग्रह का अनावरण किया। श्री विग्रह की पूजा व आरती हुई। लोग श्रीदाता को तो जानते थे नहीं। केवल यही सुना था कि जयपुर के स्वामी जी आये हैं अतः जयपुर के महाराज की जय वोलने लगे। जय निनाद से पूरा

मणिपुर धाम गूज उठा । श्रीदाता तो मौका देख कर वहाँ से निकले और सीधे शर्मा आयुर्वेद भवन में पधार गये ।

यह स्वामीजी ही का खेल था । उन्हे लोगो को बताना था कि श्रीदाता साधारण व्यक्ति नही है । उनमें और मेरे में कोई अन्तर नही । महापुरुष अपने स्थान पर आये हुए महापुरुष का किस तरह सम्मान करते है इसका जीता जागता उदाहरण इस खेल के माध्यम से स्वामी जी ने प्रस्तुत किया । स्वामी जी एव श्रीदाता की जय हो ।

उसी दिन ११ बजे के बाद पधारना था । भोजन की व्यवस्था धौलपुर में थी किन्तु पीताम्बरा पीठ के भक्तजनो के आग्रह पर उस दिन वही विराजना हो गया । भोजन के पूर्व अनेक जिज्ञासु एव भक्त लोग शर्मा आयुर्वेद भवन में एकत्रित हो गये । उन लोगो में सरदार श्री रिछपाल सिंह जी और भारत की प्रसिद्ध गायिका निर्मला जी आदि भी थे । कुछ मुसलमान भी थे । श्रीदाता ने सत्सग वार्ता के अन्तर्गत कुछ भजन सुनाये । 'अचरज देखा भारी' पहले बोला गया । इसके बाद 'अगम निशाना उस देश का जामे गम किस विध होय' सुनाया । इसके बाद फरमाया, "आप के आनन्द में, आप ही आनन्द मान हो जाय । आपके आनन्द में ही वह प्रगट होता हे । जब शरीर नही रहता है तो आपमें ही आप है । उसकी अनुभूति बिना जीवन सारहीन है ।" कुछ देर बाद निर्मला जी ने भजन सुनाया । भजन सतगुरु महिमा का था । 'ज्ञान, ध्यान गुरु के शरणे, निर्भय गुरु को ध्याऊँ । मै वारि वारि जाऊँ ।।' कण्ठ सुरीला, भाव उत्कृष्ट, लय, स्वर और ताल सहित बोले हुए भजन का क्या कहना, बडा ही आनन्द आया । भजन बोलने में लगभग आधा घण्टा लगा होगा । सब ही मस्ती में झूमने लगे । जब भजन समाप्त हुआ तो निर्मला जी ठहर कर श्रीदाता की ओर देखने लगी । श्रीदाताने फरमाया, "दाता की लीला अपरम्पार है ।"

"ज्ञान कथू तो पार नहीं, भजन का है उलजाडा ।
दाता गेलो ऐसो बता, जो ऊपरवाडा मूनेडा ।।"

इसके वाद श्रीदाता ने "पंच तत्व परिपार है, पंच तत्व माहि" भजन वोला। भजन सारगर्भित और मर्मस्पर्शी तथा साधारण व्यक्तियों की समझ से परे। श्रीदाता ने फरमाया, "वन्दा दाता की खोज कहाँ करे। वह रोम रोम में विद्यमान है और रोम रोम से परे है। अजव लीला है उसकी। वुद्धितत्व के वश की वात नहीं। गुरुकृपा से ही उसका अनुभव होता है।

निर्मला जी ने एक भजन और वोला :–

दीनदयाल विरद संभारी हरहुँ नाथ मम संकट भारी।

जा पै कृपा राम की होई, ता पै करै कृपा सव कोई।

यह वर माँगू कृपा निकेता, वसहुँ हृदय सिय अनुज समेता।

रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जाय पर वचन न जाई।

वोलो राधे गोविन्दा, वोला राधे गोविन्दा।

कोकिल कंठ, भजन में आनन्द आना स्वाभाविक था। भजन समाप्त होते ही वाद्ययंत्र अलग रख दिया। लोगों ने निर्मला जी की प्रशंसा की। वे सकुचा गई और वोली, "सव दाता की कृपा है।"

उपस्थित लोगों में से एक ने पूछा, "वह दिखने में आता क्यों नहीं? शव्द जवाव क्यों दे देते हैं।"

श्रीदाता– "उसके लिए कोई शव्द ही नहीं है। शव्द हो तो जवाव मिले। वहाँ तो शव्द ही काम नहीं करते हैं। सव से वड़ी चुप। सुनने में ही सार है। वावू के घर में कितने आदमी हैं?"

भक्त– "प्रभु कृपा से कई हैं।"

श्रीदाता– "व्यक्ति चाहे छोटा हो चाहे वड़ा, चाहे वुरा हो चाहे अच्छा, मूल सव का एक है। उसको याद करते ही केवल वही रह जाय, वन्दा नहीं रहे। नीति यह वात कहती है कि गुणों को वताने की जरूरत नहीं है कारण गुण किसी का कुछ विगाड़ता नहीं। अवगुण ही विगाड़ करते हैं अतः उन्हें वाहर निकाल दो। आपने काच देखा है। देखा है तो वता दो। उसका रंग कैसा है, आकृति कैसी है। पहली वात तो यह है कि जरूरत ही क्या पड़ी आपको देखने की। आप काच देखते हैं। हमें शंका है कि आप कांच में हो या

काच के बाहर । आप अन्दर भी है और बाहर भी । बस उसी की लगन में मगन हो जाओ ।"

भक्त– "हम खूब प्रयत्न करते है किन्तु कपाट ही नही खुलते ।"

श्रीदाता– "कपाट खुले तो कैसे खुले । आपके दर्द तो है नही । दर्द हो तो काम बने । आपके दर्द तो है किन्तु छिपी हुई बात आप किसी को बताओ तब है न । बीमार अपने दर्द को डाक्टर से छिपा कर रखता है तो काम बनता नही । दर्द को बताना है तो पाटे (डाक्टर की मेज) पर आना ही पडता है । पाटे पर आने पर दोष का निदान हो जाता है । आपको कुछ भी नही करना है तो न करो किन्तु चाह तो रखो । आपकी चाह में आप हैं । रास्ता बताने वाला पास है । वह घर में ही है ।"

भक्त– "जब वह घर में ही है, फिर आता क्यो नही ?"

श्रीदाता– "कहा है न कि आपको जरूरत नही है । आप एक लडकी को देखो । उसने पति प्राप्ति के लिये सब कुछ छोड दिया । यहाँ तक कि माता पिता को भी छोड दिया । हुआ क्या, दो के एक हो गये ।"

भक्त– "जीवन में ढालना बडा कठिन है ।"

श्रीदाता– "जरूरत नही है इसीलिये ऐसा कहते है । जरूरत होने पर आप पाताल में उतर जाते हैं । अन्तरिक्ष में चले जाते हैं । आकाश पाताल एक कर देते हैं । वहाँ न जात है न पाँत है और न धर्म है न कर्म है । जरूरत पर कौन रोक सकता है । ससार में अनेक वस्तुएँ हैं, सब आपके लिये हैं । जरूरत हो तो उसे देख लो । उसकी इच्छा हो जाना ही विशेष हैं ।"

सरदार जी– "हमें भी रोगी बना लो ।"

श्रीदाता– "आप रोगी होते कहाँ हैं । यदि रोगी रोगी हो जावेगा तो उसकी चलने फिरने की ताकत भी न रहेगी । जब चलने फिरने की ताकत नहीं रहेगी तो डाक्टर स्वय रोगी के पास आ जावेगा । हमारे शरीर में जो धडकन है वह सब उसी की है । डाक्टर पास है

तो रोगी को चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। दुर्घटना को संभालने वाला डाक्टर पास में है। दुर्घटना क्या है। जो स्वांस खाली निकलती है वही दुर्घटना है।"

भक्त– "भगवन्! यही वड़ी कमजोरी है। संसार की वातों में उलझते रहते है।"

श्रीदाता– "आप उसकी वात क्यों करते हैं? आपको उसकी इच्छा है इसीलिये तो करते हैं। इच्छा होना ही प्रमुख कारण है। ठीक है कि हरदम आपको उसकी इच्छा नहीं होती। आप हर समय न खाकर दिन में दो वार खा लेते हैं, यह अच्छा ही है। सोने वाले को जगाना सरल है किन्तु जगने वाले को जगाना कठिन है। उसे कैसे जगाया जाय।" एक मुसलमान भक्त वैठा था। उसने कहा।

मु. भक्त– "ज्ञानी पुरुष हैं वो भी भटक जाते हैं।"

श्रीदाता– "रोगी का डाक्टर से सम्वन्ध है इसीलिये आवश्यकता होने पर डाक्टर वेहोश करने का इन्जेक्शन दे देता है। स्वामी जी वीमार हो गये, लोग उन्हें इलाज के लिए दिल्ली ले गये। पैसे वाले ही तो ले गये। भाव जव चलते हैं तो कर्म नीचे रह जाते हैं।"

मु. भक्त– "लोग वड़े मूर्ख होते हैं?"

श्रीदाता– "मूर्ख तो वड़े होते हैं। उनमें सव से वड़ा गुण होता है कि वे जिसको पकड़ लेते हैं उसे नहीं छोड़ते हैं।"

मु. भक्त– "हर व्यक्ति ऊपर ही क्यों देखता है। कहते हैं ऊपर वाला जाने। तो क्या ऊपर ही है।"

श्रीदाता– "ऊपर देखने वाले भी हैं, मध्य में देखने वाले भी हैं, नीचे देखने वाले भी हैं। क्या मकान ऊपर ही है नीचे नहीं? आप अपने सिर को सव से ऊँचा क्यों मानते हैं? ऊँचा-नीचा सव आपका ही है। आपने उसे स्वयं से ऊँचा मान लिया अतः उसका स्थान ऊँचा है। आपके घर में सव समान हैं किन्तु सव अपना अपना काम करते हैं। ड्यूटी वताई हुई करते हैं। ये तो लटकें हैं। आशिकों के इश्क को तो मासूक ही जानते हैं। आप जव घर में उसे देखोगे तो उसे सव में देखोगे। आप के भाव ऊपर हैं इसीलिये आप ऊपर देखते हैं।"

मु भक्त– "ईश्वर और अल्लाह सब एक है तो फिर इतना भेद क्यो ?"

श्रीदाता– "वस्तु तो एक है केवल शब्दो का भेद है। आप जल को आब कहते है, हिन्दू वारि कहते है और अंग्रेज उसे वाटर कहते हैं। शब्दो के भेद के चक्कर में पडने वालो के हाथ में चक्कर ही आता है। इश्क के दम भरने वालो को घरबार लुटाना पडता है। वहाँ तो आह भरना भी गुनाह है। चार औरतें अच्छी अच्छी साडियाँ पहन कर आपस में झगड रही थी कि मेरी साडी का रग अच्छा है। उन्हे यह पता नही है कि पसन्द उनकी है या उनके पति की। पति की पसन्द के रग का पता नही तभी तक झगडा है। पति के होने पर सब ही रग पति के हो जाते है।

मु भक्त– "भगवान नाराज नही होना चाहिये। उसकी नाराजगी का पता चल जाया करे तो सावधान हो जाय।"

श्रीदाता– "भगवान कभी नाराज होता ही नही। यदि वह नाराज हो जाय तो पीछे रह ही क्या जाता है। भगवान सर्व समर्थ है। वह सब कुछ कर सकता है किन्तु बन्दे को देश निकाला नही।"

इस प्रकार बडी देर तक सत्सग होता रहा। मुसलमान बन्दे इतने प्रभावित हुए कि कुछ कहा नही जा सकता। वे गद्गद् वाणी से श्रीदाता के वचनो की सराहना करने लगे।

सन्ध्या को श्रीदाता का पधारना सागर बाबू के यहाँ झाँसी में हुआ। श्री सागर बाबू के पिता जी श्री रामनारायण जी वृद्ध है और झाँसी में ही रहते है। उनकी श्रीदाता के दर्शनो की प्रबल इच्छा थी अत पधारना पडा। भगवान तो भक्त के वश में होते ही है।

राम भक्तवत्सल निज बानौं।
जाति गोत कुलनाम गनत नहिं रक होइ कै रानौं।
x x x x x x x x
जुग जुग विरद यहै चलि आयौ, भक्तनि हाथ बिकानौ।
राजसूय में चरण पखारे स्याम लिए कर पानौ॥

रसना एक अनेक स्याम गुन, कहँ लगि करौं वखानौ।
सूरदास प्रभु की महिमा अति, साखी वेद पुरानौ ॥

अगले दिन ८-५-८४ को प्रातः दस वजे के लगभग दतिया से रवाना होकर सन्ध्या को वृन्दावन पधारना हो गया। मार्ग में धौलपुर शिव मन्दिर में आधा घण्टा विराजना हुआ। वृन्दावन में शर्मा आयुर्वेद भवन में विराजना हुआ। गर्मी ज्यादा थी किन्तु आकाश में वादल छा गये व हवा चलने लगी जिससे राहत मिली।

शर्मा भवन में वातचीत होती रही। एक वन्दे ने कहा कि भगवन्, आपकी महर तो अनन्त है फिर भी हम उस महर को भूल क्यों जाते हैं। इस पर श्रीदाता ने फरमाया कि दाता की महर होती है तो विजली की तरह होती है। विजली क्षणमात्र के लिये चमकती है तव चारों ओर प्रकाश जगमगा जाता है। विजली निरन्तर नहीं चमकती है। सूर्य चमकता है तो उजाला होता है किन्तु सन्ध्या भी होती है। सूर्य अस्त होने के वाद अँधेरा हो जाता है किन्तु क्या फिर प्रभात नहीं होता या सूर्य उदय नहीं होता है। कहा है :-

यही आस अटक्यों रहे, अलि गुलाव के मूल।
ह्वै हैं पुनि वसन्त ऋतु, इन डारन वै फूल ॥

श्रीदाता ने आगे फरमाया, "कोई कहता है कि मैं भगवान को जानता हूँ तो निश्चय जानो कि वह कुछ भी नहीं जानता है। यदि कोई कहे कि मैं भगवान को नहीं जानता तो समझ लो कि उसे कुछ न कुछ अनुभव अवश्य है। स्वामी जी ऐसा ही फर्माया करते थे। वल्व खराव हो तो उसे ठीक तो करना ही चाहिये। कनेक्शन कर देने पर रोशनी तो आ ही जाती है। पावर हाऊस रोशनी नहीं देता है। वह तो केवल रोशनी को आने देता है। रोशनी तो कनेक्शन होने पर वल्व ही देता है। सव ही वस्तुएँ अपने अपने स्थान पर ठीक हैं। जो सोना आप के लिए सुख देने वाला है वही सोना कुत्ते के गले में वाँध दें तो वह उसके लिए दुःखदाई हो जावेगा। वह जहाँ जावेगा वहीं उसको डण्डे पड़ेंगे।

नल की कीमत जल से है अन्यथा पोल ही है। इसलिये 'राम नाम रट-रे बन्दे, राम नाम रटे तर जानो।'" इसी तरह की बाते चलती रही।

दिनाक ९-५-८४ ई को प्रात ही वृन्दावन के मन्दिरो के दर्शन करने चल पडे। बांके बिहारी जी, रगजी आदि मन्दिरो के दर्शन कर और भी कई मन्दिरो में गये। सभी स्थानो पर भीड थी। दर्शन कर सभी आनन्दित हुए। वहाँ से चल कर 'हरे कृष्ण हरे राम' वाले मन्दिर में पधारना हो गया। वहाँ की व्यवस्था बिलकुल आधुनिक ढग की थी और सुन्दर थी। एक बार दर्शन कर श्रीदाता सहित सभी बस में जा बैठे किन्तु श्रीदाता को क्या सूझा कि वे वापिस बस से उतर कर मन्दिर में पधार गये। कडकडाती धूप में नगे पैर ही पधारना हुआ। अन्य लोग भी साथ चल दिये। प्रमुख व्यवस्थापक उस समय अपने कार्यालय में हिसाब किताब देख रहा था। श्रीदाता उसके सामने जाकर खडे हुए। वह हडबडा कर उठ गया। श्रीदाता ने फरमाया, "हम तो आपको देखने आये है। आप सब की बडी सेवा करते है। जो सेवा करता है वह तो बडा है। हम तो उनके दास के भी दास है।" व्यवस्थापक जी कुछ नही समझ सके। फिर भी उन्होने जीव और परमात्मा की व्याख्या की। उन्होने कहा, "हर व्यक्ति आज अपने आपको भगवान कहता है। एक जीव जीव ही रहेगा। वह परमात्मा कैसे हो सकता है।"

श्रीदाता इस पर मुस्करा दिये। वे बोले, "जिधर देखो उधर वह ही वह है। All world is Lord Krishna कृष्ण तत्व ही सब जगह विद्यमान है। अत जीव और ब्रह्म के चक्कर में पडे रहने मे तो चक्कर ही चक्कर है। आप तो सब चक्करो को छोड कर एक कृष्ण का भजन करो। कहा है –

सब तजि भजिए नदकुमार।
और भजे तै काम सरै नहिं, मिटै न भव जजार॥
जिहिं जिहिं जोनि जन्म धारयौ, वहु जोरयौ अघ को भार।
तिहि काटन कौं समरथ हरि कौ तीछन नाम कुठार॥

वेद, पुरान, भागवत, गीता, सब कौ यह मत सार।
भवसमुद्र हरिपदनौका बिनु कोउ न उतारै पार ॥
यह जिय जानि, इहीं छिन भजि, दिन बीते जात असार।
सूर पाइ यह समौ लाहु लहि, दुर्लभ फिरि संसार ॥"

यह सुन कर व्यवस्थापक जी श्रीदाता का मुंह देखने लग गये। फिर वे चरणों में झुक कर प्रणाम करने लगे। श्रीदाता वहाँ से चल कर बस में आ विराजे। वहाँ से सीधे ही जयपुर होकर दाता-निवास पधारना हो गया। दतिया में भी बड़ा ही आनन्द आया। वृन्दावन तो वृन्दावन ही है। उसके लिए श्री नागरीदास जी ने लिखा है :-

कुंजनि कलपतरु रतन-जटित भूमि,
छवि जगमगत जकी-सी लगै काम कों।
सीतल सुगंध मंद मारुत बहत नित,
उड़त पराग रैन चैन सब जाम कों ॥
नव वधू द्रुमनि पै कोकिला-स्वरूपगावैं,
दंपति-विहार बीच वृंदावन नाम कों।
नागरिया नागर सु दीन्हे गरबाहीं तहाँ,
मन ! रूप रवनी ह्वै देखि ऐसे धाम कों ॥

○ ○ ○

हरिभजन ही सार और कछु सार नहीं

अभिमान मत कर द्रव्य का, अभिमान तज दे गेह का।
अभिमान कुल का त्याग दे, अभिमान मत कर देह का।।
कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ, सब ईश को ही मान रे।
मन-बुद्धि शिव को अर्प दे, शिव का सदा कर ध्यान रे।।

चौर्‌यासी लाख योनियो में मनुष्य योनी सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। इस योनी में जीव आकर शीघ्र ही यदि वह प्रयत्न करे तो ब्रह्मत्व को प्राप्त कर लेता है। मानव के लिये तो कहा गया है –

"मानव ! तुझे नहिं याद क्या ? तू ब्रह्म का ही अश है।
कुल गोत्र तेरा ब्रह्म है, सद्‌ब्रह्म तेरा अश है।"
चैतन्य है तू अज अमल है, सहज ही सुख राशि है।
जन्मा नही, मरता नही, कूटस्थ है अविनाशि है।।
निर्दोप है, निस्सग है, बेरूप है विनु ढग है।
तीनो शरीरो मे रहित, साक्षी सदा विनु अग है।।
सुख शान्ति का भण्डार है, आत्मा परम आनन्द है।
क्यो भूलता है आपको ? तुझ में न कोई द्वन्द्व है।।

मानव तो शक्ति सम्पन्न एव महान् है। वह ब्रह्म ही तो है किन्तु माया के चक्कर में आकर वह अपनी शक्ति को भूल कर हीन दीन हो जाता है। माया का चक्कर बडा अद्‌भुत है। वह चक्कर मानव को ब्रह्मत्व मे हटा कर मनुष्य ही नही रहने देता वरन् राक्षस की श्रेणी में ले जाकर डालता है। माया मनुष्य को रागी, द्वेपी, कामी, क्रोधी, अहकारी, स्वार्थी, लालची और पापी बना देती है। माया मानव को ससार रूपी दलदल में इस प्रकार फँसा देती है कि वह ज्यो ज्यो निकलने की चेष्टा करता है त्यो त्यो वह गहरा धँसता जाता है। ऐसे दल-दल से बचा सकता है तो केवल दाता या दाता के नाम की रस्सी। सत्‌गुरु ही कृपा करे तो मानव माया के चक्कर से

छूट कर अपनी शक्ति को प्राप्त कर सकता है। इसीलिये तो महापुरुष निरन्तर सत्गुरु का ध्यान करने को कहते है। यथा :–

सद्गुरु कृपा-गुण-युक्त का, उठ प्रातः ही धर ध्यान रे।
निज देह से अरु प्राण से, प्यारा अधिकतर मान रे॥
सिर को झुका कर दण्डवत, कर नमन आठों अंग से।
कल्याण सब का चाह मन से, दूर रह जन संग से॥

निरन्तर सत्गुरु के ध्यान से मन शुद्ध होकर समर्पण के भाव जागृत होते हैं। अहं रूपी सिर गुरु के चरणों में झुक जाता है जिससे मनुष्य भार मुक्त होकर निर्मल, शुद्ध और आप रूप हो जाता है। जब तक अहंरूपी सिर ऊँचा रहता है तब तक काम नहीं चलता। यह अहंकार ही तो मनुष्य को राक्षस प्रवृत्तियों की ओर घसीटता है। सद्गुरु की कृपा जीव पर होती है। वह आईना सामने रख देता है, अपना स्वरूप उस आईनें में बता देता है। मनुष्य असावधान होकर कांच को ही नहीं देखता या कांच पर जमी धूल को नही हटाता जिससे स्वरूप के दिखने में कठिनाई हो जाती है। इसीलिये महापुरुषों ने सत्संग को बहुत महत्व दिया है। निरन्तर सत्संग की रगड़ लगती रहे तो चमक आती है। आप बाजार से एक बर्तन लाते हैं। जब तक नया नया है तब तक चमकता रहेगा। धीरे धीरे उसकी चमक समाप्त हो जाती है। यदि आप उसको सदैव माँजते रहें तो चमक बराबर बनी रहती है। सत्गुरु कृपा कर आपको अपने स्वरूप के दर्शन तो करा देता है किन्तु आप उसे भूल से जाते हैं कारण सत्गुरु तो हाथ पकड़ कर आपको मार्ग दिखा देता है और कुछ कदम चला भी देता है। फिर तो आपका प्रयास है। यह तो आपको याद ही रखना पड़ता है कि आपको कहाँ जाना है। आप यही भूल जाते हैं कि आपको कहाँ जाना है तो फिर चलना कैसे हो सकता है। भगवान् श्रीदाता फरमाते हैं कि चलते चलते आप मार्ग में बेर की झाड़ियों में ही अटक जावें तो मार्ग बताने वाले का क्या दोष है? आप कुँए में गिर जाते है, आर्त होकर सद्गुरु को पुकारते हैं, वह दौड़ा हुआ आकर हाथ पकड़ कर आपको बाहर निकाल देता है। अब आगे सावधान

रहने का काम तो आपका है। बार बार आप कुँए में पड जाते है तो पडा करें फिर आपकी रक्षा का क्या प्रश्न है?

भगवान श्रीदाता के दरबार में अनेक लोग सत्सग की इच्छा से आते है। श्रीदाता के दर्शनो से आकृष्ट होकर या उनके प्रवचन के प्रभाव से या कीर्तन-भजन के प्रभाव से या किसी चमत्कार के प्रभाव से आकृष्ट होकर श्रीचरणो में आते है। उन्हे वहाँ आनन्द की अनुभूति होती है। सत्सग की इच्छा करते हैं और सत्सगी भी बनते है। यह तो सभव नही कि वे निरन्तर श्रीदाता के पास ही रहे और यह भी सभव नही कि सदा उन्हे सन्तो से सत्सग प्राप्त होता रहे। इसके विपरीत उन्हे दुनिया में रहना पडता है। दुनिया में रहने पर कामना-वासनाओ के थपेडो को सहन करना पडता है। जीवन की आवश्यकताएँ देखा-देखी बढ जाती है। धन की इच्छा होती है। धन कमाने के लिये उचित अनुचित का ध्यान नही रहता। धन तो पाप का मूल है। उसमे तो अनेक अवगुण शरीर में प्रवेश कर जाते है। क्या होगी उनकी स्थिति? यह सोचने की बात है। चार माह बाद सत्सग में आते है और दोष देने लगते है दाता को कि अमुक वर्षो से श्रीदाता के सत्सग मे आ रहे है, हमें तो कुछ भी नही मिला। हँसी आती है बडे बडे महारथियो के मुह से ऐसी बाते सुन सुन कर। अरे! हमने दिया क्या है जो लेने की इच्छा कर रहे है। लेने की इच्छा तो कुछ देने वाला ही कर सकता है। अरे! हम तो कहना भी नही मानते। यह सच है कि निरन्तर हम श्रीदाता के पास नही रह सकते और निरन्तर महापुरुषो का सत्सग-सम्पर्क भी नही कर सकते किन्तु श्रीदाता के दिये हुए पाच आदेश तो मान सकते है। उन आदेशो का तो पालन करके देखो, के आपको क्या मिलता है? बस उसकी इच्छा कर आगे बढो, आपको सद्गुरु गोदी में उठा कर आप स्वरूप कर देगा। किन्तु ऐसा हम करना चाहे तब न!

करेडा, कोशीथल, भीलवाडा, रायपुर आदि स्थानो के सत्सगी बन्धुओ पर श्रीदाता की कृपा कम नही रही। बडे बडे ऋषि-मुनियों ने वर्षो तप कर जो नही पाया उस वस्तु को बात की बात में ये लोग

पा गये। मालामाल हो गये किन्तु उस माल को सुरक्षित नहीं रख सके और हाथ से निकाल दिया तो अब श्रीदाता क्या करें? स्वार्थ ने उन्हें अन्धा कर दिया। एक दूसरे से लड़ने–झगड़ने लगते हैं। स्वार्थी लोगों के बहकावे में आकर अपने पराये को भी नहीं देखते। अपने ही साथियों की हानि करने को उद्यत हो जाते हैं। जिस पेड़ पर उनका बसेरा है, उसकी जड़ काटने से तो स्वयं को ही कष्ट होगा, इस बात को कोई देखता नहीं। इसीलिये परेशानी होती है। दुःखों के थपेड़े जब अधिक लगते है तब जाकर श्रीदाता के पास जाते हैं व रोते हैं। दाता तो दयालु है। उनके कुकर्मों पर ध्यान न देकर उन्हें पुनः आगे बढ़ने के लिये प्रोत्साहित करते हैं। उनके प्याले को राम-रस से भर देते है।

पी ले राम नाम रस प्याला, तेरा मनुवा होय मतवाला ॥
जो कोई पीवे युग युग जीवे, वृद्ध होय नही बाला।
चौरासी के बचे फेरते, कटि जाय यम का जाला ॥
इस प्याले के मोल न लागे, पकड हरी की माला।
जन्म जन्म के दाग छुटें सब, नेक रहे नहि काला ॥
सतसंगति मे सौदा कर ले, वहाँ मिले सब हाला।
गुरु-वेद का शस्तर पकड़ो, तोड़ भरम का ताला ॥
गुप्त ज्ञान का दीपक बालो, जब होवे उजियाला।
सब ही शत्रु मार गिराओ, कर पकड़ि ज्ञान का भाला ॥

श्रीदाता तो दया करते है किन्तु हम दया के पात्र नहीं। हमारा प्याला ही फूटा है। राम रस ठहरे तो किस में। क्या फूटे वर्तन में रस ठहर सकता है।

करेड़ा के लोगों पर श्रीदाता की कृपा सदा ही रही है। वहाँ के सत्संगी बन्धुओं का प्रेम अनुकरण की वस्तु थी। भजन-कीर्तन मे इतने तल्लीन रहते कि कब सूर्योदय हो रहा है या सूर्यास्त हो रहा है इसका उन्हें भान ही नहीं रहता। हर समय दाता की मस्ती मे मस्त रहते। दाता का नशा हर समय छाया रहता। कोई सत्संग प्रेमी वहाँ पहुंचता तो उसे ऐसा लगता मानो वह स्वयं के

घर ही आ गया हो। परायापन उसे महसूस होना ही नही। वहाँ के सत्संगी बन्धुओ ने 'सत्सग-भवन' नाम से एक उपासना गृह बनाया जो अपने आप में अनूठा है। श्रीदाता के दरबार में कई गांवो और नगरो के लोग आते है किन्तु करेडा के सिवा कही सत्सग भवन नही है। उसी करेडा में ऐसा भी समय आया जब सोमवार के सत्सग में केवल मात्र इने-गिने व्यक्ति ही आये। माया के चक्कर ने उन्हे भी नही छोडा। तू-तू, मैं-मैं चली और खूब चली। शक्कर खोरे को शक्कर नही मिलती है तो दु ख तो होता है। जो अन्दर ही अन्दर घुटने लगा। परेशान हुए व दौडे हुए शरण में पहुँचे। पहले तो श्रीदाता ने सुनवाई की ही नही। जब अनेक बार अलग अलग जाकर रोये तो दया आई ही। उन्हे फटकारा, पुचकारा और समझाया कि सद्‌गुरु को भूला न करो। सत्सग किया करो। सत्सग में जो आनन्द है वह अन्य किसी में नही। यह दुनिया आप को साथ नही देगी। वह तो बडी स्वार्थी है। जब तक आपसे उनका हित है तभी तक वह आपकी है। हित मिटा कि वैरी हुए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने लिखा है –

मतलब की दुनिया है कोई काम नही कुछ आता है।
अपने हित को, मुहब्बत सब से सभी बढाता है॥
कोई आज और कल कोई सब छोड के आखिर जाता है।
गरज कि अपनी गरज को सभी मोह फैलाता है॥
जब तक इसे जमा समझे थे तब तक थे सब कुछ खोये।
मुह काला कर, बखेडे का हम भी सुख से सोए॥

श्रीदाता ने उन्हे बताया कि जिन्हे आप अपने हितेच्छु समझ बैठे है वे ही अपने प्रेम का ढोंग रचकर आपको दाता की ओर से विमुख कर रहे है। वे आपको कठपुतलियो की तरह नचा रहे हैं। आप जानते हैं कि वे आपको धोखे में रख रहे है किन्तु फिर भी मोहवश आप उनके चगुल से निकलना नही चाहते। जो आपके सच्चे हितेच्छु है किन्तु उनकी बात कठोर व कडुवी होती है अत आप सुनना चाहते नहीं। ससार में सच्चा प्रेम और निस्वार्थ भाव

दुर्लभ है यह जान कर भी आप संसार से अलिप्त रहने का प्रयत्न नहीं करते। सच्चा प्रेम तो आपको सत्गुरु से ही मिल सकता है। सत्गुरु के चरणों में जाने से ही आपको शक्ति प्राप्त होगी। आपमें शक्ति होगी तो दुःख आपसे डरेगा क्योंकि दुःख किसी का भेजा हुआ नहीं है, वह तो आपका ही बुलाया हुआ है। आप अपने पुरुषार्थ की प्रशंसा करते हुए मैं को प्रधानता देते हो किन्तु तनिक से दुःख सहन करने की आप में ताकत नहीं। ऐसी अवस्था में आपको पुरुषार्थी कौन कहेगा ? सच्चे पुरुषार्थी बन कर गुरु चरणों में श्रद्धा रखो, फिर देखो आपका जीवन कितना सुखमय हो जावेगा, कितना उज्ज्वल हो जावेगा।

आप लोग दाता से विमुख रह कर शान्ति नहीं पा सकते। अतः अब भी जग सको तो जग जाओ। अब भी प्रेम से रह कर आनन्द लूटना चाहते हो तो तैयार हो जाओ। आप दाता से सद्बुद्धि मांगते है किन्तु यहाँ तो कुछ जानते ही नहीं। हमारा आधार तो केवल दाता ही है। आप लोग तीन दिन का अखण्ड कीर्तन करो। दाता ने किया तो सब भला ही होगा।

करेड़ा वाले बड़े प्रसन्न हुए। वे समझते थे कि श्रीदाता उनकी गलती के लिये क्या दण्ड देंगे ? किन्तु वहाँ से मिला दण्ड के नाम पर हरि स्मरण। दिनांक २९–७–८४ ई. से दिनांक १–८–८४ तक अखण्ड कीर्तन करना निश्चित हुआ। अजमेर, जयपुर, उदयपुर, भीलवाड़ा, झामोला आदि स्थानों से भक्त-जन आ गये। दिनांक २९–७–८४ को प्रातः ही कीर्तन प्रारंभ हुआ। कीर्तन का बोल था "श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्दा। हरे दाता, हरे राम, राधे गोविन्दा॥" कीर्तन सत्संग भवन में ही रखा गया। माइक लगा दिया गया जिससे आवाज केवल करेड़ा में ही न पहुँचे, दूर दूर तक जा सके।

करेड़ा में वर्षा जुलाई के प्रारंभ ही हुई थी। बाद में बिल्कुल ही नहीं हुई। खेतों में बीज डाल दिये गये व फसलें भी निकल आयी किन्तु पानी के अभाव में सूखने लगी थी। यही स्थिति

भीलवाडा, उदयपुर, अजमेर आदि दूसरे जिलो में थी। अकाल की सी स्थिति हो गई। चारो ओर वर्षा की जोर शोर मे प्रतीक्षा की जाने लगी। वर्षा के अभाव में लोग अत्यधिक चिन्तित और दु खी थे। लोग बेकार भी थे कारण खेतो में तो काम था नही। अत जब कीर्तन प्रारभ हुआ तो अधिक मात्रा में लोग कीर्तन स्थल पर आने लगे। कीर्तन में जनसख्या अधिक हो जाने मे व उत्साह होने से कीर्तन जोरो से बोला जाने लगा और चारो ओर आनन्द व्याप्त होने लगा। कीर्तन की आवाज प्रत्येक घर में माइक के माध्यम से पहुँच रही थी। घर बैठे गगा वह रही थी। कीर्तन मे लोगो को यह उम्मीद बनने लगी कि दाता की कृपा से वर्षा अवश्य होगी। दाता पर लोगों को भरोसा है इसलिये उनका इस तरह विचार करना सही था।

वाहर मे आये मेहमानों की सुख-सुविधाओं का भी पूरा ध्यान रखा गया। उन्हे तनिक भी कष्ट न हो इस बात की पूरी कोशिश की गई। करेडा वाले सेवा करने में तो पहले ही प्रसिद्ध है। पूरे दिन भर कीर्तन बडी ही मस्ती से चलता रहा। सध्या को जगपुरा से बहनें और अन्य लोग आ गये। रात्रि के शान्त वातावरण में कीर्तन की ध्वनि इतनी मधुर लग रही थी कि वर्णन करना बहुत ही कठिन है। लोगों को बडा ही आनन्द आया।

दिनाक ३० को भी कीर्तन उसी जोश के साथ चलता रहा। आकाश साफ था और बादल का कोई नामोनिशान नही लेकिन जिनको दाता में आस्था थी उनके मुह से यही सुनने को मिलता कि दाता का नाम लेना अकारथ नही जावेगा। यद्यपि कीर्तन का उद्देश्य वर्षा लाना नही था किन्तु लोगो का विश्वास अत क्या कहा जाय। दिनाक ३०–७–८४ को साय श्रीदाता का पधारना हो गया। चारों ओर उत्साह एव आनन्द छा गया। जब श्रीदाता का पधारना सत्सग भवन में हुआ उस समय पैर रखने को भी स्थान नही था। लोगों को इधर उधर कर स्थान बनाना पडा। श्रीदाता तख्त पर विराज गये। कीर्तन बोलने वालो में जोश आया। कीर्तन के साथ नृत्य भी चलने लगा। कीर्तन में समा सी बन गई।

वड़ी देर तक श्रीदाता वहीं विराजे रहे। फिर उठ कर विश्राम स्थल पर पधार गये।

दिनांक ३१-७-८४ को वीगोद से अखाड़ा पार्टी आ गई। अखाड़ा पार्टी के व्यायाम का प्रदर्शन उच्च माध्यमिक विद्यालय के प्रांगण में हुआ। व्यायाम करने वालों मे आठ वर्ष की उम्र के वालकों से लेकर १८ वर्ष तक की उम्र के वालक ही थे। अधिकतर उच्च माध्यमिक विद्यालय वीगोद के वालक थे। लकड़ी चलाने, तलवार फेरने व भाला चलाने में निपूण थे। उन वालकों का प्रदर्शन दिन में लगभग दो घण्टे तक होता रहा। प्रदर्शन करने वाले वालकों ने लकड़ी के कई पैतरें वताये। वार करने व वचने के तरीके वताये। आठ-दस वालक हाथ में लकड़ी लेकर निहत्थे वालक को मारने लगे। निहत्था वालक विना कोई चोट खाये अपने को पूरी तरह वचा कर ही नहीं निकला वरन् अपनी कला से एक वालक की लकड़ी छीन कर सव को तितर वितर करने में सफल हुआ। तलवार के वार भी किये गये। नारियलों का भिन्न भिन्न स्थितियों में लाठी की चोट से तोड़ने का प्रदर्शन भी अद्भुत था। वच्चों पर इस प्रदर्शन का अच्छा प्रभाव पड़ा। आज इस प्रकार के व्यायाम की स्कूलों में शिक्षा देना आवश्यक है। इससे शरीर की निरोगता और सुरक्षा के साथ ही साथ आत्मवल भी वढ़ता है। प्रदर्शन के वक्त कुछ पुलिस अधिकारी भी कारें लेकर आ गये। वे श्रीदाता के दर्शन करने हेतु दाता-निवास गये थे। वहाँ से मालूम कर वे करेड़ा आ गये। वहीं स्कूल प्रांगण में वे लोग आ गये। उन्होंने श्रीदाता के श्रीचरणों में प्रणाम किया। श्रीदाता उन्हें लेकर विश्राम स्थल पर आ गये। उन्हें भोजन कराया गया। श्रीदाता ने उन्हें सत्संग दिया व उनकी प्रार्थनाएँ सुनी। दो घण्टे ठहर कर वे पुनः वहाँ से रवाना हुए। वे अत्यधिक प्रसन्न एवं सन्तुष्ट नजर आ रहे थे।

भोजनोपरान्त कुछ लोग श्रीदाता के पास जा वैठे। करेड़ा वालों ने नगर कीर्तन की प्रार्थना की। श्रीदाता ने १-८-८४ को प्रातः १० वजे नगर कीर्तन की आज्ञा दे दी। वहीं जिज्ञासु लोग

आ गये । कुछ विद्यालय के अध्यापक व कुछ उपतहसील के कर्मचारी । श्रीदाता ने कबीर का यह दोहा बोला –

मन रे हरि भजि हरि भजि हरि भजि भाई ।
जा दिन तेरो कोई नाही, ता दिन राम सहाई ।।

श्रीदाता ने हरि भजन पर जोर दिया और बताया कि दाता के सिवा हमारा कोई नही है । वही हमारा निर्माता, पोषक और सहारक है हमें केवल मात्र उसी का बल होना चाहिये । उसके नाम की अखण्ड-प्रेमधारा निरतर बहती रहे, इसी में आनन्द है ।

कबीर सबद सरीर में, बिनि गुण बाजे तंति ।
बाहरि भीतरि भरि रह्या तार्थे छुटि भरति ।।

दाता के गुणानुवाद से दाता की प्राप्ति होती है कारण दाता के गुणानुवाद से अह की समाप्ति हो जाती है । अहकार तो ऐसी वस्तु है जो हमें दाता से दूर ले जाता है अत अहकार तो होना ही नही चाहिये । अहकार हो तो इस बात का कि मै दाता का हूँ व दाता मेरे हैं । इस अहकार से मिथ्या अहकार की समाप्ति हो जाती है । कबीर की तरह हमें दाता के सामने इतना विनम्र हो जाना चाहिये –

कबीर कुत्ता राम का, मुतिया मेरा नाऊँ ।
गले राम की जेवड़ी, जित खैचें तित जाऊँ ।।
'तो तो' करै तो बाहुडौं, दुरि दुरि करै तो जाऊँ ।
ज्यूँ हरि राखें त्यूँ रहौं, जो देवै सो खाऊँ ।।

इस प्रकार के भाव हमें दुनियादारी से ऊपर उठाकर दाता के निकट पहुँचा देते हैं । अन्त में दाता ने कहा हम तो रोगी हैं और सत्गुरु हमारे डाक्टर हैं जो राम नाम रूपी औषध देकर हमें निरोग कर देते हैं ।

राम नाम सत औषधी, सतगुरु सत हकीम ।
जग वासी जीव रोगिया, स्वर्ग नरक क्रम सीम ।।
कर्म रोग कटियो बिना, नहीं मुक्ति सुख जीव ।
चौरासी में परमराम, दुखिया रहे सदीव ।।

नाम जड़ी पच शहद में, देऊँ युक्ति वताय ।
परस राम सच पच रहे, कर्म रोग मिट जाय ।।

श्रीदाता का पधारना कीर्तन स्थल पर हो गया । कुछ देर श्रीदाता कीर्तन वोलते रहे फिर तख्त पर विराज गये । उसी समय श्री दुर्गाशंकर जी उदयपुर से आये । उनकी सीधे हाथ की अँगुलियाँ मशीन में आ जाने से आधी कट कर दौहरी हो गई । उसे अस्पताल जाना चाहिये किन्तु उसने तो श्रीदाता का नाम लेकर अँगुलियों को सीधी की और अपने साथी से कपड़ा फाड़ कर पट्टी वाँधने को कह दिया । पट्टी लगने पर वह सीधा ही करेड़ा आ गया प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया । उस समय भी घाव से खून रिस रहा था । हमने उन्हें अस्पताल न जाने का उलहना दिया और तत्काल डाक्टर के पास जाकर पट्टी लगाने को कहा । वह श्रीदाता का मुंह देखने लगा । श्रीदाता ने उसे कीर्तन मे नृत्य करने को कह दिया । श्रीदाता तो उस समय भाव में थे । हम बोल नहीं सके लेकिन लगा अटपटा ही । कीर्तन में हाथ के झटके लगेंगे ही और उससे घाव का खुलकर अँगुलियों के अलग होने की संभावना थी । इतना कुछ नहीं हो तो भी खून के रिसने की तो संभावना थी । श्रीदाता की आज्ञा से वह नाचने लगा । खूव नाचा । उछला-कूदा क्योंकि भावना में वहने के वाद शरीर का तो भान रहता नहीं । लगभग दो घण्टे तक वह नृत्य करता रहा । जव थक गया तव जाकर बैठा । वैठते ही हमने उसके घाव को देखा । खून का रिसना वन्द हो गया था । चूँकि श्रीदाता ने उसे कुछ नहीं कहा जिससे वह पट्टी वंधाने भी नहीं गया । दाता की कुदरत निराली । विना ही कुछ किये उसका घाव पाँच-छः दिन में ठीक हो गया । उसकी अँगुलियाँ विल्कुल अच्छी हो गई ।

कीर्तन चलता रहा । कीर्तन के साथ साथ श्रीदाता वुला-वुला कर पुकारें सुनने लगे । कई पुकारें सुनी । कई पुकार वालों को तो कीर्तन करने खड़ा कर दिया । सच है सच्ची दवा तो भगवान के नाम की ही है और सच्चा डाक्टर भी वही है । कितना अच्छा होता यदि हमने विश्वास कर लिया होता कि दाता किसी न किसी

रूप में हमारे सनिकट रहते हैं। स्वस्थ अवस्था की अपेक्षा रोग में तो विशेष रूप से वे हमारे पास रहते हैं। वे बडे डाक्टर है। उनके जैसा इलाज दूसरा डाक्टर नही कर सकता। दाता में विश्वास न रखकर औषधि में भरोसा रखना कितनी मूर्खता है। रोगो को दूर करने में जितने भी उपाय किये जाते हैं उन सब की सफलता भी तो भगवान की इच्छा पर निर्भर है। भगवान स्वय ही जब हमारे लिये दु ख का विधान रचते है तो फिर उसको छोडकर उसे दूर करने की किस की ताकत है। वास्तव मे शारीरिक रोग जो आते हैं वे अन्त करण के रोगो को दूर करने ही आते हैं।

जिन-जिन पुकार करने वाले रोगियो ने श्रीदाता के आदेश पर कीर्तन में नृत्य किया वे स्वस्थ हो गये। वे स्वस्थ होकर प्रसन्नचित्त घर गये। कुछ समय पश्चात् बहनें व महिलाएँ नृत्य करने लगी। उस दिन वहाँ आनन्द ही आनन्द था।

कुछ समय बाद श्रीदाता का पधारना विश्राम स्थल पर हो गया। रात्रि को वही विराजना हुआ। कीर्तन मस्ती से चलता रहा। अगले दिन अर्थात् १-८-८५ को प्रात दैनिक कार्यो से निवृत्त होकर श्रीदाता वही विराज गये। प्रधानाध्यापक सहित अनेक अध्यापक आ गये। उन्होने श्रीदाता से अनेक प्रश्न किये। एक प्रश्न किया गया, "साँच और झूठ क्या है।" इसके उत्तर में श्रीदाता ने यह भजन बोला –

साधो भाई सत मिथ्या क्या गावे रे।
सत और मिथ्या परे लखो तो, कुछ निश्चय हो जावे रे॥
कहा है सत कहा है मिथ्या, को दूजा सो होवे रे।
इन से परे पार है, क्या भूलो क्या जोवे रे॥
ना कोई सत मिथ्या कोई नाही, ना होया ना होवे रे।
ज्यो हैं त्यो ही है तू हरदम, क्या पाया क्या खोवे रे॥
को है जगत् कौन तू न्यारो, कौन सो जगत् रचावे रे।
तू ही जगत रचना सो तू ही, भिन्न नही सो पावे रे॥

देवनाथ गुरु सत स्वरूपी, सो निज निश्चय दीना रे।
मानसिंह यह सत और मिथ्या, भरम दूर कर लीना रे।।

श्रीदाता ने फरमाया सत्गुरु ही सत्य स्वरूप है। वही सत्य, अविनाशी और आप रूप हीं। माया उसी का रूप है जिसे हम झूंठ का रूप देते है। ब्रह्म और उसका विस्तार ही सत्य-झूंठ है। इसी तरह अध्यापक वर्ग प्रश्न करते गये व श्रीदाता उत्तर देते गये अन्त में वे चुप हो गये।

नगर कीर्तन का समय हो गया अतः श्रीदाता का पधारना कीर्तन स्थल पर हो गया। सबसे आगे बाजे, उसके बाद अखाड़े वाले बालक अपनी साज-सज्जा के साथ, उसके बाद कीर्तन-मण्डली एवं श्रीदाता, उनके पीछे भगवान के चित्र सहित विमान और अन्त में नगर के नर नारी। सभी कीर्तन बोलते हुए। लोग पुष्प वर्षा और गुलाल डाल रहे थे। बड़ा सुन्दर दृश्य था। पूरा गाँव देखने आ गया। जय जय की ध्वनि से आकाश गूंज उठा। कई वर्षो के बाद करेड़ा में नगर कीर्तन हुआ था। आसपास के गाँवों से कई लोग आये थे। बड़ा ही मनमोहक कार्यक्रम रहा। बीगोद वाले बालकों के प्रदर्शन ने इस कार्यक्रम में चार चाँद लगा दिये।

नगर कीर्तन का जुलूस बारह बजे के लगभग वापिस सत्संग भवन में पहुँचा। श्रीदाता तख्त पर जाकर बैठे। कीर्तन चल रहा था। श्रीदाता के पधारते ही कीर्तन के साथ नृत्य भी चल पड़ा। अन्तिम समय था अत: कीर्तन में जोश था। लोग पसीने से तर थे, फिर भी उछल-कूद चलती ही रही। १-४५ बजे श्रीदाता ने आरती संजोने का आदेश दिया। जय के साथ कीर्तन समाप्त किया गया। फिर आरती हुई। बड़ी भावमय आरती बोली गई। आनन्द रूपी अमृत की धारा ही बह चली। उस समय हजारों व्यक्ति थे। आरती समाप्त होते ही दाता की जय से आकाश गूंज उठा। लोग बोल पड़े। श्रीदाता की जय, सतगुरु समर्थ की जय, माँ अन्नपूर्णा की जय, भगवान श्रीकृष्ण की जय और सब संतन की जय।

श्रीदाता बाहर आसन की ओर दीवार पर जा विराजे। प्रसाद वितरण हुआ। कीर्तन समाप्त हो गया किन्तु वर्षा का होना दूर रहा, बादल भी नहीं हुए। लोग, जिन्हें पूरा विश्वास था, उन्हें दुःख हुआ। वे निराश हो गये। श्रीदाता के पास अनेक लोग जाकर बैठे। कुछ पुकार वाले लोग भी आये। श्रीदाता ने बीमारी के बारे में पूछा तो चुप हो गये। पुकार करने वाली औरत थी। वह लज्जा कर रही थी। श्रीदाता ने कहा, ' दाता के सामने लज्जा करने से काम नहीं बनेगा। यहाँ तो स्पष्ट कहना पड़ता है।" दाता के सामने कौनसा परदा। उसने सब बात स्पष्ट की तब ही पुकार सुनी। बाद में श्रीदाता ने कहा, "पुकार करने वालों को दाता के सामने सब बात स्पष्ट कहनी चाहिये। लज्जा करने से काम नहीं चलता है। एक बार नान्दशा का भजा हरिजन बीमार हो गया। बहुत ज्यादा बीमार हो गया। नाड़िया टूट गई और मरणासन्न हो गया। लोग दाह-संस्कार के लिये सामान बटोरने लग गये। आदमी एकत्रित होने लगे। अचानक किसी ने कहा– अरे, दाता से पुकार की या नहीं ? यह सुन कर उसकी पत्नी को ध्यान आया। रोना छोडकर वह भागी हुई हर-निवास आयी। वहाँ आकर रोने लगी। म्हाका राम ने उसे पूछा कि क्या कहना चाहती है। उसने कहा वो बीमार है। मैंने पूछा वो कौन ? नाम लेकर पुकार करो। वह रोती रही। दुबारा हुक्म हुआ फिर भी नहीं बोली। अन्त में मैंने उससे कहा कि यदि अब तीसरी बार नाम नहीं बताओगी तो पुकार नहीं सुनी जावेगी। तीसरी बार में उसने कहा, "आपका भगी भजा बीमार है, उसकी पुकार है। तब ही दाता ने पुकार सुनी और दाता की महर से वह बच ही नहीं गया वरन् स्वस्थ हो गया। अतः दाता के दरबार में छिपाव रखना बीमारी को बुलाना है।"

भोजन तैयार हो गया अतः आज्ञा लेकर भोजन कराया गया। पहली पंक्ति निपट गई। दूसरी पंक्ति के लोग आधे ही निपटे होंगे कि उत्तर की दिशा में बादल दिखाई दिये। थोड़ी ही देर में ठण्डी हवा आयी और फिर बूंदाबांदी शुरू हुई। कुछ ही देर में मूसलाधार

वर्षा होने लगी। भोजन करने वालों ने क्यों भोजन किया, क्यों न किया, भगे बचाव के लिये। जल्दी जल्दी सामान वटोरा गया। श्रीदाता तख्ते पर विराज गये। वे वहाँ विराजे रहे। नवयुवक मण्डल के लोग उनके पास चारों ओर उन्हें घेर कर खड़े हो गये। टीन की छाँह थी। टीन से पानी टपकने लगा। आंगन में पिंडली तक पानी भर गया। सब ही के कपड़े गीले हो गये व पानी टपकने लगा। कौन पर्वा करे भींगने की। उन्हें तो इतनी प्रसन्नता थी कि जिसका वर्णन करना संभव ही नहीं है। वे तो प्रसन्नता से नाचने लगे। श्रीदाता खड़े हो गये। वे दाता को घेरकर चारों ओर नृत्य करने लगे और भजन बोलने लगे। वर्षा हो रही थी। लगभग एक घण्टे तक यही चलता रहा। जब वर्षा ठहरी तब जाकर वे लोग भी ठहरे। हल्की हल्की बूंदाबांदी तो फिर भी चलती ही रही। सभी लोगों ने अपने कपड़े बदले। भोजन न तो श्रीदाता का ही हुआ और न नवयुवकों का।

श्रीदाता उसी दिन शाम को दाता-निवास पधारना चाहते थे किन्तु वर्षा के आ जाने से व लोगों के आनन्दमय वातावरण में घिरे रहने से अपने आप ही जाना स्थगित हो गया। भोजन की व्यवस्था की गई। उधर बचे हुए लोगों को भी भोजन करना था। सभी ने बड़े आनन्द व बड़ी मस्ती से भोजन किया। झरमर झरमर वर्षा पूरी रात्रिभर होती रही। सत्संग भवन में रात्रिभर भजन चलते ही रहे।

प्रातः विदाई का समय आया। बड़ा करुणाजनक दृश्य हो गया। वर्षा न केवल करेड़ा में हुई वरन् दूर दूर तक हुई थी। फसलों की जान में जान आयी। साथ ही सभी के चेहरों पर रौनक आ गई। श्रीदाता की विदाई के समय सैकड़ों की संख्या में लोग विद्यमान थे। करेड़ा के सत्संगी बन्धु तो इतने प्रसन्न थे मानो उन्हें बहुत बड़ा खजाना ही मिल गया हो। श्रीदाता की उन पर इतनी महर हो जावेगी और उनके लिये श्रीदाता तीन दिन ठहर कर आनन्द की वर्षा करेंगे, सोचा ही नहीं था। श्रीदाता ने विदा होते

वक्त करेडा के वन्धुओ मे कहा, "तुम लोग मेरे दाता को दु ख तो वहुत देते हो किन्तु तुम्हारे प्रेम के वशीभूत होकर दाता को झुकना ही पडता है। हमने तो सोचा ही नही था कि करेडा जाना होगा और वहाँ इतना ठहर जाना पडेगा। किन्तु करे भी तो क्या? दाता की तो बान ही पडी है। कोई दाता के लिये एक बूद पसीने की वहाता है तो उस वन्दे के लिये सौ बूद खून की देने को तत्पर हो जाता है। द्रौपदी ने दो अँगुल चीर फाड कर दिया था कृष्ण को इसके वदले अनन्त चीर द्रौपदी को दे दिया। तुमनें पश्चाताप के कुछ ही आंसू वहाये होगे, इमके वदले कितना कुछ कर दिया मेरे दाता ने। ऐसे अनन्त करुणासागर को तुम लोग भुला देते हो यह कितनी लज्जा की वात है। अपना जीवन सार्थक करना चाहो तो निरन्तर उसी के वन कर रहो। माथ ही दुनिया में रहते हो सो इस बात का भी ध्यान रखो कि ऐमा कोई काम न करो जिससे दूसरे को अपने कारण दु ख होवे। मदा वाणी में मधुरता रखो। वाणी का वडा महत्त्व है —

> बचन ते दूर मिलै, बचन विरोध होइ,
> बचन ते राग बढ़ै, वचन से दोष जू।
> बचन ते ज्वाल उठै बचन सीतल होइ,
> बचन ते मुदित, वचन ही ते रोष जू॥
> वचन ते प्यारो लगै, बचन ते दूर भगै,
> बचन ते मुरझाय, वचन ते पोष जू।
> सुन्दर कहत यह, बचन को भेद ऐसो,
> वचन ते वध होत, वचन ते मोच्छ जू॥

याद रखो

> कोई अमर नही है या तन में।
> काया करम आधार॥
> उपजे, मरे, बने फिर बिन सैं।
> जुग जुग वधन दुख सुख वारवार॥

अतः भज गोविन्दं बालमुकुन्दं परमानंदम् हरे हरे।"

यह फरमाकर श्रीदाता दाता-निवास पधार गये। अन्य लोग भी। करेड़ा वालों ने श्रीदाता की महर से जो आनन्द वितरित किया उसके लिये उनका आभार मान कर विदा हुए।

बोलो भक्तवत्सल भगवान की जय।

○ ○ ○

राजा जनमेजय की यज्ञभूमि में पदार्पण

जनवरी सन् १९८५ के तृतीय सप्ताह में श्रीदाता का पधारना भीलवाडा हुआ। भीलवाडा में कु हरदयाल सिंह जी ने जनप्रदाय योजना के पास ही एक निवास स्थान का निर्माण करा लिया था। उसी भवन में श्रीदाता विराजे हुए थे।। सत्संग चर्चा चल ही रही थी कि एक साधु महात्मा बीगोद के कुछ सत्संगियों को साथ लेकर जीप मे पधारे और श्रीदाता को नमस्कार कर विराज गये। महात्मा जी की आयु ३०-३५ के लगभग होगी। शरीर बलिष्ट और चेहरा देदीप्यमान था। साथ वाले लोगो ने बताया कि इनका नाम वसिष्ट जाया शरण जी है। लोग इन्हे मस्तराम जी के नाम से पुकारते है और ये इसी नाम से विख्यात है। जनकपुर के वृद्ध स्वामी जी इनके दीक्षा गुरु है। जहाजपुर नृसिंहद्वारा के महन्त श्री भगतदास जी ने इन्हे अपना शिष्य बनाया है। ये जहाजपुर में एक यज्ञ करना चाह रहे है जिसका भूमि पूजन दिनांक २-२-१९८५ को अपराह्न में है। यज्ञ नवरात्रि में होगा। यज्ञ में खर्च होने वाली धनराशि एवं सामग्री एकत्रित करने हेतु ये चारो ओर घूम रहे है। श्रीदाता का नाम सुन कर यहाँ आये है। ये चाहते हैं कि भूमि पूजन के समय श्रीदाता का आशीर्वाद मिल जाय तो बडी कृपा हो। यही प्रार्थना लेकर ये श्रीचरणो में आये है।

श्रीदाता ने उन्हे बिठाया और गुरु महिमा का वर्णन किया। समाज में फैली हुई भेदभाव पूर्ण नीति पर प्रकाश डालते हुए बताया कि सन्त ही ज्ञान-दीपक हाथ में लेकर समाज को रोशनी दे सकते है। समाज के असगठित और असतुलित तत्वो को मार्गदर्शन दें। एक सूत्र में बाँधने का कार्य जितना एक साधु कर सकता है उतना समाज का अन्य व्यक्ति नही। यज्ञ का धार्मिक महत्व तो है ही,

किन्तु सामाजिक महत्व भी कम नहीं है। मस्तराम जी महाराज जैसे सन्त समाज को नई दिशा दे सकते हैं।

श्रीदाता के अमृतसने शब्दों से मस्तराम जी बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने श्रीदाता से दिनांक २–२–१९८५ ई. को होने वाले भूमि पूजन के समय अवश्य पधारने हेतु विनम्र प्रार्थना की। श्रीदाता ने फरमाया, "म्हाका राम के हाथ कुछ भी नहीं है। मैं तो दाता का भोंपू हाँ। कठपुतली हाँ। दाता के द्वार का कूकर हाँ। उसके भरोसे पड़्या हाँ। यदि उसकी महर हुई और हुक्म हो जावेगा तो रम जावांला।" श्री मस्तराम जी आश्वस्त होकर रवाना हो गये।

जहाजपुर को यज्ञपुर भी कहते हैं। यहीं जनमेजय ने सर्पयज्ञ किया है। लोग कहते हैं कि उसके पश्चात् इस क्षेत्र में कोई बड़ा यज्ञ नहीं किया गया है इसलिये इस होने वाले यज्ञ की योजना को लोगों ने बहुत सराहा। इस यज्ञ को सफल करने हेतु इस क्षेत्र के लोग विशेष कर मीणा एवं ब्राह्मण जाति तन-मन-धन से तैयार हो गये व बड़े पैमाने पर कार्य में जुट गये। मस्तराम जी ने व्यवस्था जहाजपुर के नवयुवकों के हाथ में देकर स्वयं व्यवस्था से अलग हो गये। आवश्यक निर्देश देने का कार्य उनके जिम्मे रहा। इस यज्ञ में एक परम्परा टूटी। आमतौर से देखा गया कि ऐसे बड़े यज्ञों की व्यवस्था महाजन वर्ग के हाथ में रहती आई है। वे अच्छे व्यवस्थापक भी होते हैं और ढँक कर खाने का उनका स्वभाव है। सौभाग्य कहो या दुर्भाग्य इस यज्ञ की व्यवस्था में वे आगे नहीं आये। मस्तराम जी ने प्रयास भी किया कि जहाजपुर के महाजन वर्ग के एक-दो व्यक्ति कम से कम व्यवस्थापक मण्डल में हों किन्तु सफल नहीं हो सके। इससे महाजन वर्ग अन्दर ही अन्दर खिन्न होकर निष्क्रिय ही नहीं हुआ वरन् यज्ञ सफल न हो इसके लिए प्रयत्न करने लगा। दुर्भाग्य है हिन्दू समाज का कि प्रत्येक वर्ग में कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनकी दृष्टि निर्माण की ओर न होकर विध्वंस की ओर होती है। ऐसे लोग किसी के उत्थान को देखना पसन्द ही नहीं करते। ऐसे लोग महाजन वर्ग में हों ऐसी बात नहीं,

प्रत्येक वर्ग में ऐसे प्राणी पाये ही जाते हैं। अच्छे प्राणी भी होते हैं। प्राणियों का यही दृष्टिकोण अधिकतर होने वाले यज्ञों में विघ्न डाला करता है। जो हो जहाजपुर में होने वाले यज्ञ में मस्तराम जी ने विघ्न न हो इसका हर समय प्रयास किया। मस्तराम जी परम भक्त, सात्विक विचारों वाले, निष्ठावान, सच्चरित्र, निस्वार्थी, सेवाभावी, निर्विकार, निर्द्वन्द और निर्लिप्त सन्त हैं। ऐसे व्यक्तियों का साथ ईश्वर अवश्य देता है।

श्रीदाता ने दिनांक १-२-१९८५ को जहाजपुर चलने की आज्ञा दे दी। जयपुर भी सूचना पहुँच गई। लगभग ग्यारह बजे भीलवाड़ा से एक छोटी बस व तीन कारों में श्रीदाता और उनके सेवक रवाना हुए। मार्ग में कीर्तन बोलते गये। शाहपुरा से गाड़ियाँ अलग अलग हो गईं जो बनास नदी पर वापिस मिल गईं। तीन बजे श्रीदाता की कार जहाजपुर पश्चिम द्वार के सामने पहुँची। कुछ लोग प्रतीक्षा में थे ही। वे दौड़ पड़े व कार को सीधी डाक बंगले में ले गये। वहीं ठहरने की व्यवस्था थी। तीनों वाहन भी श्रीदाता की कार के पीछे पीछे ही थे। डाक बंगले में जाकर सभी उतर पड़े। लोगों ने श्रीदाता को नमस्कार किया। श्रीदाता डाक बंगले में पधार गये। जयपुर से कुछ लोग एक कार से सीधे ही जहाजपुर पहुँच गये थे। श्रीदाता के साथ लोग अधिक हो गये थे व डाक बंगले में कमरे तीन ही थे। किन्तु ज्यों त्यों सभी व्यवस्थित हो गये।

बात की बात में श्रीदाता के पधारने की सूचना पूरे नगर में फैल गई। व्यवस्थापकों ने जीप पर भोंपू लगाकर भी सूचना का प्रसारण कर दिया था। अतः लोग डाक बंगले के बाहर आकर एकत्रित होने लगे। बाजे भी मगाये गए। वे श्रीदाता को डाक बंगले से गाजों-बाजों के साथ नृसिंह द्वारे पधराना चाहते थे। भीलवाड़े से प्रस्थान के पूर्व प्रातः ही विद्यानन्द जी नाम के एक सन्त का पधारना श्रीदाता के पास हो गया था। वे थे तो दन्डी स्वामी किन्तु अधिक भोले थे। उत्तर प्रदेश में नैमिषारण्य के महन्त के प्रधान शिष्य थे। गुरु के स्वर्गवास के बाद उन्हें महन्त बनाया गया
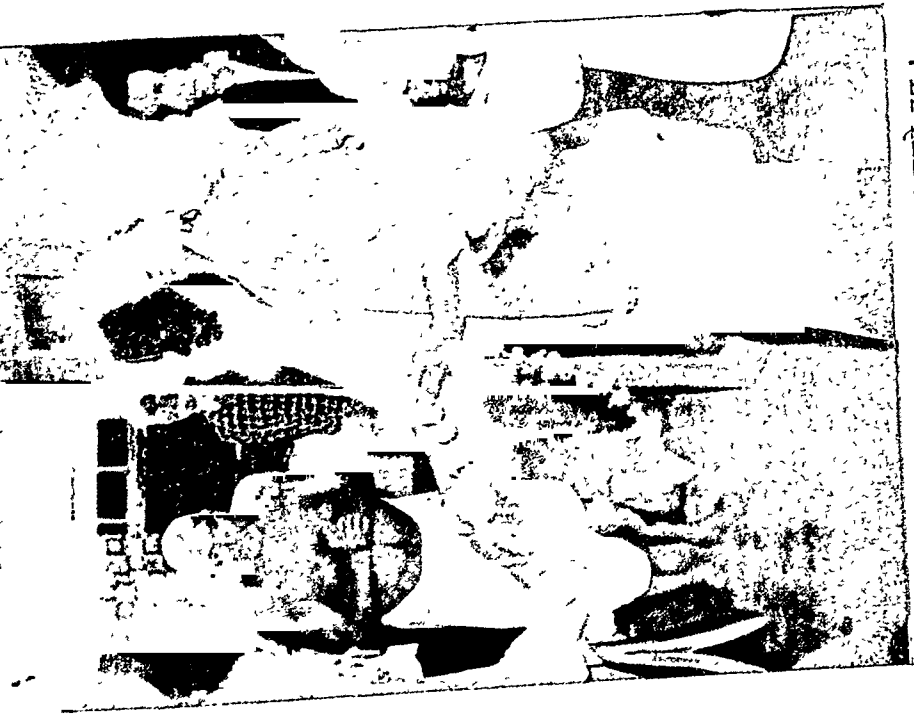
श्री मस्तराम जी श्री दाता का स्वागत करते हुए ।

किन्तु उन्होंने अपने सभी अधिकार अपने से छोटे गुरुभाई को देकर एकान्त में हरिस्मरण करना आरंभ कर दिया। श्रीदाता के बारे में जब उन्होंने सुना तो उनकी इच्छा श्रीदाता के दर्शनों की हुई और वे चले आये। श्रीदाता ने उन्हें भी जहाजपुर अपने साथ ले लिया।

श्री मस्तराम जी कुछ व्यवस्थापकों के साथ डाक बंगले में आये। उनके हाथ में पुष्पमाला थी। आते ही श्रीदाता को प्रणाम कर चरणों में पुष्पमाला अर्पित की। श्रीदाता ने भी उनके चरणों के हाथ लगाकर नमस्कार किया। वे श्रीदाता के सामने बैठ गये। कुछ औपचारिकता के बाद श्री मस्तराम जी ने श्रीदाता को नृसिंहद्वारा पधारने की प्रार्थना की। लोग इतनी संख्या में बाहर थे कि जीप से जाना संभव नहीं था अतः पैदल ही पधारना हुआ।

जहाजपुर वालों ने श्रीदाता के बारे में तो बहुत कुछ सुन रखा था किन्तु दर्शन नहीं हुए थे। बहुत ही कम व्यक्ति ऐसे हैं जो दाता को जानते हैं। अधिकतर व्यक्ति नहीं जानते थे। श्रीदाता अपना सम्मान कभी कराते देखे नहीं गये। वे मान सम्मान से सदा ही बचते रहे हैं। उस दिन एक प्रकार से बुरे फंसे गये किन्तु श्रीदाता की इच्छा के परे कुछ होता नहीं। भगवान ने मार्ग निकाल ही लिया। स्वामी विद्यानन्द जी साथ थे। श्रीदाता ने उन्हें आगे कर दिया और स्वयं उनके पीछे हो गये। लोग स्वामी जी को ही दाता समझ कर माला, गुलाल, पुष्प आदि उन्हीं पर डालने लगे। धोक भी लोग उन्हीं के चरणों में देते। स्वामी जी बड़े संकोच में पड़ गये। वे कभी कभी पीछे हटने की चेष्टा करते तो श्रीदाता उन्हें आगे चलने को कह देते। उनकी साँप छछून्दर सी गति हो गई। अन्त में दाता की इच्छा यही मान कर उसी का स्मरण करते हुए आगे हो गये। आगे आगे बाजे, पीछे लोग; उनके पीछे स्वामी विद्यानन्द जी, दाता और उनके सेवक, पीछे जनता और अन्य लोग थे। बहुत बड़ा जुलूस हो गया। नगर में होकर निकलना था। नगर का वातावरण देखकर हम तो दंग रह गये। सोचा ही नहीं था कि यहाँ के लोगों के हृदय में श्रीदाता के प्रति

इतनी श्रद्धा हो सकती है। नगर की गली और बाजार में इतनी भीड थी कि किसी का आना जाना सभव नही। मकानो के बाहर चबूतरियो पर, बरामदो में, झरोखो में और मकान की छतो पर बालक-बालिकाऐं, माता-बहनें और युवा-वृद्ध इतनी मात्रा में थे कि कल्पना ही नही की जा सकती। यह एक मकान की स्थिति नही वरन् पूरे नगर के मुख्य मार्ग के प्रत्येक मकान की स्थिति थी। लोग लगातार पुष्पो की वृष्टि कर रहे थे व दाता की जय बोल रहे थे। लोगो के हृदय में इतना उल्लास था कि लिखते नही बनता। इतना अभूतपूर्व स्वागत हमने तो इन छत्तीस वर्षो में कभी नही देखा। जहाजपुर वालो ने तो अपना हृदय खोलकर ही रख दिया। मार्ग पुष्पो से आच्छादित हो गया। सडकें गुलाल से लाल-पीली हो गई। जुलूस को नृसिहद्वारा तक पहुँचने में पूरे अढाई घण्टे लगे। श्रीदाता की ओट में स्वागत सब विद्यानन्द जी का ही हुआ। श्रीदाता मार्ग भर मुस्कराते ही रहे। श्रीदाता की इस लीला को देखकर हम सब लोग भी हँसे बिना नही रह सके। मार्ग भर हँसी और विस्मय की स्थिति में चलते ही गये।

जुलूस नृसिहद्वारे जाकर ठहर गया। वहाँ विस्तृत सभा का आयोजन था। एक ओर मण्डप बना था। मार्ग बना कर श्रीदाता और स्वामी श्री विद्यानन्द को मण्डप में पधराया गया। मण्डप में पण्डितराज श्री राम किशोर जी व्यास विराजे थे। एक सन्त सयोजक के रूप में काम कर रहे थे व दो-एक सन्त विराजे थे। मस्तराम जी भी श्रीदाता के पास जाकर विराजे। मण्डप में श्रीदाता के विराजने पर लोगो ने उन्हे पहचाना। उस समय उन लोगो की अजीब सी स्थिति हो गई। उन्हे पश्चाताप होने लगा कि उन्होंने दाता को पहचानने में भूल की।

सयोजक ने सब का अभिवादन कर यज्ञ की सक्षिप्त रूप रेखा रखी। दाता व अन्य आये हुए सन्तो का अभिवादन किया व अगले दिन का कार्यक्रम रखा। सयोजक महोदय भी श्रीदाता के विषय में अनभिज्ञ थे अत उन्होने हम से किसी को दाता का परिचय देने को मँच पर जाने को कहा। हममें से एक व्यक्ति उठा व उसने

सबको नमन कर श्रीदाता के जीवन सम्बन्धी संक्षिप्त परिचय दिया । जो कुछ परिचय में कमी रही उस कमी को दूसरे साथी ने पूरा किया । श्रीदाता का संक्षिप्त परिचय पाकर वे संतुष्ट से लगे । संयोजक महोदय व एक सन्त ने श्रीदाता का अपने भाषणों द्वारा स्वागत किया । श्रीदाता ने बड़ी सभाओं में भाषण कम ही दिये हैं । माइक पर वे कभी बोलते नही । बोली उनकी मेवाड़ी, किन्तु वहां बोलना ही पड़ा । उन्होंने कहा, " माताओं और भाइयों ! आपने जो आज हम लोगों का स्वागत किया है उससे हमारा सिर शर्म से झुक जाता है । हम इस स्वागत-सत्कार के पात्र नहीं है । हम तो दाता की इस विश्व नगरी के एक छोटे से जीव मात्र है । स्वागत तो आप जैसे महापुरुषों का है जो निरन्तर मेरे दाता को रटा करते हैं व दाता के चरणों में प्रेम रखते है । मस्तराम जी का प्रेम था और उनका आदेश था व आप लोगों के रूप मे दाता को दर्शन देना था अतः आना ही पड़ा । दाता के सिवा इस विश्व में कुछ है नहीं । सारभूत वस्तु दाता ही है । आपका दाता में विश्वास है और इसी विश्वास से आप यज्ञ कर रहे हैं । इस यज्ञ से इस क्षेत्र में एक ज्योति जागृत होगी और मानव जागरण होगा । म्हाका राम का तो आप सब को यही कहना है कि संसार की सभी वस्तुएँ नाशवान हैं । अविनाशी एकमात्र दाता ही है । अतः सब काम करते हुए भी उसे हर समय याद रखो । आप सब में वही रमण कर रहा है । मैं आपमें उन्हीं के दर्शन कर रहा हूँ । इसी प्रार्थना के साथ आप लोगों को कष्ट हुआ इसके लिये क्षमा चाहता हूँ "
श्रीदाता के बोलने के बाद संयोजक ने आभार प्रदर्शन कर सभा का विसर्जन किया । श्रीदाता वहाँ से उठकर नृसिंहद्वारा में पधारे । नृसिंहद्वारा में भरतदास जी थे उन्हें नमस्कार कर श्रीदाता डाक बंगले पधार गये ।

वहाँ गणमान्य लोग आ गये और सत्संग चर्चा होती रही । कई जिज्ञासु व्यक्ति भी थे । उन्होंने कुछ प्रश्न किये । श्रीदाता के उत्तर सुनकर वे निरुत्तर हो गये । दाता के प्रति उन्हें श्रद्धा व अनुराग पैदा हो गया । कुछ देर बाद श्री मस्तराम जी का पदार्पण

हो गया। कुछ देर इधर उधर की बाते होती रही। भोजन की स्वीकृति लेकर वे चले गये। श्रीदाता तो कही का भोजन करते नही, अत उनके लिये भोजन बना लिया गया। बाकी लोगो ने मन्दिर द्वारा प्राप्त प्रसाद पाया। रात्रि को बडी देर तक सत्सग चलता रहा।

प्रात ८ बजे सभी कामो से निवृत्त होकर वाहनो द्वारा नृसिहद्वारा पहुँचे। ८ बजे जुलूस निकाला जाने वाला था। लोगो के एकत्रित होने में देर हो गई अत श्रीदाता नृसिहद्वारा के भवन के पीछे बगीचे में मस्तराम जी की कुटिया थी, उसके बाहर जा बैठे। एक अध्यापक जी भी आ बैठे। उन्होने श्रीदाता से साधना के बारे में कई प्रश्न किये। श्रीदाता ने उन्हे सर्व से पहले मन को सिद्ध करने के लिये कहा। मन जब तक स्थिर नही होता तब तक जप, तप, भजन-कीर्तन आदि सभी व्यर्थ है। मन के स्थिर होने पर बन्दा जो भी करे उसमें उसे सफलता मिलती है। सतगुरु के चरणो में समर्पण से मन स्थिर होता है। आपने गोपियो के बारे में सुना होगा। सतगुरु के चरणो में गोपी जैसा प्रेम चाहिये। ज्ञान द्वारा सतगुरु की प्राप्ति में कठोर तप की आवश्यकता है। वहाँ भी निष्ठा और आदेश ही मुख्य है। ज्ञान और भक्ति में भक्ति मार्ग सरल है। भक्ति में प्रेम की पराकाष्ठा है। मैं और तू में मैं को तू मे समाप्त करना होता है। बन्दा इस बात के लिये तत्पर हो जाय तो सब कुछ हो सकता है। कोरी बातो से कुछ नही होता। पैसा जेब में है नहीं और मोल करे लाखो का, इससे होना जाना क्या है? यह तो जबानी जमा-खर्च है।

जुलूस की तैयारी होने पर श्रीदाता वहाँ से उठ गये। मस्तराम जी ने और अन्य व्यवस्थापको ने श्रीदाता को हाथी पर बिठाना चाहा किन्तु श्रीदाता ने एक दिन पूर्व वाला हथियार काम में लिया। उन्होने स्वामी श्री विद्यानन्द जी का प्रस्ताव दिया। विद्यानन्द जी ने बताया कि वे दडी स्वामी है जिन्हे हाथी पर बैठना मना है किन्तु श्रीदाता का आदेश मिल गया, जिसे पालन करना उन्होने अपना धर्म समझा। कितनी महानता है उनकी। कितना

सम्मान बढ़ाया श्रीदाता ने उनका। वे हाथी पर जाकर बैठ गए। श्रीदाता जीप में विराज गये। जुलूस वहां से रवाना हुआ। आसपास के गाँवों से कई लोग आ गये। सैकड़ों लोग जुलूस मे सम्मिलित हुए। नृसिंह भगवान का श्री विग्रह विमान में बाजे वालों के पीछे था। विमान के पीछे जनता थी। जनता के बीच श्रीदाता की जीप व पीछे अन्य कारें थी। हाथी, घोड़े निशान बाजे वालों के आगे थे। सब से आगे ऊँट पर मृदंग थे। लम्बा चौड़ा जुलूस। कल से भी अधिक भीड़। दरवाजे के बाहर पहुँचते पहुंचते बारह बज गये। वहाँ चौक में एक ओर श्रीदाता की जीप व अन्य कारें खड़ी कर दी गई। एक ओर विमान को स्थापित कर दिया गया। तीन स्थानों से अखाड़ा वाले दल आये हुए थे। उसके प्रदर्शन का कार्यक्रम था। दस वर्ष से लेकर अठारह वर्ष की उम्र के लड़कों द्वारा लाठी, भाला, तलवार, लेजियम आदि का प्रदर्शन था। सबसे पहले लाठी चलाने वाले बालक आये। उन्होंने लाठी के भिन्न भिन्न हाथ बताये। वार करने, बचाव करने आदि की चालें बताई। प्रदर्शन इतना सुन्दर था कि लोग वाह! वाह! किये बिना नहीं रह सके। लकड़ी के वार से सिर पर, सीने पर, बोतलों पर से नारियल एक एक वार में तोड़े गये। लकड़ी के दोनों ओर तेल में तर कपड़े के गोटे बाँध कर आग लगा दी गई फिर एक-एक व्यक्ति दो-दो लकड़ियों को घुमाने लगे। आग की एक धारा सी बँध गई। इसके बाद तलवार के हाथ बताये गये। तलवार के बाद भाला व भाले के बाद लेजियम का प्रदर्शन हुआ। इसके बाद घुड़सवारी एवं घोड़ों की दौड़ हुई। सभी प्रदर्शन अति उत्तम थे। इन प्रदर्शनों ने न केवल लोगों का मनोरंजन ही किया वरन् बालकों में व्यायाम के प्रति रुचि पैदा हुई। कड़ी धूप में भी लोग उन बालकों के प्रदर्शन को देखते रहे।

ज्यों ही प्रदर्शन समाप्त हुआ जुलूस वापिस चल पड़ा। जाने का मार्ग आने के मार्ग से भिन्न था। इस बार गलियों में से होकर जाना पड़ा जिससे समय अधिक लग गया। धूप के होते हुए भी मकानों की छतें लोगों से भरी पड़ी थी। जुलूस यज्ञ भूमि के पास

जाकर ठहर गया । भूमि पूजन यथा समय किया गया । श्रीदाता बगीचे में जा बिराजे । जिज्ञासु उनके पास जाकर बैठे । बातचीत होती रही । इधर भूमि पूजन के बाद माला जी की डूगरी पर ध्वजा रोहण का कार्यक्रम था । मस्तराम जी को डूगरी पर ध्वजा लेकर जाना पड़ा । वहाँ जाकर ध्वजा रोहण किया गया । इसमें अधिक समय लगा अत श्रीदाता डाक बगले पर पधार गये । पूरे दिनभर का कार्यक्रम था अत भारीपन आ गया । स्वामी विद्यानन्द जी धूप मे हाथी पर बैठे बैठे घबरा गये थे अत उन्हे ठण्डा मीठा पिला कर आराम करने को कह दिया गया । कुछ खाया-पिया भी नही था अत भोजन की व्यवस्था में कुछ लोग जुट गये । श्रीदाता के लिए भोजन वही बनाया गया । अन्य लोगो का भोजन मन्दिर स आ गया । अनेक गावों के मीणा लोग आये हुए थे । उनके मुखिया श्रीदाता के दर्शन करने आये । श्रीदाता ने उन्हे बडे प्रेम से अपने पास बिठाया और उनका कुशल क्षेम पूछा । उनकी घरेलू बातो के बाद उन्हे अन्ध-विश्वासो से ऊपर उठने को कहा । जाति के लोग नशा अधिक करक बरबाद होते है इस बात से उन्हे सावधान किया । नशा बुरी चीज है उसमे दूर रहना चाहिये । कहा है –

> नशा न नर को चाहिए द्रव्य बुद्धि हर लेत ।
> इक नशे के कारण सब जग ताली देत ॥

आपसी फूट मिटा कर एक सूत्र में बधने के लिये भी कहा । अधिकतर लोग अशिक्षित है अत शिक्षा के प्रति जागरूक होना जरूरी है । अन्त में राष्ट्रीय चरित्र पर बल देते हुए देश-प्रेम का होना जरूरी बताया । साथ ही अपने जीवन को सार्थक करने हेतु हरि स्मरण पर जोर दिया । इसी बीच श्री मस्तराम जी वहा पधार गये । श्रीदाता ने उनकी बडी सराहना की । फिर जाने की आज्ञा मागी । एक सहस्र रुपये यज्ञ-देव की भेंट किये व उन्हे विदा किया । भोजनोपरान्त वहाँ से विदा होकर भीलवाडा पधारना हो गया । जहाजपुर वालो ने जैसा श्रीदाता का स्वागत किया व प्रेम दिखाया वह इतिहास की बात बन गई है ।

श्री मस्तराम जी ने नवरात्रि पर होने वाले यज्ञ में श्रीदाता को पधारने की प्रार्थना की जिसपर श्रीदाता ने रामनवमी पर होने वाले सत्संग के कारण आने में असमर्थता प्रगट की किन्तु फरमाया कि यदि दाता की महर हो गई तो एक दिन के लिए यज्ञ के प्रारंभिक दिनों में हाजिर होंगे। यज्ञ दिनांक २३–३–१९८५ को प्रारंभ हुआ। श्रीदाता दिनांक २३–३–१९८५ को प्रातः ही भीलवाड़े से रवाना होकर प्रातः नौ बजे जहाजपुर पधार गये। साथ में पन्द्रह बीस सेवक थे। सीधे ही यज्ञ स्थल में पहुँच गये। किसी को पता तो था नहीं अतः सभी हड़बड़ा गये। श्रीदाता सीधे ही यज्ञ-होता के पास जहाँ मस्तराम जी विराज रहे थे पधार गये। मंत्रोच्चारण हो रहा था व आहुतियाँ लग रही थी। कुछ देर वहीं विराज कर यज्ञ-भूमि की परिक्रमा देकर फिर बगीचे में पधार गये। बगीचे में कुछ साधु अलग तम्बू लगाकर ठहरे हुए थे। श्रीदाता उन सन्तों के दर्शन करने पधारे। बंगाल से आये हुए एक सन्त थे। लोगों ने बताया कि वे विदेश होकर आये हैं और बड़े पहुँचे हुए सन्त हैं। श्रीदाता उनके पास गये। वे अपने शिष्यों में खड़े थे। श्रीदाता को पधारते हुए देखकर वे उनको देखने लगे। साथ में कई लोग थे इसलिये उनका ध्यान गया किन्तु साधारण लोग समझ कर कोई ध्यान नहीं दिया। श्रीदाता ने उनके पास जाकर नमस्कार किया व उनके सामने खड़े हो गए। अन्य लोगों ने भी नमस्कार किया। कुछ देर खड़े रहे फिर श्रीदाता वापिस लौटने लगे तब शायद बाबा को कुछ ध्यान आया हो। उसने कहा, "खड़े क्यों हो, आओ बैठो।" इसपर श्रीदाता ठहर गये व उनके तम्बू में पधारे। तम्बू के नीचे एक तख्त पर उनका आसन था व पास में जाजम बिछी थी। बाबाजी तख्त पर जाकर बैठे और श्रीदाता को जाजम पर बैठने का संकेत किया। श्रीदाता नीचे विराज गये। एक दो मिनिट कोई नहीं बोला। दो मिनिट बाद श्रीदाता उठकर खड़े हुए व नमस्कार कर वहां से रवाना हो गये। बाबाजी बैठे ही रहे। वहाँ से हटने के बाद बाबा ने व्यवस्थापकों को श्रीदाता का परिचय पूछा। परिचय मिलने पर उन्हें अपने किये गये व्यवहार पर क्षोभ हुआ। वे पछताने लगे लेकिन फिर क्या हो सकता था कारण श्रीदाता तो बगीचे से बाहर आ गये थे।

श्रीदाता नृसिंहद्वारा के मन्दिर में पहुँचे। वहाँ मस्तराम जी के दोनो ही गुरु लोग बैठे थे। दोनो ही वृद्ध व शरीर से अस्वस्थ थे। श्रीदाता ने दोनो ही सन्तो को नमस्कार किया। उन्होने भी श्रीदाता को नमस्कार किया। वे दोनो ही बडे प्रसन्न हुए। उन्होने श्रीदाता को तख्त पर लगे आसन पर बिठाने की बडी कोशिश की किन्तु श्रीदाता ने कहा, "मै तो अधम हूँ, पतित हूँ। गृहस्थी के कीचड में फँसा हूँ। आप तो महान् त्यागी, तपस्वी एव विद्वान है।" यह कह कर श्रीदाता नीचे बैठ गये। वहाँ बैठे कुछ साधुओ ने श्रीदाता को कुछ उपदेश देने हेतु प्रार्थना की। श्रीदाता ने कहा, "मै तो आपके दर्शन करने आया हूँ। दर्शन कर पवित्र हुआ हूँ। आपकी अमृत वाणी श्रीमुख से सुनने आया हूँ।" इसपर जनकपुर के सन्त ने वेदो और उपनिषदो से श्लोक बोलते हुए मानव जीवन को सफल बनाने के लिए भगवान का स्मरण आवश्यक बताया। उन्होंने चौरासी लाख योनियो की व्याख्या करते हुए मनुष्य योनि को सर्वश्रेष्ठ बताया। आज वही मनुष्य विज्ञान की चकाचौंध में अपनी शक्ति को भूले बैठे है। मनुष्य अपने सत्कर्मों को छोडकर ससारचक्र में फँसे जा रहे है। सत्सग से ही छुटकारा मिल सकता है। इस तरह की बाते होती रही। श्रीदाता चुपचाप सुनते रहे फिर नमस्कार कर वहाँ से चल दिये।

वहाँ से चल कर डाक बगले में पधार गये। उस दिन भोजन साथ में था अत भोजन की व्यवस्था तो करनी नही थी। कुछ लोग डाक बगले आ गये। श्रीदाता उनसे बातचीत करने लगे। श्रीदाता ने बताया कि इस विश्व में एकमात्र तत्व मेरे दाता है। वे जल में है, थल में और आकाश में है। रोम रोम में वे ही है। उनके सिवा अन्य वस्तु कुछ भी नही है। सन्त सुन्दरदास जी ने फरमाया है :–

> तोहि में जगत यह, तू ही है जगत माहि,
> तो में अरु जगत में भिन्नता कहाँ रही।
> भूमि ही ते भाजन, अनेक विधि नाम रूप,
> भाजन विचारि देखे उहै एक ही मही।

जल तें तरंग फेन, वुदवुदा अनेक भाँति,
सोउ तौ विचारे एक, वहै जल है सही ।
जेते महापुरुष हैं, सब को सिद्धान्त एक,
'सुंदर' अखिल ब्रह्म, अंत वेद में कही ॥

दाता के इस अद्वैत ज्ञान को समझने वाला ही समझ पाता है। विना सतगुरु की कृपा से यह वात समझ में आती नहीं। सतगुरु ही समर्थ है। वह लोहे को सोना बना देता है। अज्ञानी शिष्य को ज्ञानवान वना देता है। कहा भी है :-

लोह कों ज्यौं पारस पखान हूँ पलटि लेत,
कंचन छुवत होत जग मै प्रमानिये ।
द्रुम कों ज्यौं चंदन हू पलटि लगाइ वास,
आप के समान ता के सीतलता आनिये ॥
कीट कों ज्यौं भृंग हू पलटि कै करत भृंग,
सोऊ उड़ि जाइ ताको अचरज न मानिये ।
'सुंदर' कहत यह सगरै प्रसिद्ध बात,
सद्य सिस्य पलटै सु सत्यगुरु जानिये ॥

इस तरह की वातें चल ही रही थी कि श्री मस्तराम जी कुछ व्यवस्थापकों के साथ आ गये। आते ही साष्टांग प्रणाम किया और श्रीदाता के सामने हाथ जोड़ कर बैठ गये। उन्होंने भोजन की प्रार्थना की इसपर श्रीदाता ने फरमाया, "भोजन तो ये लोग साथ ले आये हैं। यह भी आपका ही है। आप कष्ट देखेंगे और यह वेकार जावेगा। अतः आप कष्ट न देखें। आप तो वैसे ही अनेक कार्यों में उलझे हुए हैं। कई सन्तों की सेवा का ध्यान रखना है अतः आप इसकी चिन्ता छोड़ो। आप तो हमारे लायक काम हो सो वताओ। यहां रह जाते किन्तु वहां भी कई लोग हैं, परेशान होंगे अतः जाना ही पड़ेगा। आपने जिस काम को संभाला है उसे पूरा करो। दाता सब काम अच्छा करेगा। वही रक्षक है। आप तो उसीके भरोसे मस्त रहो। मस्तराम को तो मस्त ही रहना है।" इस तरह फरमाकर उन्हें विदा किया। भोजन तैयार हो गया था

अत भोजन करने बिराज गये । हँसी मजाक के साथ भोजन होता रहा । भोजनोपरान्त श्रीदाता बाहर बरामदे में आ विराजे । कई लोग बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे । एक व्यक्ति ने कहा, "आपने फरमाया कि बिना सतगुरु की कृपा के कुछ भी सभव नहीं है । आप यह तो बतावे कि सतगुरु कैसा है ? उसका क्या रूप है ।"

श्रीदाता– "वह तो महान् है । ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी उसी के रूप हैं ।

व्यक्ति– "यह कैसे ?"

श्रीदाता– "सतगुरु अरूप है, सरूप है, नामी है, अनामी है, बडनामी है और गणनामी है ।

मारी हेली ए ।
अगम पन्थ गली साकरी, चढणो दुस्तर होय ।
जीवतडा नही चढ सके, मुडदा ने परवा नांय ।। मारी हेली ए
जीवत मृतक दोनो तजे सो बैठे घर पाय ।
नही बके और ना चुप रहे, नही बैठे नही धाँय ।। मारी हेली ए
है छता वे ना रेवे, मिल गलतान समाय ।
चाँद सूरज जहाँ है नही, नही सुखमण को खेल ।
बिना दीपक ज्योति जगे, अनन्त सूर को तेज ।।
जीव बिना रो जीवणो, देह बिना सब काम ।
मानसिंह सब मे कहे, मेरो ही रूप तमाम ।। मारी हेली ए

ज्ञान, ध्यान, कीर्तन, भजन सब मन के लिए है । दाता न तो मन्दिर में है, न अन्यत्र है । वह तो आप ही आप है, जो मन स्थिर होने पर प्राप्त होता है ।

काजी भूला, पण्डित भूला, देख देख दफ्तर ने ।
बावन अक्षर काल को चारो उबरोला किस घर में ।।
साधुभाई नही है मन्दिर मस्जिद में, जावोला जब घर में
तब देखोला हर दर में । साधुभाई,.

ज्ञान के द्वारा उसे प्राप्त करना कठिन है। काजी, पण्डित आदि इसी ज्ञान चक्र में उलझ कर यों ही रह गये। वहाँ तो ज्ञान का अन्त कर प्रेम द्वारा जो बढ़ता है, वही उसे प्राप्त कर सकता है। ज्ञान अथाह है, उसका पार नहीं। उस ज्ञान के प्राप्त करते करते ही दिन ढल गया तो जीवन ही व्यर्थ जावेगा।

ज्ञान कथूं तो पार नहीं भजन का है उलझाड़ा।
गिरधर गेला तो ऐसा बता मारा सत्गुरु जो
उपरवाड़ासूनेड़ा ॥

वह न तो दूर है न पास है। वह तो आपकी लगन में है। आपको दुःख किस बात का है।

पांच तत्व परे पार है, और पांच तत्व रे मांय। मारी हेली ए...
अन्दर बाहर सरीखो रह्यो, छिन्न भिन्न कछु नांय।
दूजो लखे दुखिया रहे, एक लख्या सुख पाय ॥ मारी हेली ए...
मन बुद्धि चित्त एक है, डारे कल्पित नाम।
वो ही तो जीव, वो ही ब्रह्म है, वो निज सब के राम ॥
मारी हैली ए ...
वो ही अविद्या आप है,और वो ही करत फिर नाश।
माया ने ब्रह्म दूजो नहीं, माया ब्रह्म के पास ॥ मारी हेली ए...
देवनाथ समरथ मिल्या, समरथ मैन समाय।
मानसिंह निजरूप है, दूजो कौन विध पाय ॥

मेरे दाता पांच तत्वों से परे हैं, और वह पांच तत्वों में है। वह एकरूप है सब रूप उसी के हैं और वह सब में है। जो बन्दा उसे भिन्न भिन्न रूप में देखता है वह भ्रमित होता है। भिन्न भिन्न रूपों में उस एक को देखने में ही आनन्द है। सब कुछ वही है। वही जीव है और वही ब्रह्म है। ज्ञान और विज्ञान सब उसी के हैं और वह ज्ञान विज्ञान से परे है। उसी दाता का निरन्तर स्मरण करना चाहिये। दाता कैसा है इसके लिए वेदों ने और शास्त्रों ने भी हाथ ऊँचे कर दिये हैं। उन्होंने भी 'नेति नेति' कह दिया है। उसके

लिए कोई नही कह सकता कि वह है क्योकि उसको किसीने देखा नही है और यह भी कह दिया जाय कि वह नही है तो काम कैसे चले, क्योकि जो यह सब पसारा है सब उसी का है। रोम रोम में तो वह बस रहा है उसके अस्तित्व के बारे में शका करना निरी मूर्खता है। वह तो है और नही के परे है।

है कहूँ तो ना बने, ना कहूँ कहियन जाय।
है नही के मध्य, याही में आप समाय ।।

अज्ञान से ज्ञान की प्राप्ति होती है और जहा ज्ञान थक जाता है वही सब कुछ मिल जाता है। ज्ञान के थकने की ही बात है। किन्तु सासारिक वस्तुएँ ऐसा होने नही देती। इस ससार रूपी सागर की समस्याएँ बडी ही जटिल है, जिनसे पार पाना कठिन है, किन्तु आप मानते कहाँ है? आपने तो सब को अपने सिर पर उठा रखा है। उनसे अलग होने की आपको फुर्सत ही नही है। उनसे अलग होकर मन को दाता में लगाना ही होगा। आनन्द प्राप्ति का एकमात्र मार्ग यही है। दाता के अनेक रूप है किन्तु वे कथनी में नही आते। आप लोग इन रूपो को देखने का प्रयत्न ही क्यो करते है? आप तो गोपियाँ बन जाओ अर्थात् जिस तरह गोपियो ने सब रूपो में उस एक को देखा है उसी तरह आप भी सब रूपो में उस एक को देखो। उसे सरलता से देखना चाहो तो प्रेम को अपना लो। आप उसके लिये कुछ आँसू तो बहाओ। आपकी आसू की एक एक बूद में वह स्थित है। बस उसकी लगन में लग जाओ आपके अन्दर चाह है तो मार्ग है।

मोहे देखत आवे हाँसी, पानी में मीन प्यासी।
आतम ज्ञान बिना नर भटके, कोई मथुरा कोई काशी।
जैसे मृगा नाभि कस्तूरी बनबन फिरत उदासी ।।
जल बिच कमल, कमल बिच कलियाँ, ता पर भँवर निवासी।
सो मन बश त्रिलोक भयो, सब पति जाती सन्यासी ।।
जा को ध्यान धरे विधिहर हरि, मुनिजन सहज सन्यासी।
सो तेरे घर माहि विराजे, परम पुरुष अविनाशी ।।

हैं हाजिर तो दूर लखावे, दूर की बात निरासी।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, गुरु बिन भरम न जासी ॥

इस प्रकार सत्संग चलता रहा। लोग बड़े ही प्रभावित हुए और श्रीदाता के दर्शन कर व अमृत वाणी सुन कर अपने आपको सौभाग्यशाली मानने लगे।

चार का समय हो गया। वहाँ से पूर्ण तैयार होकर डाक बंगला संभला सीधे नृसिंहद्वारा में पधारे। वहां मस्तराम जी मन्दिर में ही मिल गये। उनके दोनों गुरु भी वहीं थे। श्रीदाता ने सभी को नमस्कार कर विदा मांगी। व्यवस्थापक लोग भी आ गये। एक जिज्ञासु अध्यापक भी आ गये। दिनांक २-२-८५ को श्रीदाता के प्रवचन से वह बड़ा ही प्रभावित हुआ था। इस बार यज्ञ में लगे होने से समय नहीं मिल सका। श्रीदाता ने सभी को दाता के बताये हुए कार्य में तत्पर रहने के लिये कहा और कष्ट की क्षमा मांगी, सबको नमस्कार कर विदा हुए। मस्तराम जी श्रीदाता के पीछे पीछे सड़क तक आये। उनकी अवस्था प्रेम से द्रवीभूत थी। उनके चेहरे से अपार प्रेम प्रकट हो रहा था। उनकी वाणी गद्‌गद् हो रही थी। उनसे बोला भी नहीं जा रहा था। हाथ जोड़े एक अबोध बालक के समान खड़े थे। श्रीदाता ने संकेत देकर उन्हें रुपये भेंट में दिये और एक बार सभी को नमस्कार कर चल दिये।

जहाजपुर की ओर पधारना जीवन में शायद यह पहली बार ही था किन्तु वहाँ के लोगों ने जो स्वागत किया वह अभूतपूर्व था व जो प्रेम दिखाया उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। मस्तराम जी का प्रेम भी अनुकरणीय है व व्यवस्थापक मण्डल की सेवा व ईमानदारी स्तुत्य है। भक्त और भगवान की जय!

○○○

श्रीदाता और भक्तिमति मीरा

उदयपुर के सत्संगी बन्धुओ ने सन् १९८५ के अक्टूम्बर माह में श्रीदाता को वताया कि गोगुन्दा में 'मीरा माँ' का चतुर्मास है जिनकी भक्ति की ख्याति इधर उधर के क्षेत्र में फैली हुई है और उदयपुर मे भी कई भक्त लोग दर्शन को जा रहे है। हम लोग भी जिज्ञासु होकर गये और पाया कि वे विदुषी एव भक्त हृदय महिला हैं। यदि श्रीदाता का पधारना हो तो व्यवस्था की जाय। श्रीदाता तो दयालु है ही। उन्होने पहले तो कहा कि उन्हे रहने दिया जाय किन्तु विशेष आग्रह पर तैयार होकर दिन निश्चित कर सूचना दे देने की आज्ञा दे दी।

श्री मीरा माँ के लिये श्रीदाता ने पहिली बार सुना ऐसी वात नही है। वर्षों से ही श्रीदाता मीरा माँ के लिये सुनते आये हैं। आज से लगभग बारह पन्द्रह वर्ष पूर्व श्रीदाता के चरणो का एक प्रेमी सलूम्बर मैजिस्ट्रेट था और उस समय मीरा माँ का चतुर्मास सलूम्बर में था, तब भी मैजिस्ट्रेट ने मीरा माँ के बारे में बहुत कुछ बताया। उस वक्त श्री भगवान श्रीदाता ने यही फरमाया था कि किसी दिन रमाला यदि दाता की महर हुई तो। इस बार उदयपुर वालो के विशेष आग्रह और प्रार्थना पर पधारने की स्वीकृति हो गई। जिस दिन जाने का निश्चय कर सूचना भिजवाई गई उसके दो दिन पूर्व ही जयपुर के प्रेमी सज्जन अपनी कारो में श्रीदाता के दर्शनार्थ उपस्थित हो गये। श्रीदाता ने उनसे मीरा माँ के बारे में बताया तो वे भी चलने की इच्छा प्रकट करने लगे। श्रीदाता दो दिन पूर्व ही चलने को तैयार हो गये। मीरा माँ दिन में मौन रखती है व सन्ध्या समय बाद रात्रिभर बात करती है अत श्रीदाता तीन बजे दाता-निवास से रवाना हुए और उदयपुर वालो को 'इसवाल' पहुँच कर प्रतीक्षा करने की आज्ञा दे दी। उदयपुर वाले यथा स्थान तैयार थे उन्हे लेकर श्रीदाता आठ बजे के लगभग गोगुन्दा पहुँचे। साथ में काफी लोग हो गये थे। सीधे ही 'मीरा माँ'

जहां विराज रही थी, वहाँ पधारे। वहाँ भगवान कृष्ण की आरती हो रही थी। श्रीदाता व अन्य लोग बरामदे के बाहर खड़े हो गये। आरती के बाद श्रीदाता और श्री माता का मिलन हुआ। बड़ा मार्मिक दृश्य था। दोनों ही दीनता में एक दूसरे से आगे निकलने का प्रयास कर रहे थे। आखिर में दाता तो दाता ही हैं। उन्होंने माँ को न केवल नमस्कार ही किया वरन् अपनी शिष्या सहित पाटिये के ऊपर बैठने को मजबूर कर दिया। स्वयं पास ही नीचे जमीन पर विराज गये। साथ में मातेश्वरी भी थी। वे भी श्रीदाता के पीछे विराज गई। औपचारिक बातचीत के बाद माँ की शिष्या ने भजन सुनाये। स्वर सुरीला एवं भक्तिभाव से परिपूर्ण होने से भजन मन को स्थिर कर आनन्ददायक थे। उन्होंने दो तीन भजन सुनाये फिर कृष्ण के शयन का समय हो गया अतः शयन आरती के लिये माताजी उठ गई। शयन आरती बोली गई। सभी हाथ बाँधे खड़े खड़े आरती बोलने में योग देने लगे। एक दो साथी तो करताल हाथ में लेकर नृत्य करने लगे। आरती के पश्चात् श्रीदता वकील साहब के मकान पर जहाँ उन्हें ठहराने की व्यवस्था की थी पधार गये। कुछ लोग माताजी के उपदेश सुनने को ठहर गये।

किसी को भोजन की तो आवश्यकता थी नहीं लेकिन माताजी के विशेषआग्रह पर सभी को भोजन करना ही पड़ा। श्रीदाता के भोजन को तो मातेश्वरी जी ने ही बनाया। रात्रि के दो बजे तक लोग माता जी के पास बैठ कर सत्संग चर्चा करते रहे। इस बीच लगभग ग्यारह बजे माताजी श्रीदाता के पास पधारीं। आपस में कृष्ण प्रेम की बातें हुई।

प्रातः ही सभी शीघ्र निवृत्त होकर वापिस आने के लिये तैयार हो गये किन्तु मीरा मां (माताजी) आठ बजे के पहले बाहर नहीं पधारती हैं अतः उनके दर्शनों के लिये सड़क पर ही खड़े रहे। माताजी पधारीं। दिन को बोलती तो हैं नहीं। श्रीदाता के भक्तों ने उन्हें भेंट चढ़ाई। रुपये तो उन्होंने लिये नहीं। फल प्रसाद समझ कर स्वीकार कर लिये जिन्हें उन्होंने उसी समय श्रीदाता के

बन्दों को प्रसाद के रूप में बाट दिये। इनके पश्चात् उन्हें दाता-निवास पधारने का निमन्त्रण देकर वहाँ से विदा हुए।

मीरा माँ प्रात दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर भगवान की आरती करती हैं। आरती के बाद हरिस्मरण करती है। दिन को उनकी शिष्या या सखियों द्वारा बोले जाने वाले भजन सुनती है। प्रातः एव साय दो आरतियाँ तो मुख्य हैं जो प्रति दिन आवश्यक हैं। इनके अतिरिक्त उत्थापन, राजभोग, शयन आदि की आरतियाँ भी सजोयी जाती हैं। मीरा माँ हाथ में बासुरी (मुरली) रखती हैं। लोग उन्हें मुरली वाली माँ भी कहते हैं। अपने युवाकाल में ये बडा मधुर सगीत बोलती थी व मुरली भी बढिया बजा लेती थी। आजकल मुरली आशीर्वाद देने के काम आती है। जिन पर वे प्रसन्न होकर आशीर्वाद देना चाहती है तो मुरली को स्पर्श करा देती हैं।

मीरा माँ अपने जीवन के परिचय को बताती नहीं। लोगो ने इधर उधर से मालूम किया जिसके आधार पर विवरण निम्न प्रकार है। मध्यप्रदेश में मन्दसोर के आसपास किसी गाँव में सनाढ्य परिवार में आपका जन्म हुआ। बाल्यकाल से ही प्रखर बुद्धि की बालिका होने से हिन्दी और सस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। युवा होने पर इनका विवाह सीरोज गाँव में हुआ। बचपन से ही कृष्ण के प्रति भक्ति विशेष थी। बार-बार सन्यास लेने की प्रेरणा मिलती गई। इनके पति योग्य, सच्चरित्र एव भक्त हृदय व्यक्ति है। उन्होने इनके विचारों का विरोध नहीं किया। इन्होने अपनी सतान को बारह वर्ष सीरोज में ही रह कर पढाया व उसे एक दक्ष एडवोकेट बनाया। नीमच, मन्दसोर, प्रतापगढ, उज्जैन आदि स्थानो पर इनकी अच्छी मान्यता है। उदयपुर क्षेत्र में सलूम्बर, उदयपुर, गोगुन्दा आदि स्थानो पर इनके चतुर्मास होते रहते है। इन्दौर में एक बडा व्यापारी इनका परम भक्त है। उसके बनियानो की बडी फेक्ट्री है।

इनको चाहने वाली सखियाँ तो अनेक है किन्तु दीक्षित शिष्या दो ही हैं। बडी शिष्या, जिसका जन्मनाम धन्नोबाई है, आरम्भि

गाँव के ठाकुर ॐकारसिंह जी की सुपुत्री हैं। चारगदिया भीन्डर से दो-तीन मील दूर है। बचपन से ही माताजी की संगत का असर हुआ और कृष्ण के प्रति प्रेम जागृत हो गया। उन्होंने कृष्ण को ही अपना पति मान कर विवाह न करने का निश्चय किया। फिर पिता से आज्ञा लेकर 'मीरा माँ' से सन्यास की दीक्षा लेकर, उनकी शिष्या बन गई। वे अधिकतर अपने पिता के गाँव में ही रहती हैं। उनकी भक्ति उच्च कोटि की बताई गई है। कहते हैं कि वे बहुत ही मधुर स्वर में भजन बोलती हैं। उनके भजन सुन कर लोग इतने तन्मय हो जाते हैं कि उन्हें तन की सुधबुध भी नहीं रहती। विद्वत्ता में भी कोई कमी नहीं। उदयपुर में जब पधारती हैं तो शंकर जी के मन्दिर के महन्त महाराज श्री श्यामप्रिय शरण जी के सत्संग में जाती हैं। शंकर जी का मन्दिर इलाहाबाद बैंक के पास बापु बाजार में है। जब आवश्यकता होती है तब माताजी के पास सेवा में उपस्थित हो जाती हैं।

छोटी शिष्या चन्दाबाई मन्दसोर से खत्री वंश से हैं। वे भी बाल ब्रह्मचारी हैं। उन्हें भी माता जी की संगत का अवसर बचपन से ही मिला। उन्होंने चौदह-पन्द्रह वर्ष की उम्र में ही पू. माता जी से दीक्षा लेकर सन्यास ले लिया। तब से ही वे माता जी की सेवा में निरन्तर रह रही हैं। छोटी शिष्या की भक्ति भी उच्च कोटि की है। भजन उनके बड़े सुरीले और भक्तिभाव से ओतप्रोत होते हैं। भजन सुनते वक्त आँखों में आँसू आ जाते हैं।

माताजी की अनेक सखियाँ हैं जो माताजी की संगत में आती जाती हैं। वे भी माताजी की सेवा में जब भी आवश्यकता होती है रहती है। वैसे माताजी दूसरों से कम ही सेवा लेती हैं। भोजन एक वक्त करती हैं और वह भी प्रभु प्रसाद के रूप में थोड़ा सा। पैसे आदि को न स्वयं छूती हैं न अपनी शिष्याओं को छूने देती हैं। भेंट किसी की स्वीकार करती नहीं। लोग दर्शनार्थ आते हैं उन्हें बिना प्रसाद लिये नहीं जाने देतीं। प्रसाद का खर्चा इनके भक्त लोग करते हैं। कितना खर्च किया या प्रसाद में क्या बना

इसका उन्हे कोई सरोकार नही। बडा सात्विक और सरल उनका जीवन है। हर समय कृष्ण चर्चा के सिवा कोई अन्य बात नही।

मीराबाई ने दिनाक १६-११-८५ का दिन दाता-निवास पधारने हेतु निश्चित किया था। श्रीदाता ने इसकी सूचना जयपुर, अजमेर, भीलवाडा आदि स्थानो पर भिजवा दी। उदयपुर वालो को माताजी एव उनकी सखियो व भक्तो को लाने की व्यवस्था का काम सौपा गया। कई लोग बडे उत्साह और उमग के साथ दाता-निवास दिनाक १५-११-८५ को ही पहुँच गये। जयपुर से भी पूरी बस भर कर लोग पन्द्रह तारीख की रात्रि को ही पहुंच गये। मिठाइयाँ १५-११-८५ की रात्रि को ही बना ली गई थी। बडे जोश के साथ माताजी के स्वागत की तैयारियाँ की जा रही थी कि अचानक एक दुर्घटना हो गई। भीलवाडे से एक कार रात्रि को दो बजे गोपाल कृष्ण के आकस्मिक निधन का समाचार लेकर आई। एक सेवक और अन्य कुछ साथियो को लेकर भीलवाडा जाना पडा। प्रात. ही श्रीदाता ने यह शोक समाचार सभी को सुनाया। गोपाल विशुद्ध हृदय वाला श्रीदाता का बडा प्यारा बन्दा था। बोली बडी प्यारी एव व्यवहार सब से उत्तम। सभी उसे अपने बच्चे या छोटे भाई के समान प्यार करते थे अत समाचार सुनकर सभी स्तब्ध रह गये। चारो ओर शोक का वातावरण छा गया। जो उत्साह, जो उमग उन लोगो के हृदय में थी वह सारी की सारी समाप्त हो गई। केवल मात्र औपचारिकता रह गई जिसे पूरी करनी थी।

श्रीदाता ने प्रात. से ही तीन दिन के अखण्ड कीर्तन की आज्ञा दे दी व तत्काल कीर्तन प्रारभ कर दिया गया। दस बजे कीर्तन बोलने वालो को छोडकर अन्य लोग जो सख्या में लगभग तीन सौ होगे व मुख्य सडक (राष्ट्रीय मार्ग स ८) पर जा खडे हुए। सभी कीर्तन बोल रहे थे। श्रीदाता भी साथ थे। मागलिक ढोल भी साथ था। सडक पर कीर्तन बोलते हुए खडे रहे। उन्हें दस बजे आना था और आये साय चार बजे के लगभग। पहले ही लोग उदास थे फिर लम्बी प्रतीक्षा करनी पडी लोग परेशान हो गये किन्तु कीर्तन तो बोलना ही था सो बोलते रहे। खडे खडे थक भी गये किन्तु

कहीं जाकर छाया में बैठ भी तो नहीं सकते थे कारण कब उनकी गाड़ी आ जाय। ज्यों ही उनकी बस आई श्रीदाता व अन्य लोगों ने आगे बढ़ कर उनका स्वागत किया। नमस्कार के आदान-प्रदान के साथ उनको आगे किया व कीर्तन करते हुए दाता-निवास पहुँचे। दिन कम रह गया था व रात्रि होने पर माता जी भोजन करतीं नहीं इसलिये भोजन की व्यवस्था की गई। माता जी ने अपने आराध्य देव को भोग लगाया। भोग बड़े प्रेम से भजनों के साथ लगाया जाता है और उसमें समय लगता है। भोग की आरती होकर भोग लगाने के बाद माता जी भोजन करने विराजीं। सामने सखियों को बिठा दिया गया। अन्य भक्त लोगों को भी माताजी की आज्ञानुसार बिठा दिया गया, बड़े प्रेम से प्रसाद पाने लगीं। साथ में हँसी-मजाक भी होती रही। माताजी सखियों को प्रसाद रखवाती रहीं। परोसने वाले भी प्रेम से परोस रहे थे। माताजी को प्रसाद वितरण में आनन्द आ रहा था। बड़े आनन्दमय वातावरण में भोजन हुआ।

सन्ध्या की आरती के बाद माता जी सत्संग भवन में कीर्तन में जा विराजीं। सखियों ने हारमोनियम हाथ में ले लिया और लगी कीर्तन बोलने। दस बजे के बाद माताजी ऊपर के कमरे में जहाँ उन्हें ठहराया गया था पधार गईं। कुछ लोग उनके पास जाकर बैठे। माता जी ने प्रभु भक्ति पर फरमाया। भक्तिमय उनका प्रवचन था। लोगों ने बड़े प्रेम से सुना।

अगले दिन आरती के बाद माता जी कीर्तन में जा विराजीं। लगभग बारह बजे तक वहीं विराजी रहीं। फिर कुछ देर बाद श्रीदाता के पास आ विराजीं। बोलना तो कुछ हुआ नहीं। सखियों द्वारा गोगुन्दा पधारने की प्रार्थना करवाई। गोगुन्दा में एक यज्ञ होने जा रहा था। यह यज्ञ माता जी के प्रयत्नों से ही हो रहा था अतः गाँव वालों ने माता जी को भी यज्ञ की समाप्ति पर्यन्त वहीं ठहरने को मजबूर किया था। श्रीदाता की स्वीकृति मिलने पर ही वे वहाँ से उठीं।

भोजनोपरान्त माताजी और उनके साथ आने वाले व्यक्ति वहाँ से विदा हुए। उन्हें बड़ी भावभीनी विदाई दी गई। गोपाल की

मृत्यु का माता जी एव उनके साथ आये हुए प्राणियो को पता तक नही चलने दिया । कई दिनो बाद उन्हें इस बात का पता चला ।

यज्ञ में पधारने हेतु श्रीदाता ने आज्ञा दे दी थी अत उदयपुर वाले सत्सगी भाइयो ने एक बस दिनाक २३-१२-८५ को प्रात:ही दाता-निवास भिजवा दी । जयपुर से चार-पाच कारें आ गई । आसपास के लोग भी आ गये । अच्छी सख्या में लोग एकत्रित हो गये । तीन बजे के लगभग दाता-निवास से निकासी हुई । रीछेड एव केलवाडा में कुछ भक्तजनो को लेती हुई बस सात बजे के लगभग 'इसवाल' पहुँची । इसवाल में उदयपुर वाले एक बस में खडे थे । वहाँ से चल कर गोगुन्दा पहुँचे । गोगुन्दा के बाहर ही हजारो व्यक्ति श्रीदाता के स्वागतार्थ खडे थे । श्रीदाता के पधारते ही जय की ध्वनि हुई । उधर से भी कीर्तन चल रहा था । इधर वाले भी कीर्तन बोल रहे थे । आरती यज्ञ कराने वाले सन्त के हाथ में थी । आरती की गई व श्रीदाता के चरणो में पुष्प, कुकुम, लच्छा आदि चढ़ाया गया । माताजी बोली, "बडी प्रतीक्षा करवाई आपने आज तो ।" यह कह कर वे हँस दी । फिर सभी कीर्तन बोलते हुए श्रीदाता को यज्ञ-स्थल पर ले गये । भीड ज्यादा थी व अनियन्त्रित थी अत उस समय अन्य कुछ कार्यक्रम नही हो सके । साधारण औपचारिकता के पश्चात् श्रीदाता माताजी जहाँ ठहरी थी वहा माताजी के साथ ही पैदल पधार गये । वहाँ कई लोग आ गये । पहले आरती हुई फिर भजन । श्रीदाता वकील साहब के निवास स्थान पर पधार गये । कुछ देर बाद माताजी भी पधारी । इन दिनो माताजी के नेत्रो में दर्द रहता है । उदयपुर में ऑपरेशन कराया था, उसमें कुछ कमी रह गई थी । डाक्टर श्री मिश्रा साथ थे । उन्होने माताजी की आँख का निरीक्षण किया । रात्रि में अच्छी प्रकार नहीं देखी जा सकी कारण रोशनी तेज नही थी । इधर उधर की बातचीत के बाद माताजी ने अगले दिन भोजन का आग्रह किया । कडिया वाले सत्सगी बन्धु श्रीदाता एव माताजी को कडियाँ ले जाना चाहते थे । भोजन के लिये खिचतान हुई । अन्त में यह निर्णय हुआ कि भोजन दोनो जगह हो और माताजी अपने नियम को एक दिन के लिये भङ्ग करेगी ।

अगले दिन ग्यारह बजे यज्ञ-भूमि में पधारना हुआ । पूर्णाहुति का समय १२–३० का था । श्रीदाता यज्ञ-मण्डप में पधार गये व वहीं विराज गये । कुछ समय बाद पूर्णाहुति हुई व सवारी (जुलूस) की तैयारी होने लगी । श्रीदाता और मातेश्वरी जी वापिस पधार गये । प्रभु कृपा से यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ ।

भोजन-प्रसाद हुआ फिर माताजी कड़िया पधारने को तैयार हुयीं । एक कार उनके लिये छोड़ दी गई जिसमें माताजी, उनकी शिष्या व कुछ सखियाँ बैठी । अन्य वाहनों में सभी रवाना हुए । एक घण्टे से कम समय में ही कड़ियाँ पहुँच गये । सब लोग गाँव के बाहर आ गये । ढ़ोल से सभी का स्वागत किया गया । कड़ियाँ वालों ने बड़े प्रेम से सबको अपनी अपनी सुविधा के अनुसार ठहराया । स्थान सीमित था फिर भी बड़ी अच्छी सुविधा युक्त व्यवस्था कर दी गई । जिस व्यक्ति ने जिस चीज की माँग की उसकी व्यवस्था तत्काल कड़ियाँ वालों ने कर दी ।

भोजन भी बढ़िया बनाया । यद्यपि प्रातः का भोजन तीसरे पहर को किया था फिर भी लोगों ने मस्ती से खाया । माताजी ने अपना नियम तोड़ कर भोजन किया व श्रीदाता को इच्छा न होते हुए भी कड़ियाँ वालों के प्रेम को देख कर करना पड़ा । भोजनोपरान्त सभी एक बड़े आँगन में एकत्रित हो गये । वहाँ माताजी की छोटी शिष्या व एक सखी ने मिलकर रासलीला की । छोटी शिष्या ने कृष्ण का व सखी ने राधा का पार्ट किया । रात्रि के एक बजे तक रास-लीला होती रही । रास-लीला में बड़ा ही आनन्द रहा । अगले दिन के लिए वैद्य जी ने माताजी को लोसिंग के लिये तैयार कर लिया अतः श्रीदाता को भी सम्मिलित होना पड़ा । अगले दिन स्नान के बाद लोसिंग पधारना हुआ । कडियाँ से लोसिंग दो किलो मीटर है । बात की बात में पहुँच गये । वैद्य जी के मकान के बाहर ही ठहरे । आरती के बाद सभी मकान में पधार गये । भोजन बनने में देरी थी अतः इधर उधर की बातें होती रहीं ।

भोजन बनने पर भोजन का थाल लगाया गया । माता जी ने अपना नियम एक दिन के लिये ही तोड़ा था अतः भोजन करने

हेतु मना कर दिया। एक समस्या हो गई। श्रीदाता ने भी मना कर दिया। अन्य लोग भी भोजन कैसे करते! वैद्य जी व लोसिंग वालो का मुह उतर गया। आखिर बडे आग्रह के बाद पू माता जी ने एक दिन के लिये अपने नियम को और भङ्ग किया। इस निर्णय से सभी के चेहरो पर प्रसन्नता छा गई। फिर क्या था। कमरे में पू माताजी का भोजन हुआ व छत पर श्रीदाता का। भोजन मे लगभग दो घण्टे लग गये। भोजनोपरान्त एक कार में पू माता,जी को गोगुन्दा के लिये विदा किया। तब तक श्रीदाता छत पर ही विराजे रहे। कुछ लोग पुकार लेकर जाये। श्रीदाता ने उन्हे भी निराश नही किया। श्रीदाता ने किसी को पुचकारा, किसी को बुला कर अपने पास बिठलाया, किसी को छोटा-मोटा काम दिया और किसी को उसके काम क बारे में पूछकर प्रसन्न किया। कार के गोगुन्दा से लौटने पर श्रीदाता व अन्य लोग दाता निवास के लिये चल पड़े।

चलते वक्त माता जी ने शिवरात्रि पर दाता-निवास आने की इच्छा प्रकट की। शिवरात्रि के दूसरे दिन फाग का कार्यक्रम होता है और इस उत्सव की प्रशसा दूर दूर तक फैल चुकी है। माता जी के कानो तक भी यह चर्चा पहुँची और उन्हे भी इस उत्सव को देखने की इच्छा हुई। सत्सगियो के मन में भी था कि पू माता जी पहले दाता-निवास पधारी, तब गोपाल जी के निधन के कारण अच्छा स्वागत न हो सका अत अगली बार माता जी का भव्य स्वागत किया जाय। श्रीदाता ने फरमाया कि यह तो हमारा अहोभाग्य होगा।

दाता-निवास तो आये दिन कीर्तन होता ही रहता है। शिवरात्रि पर भी कीर्तन होता है। इस वर्ष श्रीदाता जी के माता जी का स्वास्थ्य खराब था। वे ज्यादा अस्वस्थ हो गयी अत. श्रीदाता को व मातेश्वरी जी को सर्दी के दिनो में अधिकतर नान्दशा ही विराजना पडा। अत शिवरात्रि के कार्यक्रम का आयोजन भी नान्दशा में ही करना पडा। शिवरात्रि ८-३-१९८६ की थी। इसके पूर्व तीन दिन का कीर्तन रखा गया। लोग ५-३-१९८६ को ही

आने लगे। दिनांक ७–३–८६ तक तो लगभग सात सौ व्यक्ति आ गये। विद्यालय भवन, उसके बाहर का आँगन और अनेक मकान काम में लेना पड़ा। बड़ा विशाल कार्यक्रम था। प्रतिदिन एक एक हजार व्यक्तियों के भोजन की व्यवस्था करनी पड़ी।

पूज्या माताजी का पधारना दिनांक ७–३–८६ को तीसरे पहर हुआ। बड़ी धूम-धाम से उनका स्वागत किया गया। पू. माताजी के साथ उनकी छोटी शिष्या, सखियाँ व भक्त लोग थे। पूज्या माताजी ने ज्योंही हर-निवास में प्रवेश किया उनकी आरती संजोई गई। बहनों ने गीत गाकर उनकी अभ्यर्थना की। मीराबाई की जय व दाता की जय के निनाद से आकाश गूंज उठा। पूज्या माताजी को बरामदे में बिठा दिया गया व जनता जनार्दन विस्तृत आंगन में। कुछ देर के बाद माताजी को एक अलग ही भवन में जहाँ उनके ठहरने की व्यवस्था थी, ले जाया गया। वहाँ कुछ विश्राम करने के बाद भोजन कराया गया। श्रीदाता व मातेश्वरी जी ने स्वयं पास में बैठ कर उन्हें भोजन कराया। श्रीदाता व मातेश्वरी जी के प्रेम को देखकर वे गद्‌गद् हो गये। भोजन के बाद सन्ध्या उपासना हेतु पधारना हो गया। रात्रि को कीर्तन में बड़ी देर तक विराजना हुआ। इसके पश्चात् अनेक महिलायें उनके निवास स्थल पर पहुँची। पूज्या माताजी का प्रवचन रात्रि के दो बजे तक होता रहा।

दिनांक ८–३–८६ को शिवरात्रि थी। पूरे दिन भजन-कीर्तन एवं अखण्ड कीर्तन होता रहा। पूज्या माताजी कभी अपने निवास स्थान पर लोगों को प्रवचन देती और कभी कीर्तन स्थल पर विराजती। चारों ओर आनन्द ही आनन्द की वर्षा हो रही थी। उस दिन रात्रिभर जागरण हुआ।

दिनांक ९–३–८६ को फागोत्सव था। प्रातः से ही फाग की तैयारियाँ होने लगी। कई कोठियाँ पानी से भर दी गई और उनमें अलग अलग रंग घोल दिया गया। भिन्न भिन्न रंग की गुलालों की थालियाँ भर कर रख दी गई। एक तख्ते पर टेबुल रखकर उस पर भगवान के चित्र सजा दिये गये व पिचकारी रख दी गई। पास ही एक ओर पूज्या माताजी के बैठने हेतु आसन लगा दिया गया।

पास ही जाजम बिछा कर सखियो के लिये बैठने की व्यवस्था की गई। सभी के व्यवस्थित होने पर श्रीदाता एव श्री मातेश्वरी जी का पधारना हुआ। श्रीभगवान के चित्र की पूजा के बाद श्रीदाता ने चित्र पर गुलाल डाली फिर पूज्या माताजी के चरणो मे भी गुलाल अर्पित की। फिर पिचकारी में रग भरकर भगवान एव पूज्य माताजी के चरणो में रग चढाया। कुछ लोगो ने श्रीदाता और श्री मातेश्वरी जी के चरणो मे गुलाल चढाई। सभी को तो यह मौका नही मिल सका। फिर गैर का आयोजन हुआ। भजन बोले गये।

(i) होली खेलन आयो श्याम, आज याने रग में बोरोरी।

(ii) लाग्योडी कोनी छूटे रे मोहन से प्रीतडली।

(iii) सावन आयो रे कानूडा, थारी बाजे मुरलिया।

(iv) रसिया को नार बनाओ, लहगा पहना के याकू चूंदडी ओडावो री।

(v) आज सखी मोरे रग रगी है।

(vi) रास कुन्जन में ठहरायो।

(vii) आज व्रज में होली रे रसिया।

गैर का आयोजन व्यवस्थित और शानदार जमा। इसके बाद होली खेलने का आयोजन हुआ। श्रीदाता के हाथ में पिचकारी थी। उन्होने पिचकारी भरकर मातेश्वरी जी पर फिर एक एक कर जो सामने पडा उन पर रग छिडका फिर वे एक ओर खडे हो गये और लोगो को होली खेलने की छूट दी। फिर क्या था, लगे लोग एक दूसरे पर गुलाल व रग डालने। लोगो के कपडे व अंग लाल, पीला, गुलाबी आदि रगो के होने लगे। पूरा आंगन रग रगीला हो गया। लगभग आधा घण्टे तक होली का कार्यक्रम चलता रहा। साथ ही होली के भजन भी चलते रहे व नृत्य तथा उछल कूद भी। पू. माताजी भी इस कार्यक्रम को देखकर हसे बिना नही रह सकी। उन्हे बडा ही आनन्द आया। विशेष कर प्रेम-मय भजनो में। पूरे कार्यक्रम में लगभग दो घण्टे लग गये।

इसके पश्चात् लोग स्नान करने गये। नान्दशा में इस वर्ष पानी की कमी रही। कुओं में पानी नहीं। उस दिन अमावस्या के कारण बैलों को चरस में नहीं लगाते हैं। बड़ी समस्या हुई। जैसे तैसे निपटाया गया। भोजनोपरान्त माताजी ने विदा ली। विदाई देते वक्त अनेकों के नेत्रों में आँसू थे। माताजी का कार्यक्रम कुछ देर गंगापुर ठहर कर फिर उदयपुर जाने का था। गंगापुर पधारने पर कार्य नहीं बना। गंगापुर ठहरने मे कोई तुक देखी नहीं। अतः वापिस नान्दशा पधार गये। उन्हें वापिस आया हुए देख कर सब के चेहरे खिल उठे। बिखरी हुई व्यवस्था को पुनः ठीक किया गया। माताजी का यहाँ रात्रि को भजन हुआ। माताजी समाधिस्थ हो गई वड़ी देर तक समाधि में रहीं। समाधी खुलने के बाद भजन होते रहे।

अगले दिन अर्थात् १०–३–८६ को भोजन की व्यवस्था शीघ्र ही कर ली गई। बाफले बाटी एवं चूरमे के लड्डू का भोजन था। भोजन कर पूज्या माताजी श्रीदाता के माताजी के दर्शन कर कुछ देर छत पर ही विराज गई। वहाँ उन्होंने सखियों को भजन बोलने का आदेश दिया। सखियों ने वहाँ एक भजन बोला। इस प्रकार कृपा कर–श्रीदाता के माताजी को भजन सुना कर वहाँ से चल दिये। वहाँ से आज्ञा मांग कर बस में जाकर बैठ गई। जाते वक्त श्रीदाता को उदयपुर पधारने हेतु निवेदन किया और स्लेट पर 'तकलीफ दी उसके लिये क्षमा' लिख कर दाता को बताया। श्रीदाता वही लिखावट वापिस पूज्या माताजी को बता दी। इस पर पूज्या माताजी हंस पड़ीं। हर-निवास से विदा होकर डेरे पर पहुँचे। साथ वाले जल्दी करना चाहते थे। कमरे में जाकर पूज्या माताजी विराज गईं और समाधिस्त हो गयीं। जल्दी मचाने वाले एक दूसरे का मुँह देखते रह गये और हँसने लगे। आधा घण्टे बाद उनकी समाधि खुली।

पूज्या माताजी बस में जाकर बैठीं। जाने के पूर्व हम लोगों के सिरों को मुरली से स्पर्श कर आशीर्वाद दिया। फिर मुस्कराते हुए

बस में जाकर विराज गयी। हरिसिंह जी, जगदीश जी आदि सभी महापुरुषों को नमस्कार कर उन्हें विदा किया।

गर्मी के दिनों में दाता-निवास में कीर्तन था। जयपुर व भीलवाडा के लोग आये हुए थे। त्रिदिवसीय कीर्तन था। जयपुर से पारीख साहब भी आये हुए थे। पारीख साहब को उदयपुर जाना था। श्रीदाता ने फरमा दिया कि उदयपुर से राधेश्याम जी और मुकुट जी आवे तो लेते आना। वापिस लौटते वक्त दोनों आने को तैयार हो गये। मुकुट जी ने कहा कि मीरा माँ से गोगुन्दा मिलते चले। वहाँ पहुँचे तो मीरा माँ भी चलने को तैयार हो गईं। उसी कार में वे रात्रि को देर से दाता-निवास पधार गये। किसी को उनके आने की समावना तो थी नहीं। श्रीदाता को तत्काल सूचना दी गई। वे बाहर पधारे। अन्दर बरामदे में कुछ देर विराजना हुआ। इस समय ऊपर के कमरे में ठहरने की व्यवस्था कर दी गई। फिर ऊपर कमरे में पधारना हो गया।

दूसरे दिन प्रात. कीर्तन भवन में विराजना हो गया। श्रीदाता भी पधार गये। श्रीदाता ने करताल हाथ में लेकर नृत्य के साथ कीर्तन किया। माता जी विराजे विराजे सब देखती रहीं। वे भाव विभोर हो गयी और नेत्रों से अश्रु टपकने लगे। बडा ही मनोरजक वातावरण था। भोजन बनते ही भोजन कराया गया। एक दिन के लिये ही पधारना हुआ था। शाम को वापिस जाना था अत. चार बजे उन्हें कार में विदा कर दिया गया।

दिनाक १५-६-८६ ई को साय ३-४५ से तीन दिन का अखण्ड कीर्तन का आयोजन हुआ। यह कीर्तन भी त्रिदिवसीय कीर्तन था। इस कीर्तन का उद्देश्य वन्दों को सद्‌बुद्धि प्रदान करना था। इस कीर्तन के लिये श्रीदाता का आदेश दिनाक १४-६-८६ ई को मध्याह्न में हुआ। भीलवाडा एव करेडा वालो के पहुँचने में देरी हुई तो अजमेर और जामोला से बोलने वालो को बुलाया गया। यह कीर्तन भी अभूतपूर्व कीर्तन था। दिनाक १८-६-८६ साय ४-४५ तक यह कीर्तन चलता रहा। बडा ही आनन्द आया। इस कीर्तन में भी कई लोग उपस्थित हुए।

दिनांक १४–६–८६ को गोगुन्दा से हरिसिंह जी साहब का पधारना हुआ था। उन्होंने फरमाया कि मीरा माँ मन्दसौर से पधार गई हैं और दिनांक २४–६–८६ को उन्हें वापिस नीमच पधारना है। उन्होंने कहलवाया है कि उदयपुर, जरगाजी एवं रीछेड़ का कार्यक्रम दिनांक २०, २१ और २२ जून को रख दिया जाय। इस समय इस कार्यक्रम के रखने की दाता की इच्छा नहीं थी। किन्तु माताजी की आज्ञा मानकर कार्यक्रम रख दिया गया। दिनांक १९–६–८६ रात्रि को उदयपुर से बस आ गई व श्री दिनेश जी कार लेकर आ गये। अतः २०–६–८६ को प्रातः ९ बजे दाता-निवास से प्रस्थान हो गया।

श्रीदाता की कार नाथद्वारा होकर उदयपुर पहुँची। बस रीछेड़ से कुछ लोगों को लेती हुई उदयपुर पहुँची। व्यवस्था जेलर साहब की बाड़ी में की गई थी। पूज्या माताजी अपनी छोटी शिष्या और अनेक सखियों के साथ एक दिन पूर्व ही वहाँ पहुँच गयी थीं। माताजी की बड़ी शिष्या भी दिनांक २०–६–८६ को प्रातः ही अपने पिता श्री ॐकारसिंह जी सहित पधार गई थी। श्रीदाता का पधारना उदयपुर बारह बजे ही हो गया था। उदयपुर वालों ने श्रीदाता का स्वागत किया। माताजी के दर्शन कर श्रीदाता एक कमरे में जाकर विराजे। बाहर शामियाना लगा था जिसमें दर्शनार्थी एवं बाहर से आये भक्त लोग बैठे थे। हमारी बस एक बजे के लगभग पहुँची। माताजी के पास भी माँ-बहनों की भीड़ थी। अतः दूर से ही प्रणाम कर और दर्शन कर संतोष कर लेना पड़ा। माताजी की बड़ी शिष्या के पिताजी श्रीदाता के पास जा विराजे। कुछ देर बाद ॐकारसिंह जी ने अपनी पुत्री अर्थात् माताजी की बड़ी शिष्या को भी बुला लिया। लगभग एक घण्टे तक कमरे में बातचीत होती रही। एक घण्टे के बाद वे बाहर आ गये। कुछ देर बाद श्रीदाता बाहर पधारे किन्तु अनेक लोगों की अपनी अपनी समस्याएँ थीं अतः वापिस कमरे में पधार गये व बारी बारी से लोगों को बुला कर उनकी समस्याओं का समाधान करते रहे।

भोजन तैयार हो गया अतः भोजन कराया गया। भोजनोपरान्त माताजी की बड़ी शिष्या सलूम्बर जाने को विदा हुई। कई लोगों

की इच्छा उनके भजन सुनने की थी किन्तु उन्हें जाना आवश्यक था अत ठहरना नही हो सका। रात्रि को माताजी भी पण्डाल में पधार गयीं व श्रीदाता भी। भजन-कीर्तन प्रारभ हो गया जो रात्रिभर ही चलता रहा किन्तु उस दिन न तो श्रीदाता ही अधिक समय विराजे और न माताजी ही। कुछ भजन बोलने वाले बैठे बैठे भजन बोलते रहे, बकाया लोग सो गये।

अगले दिन प्रात ही वर्षा प्रारभ हो गई। यद्यपि वर्षा जोर की तो नही थी फिर भी कपडे गीले करने के लिये तो पर्याप्त थी। जरगाजी में व्यवस्था करने जाने वाला दल रात्रि को जाना चाहता था किन्तु वाहन खराब होने से नही जा सका अत उसे प्रात ही रवाना किया गया। सभी को नाश्ता के बाद जरगाजी के लिये प्रस्थान करना था किन्तु श्रीदाता को कुछ लोग अपने घरो पर ले गये। एक व्यक्ति तो अपने घर पर और दो अपनी दुकानो पर। इसमें काफी समय लग गया और बारह वही बज गये। श्रीदाता कार से रवाना हो गये। बकाया लोग बस, जीप एव ट्रक से रवाना हुए। माताजी के पधारने की व्यवस्था एक अन्य जीप से की गई। मार्ग में वर्षा हो गई। श्रीदाता वहाँ एक घण्टे पूर्व ही पहुँच गये थे। वहाँ वालो ने, महाराज जी ने और उनके शिष्यो ने आरती कर और प्रणाम कर स्वागत किया। श्रीदाता रामदेव जी के मन्दिर में जो सब से ऊपर बना था उसमें जाकर विराजे। माताजी के पहुँचते ही वहाँ वालो ने माताजी का स्वागत किया। माताजी के साथ उनकी छोटी शिष्या, सखियाँ व सलूम्बर के कुछ सत्सग प्रेमी लोग थे। जरगाजी में दो बडे कमरे और बना दिये गये है। उस कमरे में माताजी के ठहरने की व्यवस्था कर दी गई। पहुँचे तब तक वर्षा चल रही थी अत भोजन बनाने वालो को कठिनाई अवश्य हुई किन्तु साथ में त्रिपाल थे अत कुछ बचत हो सकी। वहाँ के महन्त जी ने बडा सहयोग किया। कुछ देर बाद वर्षा ठहर गई। आँगन के पत्थर वर्षा मे गीले थे जिन्हें सुखाया गया। बैठने-लायक जगह हुई तब भोजन किया गया। उदयपुर में तो भोजन में मिठाई दिलजानी की थी किन्तु वहाँ लापसी थी। भोजन-प्रसाद बडा स्वादिष्ट बना।

रात्रि को ऊपर तो भजन मण्डली भजन करने बैठी। माताजी भी ऊपर पधार गई। कुछ देर माताजी भजन का आनन्द लेकर वापिस कमरे में पधार गई। वहाँ बिजली की रोशनी तो है नहीं, केवल गैस की रोशनी है। वृक्षों की घनी छाँह से वैसे ही दिन में अँधेरा रहता है फिर रात्रि की बात ही क्या कही जाय। रात्रि में इधर उधर फिरने का तो काम ही नहीं। अतः लोग भजन में बैठे सो बैठे ही रहे। जिसको निद्रा आई वह जहाँ बैठा था वहीं लेट गया।

प्रातः दैनिक कार्यों से निवृत्त हुए ही थे कि वर्षा आ गई। यदि यह वर्षा रात्रि को आई होती तो क्या हुआ होता। कृपा दाता की कि ऐसा नहीं हुआ। कुछ लोग जरगाजी के उस ओर के आश्रम को देखने गये। वर्षा से उनका बुरा हाल हो गया। वे थक भी गये और भींग भी गये। एक-दो व्यक्ति तो आधे से ही वापिस आ गये। दूध, जलेबी का नाश्ता था। नाश्ता कराया गया। नाश्ते के बाद भजन मण्डली जमी। श्रीदाता सामने बैठ गये। वे भी साथ ही बोलने लगे। भजन बोलने वालों को और सुनने वालों को आनन्द आ गया। एक महाराज तो थाली कटोरी लेकर नृत्य करने लगे। बड़ा मनोरंजक वातावरण बन गया। एक एक कर लोग आने लगे। भजनों की एक समा सी बन गई। समय दो का हो गया। भोजन रीछेड में बना था। रीछेड़ पहुँचने में लगभग एक घण्टा लगता है। सड़क तक का मार्ग खराब होने से कुछ लोगों को सड़क तक पैदल जाना था। सड़क लगभग ५ कि. मी. दूर थी। माताजी रात्रि को भोजन करतीं नहीं। ऐसी अवस्था में मजबूरी हो गई। आनन्दमय वातावरण चल रहा था उसमें विक्षेप डालना ही पड़ा। श्रीदाता को अर्ज करना ही पड़ा कि अब पधारना हो जाय। एक भजन और बोला गया फिर श्रीदाता उठ खड़े हुए। सभी ने अपना अपना सामान बटोरा और वाहनों के पास पहुँचने लगे। श्रीदाता भी नीचे उतरे। मार्ग में महन्त जी खड़े थे। उनसे विदा ली। उन्हें १५१/– रु. भेंट के रूप में नजर किये और फिर नमस्कार कर विदा हुए। श्रीदाता, माताजी दोनों की गाड़ियाँ

तो आगे निकल गई। बस ने एक फेरनी रीछेड की पूर्व में ही कर ली थी। बकाया जो भी रहे उन्हें बस में लेकर सब ही रवाना हुए। सड़क पर पहुँच कर पैदल सवारियों को लिया व रीछेड के लिये चल दिये।

श्रीदाता और माताजी तीन बजे ही रीछेड पहुँच गये थे। बस चार बजे पहुँची। रीछेड वाले यद्यपि सभी साथ थे फिर भी स्वागत में कोई कमी नही रखी। माताजी को तो महिलाएँ घेर कर बैठ गईं व श्रीदाता को रीछेड के सत्संगी। मेहमानों को विद्यालय के बरामदे में बैठ कर सतोष करना पडा। भोजन तैयार होते ही भोजन कराया गया। माताजी ने बडे प्रेम से भोजन किया। सखियों को उन्होंने छक के खिलाया। अन्य लोगों का भोजन विद्यालय के बरामदे में हुआ। श्रीदाता का अभाव उन्हे खला। श्रीदाता ने एक कमरे में बैठकर भोजन किया। भोजन के बाद श्रीदाता बाहर निकल कर वाहनों के पास आकर खडे हुए। एक कार जयपुर से जरगा जी आ गई थी। अत इस वक्त दो कारें, एक जीप और एक बस थी। योजना यह बनाई गई कि पहले बस दाता-निवास की सवारियों को छोडकर आये फिर उदयपुर की सवारियो को लेकर जाय। अत आज्ञा लेकर दाता-निवास की सवारियो को उसमें बिठा कर बस को रवाना की गई।

श्री मोहन जी श्रीदाता को एव माताजी को अपने घर ले जाना चाहते थे। उन्होंने इस हेतु बडी प्रार्थना की। माताजी ने स्वीकृति दे दी अत श्रीदाता को भी पधारना पडा। श्रीदाता एव माताजी कारों में व अन्य लोग पैदल ही उनके घर गये। उन्होंने माताजी की विधिवत पूजा की। श्रीदाता की भी आरती सजोई गई। अन्दर मकान में जा बिराजे। माताजी के तो आरती का समय हो गया। उनके आराध्यदेव श्रीकृष्ण का चित्र सदैव उनके साथ ही रहता है। उन्होंने एक टेबुल पर उसकी स्थापना की और आरती करने लगीं।

श्रीदाता ने तो माताजी से आरती के पूर्व ही आज्ञा ले ली थी अत वहाँ से आरती के पूर्व ही पधार गये। विद्यालय के पास

आकर दोनों कारें ठहर गई। रीछेड़ के कुछ लोग माताजी के पास थे व कुछ लोग दौड़ कर दाता के पास आ गये। वे तो श्रीदाता और माताजी को वहीं रोकने की योजना बना रहे थे। उन्होंने यह कदापि नहीं सोचा की माताजी यहाँ से पधारें उसके पूर्व ही श्रीदाता यहाँ से पधार जावेंगे। कुछ को मालूम हुआ कुछ को नहीं। श्रीदाता ने तो इस सेवक को लिया, उदयपुर वालों को कुछ आवश्यक हिदायतें दी और चल दिये। गोमती जाकर दो-चार मिनिट ठहरना हुआ फिर सीधे ही दाता-निवास पधार गये। अन्य लोग पहले ही पहुँच चुके थे। थके होने से सभी सो गये। आमोला वालों ने भजन बोलना शुरू किया किन्तु जम नहीं पाये अतः वे भी सो गये।

अगले दिन श्रीदाता ने लोगों को विदा किया फिर भी १५ किलोग्राम आटे की बाटियाँ खाने वाले तो ठहर ही गये। उन्हें शाम तक विदा किया गया। इस प्रकार लोगों को श्रीदाता एवं मीरा माँ, दोनों के एक साथ सम्पर्क में रहने का अवसर मिला। जय हो श्रीदाता एवं श्री मीरा माँ की।

०००

हरिद्वार कुंभ

सन् १९५० ई के कुभ के मेले में श्रीदाता का हरिद्वार पधारना हुआ था जिसका विवरण श्री गिरधर लीलामृत भाग १ में दिया जा चुका है। हरिद्वार स्वर्ग का द्वार ही माना जाता है। यही से गगा नदी हिमालय की गोदी को छोडकर मैदान में प्रवेश करती है। हरिद्वार का स्नान प्रत्येक हिन्दू परिवार के लिये शुभ एव मोक्षदायक माना जाता है। प्रति वर्ष हजारो की सख्या में लोग हरिद्वार तीर्थ यात्रा में जाते है। इस वर्ष अर्थात् सन् १९८६ में हरिद्वार में कुभ का मेला लगा जिसमें साठ-सत्तर लाख के लगभग व्यक्ति सम्मिलित हुए। भारत सरकार की ओर से सुन्दर व्यवस्था थी। ज्यादा भीड में जन और धन की हानि होना सभव है। इस कुभ में भी एक दिन कुछ ऐसा ही हुआ जिसमें जन और धन की हानि हुई। इस हानि के बाद भय सा फैल गया जिससे अन्तिम दो तीन मुख्य स्नानो में लोगो की सख्या प्रारभिक स्नानो की तुलना में कम ही रही।

श्रीदाता से अनेक लोगो ने कुभ मेले में पधारने हेतु कई बार निवेदन किया किन्तु प्रत्येक बार मौन धारण कर लिया। वैसे देखा गया है कि जहाँ भी कुभ का मेला लगा, श्रीदाता का वहाँ पधारना हुआ ही है। प्रयाग, नासिक, उज्जैन आदि स्थानो पर कुभ के अवसर पर पधारना हुआ ही था। अप्रैल का महीना आ गया और एक-दो स्नानो के अलावा सभी स्नान निकल चुके थे अत दाता के साथ जाने की इच्छा करने वाले लोग हताश ही हो गये थे। एक कारण और भी था। श्रीदाता का स्वास्थ्य इन कुछ महीनो में ठीक भी नही रहा। हर समय वायु की शिकायत रहती आई है।

जयपुर के कुछ लोगो के विशेष आग्रह से दिनाक २१-४-८६ को श्रीदाता का जयपुर पधारना हो गया। वहाँ दि २२-४-८६ को

शाम के वक्त कुछ लोगों ने हरिद्वार पधारने की अर्ज की। उन्होंने बताया कि पूर्णिमा का स्नान है। उस दिन चन्द्रग्रहण भी है। श्रीदाता ने स्वीकृति दे दी। दिनांक २३-४-८६ को अपराह्न में तीन बजे जाना निश्चित हुआ। सौभाग्य से इस सेवक पर महर हो गई और दूरभाषी यंत्र द्वारा जयपुर बुलवा लिया गया। शिव-कँवर और छोटी को साथ लेकर मैं तीन बजे तक जयपुर पहुंच गया।

दिनांक २३-४-८६ ई. को सायं चार कारें जयपुर से रवाना हुई। कुछ खाना पीना तो था नहीं। दिल्ली होते हुए दि. २४-४-८६ के सूर्य दर्शन हरिद्वार में किये। हरिद्वार में पांच मुख्य तीर्थ हैं। ये हैं– हरि की पैड़ी, कुशावर्त, बिलकेश्वर, नीलपर्वत और कनखल।

गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते।
स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते॥

ऐसी मान्यता है कि इन तीर्थों में स्नान करने से पुनर्जन्म नहीं होता है अर्थात् मोक्ष हो जाता है। मान्यता भावना पर आधारित है। जो भावना पत्थर को भी भगवान बना सकती है वह पुनर्जन्म को समाप्त न करे ऐसा तो हो ही नहीं सकता। जो भी हो, पाँचों स्थान अत्यधिक सुन्दर, पवित्र और दर्शनीय हैं। कनखल के एक आश्रम में सागर बाबू ने एक कमरा किराये पर ले रखा है अतः वहीं ठहरना उचित समझ कर वहीं श्रीदाता का पधारना हो गया।

कनखल में नील धारा और नहर वाली गङ्गा की धारा दोनों आकर मिलती हैं इस हेतु कनखल में स्नान का विशेष महत्व है। कहते हैं कि एक पापात्मा व्यक्ति अपनी मुक्ति के लिये यत्र-तत्र मुक्ति के लिये भटकता रहा। अनेक तीर्थों में स्नान किये किन्तु कहीं मुक्ति नहीं हुई। कनखल में ज्यों ही उसने स्नान किये, उसकी मुक्ति हो गई, इसीलिये महापुरुषों ने इसका नाम 'कनखल' रख दिया। हरि की पेड़ी से कनखल तीन मील है। कनखल एक छोटा सा कस्बा है। वहाँ अच्छी चहल पहल रहती है। आश्रम जिसमें दाता का विराजना हुआ था बिल्कुल नदी की धारा के किनारे है। वहाँ धारा पर सुन्दर घाट बने हुए हैं। पुरुष और महिलाओं के

लिये अलग अलग घाट बने हुए हैं। घाट पर भीड़-भाड़ नहीं थी। आश्रम में ठहरे हुए कुछ लोग ही स्नान कर रहे थे। घाट पर बेन्चे बनी है व पूरा घाट हरे पेडो की छांह से ढका हुआ है। वहाँ जाकर बैठने पर बडी शान्ति मिली और रात्रिभर की थकावट वहाँ बैठने से ही समाप्त हो गई। कुछ देर बैठ कर स्नान किया। उस समय धारा प्रवाह तेज नहीं था अत. सीढियो से उतर कर कुछ दूर जाकर स्नान किया। गगा का पानी शीतल, मृदुल एव आरोग्यवर्द्धक है। स्नान करते ही शरीर में स्फूर्ति आ गई और बिल्कुल तरोताजा हो गये। दूसरे किनारे पर कई लोग नहा रहे थे। बडी देर तक नहाते व पानी से किलोले करते रहे। कुछ देर बाद श्रीदाता स्नानार्थ पधार गये। वे भी कुछ देर सीढियो पर विराज कर वहाँ का दृश्य देखते रहे फिर गगा को नमस्कार कर गगाजल को सिर पर चढ़ाया। तदनन्तर स्नानार्थ पानी में उतरे। हम लोग एक ओर बैठ गये। विधिवत् स्नान के पश्चात् श्रीदाता ने हरेहर (मानसिक पूजा) की। फिर कमरे में पधार गये। हम लोग भी स्नान कर शीघ्र ही कमरे में जाकर बैठ गये। वहाँ एक दूसरे को लेकर मजाक होती रही। भोजनोपरान्त कुछ विश्राम किया। गर्मी बढ गई। बाहर निकलना कठिन हो गया अत पखे की हवा में ही सतोष कर बैठ जाना पडा।

शाम को पाच बजे के बाद भ्रमण हेतु कारो से ही निकल पडे। उस दिन श्रीदाता की तबीयत विशेष खराब थी अत ऐसे स्थानो पर जाने का विचार ही स्थगित कर दिया जहाँ पैदल जाना पडे। बारे हरि की पेडी के सामने से होती हुई ऋषिकेश की ओर आगे बढी। हरि की पेडी पर उस समय भी अपार भीड थी और वहाँ पहुँचने में पैदल भी चलना पडता अतः उस समय उसको देखने नहीं जा सके। अखाडो में भी जाना सभव नहीं था। सडक के दोनो ओर के दृश्यो को देखते हुए ऋषिकेश की ओर बढे। सीधी सडक से जाने पर स्वर्गाश्रम तक पहुंचने में पैदल चलना पडता है अत नई बनने वाली सडक से जो निर्माणाधीन है, जाने का निर्णय किया। यह सडक बेराज से जाती है। बेराज में गगा को रोक कर

गंगा का पानी नहर में निकाला गया है। बेराज को पार कर नव-निर्माणाधीन सड़क पर पहुँचे जहाँ सड़क के बन्द फाटक पर ताला लगा हुआ था। बेराज कार्यालय से ताला खुलवा कर आगे बढ़े। काफी चढ़ाव-उतार के बाद ऋषिकेश होते हुए लक्ष्मण झूला तक गये। ऋषिकेश का विस्तार लक्ष्मण झूला तक है। ऋषिकेश साधना भूमि है। साधना-भूमि होने से ही इसका नाम ऋषिकेश पड़ा है प्राचीन काल में इसे कुब्जाम्रक कहते थे। रैम्य मुनि कुब्जे थे। उन्होंने आम्रवृक्ष के नीचे बैठ कर तप किया व भगवान विष्णु के दर्शन किये। इसीलिये इसका नाम मुनि की याद मे कुब्जा + आम्रक = कुब्जाम्रक पड़ गया। इसमें मुनि की रेती, लक्ष्मण झुला एवं स्वर्गाश्रम देखने योग्य हैं। इसमें गंगा की धारा का वेग अधिक है। असावधानी से स्नान करने पर कई यात्री बह जाते हैं जिनका पता ही नहीं लगता। इस मेले में भी कुछ उदाहरण इस प्रकार के सुनने को मिले।

लक्ष्मण झूला विश्व विख्यात झूला है। बड़े बड़े लोहे के रस्सों पर यह झूला निर्मित किया गया है। यात्री इस पर पैदल आ-जा सकते हैं। इसपर किसी प्रकार का वाहन नहीं आ-जा सकता है। श्रीदाता कार से उतर पड़े अतः सभी उनके साथ ही उतर पड़े। श्रीदाता का पधारना झूले पर हुआ। झूला पार कर गंगा के उस किनारे पहुँचे व उधर के दृश्य को देखा। कुछ देर बाद वापिस आ गये। उस झूले का और गंगा के किनारों के चित्र-लेना चाहते थे किन्तु आज्ञा न मिलने से नहीं लिये जा सके। लक्ष्मण झूला से स्वर्गाश्रम की ओर चले। मार्ग में किनारे पर अनेक आश्रम बने हैं जो देखने योग्य है। स्वर्गाश्रम बड़ा रमणीय एवं पवित्र स्थान है। बड़े बड़े ऋषि-महर्षि एवं विद्वान लोग यहाँ आकर निवास करते हैं। यहाँ हर वक्त सत्संग चलता ही रहता है। हजारों नर-नारी प्रति वर्ष यहाँ आकर सत्संग का लाभ उठाते हैं। यहीं परमार्थ निकेतन है जहाँ बहुत से साधु-सन्त रहा करते हैं और कीर्तन-सत्संग चलता है। स्वर्गाश्रम के पास भी अनेक आश्रम हैं। स्वर्गाश्रम में गीता भवन देखने योग्य है। भवन विशाल और सुन्दर है। वहाँ पूरी

गीता दीवारो पर अंकित है। वहाँ की सुन्दरता, शान्त वातावरण एव पवित्रता ने हम सब का मन मोह लिया। वह स्थान बहुत ही अच्छा लगा।

वहाँ से वापिस चले। ऊँची नीची घाटियो को पार करते हुए बेराज के निकट आये। सबसे आगे श्रीदाता की कार थी। कार के आगे सडक पर आने वाला एक ट्रक था जो धीरे धीरे आगे बढ रहा था। बेराज के पास ही सडक पर एक जगली हाथी खडा था। वह अपनी मस्ती में मस्त था। ट्रक को आता हुआ देख कर वह ट्रक की ओर बढा। ट्रक में ड्राईवर सहित तीन व्यक्ति थे। ड्राईवर ने एकदम ट्रक रोक दी व रोशनी बन्द कर दी। तीनों ही व्यक्ति कान पकड कर बैठ गये व थरथर कापने लगे। हमारी कारे ट्रक के पीछे थी। हमें भी भय लगा। हमारी गाडियो की भी रोशनी बन्द कर दी गई। हम लोग भी चुपचाप खडे रह गये। ट्रक की रोशनी बन्द होते ही हाथी ने आगे बढना रोक दिया। कुछ देर तक सडक के मध्य झूमता हुआ खडा रहा। फिर धीरे धीरे पहाड पर चढ गया। ट्रक वाले के और हमारे जी में जी आया। वहाँ से जीव लेकर भागे। बेराज पर आने और वहाँ के व्यक्तियों को पूरा विवरण बताने पर उन्होने बताया कि इस सडक पर जगली हाथी आ जाते है। वे बडे खूँखार है। अनेक दुर्घटनायें अब तक हो चुकी है। वह तो कार या ट्रक को नदी में उछाल देते है। आप बडे भाग्यशाली है जो बच गये।

वहाँ से हरिद्वार की ओर चल पड़े। बिजली के बल्ब जल चुके थे। सडक के दोनो ओर रोशनी जगमगा रही थी। हरि की पेडी के पास पहुँचे तो उसका दृश्य बडा ही अनोखा नजर आया। कुछ देर ठहर कर उस दृश्य को देखा। बल्बो की रोशनी गगा के पानी में प्रतिबिम्बित हो रही थी जिससे पानी जगमगा रहा था। बडा ही सुन्दर दृश्य था। कुछ देर ठहर कर कनखल पहुँच गये।

वहाँ पहुँचने के बाद हरि की पेडी पर जाने की इच्छा हुई। श्रीदाता से आज्ञा चाही किन्तु यह कह कर मना कर दिया कि

हरि की पेड़ी यहाँ से दूर है व भीड़ पर्याप्त है। अभी जाना खतरे से खाली नहीं है। एक रात पहले का जागरण था अतः सो गये।

प्रातः उठ कर दैनिक कार्य से निवृत्त होकर श्रीदाता के पास जा बैठे। श्रीदाता ने फरमाया, "तुम हरिद्वार जाना चाहते हो तो अकेले मत जाओ। दो तीन व्यक्ति साथ जाओ।" जब हम लोग वहाँ से चलने की सोच ही रहे थे कि श्रीदाता ने हमें वापिस बुला लिया और बोले, "म्हारा राम की भी इच्छा हरि की पेड़ी चलने की है। चलो वहीं स्नान करेंगे। चलो सब को तैयार करो।" यह सुन कर हमारी कली-कली खिल गई। बात की बात में चलने के लिये सब तैयार हो गये। कारें सीधी नये बने पुलों के पास जाकर रुक गई। श्रीदाता एवं हम सब वाहनों से उतर पड़े व धीरे धीरे पुल पर चले गये। पुल पर भारी भीड़ थी। ज्यों त्यों स्थान कर आगे बढ़े। हरि की पेड़ी के पास जाकर खड़े हुए। पेड़ियों पर अपार भीढ़ थी। स्नान करना तो दूर खड़े रहना भी संभव नहीं था। ज्यों त्यों कर पेड़ी पर पहुँचे। श्रीदाता के लिये स्थान किया गया। श्रीदाता ने वहाँ गंगाजल को सिरपर चढ़ा लिया व फरमाया कि स्नान कनखल में ही होंगे। अतः वहाँ से वापिस लौटे। मन में विचार आया कि हरिकी पेड़ी तक पहुँचे फिर भी इसे ठीक प्रकार से नहीं देख सके। वाहनों के पास आये तो मालूम हुआ कि श्रीदाता जिस कार में पधारे उसका ड्राईवर वहाँ नहीं है। श्रीदाता दूसरी कार में विराज गये और हमें कह दिया गया कि ड्राईवर के आ जाने पर आ जाना। हमें तो यही चाहिए था।

कुछ देर वहीं ठहर कर ड्राईवर की प्रतीक्षा की। जब वह नहीं आता दिखाई दिया तो हम लोग भी हरि की पेड़ी पर चले गये। इस बार भीड़ पहले जितनी नहीं थी। कोई भी व्यक्ति आसानी से इधर उधर जा सकता है। हम लोग पेड़ी पर चले गये। पहले पानी को सिर पर चढ़ा कर नमस्कार किया फिर हाथ पैर धोकर जलपान किया। कपड़े नहीं होने से स्नान नहीं कर पाये किन्तु एक प्रकार से स्नान हो ही गया।

हरि की पेढ़ी को ब्रह्म कुण्ड भी कहते है। राजा श्वेत को ब्रह्मा जी ने यही दर्शन दिये थे ऐसा लोग कहते है। यह भी कहा जाता है कि राजा भर्तृहरि ने इसी स्थान पर तपस्या कर अमर पद प्राप्त किया है। सब से पहले विक्रमादित्य ने यहाँ सीढियाँ बनाई थी। फिर यहाँ एक कुण्ड बना दिया गया। खास हरि की पेडी के पास एक बडा सा कुण्ड बनवा दिया गया है। इस कुण्ड में एक ओर से गगा की धारा आती है और दूसरी ओर निकल जाती है। कुण्ड में कही भी जल कमर भर से ज्यादा गहरा नही है। इस कुण्ड में ही विष्णु चरण पादुका, मनसा देवी, साक्षीश्वर तथा गङ्गाधर महादेव के मन्दिर तथा राजा मानसिह की छत्री है। कुभ के समय साधुओ का यही स्नान होता है। स्थान बहुत ही सुन्दर है। इतना रमणीक है कि हटने का जी ही नही चाहता। पास ही बाजार है जहाँ खाने-पीने की व अन्य हर प्रकार की वस्तुएँ मिलती हैं। हरि की पेडी के दक्षिण में कई घाट है जिनमें गऊ घाट मुख्य है। कुशावर्त घाट गऊ घाट से दक्षिण में है। यहा दत्तात्रेय जी ने एक पैर पर खडे रह कर तप किया था। हरिद्वार में और भी कई स्थान देखने योग्य हैं। दोपहर निकट आ गया व गर्मी अधिक होने लगी इसलिये भीड बहुत ही कम हो गई। घाट खाली से लगने लगे। हम लोगों के लिये घूमना फिरना सरल हो गया। श्रवणनाथ जी का मन्दिर, राम घाट, विष्णु घाट, मायादेवी, गणेश घाट, नारायणी शीला, काली मन्दिर, चण्डी देवी का मन्दिर, अञ्जनी देवी का मन्दिर, गौरी-शकर महादेव का मन्दिर आदि स्थान देखने योग्य हैं।

नील पर्वत के शिखर पर चण्डी देवी का मन्दिर है। चण्डी देवी के मन्दिर की चढाई लगभग दो मील है व कठिन है। वहाँ जाने के लिये दो मार्ग हैं। एक गौरी-शकर महादेव के मन्दिर से होकर व दूसरा कामराज की काली मन्दिर से होकर। एक कठिन व दूसरा सरल है। इस पर्वत के दूसरी ओर कदली वन है जिसमें सिह, हाथी आदि जगली पशुओ का निवास स्थान है। आजकल चण्डी मन्दिर तक जाने के लिये बिजली द्वारा सचालित उडन खटोले है। इन से चण्डी देवी के मन्दिर तक पहुँचना बडा ही सुगम हो गया है।

बिल्वकेश्वर महादेव का मन्दिर भी देखने योग्य है। यह बिल्व पर्वत पर बना है। वहाँ दो मूर्तियाँ हैं। एक मन्दिर में व एक मन्दिर के बाहर। मूर्तियाँ दर्शनीय हैं।

समय अधिक हो गया अतः जो कुछ जल्दी जल्दी में देखा जा सका उसमें ही संतोष कर कनखल वापिस लौट आये। श्रीदाता तो स्नान से व हरेहर से निवृत्त हो चुके थे। हम लोग गंगा में स्नान करने हेतु गये। गत दिवस की तुलना में उस समय पानी दुगुना था व वेग भी तीव्र था। आज एक दो पेड़ी से अधिक नहीं जा सके। पानी बड़ा ही निर्मल एवं शीतल था। स्नान करने मे आनन्द आ गया। स्नान से निवृत्त होकर श्रीदाता के पास जाकर बैठ गये। भोजन बन चुका था। अतः सभी ने भोजन किया। सभी विश्राम करने लगे। मैं तो घाट पर जाकर बैठ गया व पानी के बहाव को देखने लगा। वहाँ गर्मी थी किन्तु फिर भी मन नहीं अघा रहा था। जी यही चाहता रहा कि इसी तरह यहाँ सदैव ही बैठे रहें। आवाज पड़ी तब वहाँ से उठ कर जाना हुआ।

तीसरे पहर आकाश में बादल छा गये। वातावरण ठण्डा व सुहावना बन गया। सोचा कि शाम को हरिद्वार में घूम फिर कर सभी केम्पों को देखेंगे किन्तु एकाएक श्रीदाता ने चलने का आदेश दे दिया। फिर क्या था, तैयारी कर वाहन में जाकर बैठ गये। ठीक पांच बजे हरिद्वार से चल पड़े। बादल थे व हवा शीतल थी। कनखल को पार कर राष्ट्रीय मार्ग पर आ गये। कुछ दूर गंगा की नहर के सहारे-सहारे चले। पन्द्रह मील चले होंगे कि वर्षा प्रारंभ हो गई। पानी की बूंदे जो शरीर पर पड़ रही थी बड़ी सुहावनी लग रही थी। सड़क के दोनों ओर हरियाली ही हरियाली थी। वर्षा के कारण वहाँ की सुन्दरता में चार चाँद लग गये थे। एक कार में कुछ खराबी हो गई जिससे वह पीछे रह गई। हम लोग उसकी प्रतीक्षा करने लगे। इस प्रकार श्रीदाता की कार आगे निकल गई और हम लोग पीछे ही रह गये। यह तो निश्चय किया नहीं था कि दिल्ली में कहाँ ठहरा जाय। अतः हम लोग परेशान से हुए किन्तु चलते रहे, इस आशा में कि कहीं न कहीं श्रीदाता की

कार को पकड ही लेंगे। नौ बजे के लगभग यमुना का पुल पार कर लाल किले की दीवार के पास पहुँचे। श्रीदाता की कार को सडक की एक किनारे खडी पाया। हमारी कारें कुछ आगे बढ गई थी। ट्राफिक इतना था कि कारो को वापिस घूमाने में आधा घण्टा लग गया। जब श्रीदाता की कार के पास पहुँचे तो वह कार यह कह कर रवाना हो गई कि पीछे पीछे चले आओ। हमारी कारें पीछे पीछे चलने लगी। चलते चलते हमारी कार का पेट्रोल समाप्त हो गया। स्वार्थ के वशीभूत कहने पर भी ड्राईवर ने पेट्रोल नही भरवाया। अगले पेट्रोल पम्प पर भरवायेंगे इसी आशा में चलते रहे। जब कार रुक ही गई तो एक पेट्रोल पम्प पर उसे खडी कर पेट्रोल भरवाया किन्तु अन्य कारें किधर निकल गई इसका ध्यान ही नही रहा। इस आशा से कि कारें हमें तलाशने अवश्य आवेगी, एक घण्टे तक रुके रहे। अन्त में निराश होकर चल पडे। कुछ आगे जाने पर एक स्थान पर चाय पीते हुए अन्य सब लोग तो मिल गये। किन्तु श्रीदाता की कार तो नही मिली। लगभग तीन बजे जयपुर पहुँचे तो मालूम हुआ कि श्रीदाता की कार तो दो घण्टे पूर्व ही आ चुकी थी और वे विश्राम कर रहे हैं। इस प्रकार श्रीदाता ने दो दिन व दो रात्रि में हरिद्वार कुंभ की यात्रा करवा दी।

परिशिष्ट क

(१) श्री दाता द्वारा श्री गंगाभारती जी को लिखे गये पत्र की प्रतिलिपि :-

ॐ दाता सतगुरु समर्थ

दाता-निवास

७-१०-७१

श्रीमान् सन्त स्वरूप भगवान के चरणों में वारंवार नत-मस्तक के साथ जयजय दाता सतगुरु समर्थ की मालूम होवे ।

आप यहाँ कृपा महर की वरसात करने के लिये पधार कर हमको कृतार्थ करके हमारा जीवन सफल बनाया । जैसे राम ने शवरी के घर पधार कर सफल किया वैसे ही, इसके लिये हम वड़े आभारी हैं और कृतज्ञता प्रकट करते हैं आपके चरणों में । आपको कष्ट हुआ उसके लिये वारंवार क्षमा याचना करते हैं और शर्मा साहव से भी व सब महापुरुषों से भी ।

आपकी दया का भिखारी

दासानुदास

गिरधरिया

(२) श्रीदाता द्वारा श्री वावूलाल जी गुप्ता को लिखे गये पत्र की प्रतिलिपि :-

श्रीदाता सतगुरु समर्थ

दाता-निवास

२४-२-८२ ई.

श्रीमान् परमपूजनीय हमारे और आपके परम हितैषी की चाह करने वाले आपको वारंवार हाथ जोड़ कर विनम्रता के साथ मय चरण स्पर्श के जयजय दाता सतगुरु समर्थ की मालूम होवे ।

आप जिस भाव से प्रियतम की चाह रखते हैं, उसी तरह आप आपकी चाह रखते हैं । जैसे आप जिस भाव से हमारे परम प्यारे प्रियतम की चाह रखते हो उसी तरह हम भी आप की चाह रख कर नमन नत-मस्तक होकर

बारबार नमन करके अपना आनन्द मान लेते हैं। आगे लिखने को हमारे पास न लेखनी है न बुद्धि ही है। पत्र देने में देर हुई उसके लिये क्षमा याचना क्योंकि मैं तो लिखना नही जानता और कोई लिखने वाला आप जैसा मिल जाता है तो वो आपके पत्र द्वारा आपको नमन कर आनन्द मान लेता है।

श्रीमान बाबूलाल जी साहब गुप्ता — दासानुदास
C/o श्री शर्मा आयुर्वेद मंदिर, दतिया — गिरधरिया

(४) श्री बदनसिंह जी परमार द्वारा श्रीदाता के नाम लिखे गये पत्र की प्रतिलिपि –

श्री गुरवे नम

– वन्दे कृष्ण जगद्गुरुम् –

रायभा-आगरा (उ प्र)
दि २५-८-८३ ई

प्रेषक –

बदनसिंह परमार।

अचिन्त्याऽव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने।
समस्त जगदाधार मूर्तये ब्रह्मणे नम ॥
लीला मलयल्लोल काल व्याल विलासिने।
गणेशायनमो नील कमलामल कान्तये ॥

भगवन्!

दाता श्री के चरणो में इस पद रेणु की साष्टाग दण्ड प्रणाम स्वीकार हो।

आपकी अचिन्त्य लीला का कहीं पार नही है। यही नेति है। मानव मस्तिष्क जब सोचते सोचते असहाय होकर आपके ही आश्रय हो जाता है तो उसे कुछ कहने का साहस प्राप्त होता है। हे प्रभु! वह उस सीमा तक तो नहीं जा पाता, परन्तु आपके ही अनुग्रह से वह प्रत्येक पदार्थ में आपकी ही झलक देखने लगता है और तभी उसके मुह से बेखरी निकल पड़ती है –

बेहिजाब ऐसा कि हरजरे में जलवा आशकार।
जिस पर परदा यह कि सूरत आज तक देखी नहीं ॥

और

खूब पर्दा है कि चितमन से लगे बैठे हो।
साफ छुपते भी नहीं सामने आते भी नहीं ।।

यह कैसी विचित्र लीला है आपकी, समझना असंभव है। इसीलिए आपको लीलाधर भी कहा जाता है। कुछ ही समय पूर्व इस अधम दास ने पत्राचार द्वारा एक अभिलाषा व्यक्त की थी श्रीचरणों में। निवेदन दर्द के अधिक बढ़ जाने पर ही बड़ी ही विवशता में किया गया था। किन्तु ऐसा लगा कि नहीं करना चाहिये था, क्योंकि मेरे स्वामी को इससे कष्ट पहुँचना स्वाभाविक ही था। कहते हैं :-

"दर्द की शिकायत करना तो हीने मुहब्बत है।
दर्द उसी को देते हैं जिसे अपना समझते हैं।।

इस बात की अनुभूति मुझे उस समय हुई जब दिनांक २०-८-८३ ई. के चतुर्थ प्रहरान्त में आप पुरुषोत्तम को मेरे आर्तनाद पर मुझे दर्शन देकर कृतार्थ करने हेतु यहाँ पधारने का कष्ट उठाना पड़ा।

उस दिन ब्रह्म मूर्त में जब मैं प्रातःकृत्य हेतु आसन पर बैठा तो बरबस मुझे तन्द्रावस्था छा गई। उसी अवस्था में मेरे स्वर्गीय पूज्य पिताजी मेरे समक्ष प्रगट हो गये। उन्हें देख कर मैं चौंक पड़ा। किन्तु तुरन्त ही उन्होंने बड़ी प्रसन्न मुद्रा मे कहा, "डरो मत, देखो! तुम्हारे पास भगवान पधारे हैं।" अपने स्वर्गवासी पूज्य पिताजी की बात समाप्त होते ही मैंने देखा कि मेरे ब्रह्मलीन सद्गुरु प्रातः स्मरणीय श्री स्वामिवर्य तथा उन्हीं रूप में आप श्रीदाता मेरे पूजा कक्ष में पधारे हैं। मेरी कर्मेन्द्रियाँ किसी अद्भुत शक्तिद्वारा स्तम्भित कर दी गई थी। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ होकर रह गया। इस दशा में मैंने अपने प्रवराचार्यों को मन ही मन प्रणाम कर कृतकृत्य अनुभव किया। मुझे दर्शन देने के पश्चात् मेरे भगवान अन्तर्ध्यान हो गये और मुझे एक झटका सा लगा कर मेरी कर्मेन्द्रियाँ कार्य करने लगी।

मैं सोचता हूँ, मैं भगवान का अपराधी हूँ क्योंकि मेरी इच्छापूर्ति हेतु उन्हें इतना कष्ट उठाना पड़ा। किन्तु करूं भी क्या आपने दर्द ही ऐसा दिया है। मेरे सद्गुरु ने भी आपके साथ दर्शन दिये। निश्चय ही उन्होंने आपसे यही निवेदन किया होगा कि इस (मुझ) बुद्धिहीन अल्हड़ शिष्य को भी अपनी पद रेणु मान कर कृपापूर्वक मार्गदर्शन करिये।

मेरे मनीषी! आप सब के हेतुभूत और आश्रय है। इसलिए इस पदरेणु का भी अवसान आपमें ही है। आप ही मुझ पतिताधम के पिता है और प्रातःस्मरणीया भाभा ही मेरी माँ हैं। आपके चरण कमल ही मेरा एकमात्र

आश्रय है। मेरा कर्म है आपके समक्ष मात्र रोना। उससे आगे सभालना काम है आपका। मैं कुछ नही जानता और न आपके चरणो की भक्ति के अतिरिक्त कुछ मागता ही हूँ क्योकि —

जानामि धर्मं नच में प्रवृत्ति-
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्ति ।
त्वया हृषीकेश हृदिस्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ।।

यहाँ पर मुझे सन्त अलखराम की गाई हुई पक्तियाँ भी स्मरण हो आई हैं जिन्हें नीचे उद्धृत कर रहा हूँ —

प्रीति लगी वा खास पीये से
नैहर से चित फार ।
वा दिन का मोहि वडा डर लागे
जा दिन आवत वरात ।।
भोर होत स्वामी डुलिया फँदी है
छूटे सखियन का साथ ।
आवागमन मोरे सिर पर बीते
नहिं सखियन का साथ ।।
घूघट खोल स्वामी पूछन लागें हैं
मुख से न आहिऐं जवाब ।
प्रीति लागी मोरे खास गुरु से
पाति उन्हीं के हाथ ।।
अलखराम स्वामी गारी गावें
कितने दिनो का साथ ।

परम पुजनीया श्री राधा विग्रह माँ मामा, आप श्री गिरधर गोपाल 'दाता' और आपके वासा बृजवासी ग्वाल मण्डल को मुझ अधम दासानुदास का साष्टांग प्रणाम् ।

नित्यशुद्ध विरायास निराकार निरञ्जनम् ।
नित्यबोध चिदानन्दम् गुरु ब्रह्म नमाम्यहम् ।।

पद रेणु
मदनसिंह परमार

पुनश्च :-

सद्गुरु राखो लाज हमारी ।
काम क्रोध मद लोभ सतावे मोर उमरिया वारी ।
तुमको छोड़ कौन को ध्यैहों मरजइयों बिन मारी । सद्गुरु ...
मैं नैहर में आन फंसी हों इतनी अरज हमारी ।
दया धरम गुरु आप ही करियो सदमति करो हमारी ॥
मिलजुल मोर विदा कर दीजो जा दिन आवे कहारी । सद्गुरु ...
माई बाप मोरे अङ्ग न जैहे तुम ही हों रखवारी ।
तड़पत हों दिन रैन समझके मोहना मोहनी डारी ॥
मीरा कहे मोरि सुन आली उड़ चलि हैं ससुरारी ॥ सद्गुरु ...

कार्यालय नहर कॉलोनी
पनगरा-बांदा (उ. प्र.)

अकिञ्चन
बदनसिंह परमार

(४) श्रीदाता द्वारा श्री बदनसिंह जी साहब परमार को लिखे गये पत्र की प्रतिलिपि :-

श्रीदाता सतगुरु समर्थ

दाता-निवास
३-९-८३

श्रीमान् परम आदरणीय परम हितैषी शुभचिन्तक ज्ञान को खोजने वाले हमारे दाता को चाहने वाले परमप्रिय श्री बदनसिंह जी की सेवा में एक तुच्छ रजानुरज दासानुदास की नम्र निवेदन मय चरण स्पर्श के जय जय दाता सतगुरु समर्थ की मालूम होवे ।

अपरंच आपका पत्र मिला । उसको देख कर बहुत आनन्द और खुशी हुई । साथ में शर्म और लाज के साथ सिर नीचा भी हुआ । सिर नीचा होकर ऐसा हुआ जैसे समुद्र के सामने जल की बून्द का होता है और सूर्य के सामने दीपक का । अगर कोई मालिक यानी स्वामी एक कुत्ते के बच्चे को गोदी में लेकर कहता है कि वाह वाह रे मेरे शेर ! तो उस कुत्ते के बच्चे की वश की बात नहीं । वह तो स्वामी की गोद में बच्चा बन कर रहने में ही अपना सर्वस्व आनन्द मानता है । उसका लक्ष्य भी यही है कि सोऽहं बनना नहीं चाहता है । वह तो दासोऽहं में अपना सर्वोच्च आनन्द मानता है । यों तो आप

जैसे ज्ञानियो की दृष्टि में पत्थर की मूर्ति को भी सब उपाधियाँ और महिमा कह देते हैं। हम तो आपकी इन भाव में रत दृष्टि ही से आपको वारवार नमन करके अपना आनन्द मानते हैं। इससे यह वात सावित होती है –

लाली मेरे लाल की, जित देखू तित लाल।
लाली देखन में चली, मैं भी हो गई लाल ॥

सुना है हमने ऐसा कि जो आनन्द गोपियो को मिला वह आनन्द भगवान को नही मिला। इसलिये हम तो गोपी ही रहना चाहते हैं। आपकी कृपादृष्टि के सामने हमारे पास लेखनी या शब्द नहीं है। बारबार आपको जय जय श्रीदाता सतगुरु समर्थ के साथ में नतमस्तक होकर नम्र निवेदन के साथ नमन है।

आपको नमन के साथ में लेखनी आगे नही चलती। हम तो अबोध व अज्ञानी ही रहना चाहते हैं। आपके सिवा किसी का बोध न हो।

श्रीमान बदनसिंह जी साहब
कार्यालय नहर कॉलोनी-पनगरा
बाँदा (उत्तर प्रदेश)

आपका
दासानुदास
गिरधरिया

परिशिष्ट ख

(१) दक्षिण भारत की यात्रा मे सम्मिलित होने वाले व्यक्तियो की सूची :-

१. श्रीदाता, २. श्रीमती मातेश्वरी, ३. श्रीमती कैलाशबाई, ४. कुं. हरदयाल सिंह जी, ५. श्री गोविन्द सिंह जी, ६. श्री सोहनलाल जी ओझा, ७. श्री वंशीलाल जी, ८. श्री शंकरलाल जी नाई, ९. श्री ख्यालीलाल जी सर्वा, १०. श्री जगदीशचन्द्र जी ओझा, ११. श्री सत्यनारायण जी त्रिवेदी, १२. श्री रिखबचन्द जी महात्मा, १३. श्री रामसिंह जी चून्डावत, १४. श्री मदनसिंह जी कम्पाउन्डर, १५. श्री गोकुलसिंह जी, १६. श्री कन्हैयालाल जी (मास्टर), १७. श्री रामसिंह जी (बड़े), १८. श्री खींवसिंह जी, १९. श्री रामसिंह जी (लोगड़ी), २०. श्री चान्दमल जी, २१. श्री गिरधरसिंह जी, २२. श्री सत्यनारायण जी ओझा, २३. श्री बसन्तीलाल जी, २४. श्री राधेश्याम जी. २५. श्री गजसिंह जी, २६. श्री सत्यदेव जी, २७. श्री ओमप्रकाश जी, २८. श्री वंशीधर जी, २९. श्री माधवलाल जी त्रिवेदी, ३०. श्री रामलाल जी टेलर, ३१. श्री शिवसिंह जी चूण्डावत, ३२. श्री चन्द्रशेखर जी श्रोत्रिय, ३३. श्री श्रीनाथ जी जोशी, ३४. श्री गोवर्धनसिंह जी, ३५. श्री मुरलीधर जी व्यास, ३६. श्री चन्द्रप्रकाश जी, ३७. श्री मोहनलाल जी, ३८. श्री राधाकिशन जी खाती, ३९. श्री ईश्वरलाल जी (करेड़ा), ४०. श्री प्रभुलाल जी लखारा, ४१. श्री गप्पूलाल जी, ४२. श्री प्रभुनारायण जी, ४३. श्री दिनेशकुमार जी, ४४. श्री दुर्गाप्रसाद जी वैद्य, ४५. श्री हरिशकर जी (मामाजी), ४६. श्री डाक्टर वी. के. शर्मा, ४७. श्री माधव विहारी जी, ४८. श्री लवाणिया साहब, ४९. श्री ओमप्रकाश जी पारीख, ५०. श्री कल्याणप्रसाद जी, ५१ श्री हरलाल जी जाट, ५२. श्री मोहनसिंह जी (मनुभाई), ५३. श्री बृजविहारी जी, ५४. श्रीमती गप्पूलाल जी, ५५. सु. श्री मोहिनी जी, ५६ सु. श्री रागिनी जी, ५७. सु. श्री वीणा जी, ५८. श्रीमती रघुराज नारायण जी माथुर, ५९. श्रीमती माधव विहारी जी, ६०. श्रीमती मुकुट विहारी जी, ६१. श्रीमती दुर्गाप्रसाद जी, ६२. श्रीमती हरिशंकर जी, ६३. श्रीमती प्रभुनारायण जी, ६४. श्रीमती दिनेश जी, ६५. श्रीमती ओमप्रकाश जी, ६६. श्रीमती आनन्द विहारी जी, ६७. श्रीमती रेवती रमण जी, ६८. बहन श्री प्रभुनारायण जी, ६९. श्रीमती श्रीनाथ जी जोशी, ७०. श्रीमती राधेश्याम जी, ७१. श्रीमती वंशीधर जी, ७२. श्रीमती राम जी टेलर, ७३. श्रीमती माधवलाल जी ७४. श्रीमती विहारीलाल जी, ७५. श्रीमती खींवसिंह जी, ७६. श्रीमती कन्हैयालाल जी, ७७. श्रीमती रामसिंह जी, ७८. श्रीमती फतहसिंह जी, ७९. श्रीमती मुरलीधर जी,

८० श्रीमती सत्यदेव जी, ८१ श्री माधव विहारी जी का बच्चा, ८२ श्रीमती चाँदमल जी, ८३ मोटर मालिक श्री पारीख ८४ श्री पारीख की पत्नी, ८५ श्री पारीख का भाई, ८६ श्री पारीख की भगिनी, ८७ बस का ड्राईवर, ८८ बस का ड्राईवर, ८९ बस का खलासी, ९० बस का खलासी।

(२) गिरनार और द्वारिका की यात्रा में आने वालों की सूची – १ श्रीदाता, २. श्री मातेश्वरी जी, ३ श्रीमती सज्जन कँवर, ४ श्रीमती सम्पत कँवर, ५ भाणी सुनीता, ६ भाणी शिवकुमारी, ७ श्रीमती रामकवर, ८ भ कृष्णदयाल सिंह ९ श्री विश्वनाथ हल्वे, १० श्रीमती विश्वनाथ हल्वे, ११ श्री वरदू जी कुमावत, १२ श्री सवाईराम जी कुमावत १३ बहन मोहिनी देवी, १४. बहन अनछी देवी, १५ श्री शकरलाल जी जाट, १६ श्री सुरेन्द्रकुमार जी श्रोत्रिय, १७. श्री राजेन्द्रप्रसाद जी श्रोत्रिय, १८ श्री गोपाल जी श्रोत्रिय, १९ श्री सुशीलकुमार जी श्रोत्रिय, २० श्री गोपाललाल जी त्रिवेदी, २१. श्री किशनलाल जी नाथानी, २२ श्री सत्यनारायण जी, २३ श्री महेश दवे, २४ श्री आनन्दस्वरूप जी, २५ श्रीमती आनन्दस्वरूप जी, २६ श्रीमती चन्द्रप्रकाश जी, २७ श्री श्यामसुन्दर जी २८ श्री राधेश्याम जी शर्मा, २९ श्री चन्द्रशेखर, ३० बस का ड्राइवर, ३१ बस का खलासी।

(३) उज्जैन सिंहस्थ एव गिरनार की यात्रा में जाने वालों की सूची – १ श्रीदाता, २ श्रीमती मातेश्वरी जी, ३ कु हरदयालसिंह जी, ४ कुवरानी जी ५ श्री उदयसिंह जी, ६ श्री ओम जी पारीख, ७ श्रीमती ओम जी पारीख, ८ श्री महेशचन्द्र जी, ९ श्री श्रीरामजी, १० श्री सीताराम जी, ११ श्री मुकुट विहारी जी, १२ श्री चाँदमल जी जोशी, १३ श्री गिरधारी सिंह जी, १४ श्री रामसिंह जी, १५ श्री ओंकार सिंह जी, १६ श्री मदनसिंह जी १७ श्री शिवसिंह जी, १८ श्रीमती शिवसिंह जी, १९. श्री ओमप्रकाश जी, २०. श्रीमती ओमप्रकाश जी, २१ श्री रामलाल जी, २२ श्री वशीधर जी, २३ श्री चैनसिंह जी, २४ श्रीमती चैनसिंह जी, २५ श्री राधाकृष्ण जी, २६ श्री रामरतन जी, २७ श्री शिवदान सिंह जी, २८ श्री महावीर सिंह जी, २९ श्री सत्यनारायण जी, ३० श्री राधेश्याम जी, ३१. श्री सोहनलाल जी ओझा, ३२. श्री राधेश्याम जी शर्मा, ३३. श्री सोहनलाल जी, ३४ श्री मोहनलाल जी, ३५. श्री ख्यालीलाल जी, ३६. श्री रामनिवास जी, ३७ श्री भेरूलाल जी, ३८ श्री जगदीश जी, ३९. श्री माँगीलाल जी, ४० श्री कुञ्जविहारी जी, ४१ श्री दुर्गाप्रसाद जी वैद्य, ४२ श्रीमती दुर्गाप्रसाद जी, ४३ श्रीमती हरिश्चन्द्र जी, ४४ श्रीमती महेशचन्द्र जी, ४५ ड्राईवर, ४६ बस का खलासी।

०००